गान्धी साहित्य

६

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास

सस्ता साहित्य मंडल

इस पुस्तकमें

दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंके मानवोचित अधिकारोंके लिए किये गये सत्याग्रहका इतिहास है। इसके बारेमें गांधीजीने लिखा है :

"दक्षिण अफ्रीकामें हिंदुस्तानियोंकी लड़ाई आठ बरस चली। इस संग्रामके लिए ही 'सत्याग्रह' शब्दकी खोज की गई और प्रयोग किया गया। ....उसका कितना ही अंश तो केवल मैं ही लिख सकता हूं। कौनसी बात किस हेतुसे की गई, इसका पता तो युद्धका संचालन करनेवालेको ही हो सकता है। राजनीतिके क्षेत्रमें बड़े पैमानेपर यह पहला ही प्रयोग था। इसलिए इस सत्याग्रहके सिद्धांतका विकास कैसे हुआ, इसकी जानकारी लोगोंको हो जाना हर हालतमें जरूरी समझा गया।"

पुस्तक दो खंडोंमें है। पहला खंड बापूने यरवडा जेलमें लिखा था। द्वितीय खंड बादमें। इस पुस्तकमें दोनों खंड शामिल हैं।

इस नये संस्करणमें अंग्रेजी-संस्करणके आधारपर कुछ बातें जोड़ दी गई हैं।

—मंत्री

आभार

इस पुस्तकके चित्रोंके ब्लाक हमें 'नवजीवन' प्रकाशन-मंदिर, अहमदाबादसे प्राप्त हुए हैं, जिसके लिए हम उनके आभारी हैं।

—मंत्री

मूल्य

साढ़े तीन रुपये

गांधी-साहित्य—६

दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह

राजनीतिके क्षेत्रमें बड़े पैमाने पर सत्याग्रहके
पहले प्रयोगका इतिहास

•

मोहनदास करमचंद गांधी

•

१९५०

सस्ता साहित्य मंडल • नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तंड उपाध्याय, मंत्री
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

तीसरी बार
नया संस्करण : १९५०

मूल्य

अजिल्द : तीन रुपये
सजिल्द : साढ़े तीन रुपये

मुद्रक—
कृष्णप्रसाद दर
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

प्रकाशककी ओरसे

भारतको गांधीजीकी अनेक देनोंमें से 'सत्याग्रह' उनकी एक विशेष देन है। इस शब्दका आविष्कार दक्षिण अफ़्रीकामें हिंदुस्तानियोंके मान-मर्यादा और मानवोचित अधिकारोंके लिए किये गये संग्रामके दिनोंमें हुआ था और वहींपर सबसे पहले राजनीतिके क्षेत्रमें बड़े पैमानेपर इसका प्रयोग किया गया था।

दक्षिण अफ़्रीकाकी इस लड़ाईको हुए यद्यपि एक युग बीत चुका है, तथापि उसके अनुभव, उसकी शिक्षा, उसके निष्कर्ष आज भी ताजे हैं। इसी पुस्तकके द्वितीय खण्डकी प्रस्तावनामें गांधीजीने लिखा है, "मैं इस बातको अक्षरशः सत्य मानता हूँ कि सत्यका पालन करनेवालेके सामने संपूर्ण जगतकी समृद्धि रहती है और वह ईश्वरका साक्षात्कार करता है। अहिंसाके सान्निध्यमें वैर-भाव टिक नहीं सकता, इस वचनको भी मैं अक्षरशः सत्य मानता हूं। कष्ट सहन करनेवालोंके लिए कुछ भी अशक्य नहीं होता, इस सूत्रका मैं उपासक हूं। . . . ." जीवनकी कठोरतम साधनासे उद्‌भूत ये मूल-मंत्र इतने वर्षों बाद आज भी ताजे हैं और हमेशा ताजे रहेंगे।

दक्षिण अफ़्रीकासे आनेके बाद भारतमें गांधीजीने जो लड़ाइयां लड़ीं, उन्हें गहराईसे समझनेके लिए दक्षिण अफ़्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास जानना आवश्यक है। कारण कि जिन मूलभूत सिद्धांतोंपर बादकी लड़ाइयां लड़ी गईं, उनका मूलसूत्र दक्षिण अफ़्रीकाके सत्याग्रहमें मिलता है।

पुस्तकका अनुवाद मूल गुजरातीसे श्रीकालिकाप्रसादजीने किया है और अंग्रेजी-संस्करणके आधारपर बहुतसे परिवर्द्धन करके उसे यथा-संभव पूर्ण बनानेका प्रयत्न किया गया है।

—मंत्री

विषय-सूची



बैरिस्टर गांधी

(सत्याग्रह-संग्रामके आरंभमें)

दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह

प्रथम खण्ड

प्रास्ताविक

दक्षिण अफ्रीकामें हिंदुस्तानियोंकी सत्याग्रहकी लड़ाई आठ बरस चली। इस संग्रामके लिए ही 'सत्याग्रह' शब्दकी खोज की गई और प्रयोग किया गया। बहुत दिनोंसे मेरी इच्छा थी कि इस संग्रामका इतिहास लिखूं। उसका कितना ही अंश तो केवल मैं ही लिख सकता हूं। कौन-सी बात किस हेतुसे की गई, इसका पता तो युद्धका संचालन करनेवालेको ही हो सकता है। राजनीतिके क्षेत्रमें बड़े पैमानेपर यह पहला ही प्रयोग था। इसलिए इस सत्याग्रहके सिद्धांतका विकास कैसे हुआ इसकी जानकारी लोगोंको हो जाना हर हालतमें जरूरी समझा जायगा।

पर इस वक्त तो हिंदुस्तानमें सत्याग्रहके लिए विशाल क्षेत्र है। वीरमगाम[1] की चुंगीकी एक छोटी-सी लड़ाईसे इसका अनिवार्य क्रम आरंभ हुआ है।

वीरमगामकी चुंगीकी लड़ाईमें निमित्त था बढवाण[1] का साधुचरित परोपकारी दरजी भाई मोतीलाल। १९१५में मैं विलायतसे वापस आकर काठियावाड़ जा रहा था। तीसरे दर्जेमें सवार था। बढवाण स्टेशनपर यह दरजी अपनी छोटी-सी टोली लेकर आया था। वीरमगामकी कथा थोड़ी-सी सुनाकर उसने मुझसे कहा—"इस कष्टको काटिए। आपने काठियावाड़में जन्म लिया है, इसे सार्थक कीजिए।" उसकी आंखोंमें दृढ़ता और करुणा दोनों थीं।

मैंने पूछा, "तुम जेल जानेको तैयार हो?"

तुरंत जवाब मिला—"हम फांसी चढ़नेतकके लिए तैयार हैं।"

---

[1] वीरमगाम अहमदाबादसे ४० मील पश्चिममें एक कसबा है। बढ़वाण वीरमगामसे ४० मील पश्चिममें पड़ता है।

मैं—"मेरे लिए तो जेल ही काफी है; पर देखना, विश्वासघात न हो।"

मोतीलाल—"यह तो काम पड़नेपर मालूम होगा।"

मैं राजकोट पहुंचा। वहां अधिक ब्यौरे मालूम किये और सरकारके साथ लिखा-पढ़ी शुरू कर दी। बगसरा[1] आदिके भाषणोंमें मैंने लोगोंको सलाह दी कि वीरमगामकी चुंगीके मामलेमें सत्याग्रह करना पड़े तो वे उसके लिए तैयार रहें। सरकारकी वफादार खुफिया पुलिसने ये भाषण उसके दफ्तरमें पहुंचाए। पहुंचानेवालेने सरकारके साथ अनजानमें जनताकी भी सेवा की। अंतमें लार्ड चेम्सफर्डके साथ इस विषयमें बातचीत हुई और उन्होंने दिए हुए वचनका पालन किया। औरोंने भी कोशिश की, यह मैं जानता हूं। पर मेरी पक्की राय है कि इस मामलेको लेकर सत्याग्रह किये जानेकी संभावना थी, इसीसे यह चुंगी रद्द हुई।

वीरमगामके बाद गिरमिटके कानूनसे लड़ना पड़ा। इस कानूनको रद्द करानेके लिए भरपूर कोशिश की गई थी। इस लड़ाईको जोर पहुंचानेके लिए सार्वजनिक आंदोलन भी अच्छा-खासा हुआ था। बम्बईमें हुई सभामें गिरमिट यानी शर्तबंद कुलीप्रथाको बंद करानेके लिए १९१७ की ३१ वीं जुलाईकी तारीख तै की गई थी। यह तिथि कैसे नियत हुई इसका इतिहास यहां नहीं दिया जा सकता। इस आंदोलनके अंतर्गत वाइसरायके पास पहले बहनोंका प्रतिनिधिमंडल गया। इसमें खास कोशिश किसकी थी यह लिखे बिना नहीं रहा जा सकता। वह थी चिरस्मरणीय बहन जाइजी पेटिटकी। इस लड़ाईमें केवल सत्याग्रहकी तैयारीसे ही हमारी विजय हो गई। पर उसके विषयमें सार्वजनिक आंदोलनकी आवश्यकता थी, यह अंतर याद रखने लायक है। गिरमिटको बंद कराना वीरमगामकी चुंगी उठवानेसे ज्यादा वजनदार मामला था।

---

[1]काठियावाड़का एक स्थान।

लार्ड चेम्सफर्डने रौलट कानूनके बाद गलतियां करनेमें कसर नहीं की। फिर भी आज मेरा यही खयाल है कि वे चतुर और समझदार वाइसराय थे। सिविल सर्विसके स्थायी अधिकारियोंके पंजेसे अंततक कौन वाइसराय बच सकता है ?

तीसरी लड़ाई थी चंपारनकी। इसका ब्यौरेवार इतिहास राजेन्द्रबाबूने लिखा है। इसमें सत्याग्रह करना पड़ा, केवल तैयारी काफी नहीं हुई; पर विपक्षका स्वार्थ कितना बड़ा था! चंपारनके लोगोंने कितनी शांति रखी, यह बात लिखने लायक है। सभी नेताओंने मन, वचन और कायासे पूरी तरह शांति रखी, इसका साक्षी मैं स्वयं हूं। तभी तो यह सदियोंकी बुराई छः महीनेमें नामशेष हो गई।

चौथी लड़ाई थी अहमदाबादके मिलमजदूरोंकी। उसका इतिहास गुजरात न जाने तो दूसरा कौन जान सकता है। मजदूरोंने कैसी शांति रखी! उनके नेताओंके बारेमें क्या मुझे कुछ कहनेकी जरूरत है? पर यह सब होते हुए भी इस विजयको मैं दोषपूर्ण मानता हूं। इसलिए कि मजदूरोंकी प्रतिज्ञाका पालन करानेके लिए मैंने जो उपवास किया वह मालिकोंपर दबाव-सा हो गया। उनके और मेरे बीच जो स्नेह था वह उपवासका असर उनपर डाले बिना रह ही नहीं सकता था। फिर भी इस संघर्षका सार तो स्पष्ट ही है। मजदूर शांतिके साथ अपनी प्रतिज्ञा-पर अटल रहते तो उनकी जीत होती ही और वे मालिकोंका मन हर लेते। वे मालिकोंका दिल नहीं जीत सके, क्योंकि वे मन-वचन-कर्मसे निर्दोष––शांत रहे, यह नहीं कहा जा सकता। वे शरीरसे शांत रहे, यह भी बहुत माना जायगा।

पांचवीं लड़ाई खेड़ामें लड़ी गई, इसमें सभी नेताओंने शुद्ध सत्यका पालन किया, यह मैं नहीं कह सकता। हां, शांति अवश्य बनाए रखी गई। किसानोंकी शांति कुछ मजदूरोंकी तरह केवल कायिक ही थी। इससे महज आबरू सलामत रही। जनतामें जबर्दस्त जागृति फैली। पर खेड़ाने

शांतिका पूरा पाठ नहीं पढ़ा था। मजदूर शांतिका शुद्ध रूप नहीं समझ पाए थे। इससे रौलट ऐक्टके विरुद्ध सत्याग्रह करते समय लोगोंको कष्ट सहना पड़ा। मुझे अपनी हिमालय-जैसी भूल कबूल करनी पड़ी और उपवास करना-कराना पड़ा।

छठी लड़ाई रौलट कानूनके विरुद्ध हुई। उसमें हमारे भीतरके दोष बाहर आ गए; पर असल बुनियाद पक्की थी। मैंने अपनी सब गलतियां कबूल कीं, प्रायश्चित्त किया। रौलट कानूनपर अमल तो कभी हो न सका और अंतमें यह काला कानून रद्द भी हो गया। इस संग्रामसे हमें बहुत बड़ा सबक मिला।

हमारी सातवीं लड़ाई थी खिलाफत, पंजाब और स्वराज्यकी। वह अभी चल रही है। उसमें एक भी सत्याग्रही अविचलित रहा तो हमारी विजय निश्चित है, यह मेरा अटल विश्वास है।

पर जो युद्ध चल रहा है वह महाभारत है। उसकी तैयारी बिना इरादेके किस तरह हो गई इसका क्रम मैंने ऊपर दे दिया है। वीरमगामकी चुंगीकी लड़ाईके समय क्या खबर थी कि मुझे और भी लड़ाइयाँ लड़नी होंगी। वीरमगामका भी दक्षिण अफ्रीकामें मुझे कहां पता था? सत्याग्रहकी यही तो खूबी है। वह खुद हमारे पास आ जाता है। हमें उसे ढूंढ़ने नहीं जाना पड़ता। यह गुण उसके सिद्धांतमें ही निहित है। जिसमें कुछ छिपा हुआ नहीं है, जिसमें कोई चालाकी नहीं करनी होती, जिसमें असत्यके लिए तो स्थान ही नहीं, ऐसा धर्मयुद्ध अनायास ही अपने पास आता है और धर्ममें आस्था रखनेवाला जन उसके स्वागतके लिए सदा तैयार रहता है। जिसकी रचना पहलेसे करनी पड़े वह धर्मयुद्ध नहीं हो सकता। धर्मयुद्धकी रचना करनेवाला और संचालक तो स्वयं ईश्वर है। यह युद्ध ईश्वरके ही नामपर चल सकता है और जब सत्याग्रहीकी सारी बुनियाद ढीली हो जाती है, जब वह नितांत निर्बल हो जाता है, जब उसके चारों ओर अंधकार छा जाता है, तभी ईश्वर उसकी मददको

पहुंचता है। मनुष्य जब अपने आपको रजकणसे भी छोटा मानता है तभी ईश्वर उसकी सहायता करता है। राम निर्बलको ही बल देते हैं।

इस सत्यका अनुभव तो अभी हमें होना है। इसलिए मैं मानता हूं कि दक्षिण अफ्रीकाका इतिहास हमारे लिए सहायकरूप है।

जो-जो अनुभव वर्तमान संग्राममें अबतक हुए हैं, पाठक देखेंगे कि उससे मिलते-जुलते अनुभव दक्षिण अफ्रीकामें भी हुए थे। दक्षिण अफ्रीका-का इतिहास हमें यह भी बतायेगा कि अभीतक हमारे संग्राममें नैराश्यका एक भी कारण नहीं है। विजयके लिए बस इतना ही जरूरी है कि हम अपनी योजनापर दृढ़ताके साथ आरूढ़ रहें।

यह प्रस्तावना मैं जुहू[1] में बैठा लिख रहा हूं। इतिहासके ३० प्रकरण यरवडा जेलमें लिखे थे। मैं बोलता गया और भाई इन्दुलाल याज्ञिक लिखते गए। बाकीके प्रकरण पीछे लिखनेकी सोचता हूं। जेलमें मेरे पास आधारके लिए पुस्तकें न थीं। यहां भी उन्हें इकट्ठा करनेकी इच्छा नहीं है। ब्यौरेवार इतिहास लिखनेकी मुझे फुरसत नहीं है। उत्साह या इच्छा भी नहीं है। मेरा उद्देश्य इतना ही है कि हमारे वर्तमान संग्राममें इससे मदद मिले और कभी किसी फुरसतवाले साहित्यविलासीके हाथों यह इतिहास विस्तारपूर्वक लिखा जाय तो उसके काममें मेरा यह प्रयत्न पतवार—पथप्रदर्शक—रूप हो सके। यद्यपि यह बिना आधारके लिखी हुई चीज है, फिर भी कोई यह न समझे कि इसमें एक भी ऐसी बात है जो सही नहीं है या एक जगह भी अतिशयोक्ति की गई है, यह मेरी प्रार्थना है।

जुहू, बुधवार,
फाल्गुन वदी १३, सं० १९८०,
२ अप्रैल, १९२४

—मोहनदास करमचंद गांधी

---

[1] बम्बईका उपनगर।

दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह

प्रथम खण्ड

: १ :

भूगोल

अफ्रीका दुनियाके बड़े-से-बड़े भूखंडोंमेंसे एक है। हिंदुस्तान भी एक भूखंडके बराबर विस्तारवाला देश माना जाता है; पर महज रकबेकी दृष्टिसे देखें तो अफ्रीकामें चार या पांच हिंदुस्तान समा जाएंगे। दक्षिण अफ्रीका अफ्रीकाका ठेठ दक्षिणी भाग है। हिंदुस्तानकी तरह अफ्रीका भी प्रायद्वीप है। अतः दक्षिण अफ्रीकाका बड़ा हिस्सा समुद्रसे घिरा हुआ है। अफ्रीकाके बारेमें आम खयाल यह है कि वहां ज्यादा-से-ज्यादा गरमी पड़ती है और एक दृष्टिसे यह बात सही भी है। भूमध्यरेखा अफ्रीकाके बीचसे होकर गुजरती है और इस रेखाके आसपासकी गरमीका अंदाजा हिंदुस्तानके रहनेवालोंको नहीं हो सकता। हिंदुस्तानके ठेठ दक्षिणमें जिस गरमीका अनुभव हम करते हैं उससे भूमध्यरेखाके पासकी गरमीका कुछ अंदाजा किया जा सकता है। पर दक्षिण अफ्रीकामें वैसी गरमी बिलकुल नहीं, क्योंकि अफ्रीकाका यह भाग भूमध्यरेखासे बहुत दूर है। उसके बड़े भागकी आब-हवा तो इतनी सुंदर और ऐसी मोतदिल है कि वहां यूरोपकी जातियां सुखसे घर बना सकती हैं। हिंदुस्तानमें बसना उनके लिए नामुमकिन-सा है। इसके सिवा

दक्षिण अफ्रीकामें तिब्बत या काश्मीरके जैसे बहुतसे ऊंचे प्रदेश हैं, फिर भी वे तिब्बत या काश्मीरकी तरह दससे चौदह हजार फुटतककी ऊंचाईवाले नहीं हैं। इससे वहांकी हवा खुश्क और बर्दाश्त होने लायक ठंडी रहती है। इसीलिए दक्षिण अफ्रीकाके कितने ही भाग क्षयरोगियोंके लिए अत्युत्तम माने जाते हैं। दक्षिण अफ्रीकाकी स्वर्णपुरी जोहान्सबर्ग ऐसे ही भागोंमेंसे एक है। जमीनके जिस टुकड़ेपर जोहान्सबर्ग आबाद है वह आजसे ५० साल पहले बिलकुल वीरान और सूखी घासका मैदान था; पर जब वहां सोनेकी खानोंकी खोज हुई तब वहां, जादूके महलकी तरह, मकान-पर-मकान बनने लगे और आज तो वह सुंदर बंगलोंका विशाल नगर है। वहांके धनिकोंने दक्षिण अफ्रीकाके उपजाऊ भागों और यूरोपसे भी एक-एक पौधेके १५-१५ रुपये देकर पेड़-पौधे मंगाये और लगाए हैं। उसका पिछला इतिहास न जाननेवाले यात्रीको आज यही जान पड़ेगा कि ये पेड़-पौधे हजारों सालसे वहां लग रहे होंगे।

दक्षिण अफ्रीकाके सभी विभागोंका वर्णन मैं यहां नहीं करना चाहता। जिन विभागोंके साथ हमारे विषयका कुछ संबंध है केवल उन्हींका थोड़ा परिचय दे रहा हूं। दक्षिण अफ्रीकामें दो हुकूमतें हैं—ब्रिटिश और पुर्तगीज। पुर्तगीज हिस्सेको डेलागोआबे कहते हैं, और हिंदुस्तानसे जाते हुए वह दक्षिण अफ्रीकाका पहला बंदरगाह माना जाता है। वहांसे थोड़ा दक्षिणकी ओर और बढ़िये, नीचे उतरिये तो पहला ब्रिटिश राज्य नेटाल आता है। उसका बंदरगाह पोर्ट नेटाल कहलाता है, पर हम उसे डर्बनके नामसे जानते हैं और दक्षिण अफ्रीकामें भी वह आम तौरसे इसी नामसे ख्यात है। नेटालका यह सबसे बड़ा नगर है। नेटाल-की राजधानीका नाम पीटर मारित्सबर्ग है। वह डर्बनसे

अंदरकी ओर आगे जाते हुए लगभग ६० मीलके फासलेपर पड़ता है। समुद्रकी सतहसे उसकी ऊंचाई अंदाजन् २ हजार फुट है। डर्बनकी आब-हवा कुछ-कुछ बंबईसे मिलती हुई मानी जा सकती है; पर बंबईसे वहांकी हवामें कुछ अधिक ठंड अवश्य है। नेटालसे आगे बढ़कर और अंदर जानेपर ट्रांसवाल आता है जिसकी जमीन आज दुनियाको सबसे ज्यादा सोना दे रही है। कुछ बरस पहले वहां हीरेकी खानें भी मिली हैं, जिनसे दुनियाका बड़े-से-बड़ा हीरा निकला है। वह कोहेनूरसे भी बड़ा हीरा रूसके पास है, ऐसा समझा जाता है। उसका नाम खानके मालिकके नामपर रखा गया है और वह क्लीनन[1] हीरा कहलाता है।

पर जोहान्सबर्ग 'स्वर्णपुरी' है और हीरेकी खानें भी उसके पास ही हैं, फिर भी वह ट्रांसवालकी राजधानी नहीं है। उसकी राजधानी प्रिटोरिया है। यह जोहान्सबर्गसे ३६ मीलके फासलेपर है और वहां खासकरके राजदरबारी आदमियों तथा उनसे संबंध रखनेवालोंकी बस्ती है। इससे वहांका वातावरण कुछ शांत माना जाता है। जोहान्सबर्गका वातावरण तो अतिशय अशांत कहा जाता है। जैसे हिंदुस्तानके किसी शांतिभरे गांव या छोटेसे नगरसे कोई बंबई-जैसे महानगरमें पहुंचे तो वहांके धूम-धड़क्के और अशांतिसे घबरा जाता है, प्रिटोरियासे जानेवालेको जोहान्सबर्गका दृश्य भी वैसा ही मालूम होता है। अगर यह कहें कि जोहान्सबर्गके लोग चलते नहीं, बल्कि दौड़ते हैं तो यह अतिशयोक्ति नहीं मानी जायगी। किसीको किसीकी ओर देखने तककी

---

[1]क्लीनन हीरेका वजन ३ हजार कैरट है। कोहेनूरका वजन १००कैरटके और रूसके राजमुकुटक हीरे 'ओर्लफ' का २०० कैरटके लगभग है।

फुरसत नहीं होती और हर एक इसी धुनमें गर्क दिखाई देता है कि कैसे कम-से-कम समयमें अधिक-से-अधिक पैसा कमा ले। ट्रांसवालको छोड़कर पश्चिमकी ओर और भी अंदर जाइए तो आरेंज फ्री स्टेट अथवा आरेंजियाका उपनिवेश आता है। इसकी राजधानी ब्लूमफोंटीन है। यह अतिशय शांत और छोटा-सा नगर है। आरेंजियामें कोई खान-वान नहीं है। वहांसे रेलपर कुछ घंटेकी यात्रासे ही हम केप कॉलोनीकी सरहदपर पहुंच जाते हैं। केप कॉलोनी दक्षिण अफ्रीकाका सबसे बड़ा उपनिवेश है। उसकी राजधानी और सबसे बड़ा बंदरगाह केप टाउनके नामसे प्रसिद्ध है। 'केप आव गुड होप' नामका अंतरीप इसी राज्यमें है। गुड होपके मानी हैं शुभाशा। वास्को डी गामा जब पुर्तगालसे हिंदुस्तानकी खोजमें निकला तब उसने यहीं पहुंचकर अपने जहाजका लंगर डाला और यहीं उसे यह आशा बंधी कि अब अपनी मुराद जरूर पूरी होगी। इसीसे इस स्थानका नाम 'शुभाशा अंतरीप' रखा।

इन चार मुख्य ब्रिटिश उपनिवेशोंके अतिरिक्त और कई प्रदेश हैं जो ब्रिटिश साम्राज्यके संरक्षणमें हैं और जिनमें उन लोगोंकी बस्ती है जो दक्षिण अफ्रीकाके यूरोपियनोंके आगमनके पहलेसे इस देशमें रहते थे।

दक्षिण अफ्रीकाका मुख्य धंधा खेती ही माना जायगा। खेतीके लिए यह बहुत ही अच्छा देश है। कितने ही भाग तो अतिशय उपजाऊ और सुहावने हैं। अनाजोंमें सबसे अधिक और आसानीसे उपजनेवाली फसल मकईकी है। मकई दक्षिण अफ्रीकाके हबशी बाशिंदोंका मुख्य आहार है। कुछ हिस्सोंमें गेहूं भी पैदा होता है। फलोंके लिए तो दक्षिण अफ्रीका प्रसिद्ध है। नेटालमें बहुत किस्मोंके और बहुत बढ़िया केले, पपीते और अनन्नास पकते हैं और इतनी इफरातसे कि गरीब-से-गरीब आदमीको भी मिल सकें। नेटाल और दूसरे



ब्रिटिश
साउथ आफ्रिका
१ स्टेंगर
२ टोंगाट
३ वेरुलम
४ फिनिक्स
५ पिटर मारित्सबर्ग
६ ग्लेंको जंकशन
७ ईन हाउस
८ फोक्स्टस
९ जर्मिस्टन
१० पामफर्ड
११ पार्लस्टाउन
जर्मन
साउथ
वेस्ट
आफ्रिका
नदी लीम्पोपो
लीम्पोपो
लीम्पोपो नदी
बोर्मबाथ्स
रुस्तमबर्ग
प्रिटोरिया
मीडुलबर्ग
जोहानीसबर्ग
मेफेकींग
मोलोपो नदी
ओोसोबनदी
कुरुमन नदी
किंबर्ली
ओरेन्ज
फ्री
स्टेट
स्टेंडर्टन
हेरीस्मिथ
डन्डी
लेडीस्मीथ
नेटाल
डर्बन
डर्बनथी मुंबई
डर्बनथी मोरेशीअस
ओरेन्ज नदी
ओरेन्जे
पोर्ट नोलोथ
सेंट हेलीना
केपटाउन
केप ऑफ गुडहोप
रीचमंड
ग्राफीनेट
पोर्ट एलिझाबेथ
ईस्ट लंडन
१५
२०
२५
३०
३५

उपनिवेशोंमें भी नारंगी, संतरा, 'पीच' और एप्रिकाट (जर्दालू) इतने बड़े परिमाणमें पैदा होते हैं कि हजारों आदमी सामान्य श्रमसे देहातमें उन्हें बिना पैसेके पा सकते हैं। केप कॉलोनी तो अंगूर और बड़े बेर का देश है। वहां जैसे अंगूर शायद ही और कहीं उपजते हों। मौसममें वे इतने सस्ते हो जाते हैं कि गरीब आदमी भी जी भरकर खा सके। जहां हिंदुस्तानी बसते हों वहां आम न हों, यह हो नहीं सकता। हिंदुस्तानियोंने आमकी गुठलियां बोईं और इसका फल यह हुआ कि दक्षिण अफ्रीकामें आज आम भी अच्छी मात्रामें उपलभ्य हैं। उनकी कुछ किस्में तो बेशक बबंईके 'हापुस-पायरी' के साथ मुकाबला कर सकती हैं। साग-भाजी भी इस रसीली भूमिमें इफरातसे उपजती हैं और कह सकते हैं कि शौकीन हिंदुस्तानियोंने हिंदुस्तानकी लगभग सभी साग-तरकारियां यहां उपजा ली हैं।

मवेशियोंकी तादाद भी यहां काफी कही जा सकती है। गाय-बैल हिंदुस्तानके गाय-बैलोंसे बड़े डील-डौलवाले और अधिक बलवान होते हैं। गोरक्षाका दावा करनेवाले हिंदुस्तानमें कितने ही गाय-बैलोंको हिंदुस्तानके लोगोंकी तरह ही दुबला-सूखा देखकर मैंने शर्मसे सिर झुकाया है और अनेक बार मेरा दिल उनकी दशा देखकर रोया है। दक्षिण अफ्रीकामें दुबली गाय या दुबला बैल मैंने कहीं देखा हो, ऐसा मुझे याद नहीं आता, गोकि मैं अपनी आंखें प्रायः खुली रखकर उसके सभी भागोंमें फिरा हूं। प्रकृतिने अपनी दूसरी देनोंके साथ-साथ इस भूमिको सृष्टि-सौन्दर्यसे संवारनेमें भी कोताही नहीं की है। डर्बनका दृश्य तो बहुत ही सुंदर माना जाता है; पर केप कॉलोनी उससे भी बढ़-चढ़कर है। केप टाउन नगर 'टेबल माउंटेन' नामक पहाड़की तलहटीमें बसा हुआ है जो न बहुत नीचा है और न बहुत ऊंचा। दक्षिण

अफ्रीकाकी पूजा करनेवाली एक विदुषीने इस पहाड़पर एक कविता लिखी है, जिसमें वह कहती है कि जो अलौकिकता मैंने 'टेबल माउंटेन' में अनुभव की है वह मुझे किसी और पर्वतमें नहीं मिली। इसमें अतिशयोक्ति भले ही हो—मैं मानता हूं कि है—पर इस विदुषी बहनकी एक बात मेरे मनमें बैठ गई है। वह कहती है कि टेबुल माउंटेन केप टाउन-निवासियोंके मित्रका काम करता है। यह पर्वत बहुत ऊंचा नहीं है। इससे डरावना नहीं लगता। लोगोंको दूरसे ही उसका पूजन करके संतोष नहीं करना पड़ता; बल्कि वे इस पहाड़पर ही घर बनाकर रहते हैं और बिलकुल समुद्रके किनारे होनेसे समुद्र सदा अपने स्वच्छ जलसे उसके पांव पखारा और उसका चरणामृत पिया करता है। बच्चे और बूढे, स्त्री और पुरुष सब निर्भय होकर लगभग सारे पहाड़पर विचर सकते हैं और हजारों नगरवासियोंके कोलाहलसे सारा पर्वत प्रतिदिन गूंज उठता है। इसके विशाल वृक्ष, सुगंध-भरे और रंग-बिरंगे फूल सारे पहाड़को इस तरह संवार देते हैं कि उसकी सुषमा निरखते और उसपर विचरते लोग अघाते ही नहीं।

दक्षिण अफ्रीकामें इतनी बड़ी नदियां नहीं हैं जिनकी तुलना हमारी गंगा-जमुनाके साथ की जा सके। थोड़ी नदियां हैं, पर वे बहुत छोटी कही जाएंगी। इस देशमें बहुतेरे भाग ऐसे हैं जहां नदीका पानी पहुंचता ही नहीं। ऊंचे प्रदेशोंमें नहरें भी कहांसे लाई जाएं? और जहां समुद्रकी समता करनेवाली नदियां न हों वहां नहरें कहांसे हो सकती हैं? दक्षिण अफ्रीकामें जहां-जहां प्रकृतिने पानीकी तंगी कर रखी है वहां पाताल जैसे गहरे कुएं खोदकर पवनचक्कियों और भापकी कलोंके जरिए इतना पानी खींचा जाता है कि खेतोंको सींच सके। वहांकी सरकारकी तरफसे खेतीको

भरपूर मदद मिलती है। किसानोंको सलाह देनेके लिए वह खेती के विशेषज्ञों को भेजा करती है। कितने ही स्थानोंमें प्रजाके लाभके लिए सरकार अनेक प्रयोग किया करती है। वह नमूनेके खेत रखती है, लोगोंको मवेशी और बीज मिलनेका सुभीता कर देती है, बहुत थोड़े खर्चेसे बहुत गहरे कुएं खुदवा देती है और उसकी कीमत क़िस्तोंमें चुकानेका सुभीता किसानोंके लिए कर देती है। इसी तरह लोहेके कंटीले तारोंकी बाड़ भी खेतोंके इर्द-गिर्द लगवा देती है।

दक्षिण अफ्रीका भूमध्यरेखाके दक्षिणमें पड़ता है और हिंदुस्तान उत्तरमें। इससे वहांका सारा वातावरण हिंदुस्तानियोंको उलटा-सा मालूम होता है। वहांका ऋतुक्रम भी विपरीत है। जब हमारे यहां गरमी होती है तब वहां जाड़ेके दिन होते हैं। वर्षाका वहां कोई पक्का नियम नहीं दिखाई देता। वह चाहे जब हो सकती है। आमतौरपर २० इंचसे अधिक बारिश नहीं होती।

: २ :

इतिहास

अफ्रीकाके भूगोलपर निगाह डालते हुए जिन विभागोंको हम देख गए हैं, पाठक यह न समझ लें कि वे आदिकालसे ही हैं। बिलकुल पुराने जमानेमें वहां कौनसे लोग बसते थे इसका पक्का निश्चय अभी नहीं हो सका है। यूरोपके लोग जब दक्षिण अफ्रीकामें आबाद हुए उस वक्त वहां हबशी जातिके लोग रहते थे। यह माना जाता है कि अमरीकामें जिन दिनों गुलामीका चक्र जोर-शोरसे चल रहा था उस वक्त ये हबशी वहांसे भागकर दक्षिण अफ्रीकामें आ गये और

आबाद हुए। उनकी जुदा-जुदा जातियां हैं, जैसे जुलू, स्वाजी, बसूटो, बेकवाना इत्यादि। इनकी भाषामें भी भेद हैं। ये हबशी ही दक्षिण अफ्रीकाके मूलनिवासी माने जाएंगे। पर दक्षिण अफ्रीका इतना लंबा-चौड़ा देश है कि फिलहाल जितने हबशी वहां बसते हैं उनसे बीस-तीस गुनी बड़ी आबादी उसमें सुखसे समा सकती है। डर्बनसे केप टाउन रेलके रास्ते लगभग १८०० मीलका सफर है। समुद्रकी राह भी एक हजार मीलसे कमका फासला नहीं है। इन चारों राज्योंका रकबा ४,७३,००० वर्गमील है।

इस विशाल भूखंडमें १९१४ में हबशियोंकी आबादी करीब ५० लाख और गोरोंकी करीब १३ लाखके थी। हबशियोंमें जुलू सबसे ज्यादा कद्दावर और सुंदर कहे जा सकते हैं। हबशियोंके लिए सुंदर विशेषणका व्यवहार मैंने जान-बूझकर किया है। सफेद चमड़े और नुकीली नाकपर हम रूपका आरोप किया करते हैं। इस वहमको क्षणभरके लिए अलग रख दें तो जुलू लोगोंको गढ़नेमें ब्रह्माने कोई कसर रखी है, यह नहीं जान पड़ेगा। स्त्री-पुरुष दोनों ऊंचे कदके होते हैं, छाती अपनी ऊंचाईके अनुपातसे चौड़ी होती है। सारे शरीरकी रगें सुगठित और खूब मजबूत होती हैं। इनकी पिंडलियां और भुजाएं भी सदा मांससे भरी हुई और गोलाकार दिखाई देती हैं। कोई स्त्री या पुरुष झुककर या कूबड़ निकालकर चलता हुआ शायद ही कभी दिखाई देता हो। होंठ अवश्य लंबे और मोटे होते हैं, पर सारे शरीरके आकारको देखते हुए मैं तो उन्हें तनिक भी बेडौल न कहूंगा। आंखें गोल और तेजस्विनी होती हैं। नाक चपटी और बड़ी होती है, पर इतनी ही कि लंबे-चौड़े मुंह-पर फबे। उनके सिरके घुंघराले बाल उनकी शीशम-जैसी काली और चमकीली त्वचापर खिल उठते हैं। आप किसी जुलूसे

पूछें कि दक्षिण अफ्रीकामें बसनेवाली जातियोंमें सबसे अधिक सुंदर तुम किसे कहोगे तो यह दावा वह अपनी जातिके लिए ही करेगा और इसमें मुझे उसका तनिक भी अज्ञान नहीं दिखाई देता। जो प्रयत्न सैंडो आदि आज यूरोपमें अपने शागिर्दोंकी बाहु, छाती आदिके व्यवस्थित विकासके लिए कर रहे हैं वैसे किसी भी प्रयत्नके बिना, कुदरती तौरपर ही, इस जातिके अंग-प्रत्यंग सुदृढ़ और गठे हुए दिखाई देते हैं। प्रकृतिका नियम है कि भूमध्य रेखाके नजदीक रहनेवालोंका चमड़ा काला ही होना चाहिए और हम यह मान लें कि प्रकृति जो-जो शकलें गढ़ती है उसमें सुंदरता होती ही है तो सौंदर्यविषयक अपने संकुचित और एकदेशीय विचारोंसे बच जायं। इतना ही नहीं, हिंदुस्तानमें अपने ही चमड़ेको कुछ काला पाकर हमारे मनमें जो अशोभन लज्जा और अरुचि उत्पन्न होती है उससे भी हम मुक्त हो सकते हैं।

ये हबशी मिट्टी और फूसके गुंबददार झोंपड़ोंमें रहते हैं। इन झोंपड़ोंमें एक ही गोल दीवार होती है और ऊपर फूसका छप्पर। छप्पर भीतर लगे हुए एक खंभेपर टिका होता है। दरवाजा एक ही होता है और इतना नीचा कि बिना झुके कोई अंदर नहीं जा सकता। यही दरवाजा हवाके आने-जानेका रास्ता होता है। उसमें किवाड़ तो शायद ही होते हैं। हम लोगोंकी तरह ये लोग भी दीवार और जमीनको मिट्टी और गोबर-से लीपते हैं। ऐसा माना जाता है कि ये लोग कोई भी चौकोर चीज नहीं बना सकते। अपनी आंखोंको उन्होंने केवल गोल चीज ही देखना और बनाना सिखाया है। हम प्रकृतिको भूमितिकी सरल रेखाएं, सीधी आकृतियां बनाते नहीं पाते और प्रकृतिके इन निर्दोष भोले-भाले बच्चोंका ज्ञान उनके प्रकृतिके अनुभवपर ही आश्रित होता है।

उनके इस मिट्टीके महलमें साज-सामान भी उसके अनुरूप ही होता है। यूरोपीय सभ्यताके प्रवेशके पहले ये पहनने-ओढ़ने, सोने-बैठने सबमें चमड़ेका ही उपयोग करते थे। कुरसी-मेज, संदूक-पिटारा रखनेको तो इस 'महल'में जगह भी नहीं होती और अंग्रेजीके आधारपर आज भी इनके दर्शन वहां शायद ही होते हैं। अब उनके घरोंमें कंबलका प्रवेश हो गया है। ब्रिटिश राजके पहुंचनेके पहले हबशी स्त्री-पुरुष लगभग नंगे ही फिरा करते थे। आज भी देहातमें बहुतेरे इसी तरह रहते हैं। गुह्य अंगोंको वे एक चमड़ेसे ढक लेते हैं। कोई-कोई यह भी नहीं करते; पर इसका अर्थ कोई पाठक यह न कर लें कि ये लोग अपनी इंद्रियोंको वशमें नहीं रख सकते। जहां एक बड़ा समुदाय किसी रूढ़िसे बंधकर व्यवहार करता हो वहां यह बात बिलकुल मुमकिन है कि दूसरे समुदायको वह रूढ़ि अयोग्य मालूम होती हो, फिर भी पहले समुदायकी निगाहमें उसमें तनिक भी दोष न हो। इन हबशियोंको एक दूसरेकी ओर ताकने-झांकनेकी फुरसत ही नहीं होती। भागवतकार कहते हैं कि शुकदेवजी जब नंगी नहाती हुई स्त्रियोंके बीचसे होकर चले गए तो न उनके मनमें तनिक भी विकार उत्पन्न हुआ, न उन निष्पाप स्त्रियोंको तनिक भी क्षोभ हुआ या जरा भी शर्म आई। मुझे इसमें कुछ भी अलौकिक नहीं दिखाई देता। हिंदुस्तानमें आज ऐसे मौकेपर हममेंसे कोई भी इतनी स्वच्छता, इतनी निर्विकारताका अनुभव नहीं कर सकता तो यह कुछ मनुष्य-जातिकी पवित्रताकी सीमा नहीं है, बल्कि हमारे दुर्भाग्यकी निशानी है। हम जो इन लोगोंको जंगली मानते हैं यह तो हमारे अभिमानकी प्रतिध्वनि है। जैसा हम मानते हैं वैसे जंगली वे नहीं हैं।

ये हबशी जब शहरमें आते हैं तब उनकी स्त्रियोंके लिए यह नियम है कि उन्हें छातीसे घुटनेतकका भाग अवश्य ढक रखना

चाहिए। इस कारण उन्हें पसंद न होते हुए भी वैसा कपड़ा लपेटना पड़ता है। इससे दक्षिण अफ्रीकामें इस नापके कपड़ेकी बहुत खपत होती है और ऐसे लाखों कंबल और चादरें हर साल यूरोपसे आती हैं। पुरुषोंके लिए अपनी देहको कमरसे घुटनेतक ढक रखना लाजिमी है। इससे उन्होंने यूरोपके उतारे हुए कपड़े पहननेका चलन चला दिया है। जो यह नहीं करते वे नेफादार जांघिया पहनते हैं। ये सारे कपड़े यूरोपसे ही आते हैं।

इन लोगोंकी खास खुराक मकई और जब मिल जाय तब मांस है। मसाले वगैरहसे तो खुशकिस्मतीसे वे बिलकुल अनजान हैं। इनके भोजनमें मसाला पड़ा हो या हल्दीका रंग भी आ गया हो तो ये नाक-भौं सिकोड़ेंगे और जो निरे जंगली कहे जाते हैं वे तो उसे छुएंगे भी नहीं। साबित उबाली हुई मकईको थोड़ा नमक मिलाकर एक वक्तमें एक सेर खा लेना साधारण जुलूके लिए कोई असाधारण बात नहीं है। मकईके आटेको पानीमें पकाकर उसकी लपसी बनाकर खानेमें वे संतोष मानते हैं। मांस जब मिल जाय तब कच्चा या पक्का, उबालकर या भूनकर, केवल नमकके साथ, खा लेते हैं। मांस चाहे जिस प्राणीका हो, उसे खाते उन्हें हिचक नहीं होती।

उनकी भाषाके नाम भी जातिके नामपर ही होते हैं। लेखन-कलाका प्रवेश गोरोंके ही द्वारा हुआ है। हबशी वर्ण-माला-जैसी कोई चीज नहीं है। हालमें रोमन लिपिमें बाइबिल आदि पुस्तकें हबशी भाषाओंमें छापी गई हैं। जुलू भाषा अत्यंत मधुर है। अधिकांश शब्दोंके अंतमें 'आ' का उच्चारण होता है। इससे भाषाकी ध्वनि कानोंको हलकी और मीठी लगती है। मैंने पढ़ा और सुना है कि उसके शब्दोंमें अर्थ और काव्य दोनों होते हैं। जिन थोड़ेसे शब्दोंका ज्ञान मुझे अनायास हो गया है उनके आधारपर मुझे यह मत ठीक मालूम

होता है। नगरों आदिके यूरोपियनोंके रखे हुए नाम जो मैंने दिये हैं उनके काव्यमय हवशी नाम भी हैं हो; पर वे मुझे याद नहीं रहे। इससे उन्हें नहीं दे सका।

पादरियोंके मतानुसार तो हबशियोंका न कोई धर्म था और न है; पर धर्मको व्यापक अर्थमें लें तो कह सकते हैं कि वे एक ऐसी अलौकिक शक्तिको अवश्य मानते और पूजते हैं, जिसे वे खुद पहचान नहीं सकते। इस शक्तिसे वे डरते भी हैं। शरीरके नाशके साथ मनुष्यका सर्वथा नाश नहीं होता, इसकी भी उन्हें धुंधली प्रतीति होती है। हम नीतिको धर्मका आधार मानें तो नीतिपालक होनेके कारण उन्हें धर्म-निष्ठ भी मान सकते हैं। सच और झूठके भेदको वे पूरी तरह समझते हैं। अपनी स्वाभाविक अवस्थामें वे जिस सीमातक सत्यका पालन करते हैं, गोरे या हम लोग उस सीमातक उसका पालन करते हैं या नहीं, इसमें शक है। उनके मंदिर-देवालय नहीं होते। दूसरी जातियोंकी तरह इन लोगोंमें भी बहुत तरहके वहम देखनेमें आते हैं। पाठकोंको यह जानकर अचरज होगा कि शरीर-बलमें दुनियाकी किसी भी जातिसे हेठी न ठहरनेवाली यह कौम वस्तुतः इतनी डरपोक, इतनी बुजदिल है कि हबशी जवान गोरे बालकको भी देखकर डर जाता है। कोई उसके सामने तमंचा तान दे तो वह या तो भाग जायगा या ऐसे जड़ बन जायगा कि उसमें भागनेकी शक्ति भी न रहेगी। इसका कारण तो है ही। उसके दिलमें यह बात बैठ गई है कि मुट्ठीभर गोरोंने जो ऐसी बड़ी और जंगली जाति-को वशमें कर रखा है यह जरूर कोई जादू होना चाहिए। भाले और तीरसे काम लेना हबशी बहुत अच्छी तरह जानते थे। ये तो उनसे छीन लिए गए हैं। बंदूक उन्होंने न कभी देखी, न चलाई। जिसको न दियासलाई दिखानी पड़ती है, न एक उंगली हिलानेके सिवा और कोई हरकत

करनी पड़ती है, फिर भी एक छोटी-सी नलीसे यकायक आवाज होती है, आग भड़कती है और गोली लगकर क्षणभरमें आदमीका काम तमाम कर देती है ! यह ऐसा चमत्कार है जो बेचारे हबशीकी समझमें नहीं आ सकता। इससे वह इस चीजको काममें लानेवालेके डरसे हमेशा बदहवास रहता है। उसने और उसके बाप-दादोंने देखा है कि इन गोलियोंने कितने ही असहाय और निरपराध हबशियोंकी जान ले ली है। यह क्यों और कैसे होता है, बहुतेरे हबशी इसे आज भी नहीं जानते।

इस जातिमें 'सभ्यता' धीरे-धीरे प्रविष्ट होती जा रही है। एक ओरसे भले पादरी ईसामसीहका संदेश, जैसा कुछ उन्होंने उसे समझा है, उनके पास पहुंचा रहे हैं। उनके लिए मदरसे खोल रहे हैं और उन्हें सामान्य अक्षरज्ञान दे रहे हैं। इनकी कोशिशसे कितने ही चरित्रवान हबशी भी तैयार हुए हैं; पर बहुतेरे जो अक्षरज्ञान और सभ्यतासे परिचित न होनेके कारण अनेक अनीतियोंसे बचे हुए थे, आज ढोंगी-पाखंडी भी हो रहे हैं। जो हबशी 'सभ्यता' के संपर्कमें आ चुके हैं उनमें शायद ही कोई ऐसा हो जो शराबकी बुराईसे बचा हो। उनके तगड़े मस्त शरीरपर जब शराबका भूत सवार होता है तब वे पूरे पागल हो जाते हैं और न करनेके सब काम कर डालते हैं। सभ्यताके साथ-साथ आवश्यकताओंका बढ़ना तो उतना ही पक्का है जितना दो और दो मिलकर चार होना। जरूरतें बढ़ानेके लिए हो या उन्हें श्रमका मूल्य सिखानेके लिए, हर हबशीको 'मुंड-कर' या व्यक्ति-कर (Poll tax) और कुटी-कर (Hut tax) देना पड़ता है। ये कर न लगाए जायं तो यह अपने खेतोंमें रहनेवाली जाति खानोंसे सोना या हीरा निकालनेके लिए जमीनके अंदर सैकड़ों गजकी गहराईमें क्यों उतरने जाय ? और इन खानोंके लिए इनका श्रम सुलभ न हो तो सोना और हीरे

पृथ्वीके उदरमें ही पड़े रह जायं। वैसे ही इनपर कर लगाये बिना यूरोपियनोंको नौकर मिलना भी कठिन होगा। इसका फल यह हुआ है कि खानोंके भीतर काम करनेवाले हजारों हब्शियोंको दूसरे रोगोंके साथ-साथ एक प्रकारका क्षय रोग भी हो जाता है जिसे 'माइनर्स थाइसिस' (खानमें काम करनेवालोंका क्षय) कहते हैं। यह रोग प्राणहारी है। इसके पंजेमें पड़नेके बाद बिरले ही उबरते हैं। ऐसे हजारों आदमी एक खानके अंदर रहें और उनके बाल-बच्चे साथ न हों तो उस दशामें वे कितना संयम रख सकते हैं, पाठक इसका सहज ही अनुमान कर सकते हैं। इसके फलस्वरूप पैदा होनेवाले रोगोंके भी ये लोग शिकार हो जाते हैं। दक्षिण अफ्रीकाके विचारशील गोरे भी इस गंभीर प्रश्नपर विचार न करते हों, सो बात नहीं है। उनमेंसे कितने ही अवश्य यह मानते हैं कि सभ्यताका असर इस जातिपर कुल मिलाकर अच्छा पड़ा है, यह दावा शायद ही किया जा सकता है। इसका बुरा असर तो हर आदमी देख सकता है।

इस महान् देशमें जहां ऐसी सरल, निर्दोष जाति बसती थी, कोई चार सौ साल पहले वलंदा लोगोंने पड़ाव डाला। ये गुलाम तो रखते ही थे, अपने जावाके उपनिवेशसे कितने ही वलंदा अपने मलायी गुलामोंको लेकर उस प्रदेशमें दाखिल हुए जिसे आज हम केप कालोनी कहते हैं। ये मलायी लोग मुसलमान हैं। उनमें वलंदा लोगों का रक्त और वैसे ही उनके कितने ही गुण भी हैं। वे सारे दक्षिण अफ्रीकामें इक्के-दुक्के बिखरे हुए दिखाई देते हैं, पर उनका केन्द्र केप टाउन ही माना जाता है। आज उनमेंसे कितने ही गोरोंकी नौकरी करते हैं और दूसरे स्वतंत्र व्यवसाय करते हैं। मलायी स्त्रियां बड़ी ही मेहनती और होशियार होती हैं। उनकी रहन-सहन आम तौरसे साफ़-सुथरी दिखाई देती है। औरतें धुलाई और सिलाई-

का काम बहुत अच्छा कर सकती हैं। मर्द कोई छोटा-मोटा रोजगार करते हैं। बहुतेरे तांगा-गाड़ी हांकनेका धंधा करके गुजर-बसर करते हैं। कुछने ऊंचे दरजेकी अंग्रेजी शिक्षा भी प्राप्त की है। उनमेंसे एक डाक्टर अब्दुलरहमान केप टाउनमें मशहूर हैं। वह केप टाउनकी पुरानी धारा सभामें भी पहुंच गए थे। नए विधानमें प्रधान धारा सभामें जानेका यह हक छीन लिया गया है।

वलंदा लोगोंका वर्णन करते हुए बीचमें मलायी लोगोंका जिक्र अपने आप आ गया। पर अब हम जरा देखें कि वलंदा लोग किस तरह आगे बढ़े। वलंदाके मानी डच होते हैं, यह मुझे बतानेकी जरूरत नहीं होनी चाहिए। ये लोग जितने बहादुर योद्धा थे और हैं उतने ही कुशल किसान थे और आज भी हैं। उन्होंने देखा कि हमारे आसपासका देश खेतीके लिए बहुत ही उपयुक्त है। उन्होंने यह भी देखा कि इस देशके असल बाशिंदे सालमें कुछ ही दिन काम करके आसानीसे अपना निर्वाह कर सकते हैं। तब उनसे मजदूरी क्यों न करायें? वलंदाके पास युद्धकला थी, बंदूक थी और दूसरे प्राणियोंकी तरह आदमियोंको भी कैसे बसमें किया जाता है, यह जानते थे। उनका विश्वास था कि ऐसा करनेमें धर्मकी कोई बाधा नहीं है। अतः अपने कार्यके औचित्यके विषयमें तनिक भी शंकाशील हुए बिना उन्होंने दक्षिण अफ्रीकाके मूलनिवासियोंकी मजदूरीके बलपर खेती आदि करना शुरू कर दिया।

जैसे वलंदा दुनियामें अपना फैलाव करनेके लिए अच्छी-अच्छी जमीनें ढूंढ़ रहे थे वैसे ही अंग्रेज भी इस फेरमें फिर रहे थे। अतः धीरे-धीरे अंग्रेज भी यहां पहुंचे। अंग्रेज और डच चचेरे भाई तो हैं ही। दोनोंका स्वभाव एक, लोभ एक। एक ही कुम्हारके बनाये हुए मटके जब इकट्ठे होते

हैं तो कभी-कभी आपसमें टकराकर फूटते भी हैं। वैसे ही ये दोनों जातियां भी धीरे-धीरे देशमें घुसते और हबशियोंको वशमें करते हुए एक दूसरेसे टकरा गईं। इनमें भी झगड़े हुए, लड़ाइयां भी हुईं। मजूबाकी पहाड़ीपर अंग्रेजोंने हार भी खाई। इस हारका दाग उनके दिलपर रह गया और वह पककर फोड़ा बन गया। यह फोड़ा १८९९ से १९०२ ई० तक जो जगत-प्रसिद्ध युद्ध हुआ उसमें फूटा। लार्ड राबर्ट्सनने जब जनरल क्रोंजेको अपने अधीन किया तब उन्होंने स्वर्गीया महारानी विक्टोरियाको यह तार किया—"मजूबाका बदला ले लिया।" पर इन दोनोंके बीच जब पहली (बोअर-युद्धके पहले) मुठभेड़ हुई तब बहुतेरे वलंदा लोग अंग्रेजोंके नामकी हुकूमत भी कबूल करनेको तैयार न थे। इसलिए दक्षिण अफ्रीकाके अज्ञात भीतरी भागमें चले गये। इसीके फलस्वरूप ट्रांसवाल और आरेंज फ्री स्टेटकी उत्पत्ति हुई।

यही वलंदा या डच लोग दक्षिण अफ्रीकामें बोअरके नामसे पुकारे जाने लगे। उन्होंने अपनी भाषाकी रक्षा उससे उसी तरह चिपके रहकर की है जैसे बच्चा मातासे चिपका रहता है। अपनी स्वतंत्रताके साथ अपनी भाषाका अतिशय निकट संबंध है, यह बात उनके अंतरमें अंकित हो गई है। उसपर कितने ही हमले हुए, फिर भी वे अपनी भाषाकी रक्षा किये जा रहे हैं। इस भाषाने भी अब ऐसा नया रूप ग्रहण कर लिया है जो यहांके लोगोंके अनुकूल हो। हालैंडके साथ वे अपना निकट संबंध बनाये नहीं रख सके, इससे जैसे संस्कृतसे प्राकृत भाषाएं निकलीं वैसे ही डच भाषासे अपभ्रष्ट डच-बोअर लोग बोलने लगे। पर अब वे अपने बच्चोंपर अनावश्यक बोझ डालना नहीं चाहते। इसलिए इस प्राकृत बोलीको स्थायी रूप दे दिया है और वह 'टाल'के नामसे विख्यात है। उसीमें उनकी पुस्तकें लिखी जाती हैं। बच्चोंकी पढ़ाई इसी

भाषामें होती है और धारा सभाके बोअर सदस्य उसीमें भाषण भी करते हैं। यूनियनकी स्थापनाके बाद सारे दक्षिण अफ्रीकामें दोनों भाषाओं, 'टाल' या डच और अंग्रेजीको समान पद प्राप्त है, यहांतक कि उसके सरकारी गजट और धारा सभाकी कार्रवाईका दोनों भाषाओंमें प्रकाशित होना जरूरी है।

बोअर लोग सीधे, भोले और धर्ममें पक्की निष्ठा रखनेवाले होते हैं। वे बड़े-बड़े खेतोंके बीच बसते हैं। उनके खेतोंके विस्तारकी कल्पना हमें नहीं हो सकती। हमारे किसानोंके खेतके मानी होते हैं दो या तीन बीघे जमीन। अकसर इससे भी छोटे होते हैं। उनके खेतोंका स्वरूप यह है कि एक-एक आदमीके पास सैकड़ों-हजारों बीघा जमीन होती है। यह सारी जमीन तत्काल जोत डालनेका लोभ भी इन किसानोंको नहीं होता। कोई उनसे दलील करे तो कहते हैं—"पड़ी रहने दो। जिस जमीनको हम न जोतेंगे उसे हमारी संतान जोतेगी।"

हर एक बोअर युद्धकलाका पूरा पंडित होता है। वे आपसमें भले ही लड़ते-झगड़ते रहें, पर अपनी आजादी उन्हें इतनी प्यारी होती है कि जब उनके ऊपर हमला होता है तो सारे बोअर उसका सामना करनेको जुट जाते हैं और एकजान होकर लड़ते हैं। उन्हें लंबी कवायदकी जरूरत नहीं होती, क्योंकि लड़ना सारी जातिका स्वभाव या सहज गुण है। जनरल स्मट्स, जनरल डी वेट, जनरल हर्ज़ोग, तीनों बड़े वकील और बड़े किसान हैं और तीनों वैसे ही बड़े लड़वैया भी हैं। जनरल बोथाके पास नौ हजार एकड़का एक खेत था। खेतीके सारी पेचीदगियां उन्हें मालूम थीं। सुलहके लिए जब वह यूरोप गये तब उनके बारेमें कहा गया कि भेड़ोंकी परीक्षामें उनके-जैसा कुशल यूरोपमें भी शायद ही कोई हो। यही जनरल बोथा

स्वर्गीय राष्ट्रपति क्रूगरके स्थानापन्न हुए। उन्हें अंग्रेजी अच्छी आती थी, फिर भी इंगलैंडमें जब वे बादशाह और मंत्रिमंडलसे मिले तब उन्होंने सदा अपनी मातृभाषामें ही बातचीत करना पसंद किया। कौन कह सकता है कि उनका यह आग्रह उचित नहीं था? अपना अंग्रेजीका ज्ञान दिखानेके लिए गलतियां करनेकी जोखिम वह क्यों उठायें? उपयुक्त शब्दकी तलाशमें उनके विचारोंकी शृंखला टूट जाय, यह साहस वह किस लिए करें? मंत्रिगण अनजानमें कोई अपरिचित अंग्रेजी मुहावरा बोल जाय, वह उसका अर्थ न समझें और कुछ-का-कुछ जवाब दे जाएं, शायद घबरा जाएं और यों उनका काम बिगड़ जाय, ऐसी संगीन गलती वह क्यों करें?

बोअर पुरुष जैसे बहादुर और सीधे हैं, बोअर स्त्रियां भी वैसी ही बहादुर और सरल स्वभावकी होती हैं। बोअर युद्धके समय जो बोअर लोगोंने अपना खून बहाया वह बलि वे बोअर स्त्रियोंकी हिम्मत और उनसे मिलनेवाले बढ़ावेके बलपर ही दे सके। इन स्त्रियोंको न अपना सुहाग उजड़नेका डर था और न भविष्यकी ही चिंता थी। मैं कह चुका हूं कि बोअर लोग ईसाई हैं और धर्ममें पक्की आस्था रखनेवाले हैं। पर वे हजरत ईसाके नये इकरारनामे (न्यू टेस्टामेंट) को मानते हैं, यह नहीं कह सकते। सच पूछिए तो यूरोप ही नये इकरारनामेको कहां मानता है? फिर भी यूरोपमें नये इकरारनामेका आदर करनेका दावा किया ही जाता है, गोकि कुछ ही यूरोपवासी ईसामसीहके शांति-धर्मको जानते और उसका पालन करते हैं। पर बोअर लोगोंके बारेमें तो कह सकते हैं कि वे नये करारका नामभर जानते हैं। पुराने करार (ओल्ड टेस्टामेंट) को वे अवश्य भावपूर्वक पढ़ते और उसमें जो लड़ाइयोंका वर्णन है उसे कंठ करते हैं। हजरत मूसाका 'दांतके बदले दांत और आंखके बदले आंख' की शिक्षाको वे

पूरे तौरसे मानते हैं और जैसा मानते हैं वैसा ही आचरण भी करते हैं।

बोअर स्त्रियोंने भी यह मानकर कि अपनी स्वतंत्रताकी रक्षाके खातिर जितना भी दुःख सहन करना पड़े वह धर्मका आदेश है, धीरज और आनंदसे सारी मुसीबतें सह लीं। उन्हें झुकानेके लिए स्वर्गीय लार्ड किचनरने कोई उपाय उठा नहीं रखा। उन्हें जुदा-जुदा शिविरों या इहातोंमें बंद करवा दिया, जहां उनपर असह्य आपत्तियां आईं, खाने-पीनेकी सांसत, ठंढसे और गरमी-धूपसे बेहाल। कोई शराब पीकर बदहवास या कामांध सैनिक इन असहाय स्त्रियोंपर आक्रमण भी कर बैठता। इन इहातोंमें अनेक प्रकारके उपद्रव हुआ करते थे। फिर भी ये बहादुर स्त्रियां न झुकीं। अंतमें बादशाह एडवर्डने लार्ड किचनरको लिखा--"मुझसे यह सहन नहीं हो सकता। बोअर स्त्रियोंको झुकानेका अगर हमारे पास यही इलाज हो तो इसकी बनिस्बत चाहे जैसी भी सुलह कर लेना मैं पसंद करूंगा। आप लड़ाईको जल्दी समेटिये।"

इस सारे दुःख-दर्दकी आवाज जब इंगलैंड पहुंची तब ब्रिटिश जनता बहुत दुःखी हुई। बोअरोंकी बहादुरीसे वह आश्चर्यचकित हो रही थी। ऐसी छोटी-सी जाति दुनियाको घेर रखनेवाली सल्तनतके छक्के छुड़ा दे, यह बात तो ब्रिटिश जनताके मनमें चुभती ही रहती थी। पर जब उसे इन इहातोंके भीतर बंद स्त्रियोंका आर्तनाद, उन स्त्रियोंके द्वारा नहीं, उनके मर्दोंके द्वारा भी नहीं--वे तो रणमें ही जूझ रहे थे--बल्कि उन इक्के-दुक्के उदार-चरित अंग्रेज स्त्री-पुरुषोंके जरिये, जो उस वक्त दक्षिण अफ्रीकामें मौजूद थे, पहुंचा तो उसके अंदर अनुतापका उदय हुआ। स्वर्गीय सर हेनरी केम्पबेल बैनरमैनने अंग्रेज जनताके हृदयको पहचाना और युद्धके विरुद्ध

गर्जना की। स्वर्गीय श्रीस्टेडने प्रकट रूपसे ईश्वरसे प्रार्थना की कि वह इस युद्धमें अंग्रेजोंको हरा दे और दूसरोंको भी वैसा करनेकी प्रेरणा की। यह दृश्य अद्‌भुत था। सच्चा दुःख सचाईके साथ सहा जाय तो वह पत्थरके दिलको भी पानी कर देता है। यह है इस कष्ट-सहन अर्थात् तपस्याकी महिमा और इसमें ही सत्याग्रहकी कुंजी है।

इसका फल यह हुआ कि फ्रीनिखनकी सुलह हुई और दक्षिण अफ्रीकाके चारों राज्य एक शासन-प्रबंधके नीचे आये। यद्यपि इस सुलहकी बात अखबार पढ़नेवाले हर हिंदुस्तानीको मालूम है, फिर भी एक-दो बातें ऐसी हैं जिनकी कल्पनातक बहुतोंको होना मुमकिन नहीं। फ्रीनिखनकी सुलह होते ही दक्षिण अफ्रीकाके चारों राज्य एकमें मिल गये हों सो बात नहीं। हर एककी अपनी धारा सभा थी। उनका शासक मण्डल धारा सभाके सामने पूरे तौरपर जवाब-देह न था। ट्रांसवाल और फ्री स्टेटकी राज्य व्यवस्था 'क्राउन-कॉलोनी'---शाही उपनिवेश---के ढंगकी थी। ऐसे संकुचित अधिकारसे जनरल बोथा या जनरल स्मट्‌सको संतोष न हो सकता था। फिर भी लार्ड मिलनरने बिना दूल्हेकी बरात निकालना मुनासिब समझा। जनरल बोथा और जनरल स्मट्‌स धारा सभासे अलग रहे। उन्होंने असहयोग किया। सरकारसे संबंध रखनेसे साफ इनकार कर दिया। लार्ड मिलनरने तीखा भाषण किया और कहा कि जनरल बोथाको यह मान लेनेकी जरूरत नहीं है कि यह सारा भार उन्हींके सिर है। राज्यव्यवस्था उनके बिना भी चल सकती है।

बोअरोंकी बहादुरी, उनकी स्वतंत्रता, उनकी कुरबानीके बारेमें मैंने दिल खोलकर लिखा है। फिर भी पाठकोंके मनपर यह छाप डालनेका मेरा इरादा नहीं था कि संकटकालमें भी उनमें मतभेद नहीं हो सकता, या उनमें कोई कमजोर दिल-

वाला था ही नहीं। लार्ड मिलनर बोअरोंमें भी सहजमें राजी हो जानेवाला दल खड़ा कर सके और यह मान लिया कि इसकी मददसे मैं धारा सभाको चमका सकूंगा। एक नाटककार भी मुख्य पात्र--नायक--के बिना अपने नाटकको सुंदर नहीं बना सकता। फिर इस कठोर संसारमें राजकाज चलानेवाला आदमी प्रधान पात्रको भूल जाय और सफल होनेकी आशा रखे तो वह पागल ही कहा जायगा। सचमुच लार्ड मिलनरकी यही दशा हुई। यह भी कहा जाता था कि उन्होंने धमकी तो दे दी; पर जनरल बोथाके बिना ट्रांसवाल और फ्री स्टेटका राज्य-प्रबंध चलाना उन्हें इतना कठिन हो गया कि अपने बगीचेमें अक्सर चिंतातुर और बदहवास दिखाई देते थे। जनरल बोथाने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि फ्रीनिखनके सुलहनामेका अर्थ मैंने तो साफ तौरपर यही समझा था कि बोअर लोगोंको अपनी भीतरी व्यवस्थाका पूरा-पूरा अधिकार तुरंत मिल जायगा। उन्होंने यह भी कहा कि ऐसा न होता तो मैं कभी उसपर दस्तखत न करता। लार्ड किचनरने इसके जवाबमें कहा कि मैंने जनरल बोथाको इस तरहका कोई विश्वास नहीं दिलाया था। बोअर जनता ज्यों-ज्यों विश्वासकी अधिकारिणी सिद्ध होती जायगी त्यों-त्यों उन्हें स्वतंत्रता मिलती जायगी। अब इन दोनोंके बीच कौन इंसाफ करे? कोई किसीको पंच मान लेनेकी बात कहे तो भी जनरल बोथाको वह क्यों मंजूर होने लगी? इस अवसरपर बड़ी सरकारने जो न्याय किया वह उसको संपूर्ण रीतिसे शोभा देनेवाला था। उसने यह मंजूर किया कि विपक्षने--उसमें भी निर्बल पक्षने--समझौतेका जो अर्थ समझा हो वह अर्थ सबल पक्षको स्वीकार करना ही चाहिए। न्याय और सत्यकी नीतिसे तो सदा यही अर्थ ठीक होता है। अपने कथनका मैंने अपने मनमें चाहे जो अर्थ रखा हो, फिर भी मुझे मानना चाहिए कि उसका जो असर सुनने या पढ़नेवालेके मनपर पड़ता हो उसी अर्थमें

मैंने अपनी बात कही या लेख लिखा। इस सुनहले नियमका पालन हम व्यवहारमें अकसर नहीं करते, इसीसे बहुतसे विवाद पैदा होते हैं और सत्यके नामपर अर्धसत्य——वस्तुतः डेढ़ असत्य——काममें लाया जाता है।

इस प्रकार जब सत्यकी——यानी यहां जनरल बोथाकी, पूरी विजय हुई तब वे काममें जुट गये। इसके फलस्वरूप सब राज्य इकट्ठे हो गये और दक्षिण अफ्रीकाको संपूर्ण स्वाधीनता मिल गई। उसका झंडा यूनियन जैक है। नक्शेमें इस प्रदेशका रंग लाल है। फिर भी दक्षिण अफ्रीका पूरे तौरपर स्वतंत्र है, यह माननेमें तनिक भी अतिशयता नहीं है। ब्रिटिश साम्राज्य दक्षिण अफ्रीकाका कारबार करनेवालोंकी रजामंदीके बिना वहांसे एक पाई भी नहीं ले सकता। इतना ही नहीं, ब्रिटिश मंत्रियोंने स्वीकार कर लिया है कि दक्षिण अफ्रीका ब्रिटिश झंडेको उतार फेंकना और नामसे भी स्वतंत्र हो जाना चाहे तो उसे कोई रोकनेवाला नहीं है। और अगर वहांके गोरोंने अबतक ऐसा कदम नहीं उठाया तो इसके सबल कारण हैं। एक तो यह कि बोअर जनताके नेता चतुर और समझदार हैं। ब्रिटिश साम्राज्यके साथ इस तरहकी साझेदारी या संबंध, जिसमें खुद उन्हें कुछ भी खोना न पड़े, वे रखें तो इसमें कोई दोष नहीं। पर इसके सिवा दूसरा व्यावहारिक कारण भी है। और वह यह कि नेटालमें अंग्रेजोंकी संख्या अधिक है। केप कालोनीमें अंग्रेजोंकी संख्या अधिक है, पर बोअर लोगोंसे ज्यादा नहीं है और जोहान्सबर्गमें केवल अंग्रेजोंका ही प्रभाव है। इसलिए बोअर जाति सारे दक्षिण अफ्रीकामें स्वतंत्र प्रजातंत्र राज्य स्थापित करना चाहे तो यह घरमें ही झगड़ा खड़ा कर लेना है और शायद गृहयुद्ध भी भड़क उठे। इसीसे दक्षिण अफ्रीका आज भी ब्रिटिश उपनिवेश कहलाता है।

यूनियनका विधान किस तरह बना यह भी जानने लायक

बात है। चारों राज्योंकी धारा सभाओंने एकमत होकर यूनियन संयुक्तराज्यका विधान बनाया। ब्रिटिश पार्लमेंट-को उसे अक्षरशः स्वीकार कर लेना पड़ा। आम सभाके एक सदस्यने उसके एक व्याकरण-दोषकी ओर ध्यान खींचकर गलत शब्द निकाल देनेकी सलाह दी। स्वर्गीय सर हेनरी कैम्पबेल बैनरमैनने इस सुझावको नामंजूर करते हुए कहा कि राज्य-व्यवस्था शुद्ध व्याकरणसे नहीं चला करती। यह विधान ब्रिटिश मंत्रिमंडल और दक्षिण अफ्रीकाके मंत्रियोंमें मशवरा होकर तैयार हुआ है। उसका व्याकरण-दोषतक दूर करनेका अधिकार ब्रिटिश पार्लमेंटके लिए नहीं रखा गया है। फलतः यह विधान ज्यों-का-त्यों आम-सभा और उमराव सभा दोनोंको मंजूर करना पड़ा।

इस प्रसंगमें एक तीसरी बात भी उल्लेखनीय है। विधान-में कितनी ही धाराएं ऐसी हैं जो तटस्थ व्यक्तिको अवश्य बेकार मालूम होंगी। उनके कारण खर्च भी बहुत बढ़ा है। यह दोष विधान बनानेवालेकी दृष्टिके बाहर नहीं था; पर उनका उद्देश्य पूर्णता प्राप्त करना नहीं था, बल्कि कुछ घट-बढ़कर एकमत होना और अपने प्रयत्नको सफल करना था। इसीसे इस वक्त यूनियनकी चार राजधानियां मानी जाती हैं, क्योंकि उपराज्योंमेंसे कोई भी अपनी राजधानीका महत्त्व छोड़ देनेको तैयार नहीं है। चारों राज्योंकी स्थानीय धारा सभाएं भी कायम रखी गई हैं। चारों राज्योंको गवर्नर-जैसा कोई अधिकारी भी चाहिए ही। इससे चार प्रांतीय शासक स्वीकार किए गये हैं। हर आदमी समझता है कि चार स्थानीय धारा सभाएं, चार राजधानियां और चार हाकिम बकरीके गलेके स्तनकी तरह निरर्थक और निरे आडंबररूप हैं। पर दक्षिण अफ्रीकाके व्यवहारकुशल राजनीतिज्ञोंने इसकी परवा न की। इस प्रबंधमें आडंबर था और खर्च

बढ़ता था। फिर भी चारों राज्योंका एक हो जाना वांछनीय था। इससे उन्होंने बाहरी दुनियाकी नुक्ताचीनीकी चिंता न कर जो उन्हें ठीक मालूम होता था वह किया और ब्रिटिश पार्लमेंटसे उसे मंजूर कराया।

इस प्रकार दक्षिण अफ्रीकाका अतिशय संक्षिप्त इतिहास पाठकोंकी जानकारीके लिए मैंने देनेका यत्न किया है। मुझे जान पड़ा कि इसके बिना सत्याग्रहके महान् संग्रामका रहस्य नहीं समझाया जा सकेगा। अब मूल विषयपर आनेके पहले हमें यह देखना है कि इस देशमें हिंदुस्तानी कैसे आए और सत्याग्रह-कालके पहले अपने ऊपर आनेवाली मुसीबतोंसे किस तरह जूझे।

: ३ :

दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंका आगमन

पिछले प्रकरणमें हम यह देख चुके कि नेटालमें अंग्रेज किस तरह आ बसे। उन्होंने जुलू लोगोंसे कुछ हक हासिल किये। अनुभवसे उन्होंने देखा कि नेटालमें ईख, चाय और कहवेकी फसल खूब अच्छी हो सकती है। बड़े पैमानेपर इन्हें उपजानेके लिए हजारों मजदूर होने चाहिए। दस-बीस अंग्रेज-कुटुंब इस मददके बिना ऐसी फसलें नहीं उपजा सकते। अतः उन्होंने हबशियोंको काम करनेके लिए ललचाया और डराया भी; पर अब गुलामीका कानून रह नहीं गया था। इससे सफलताके लिए जितना चाहिए था उतना दबाव वे हबशियोंपर न डाल सके। हबशी ज्यादा मेहनत करनेका आदी नहीं। छः महीनेकी मामूली मेहनतसे वह मजेमें गुजर कर सकता है। फिर किसी मालिकके साथ वह लंबी मुद्दत-

के लिए क्यों बंधे ? और जबतक पक्के, बारहमासी मजदूर न मिलें तबतक अंग्रेज अपना अभीष्ट सिद्ध न कर सकते थे। अतः उन लोगोंने भारत-सरकारके साथ लिखा-पढ़ी शुरू की और हिंदुस्तानसे मजदूरोंकी मदद मांगी। भारत-सरकार-ने नेटालकी मांग मंजूर की और हिंदुस्तानी मजदूरोंका पहला जहाज १८६० की १६ वीं नवंबरको नेटाल पहुंचा। दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमें यह तारीख महत्व पूर्ण है, क्योंकि इस पुस्तक और इसके विषयका मूल इसी घटनामें है।

मेरे विचारसे भारत-सरकारने यह मांग मंजूर करनेमें भलीभांति सोचा-विचारा नहीं। यहांके अंग्रेज अधिकारी जाने-बेजाने नेटालके अपने भाइयोंकी ओर झुके। अवश्य ही जहांतक हो सकता था, मजदूरोंके बचावकी शर्तें उन्होंने इकरारनामेमें दाखिल करा दीं और उनके खाने-पीनेका सामान्य सुभीता भी करा दिया; पर यों दूर देशको गये हुए अपढ़ मज-दूरोंपर कोई कष्ट पड़े तो वे उससे कैसे छुटकारा पा सकेंगे, इसका पूरा खयाल तो उन्हें नहीं रहा। उनके धर्मका क्या होगा, अपनी नीतिकी रक्षा वे कैसे करेंगे, इसका तो विचार भी नहीं किया गया। अधिकारियोंने यह भी न सोचा कि गो कानूनमें गुलामी उठ चुकी है, पर मालिकोंके दिलसे तो दूसरोंको गुलाम बनानेका लोभ अभी नहीं मिटा है। उन्हें यह समझना चाहिए था; पर उन्होंने नहीं समझा कि ये मजदूर दूर देशमें जाकर एक बंधी मुद्दतके लिए गुलाम हो जाएंगे। सर विलियम विलसन हंटरने, जिन्होंने इस स्थितिका गहरा अध्ययन किया था, इसकी तुलना करते हुए दो शब्दों या शब्दसमूहका व्यवहार किया था। नेटालके ही भारतीय मजदूरोंके बारेमें लिखते हुए एक बार उन्होंने लिखा कि यह आधी गुलामीकी स्थिति है। दूसरे वक्त अपने पत्रके अंदर उन्होंने

इसका वर्णन यह कहकर किया कि यह स्थिति गुलामीकी हदके पास पहुंच रही है––उससे मिलती-जुलती है। नेटालके एक कमीशनके सामने गवाही देते हुए वहांके बड़े-से-बड़े यूरोपियन––स्वर्गीय श्री एस्कंबने भी यही बात कबूल की। ऐसे बहुतसे सबूत तो नेटालके अग्रगण्य गोरोंके मुंहसे––उनके बयानोंसे ही दिए जा सकते हैं। उन बयानोंमेंसे अधिकांश उस अरजीमें शामिल कर लिए गये हैं जो इस बारेमें भारत सरकारके पास भेजी गई थीं। पर होनहार होकर ही रही और जो स्टीमर इन मजदूरोंको नेटाल ले गया वह सत्याग्रहके महान् वृक्षका बीज भी अपने साथ ले गया।

मजदूरोंको नेटालके दलाल हिंदुस्तानियोंने किस तरह ठगा, कैसे उनके जालमें फंसकर ये लोग नेटाल पहुंचे, वहां पहुंचनेपर उनकी आंखें कैसे खुलीं, आंख खुल जानेपर भी वे नेटालमें क्यों बने रहे, कैसे उनके पीछे दूसरे भी वहां पहुंचे, वहां पहुंचकर उन्होंने धर्म और नीतिके सारे बंधन कैसे तोड़ फेंके अथवा ये बंधन खुद टूट गये, कैसे विवाहिता पत्नी और वेश्याके बीचका भेदतक नहीं रहा, इस सबकी कहानी तो इस छोटी-सी पुस्तकमें लिखी ही नहीं जा सकती।

इन मजदूरोंको नेटालमें एग्रिमेंटमें गये हुए मजदूर कहते हैं। इससे ये अपने आपको 'गिरमिटिया' कहने लगे। इसलिए आगेसे हम 'एग्रिमेंट'को 'गिरमिट' और उसके अंदर गये हुए मजदूरोंको 'गिरमिटिया' कहेंगे।

नेटालमें गिरमिटियोंके जानेकी खबर जब मारिशस पहुंची तब इस तरहके मजदूरोंसे संबंध रखनेवाले हिंदुस्तानी व्यापारी वहां जानेको ललचाये। मारिशस नेटाल और हिंदुस्तानके बीचमें पड़ता है। उस देशमें हजारों हिंदुस्तानी मजदूर और व्यापारी बसते हैं।

उनमेंसे एक व्यापारी स्वर्गीय सेठ अबूबकर आमदने नेटालमें दुकान खोलनेका इरादा किया। इस वक्त नेटालके अंग्रेजोंका हिंदुस्तानी व्यापारी क्या कर सकते हैं, इसका पता नहीं था, इसकी परवा भी नहीं थी। गिरमिटियोंकी मददसे वे ईख, चाय, कहवे वगैरहकी नफा देनेवाली फसल उपजा सके। ईखकी शकर बनाकर इतने थोड़े समयमें छोटे पैमानेपर दक्षिण अफ्रीकाको ये शकर, चाय और कहवा देने लगे कि देखकर अचरज हो। अपनी कमाईसे उन्होंने महल खड़े किये और सचमुच जंगलमें मंगल कर दिया। ऐसे समय सेठ अबूबकर-सरीखा अच्छा, भला और चतुर व्यापारी उनके बीचमें जा बसे तो यह उन्हें क्यों न खटकता? फिर इनके साथ तो एक अंग्रेज भी साथी हो गया! सेठ अबूबकरने अपना व्यापार चलाया, जमीन खरीदी और उनके अच्छा पैसा कमानेकी खबर उनके वतन पोरबंदर और उसके आस-पासके गांवोंमें फैली। फलतः दूसरे मेमन नेटाल पहुंचे। उनके पीछे सूरतकी ओरके बोहरे भी पहुंचे। उन्हें मुनीम तो चाहिए ही। अतः गुजरात, काठियावाड़के हिंदू मुनीम भी वहां पहुंचे।

इस प्रकार नेटालमें दो वर्गके हिंदुस्तानी बसे: १. स्वतंत्र व्यापारी और उनके स्वतंत्र कर्मचारी और २. गिरमिटिया। कुछ दिनोंमें गिरमिटियोंके बाल-बच्चे हुए। गिरमिटके कानूनके अनुसार उनकी संतान यद्यपि मजदूरी करनेके लिए बंधी नहीं थी, फिर भी इस कानूनकी कुछ कठोर धाराओंके अधीन तो थी ही। गुलामीका दाग गुलामकी औलादको लगे बिना कैसे रहता? ये गिरमिटिया पांच बरसके इकरारपर जाते थे। पांच साल पूरे हो जानेपर वे मजदूरी करनेको बंधे नहीं थे। उन्हें खुली मजदूरी या व्यापार करना और नेटालमें स्थायी रूपसे बसना हो तो इसका उन्हें हक था। कुछने इस अधिकार-

का उपयोग किया, कुछ हिंदुस्तान लौट आये। जो नेटालमें रह गये वे 'फ्री इंडियंस' कहलाने लगे। हम उन्हें 'गिरमिट मुक्त' या थोड़ेमें 'मुक्त हिंदुस्तानी' कहेंगे। इस अंतरको समझ लेना जरूरी है; क्योंकि जो अधिकार पूर्ण स्वतंत्र भारतीय, जिनका जिक्र ऊपर किया गया है, भोग रहे थे वे सभी इस बंधनसे मुक्त हुए हिंदुस्तानियोंको प्राप्त नहीं थे। जैसे उन्हें एकसे दूसरी जगह जाना हो तो उनके लिए परवाना लेना जरूरी था। वे ब्याह करें और चाहते हों कि वह कानूनसे जायज माना जाय तो जरूरी था कि गिरमिटियोंकी रक्षाके लिए नियुक्त अधिकारी (प्रोटेक्टर आव इंडियन इमिग्रांट्स) के दफ्तरमें जाकर उसे दर्ज करायें, आदि। इनके सिवा दूसरे भी कठोर अंकुश उनपर थे।

ट्रांसवाल और फ्री स्टेटमें १८८०-९० में बोअर लोगोंके प्रजातंत्र राज्य थे। प्रजातंत्र राज्यका अर्थ भी यहां स्पष्ट कर देना जरूरी है। प्रजातंत्र यानी गोरातंत्र। हबशी जनता-का उसमें कुछ लेना-देना हो ही नहीं सकता था। हिंदुस्तानी व्यापारियोंने देखा कि हम केवल गिरमिटिया और गिरमिट-मुक्त हिंदुस्तानियोंमें ही अपना रोजगार कर सकते हों ऐसी बात नहीं है। हम हबशियोंके साथ भी व्यापार कर सकते हैं। हबशी लोगोंके लिए हिंदुस्तानी व्यापारी बड़े सुभीतेकी चीज साबित हुए। गोरे व्यापारियोंसे वे बहुत ज्यादा डरते थे। गोरा व्यापारी उनके साथ व्यापार करना तो चाहता था; पर हबशी ग्राहक उससे यह आशा रख ही नहीं सकता था कि वह मीठी जबानसे उसे बुलायेगा। अपने पैसेके बदलेमें पूरा माल पा जाता तो वह धन्य भाग समझता। पर कुछको यह कड़वा अनुभव भी हुआ कि चार शिलिंगकी चीज लेनी है और दुकानदारके सामने एक पौंडका सिक्का रख दिया; पर उसे १६ के बदले ४ शिलिंग ही वापस मिले या कुछ भी न मिला।

गरीब ग्राहक अधिक मांगे, हिसाबकी गलती दिखाये तो बदलेमें गंदी गालियां पाए। इतनेसे ही छूट जाय तो भी गनीमत समझिये, नहीं तो गालीके साथ घूंसा या लात भी मिलती। मेरे कहनेका यह मतलब हर्गिज नहीं कि सभी अंग्रेज व्यापारी ऐसा करते हैं। पर ऐसी मिसालें काफी तादादमें मिलती हैं, यह तो जरूर कहा जा सकता है। इसके विपरीत हिंदुस्तानी व्यापारी हबशी ग्राहकको मीठी बोलीसे तो बुलाता ही है, उसके साथ हँसकर बात भी करता है। हबशी भोला होता है। वह चाहता है कि दुकानके अंदर जाकर चीजोंको देखे-भाले। हिंदुस्तानी व्यापारी इस सबको सह लेता है। यह सही है कि वह परमार्थ दृष्टिसे ऐसा नहीं करता, इसमें उसकी स्वार्थदृष्टि होती है। मौका मिल जाय तो हिंदुस्तानी व्यापारी हबशी ग्राहकको ठगनेसे भी नहीं चूकता; पर हबशियोंमें भारतीय व्यापारीकी प्रियताका कारण उसकी मिठास—उसका मधुर व्यवहार है। फिर हबशी हिंदुस्तानी व्यापारीसे डरता तो कभी नहीं। उलटी ऐसी मिसालें मौजूद हैं कि किसी हिंदुस्तानी दुकानदारने हबशी ग्राहकको ठगनेकी कोशिश की और वह जान गया तो उसके हाथों उस व्यापारीकी मरम्मत भी हो गई। गालियां तो उसे अकसर मिला करती हैं। इस प्रकार हबशी और हिंदुस्तानीके संबंधमें डरनेका कारण हिंदुस्तानीके लिए ही होता है। अंतमें इसका फल यह हुआ कि भारतीय व्यापारीके लिए हबशियोंकी ग्राहकी बहुत लाभजनक सिद्ध हुई। हबशी तो सारे दक्षिण अफ्रीकामें फैले हुए हैं ही। हिंदुस्तानी व्यापारियोंने सुन रखा था कि ट्रांसवाल और फ्री स्टेटमें बोअर लोगोंके बीच भी व्यापार किया जा सकता है। बोअर सीधे, भोले और दिखावेसे दूर रहनेवाले होते हैं। हिंदुस्तानीकी दुकानसे सौदा खरीदनेमें उन्हें शर्म नहीं लगती। अतः कितने ही हिंदुस्तानी व्यापा-

रियोंने ट्रांसवाल और फ्री स्टेटकी ओर भी पयान किया। उन्होंने वहां दुकानें खोलीं। उन दिनों वहां रेलें आदि नहीं थीं। इसलिए खूब अधिक नफा मिल सकता था। व्यापारियोंका खयाल सही निकला। बोअरों और हबशियोंमें उनका माल खूब बिकने लगा। रह गई केप कॉलोनी। वहां भी कितने ही हिंदुस्तानी व्यापारी पहुंच गये और अच्छी खासी कमाई करने लगे। इस प्रकार छोटी-छोटी संख्याओंमें चारों उपनिवेशोंमें हिंदुस्तानी बट गये और तत्काल समस्त स्वतंत्र भारतीयोंकी तादाद चालीससे पचास हजारके बीच और गिरमिटमुक्त हिंदुस्तानियोंकी एक लाख होनेका अंदाजा किया जाता है। ये पंक्तियां लिखते समय इस संख्यामें मुमकिन है, कुछ कमी हुई हो, पर बेशी हरगिज नहीं हुई है।

: ४ :

मुसीबतोंका सिंहावलोकन—१

नेटाल

नेटालके गोरे मालिकोंको महज गुलाम दरकार थे। एस मजदूर वे नहीं चाहते थे, जो नौकरी करनेके बाद आजाद होकर उनके साथ थोड़ी-सी भी प्रतियोगिता कर सकें। ये गिरमिटिया गो इसीलिए नेटाल गये थे कि हिंदुस्तानमें अपनी खेती-बारी आदिमें बहुत सफल नहीं हो सके थे, फिर भी ऐसे नहीं थे कि खेतीका कुछ भी ज्ञान न रखते हों या जमीन और खेतीकी कीमत न समझते हों। उन्होंने देखा कि नेटालमें अगर हम साग-भाजी भी बोयें तो अच्छी उपज कर सकते हैं और अगर जमीनका एक छोटा-सा टुकड़ा भी ले लें तो उससे और ज्यादा पैसा कमा सकते हैं। अतः बहुतसे गिरमिटिया

जब नौकरीके बंधनसे मुक्त हुए तब कोई-न-कोई छोटा-मोटा धंधा करने लग गये। इससे कुल मिलाकर तो नेटाल-जैसे देशमें बसनेवालोंको लाभ ही हुआ। अनेक प्रकारकी साग-सब्जियां जो कुशल किसानोंके अभावके कारण अबतक पैदा नहीं होती थीं अब उपजने लगीं। जो चीजें जहां-तहां थोड़ी-बहुत उपजती थीं वे अब अधिक मात्रामें मिलने लगीं। इससे साग-सब्जीका भाव एकबारगी गिर गया। पर यह बात पैसेवाले गोरोंको न रुची। उन्होंने सोचा कि आजतक जिस चीजको हम अपना इजारा[1] मानते थे उसमें अब हिस्सा बटाने-वाले पैदा हो गए। इससे इन गरीब गिरमिटियोंके विरुद्ध आंदोलन आरंभ हुआ। पाठकोंको यह जानकर अचरज होगा कि गोरे एक ओर तो ज्यादा-से-ज्यादा मजदूर मांग रहे थे, हिंदुस्तानसे जितने गिरमिटिया आते वे तुरंत खप जाते, और दूसरी ओर जो मजदूर गिरमिटसे मुक्त होते जाते उनपर तरह-तरहके अंकुश रखनेके लिए आंदोलन चल रहा था। यह था उनकी होशियारी और जीतोड़ मेहनतका मुआवजा!

आंदोलनने कितने ही रूप धारण किये। एक पक्षने यह मांग पेश की कि जो गिरमिटिया गिरमिटसे मुक्त हो चुके हैं वे हिंदुस्तान लौटा दिए जायं और पुराना इकरारनामा बदलकर नये इकरारनामेमें नये आनेवाले मजदूरोंसे यह शर्त लिखा ली जाय कि गिरमिटसे मुक्त होनेपर वे या तो हिंदुस्तान लौट जाएंगे या फिरसे गिरमिटमें दाखिल हो जाएंगे। दूसरे पक्षने यह मत प्रकट किया कि गिरमिटसे छुटकारा पानेपर वे नया इकरारनामा लिखना पसंद न करें तो उनसे भारी वार्षिक 'व्यक्ति-कर' लिया जाय। दोनों दलोंका मतलब तो एक ही था कि जैसे भी हो गिरमिटियावर्ग किसी भी दशामें नेटाल-

[1]एकाधिकार।

में स्वतंत्र होकर न रह सकें। कोलाहल इतना बढ़ा कि अंतमें नेटालकी सरकारने एक कमीशन नियुक्त कर दिया। दोनों पक्षोंकी मांग सोलह आने गैरवाजिब थी और गिरमिटियोंकी उपस्थिति आर्थिक दृष्टिसे संपूर्ण जनताके लिए सब प्रकार लाभदायक थी। इसलिए कमीशनके सामने जो स्वतंत्र गवाहियां हुईं वे उक्त दोनों पक्षोंके विरुद्ध थीं। फलतः तात्कालिक परिणाम तो विरुद्ध पक्षकी दृष्टिसे कुछ भी न हुआ, पर जैसे आग बुझ जानेके बाद अपना कुछ निशान छोड़ ही जाती है, वैसे ही यह आंदोलन भी नेटाल सरकारपर अपनी छाप छोड़ गया। नेटालकी सरकारके मानी थे खासतौरसे धनिक वर्गकी हिमायती सरकार ! अतः भारत-सरकारके साथ उसका पत्र-व्यवहार आरंभ हुआ और दोनों पक्षोंके सुझाव उसके पास भेजे गए। पर हिंद सरकार यकायक ऐसा सुझाव कैसे स्वीकार कर सकती थी, जिससे गिरमिटिए हमेशाके लिए गुलाम बन जाते ? हिंदुस्तानियोंका गिरमिटमें बांधकर इतनी दूर भेजनेका एक कारण या बहाना यह था कि गिरमिटकी मियाद पूरी होनेपर गिरमिटिए आजाद होकर अपनी शक्तिका पूर्ण विकास और उस अनुपातसे अपनी आर्थिक स्थितिको सुधार सकेंगे। नेटाल इस वक्त भी 'क्राउन कॉलोनी (शाही उपनिवेश) था और ऐसे उपनिवेशोंके शासन-प्रबंधके लिए उपनिवेश विभाग भी पूरी तरह जिम्मेदार माना जाता था। इसलिए नेटालको अपनी अन्याय-पूर्ण इच्छा पूरी होनेमें उससे मदद नहीं मिल सकती थी। इससे और ऐसे ही दूसरे कारणोंसे नेटालमें उत्तरदायी शासनाधिकार प्राप्त करनेका आंदोलन आरंभ हुआ। १८९३ में यह अधिकार उसे मिल गया। अब नेटालमें बल आया। उपनिवेश-विभागके लिए भी अब नेटालकी मांगोंको, वे कैसी ही क्यों न हों, मंजूर कर लेना अधिक कठिन नहीं रहा। नेटालकी इस नई यानी जवाब-

देह सरकारकी ओरसे हिंदुस्तानकी सरकारसे मशवरा करनेके लिए राजदूत भेजे गए । उनकी मांग यह थी कि हर एक गिरमिट मुक्त हिंदुस्तानीपर २५ पौंड यानी ३७५) रु० का वार्षिक व्यक्ति-कर लगाया जाय । इसके मानी यह होते थे कि कोई भी हिंदुस्तानी मजदूर यह कर अदा न कर सके और फलतः आजाद होकर नेटालमें न रह सके । तत्कालीन वाइसराय लार्ड एलिगनको यह प्रस्ताव बहुत भारी लगा और अंतमें उन्होंने ३ पौंडका वार्षिक व्यक्ति-कर मंजूर किया । गिरमिटियाकी कमाईके हिसाबसे तीन पौंडके मानी उसकी लगभग दो महीनेकी कमाई होते थे । यह कर केवल मजदूरपर ही नहीं था । उसकी स्त्री, तेरह बरससे ऊपरकी लड़की और सोलहसे ऊपरके लड़केको भी देना था । ऐसा मजदूर शायद ही हो जिसके स्त्री और दो बच्चे न हों । अतः मोटे हिसाबसे हर मजदूरको १२ पौंड वार्षिक कर अदा करना था । यह कर कितना कष्टदायक हो गया, इसका वर्णन नहीं हो सकता । उस दुःखको केवल वही जान सकता है जिसने उसका अनुभव किया हो, या थोड़ा बहुत वह समझ सकता है जिसने उसे अपनी आंखों देखा हो । नेटाल सरकारके इस कार्यका भारतीय जनताने कसकर विरोध किया । बड़ी (ब्रिटिश) और भारत-सरकारके पास अर्जियां भेजी गईं । पर इस आंदोलनका नतीजा इससे अधिक और कुछ न निकला कि २५ के ३ पौंड हो गए । गिरमिटिया बेचारे खुद तो इस मामलेमें क्या कर सकते थे ? आंदोलन तो महज हिंदुस्तानी व्यापारीवर्गने देशके दर्दसे कहिये या परार्थ दृष्टिसे किया था ।

जो सलूक गिरमिटियोंके साथ किया गया वही स्वतंत्र भारतीयोंके साथ भी हुआ । नेटालके गोरे व्यापारियोंने उनके खिलाफ भी मुख्यतः इन्हीं कारणोंसे आंदोलन चलाया । हिंदुस्तानी व्यापारी अच्छी तरह जम गए थे । उन्होंने नगरक अच्छे

भागोंमें जमीनें खरीद ली थीं। गिरमिटसे छूटे हुए हिंदुस्तानियोंकी आबादी ज्यों-ज्यों बढ़ती गई त्यों-त्यों उनको दरकार होनेवाली चीजोंकी ख़पत अच्छी होने लगी। हजारों बोरा चावल हिंदुस्तानस आता और अच्छे नफेपर बिकता। यह व्यापार अधिकांशमें और स्वभावतः हिंदुस्तानियोंके हाथमें रहा। उधर हबशियोंके साथ होनेवाले व्यापारमें भी उनका हिस्सा अच्छा खासा हो गया। छोटे गोरे व्यापारियोंसे यह देखा न गया। इसके सिवा इन व्यापारियोंको कुछ अंग्रेजोंने ही यह बताया कि कानूनके अनुसार उन्हें नेटालकी धारा सभाके सदस्य होने और चुननेका हक है। मताधिकारियोंकी सूचीमें कुछ नाम भी दर्ज कराये थे। नेटालके राजकाजी गोरे इस स्थितिको न सह सके। उन्हें यह चिंता हो गई कि यों हिंदुस्तानियोंकी स्थिति नेटालमें दृढ़ हो गई और उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी तो उनकी प्रतियोगितामें गोरे कैसे टिक सकेंगे? अतः नेटालकी जवाबदेह सरकारने स्वतंत्र भारतीयोंके बारेमें जो पहला कदम उठाया वह था ऐसा कानून बना देना जिससे एक भी नया हिंदुस्तानी वोटर या मताधिकारी न हो सके। १८९४ में इस विषयका पहला बिल नेटालकी धारा सभामें पेश किया गया। इस बिलका मंशा था हिंदुस्तानीको हिंदुस्तानीकी हैसियतसे वोट देनेके हकसे वंचित कर देना। यह पहला कानून था जो नेटालमें रंग-भेदके आधारपर भारतीयोंके विरुद्ध बनाया गया। भारतीय जनताने विरोध किया। रातोंरात अरजी तैयार हुई। उसपर चार सौ आदमियोंसे दस्तखत कराये गए। इस अरजीके पहुंचते ही धारा सभा चौंकी; पर बिल तो पास होकर ही रहा। उन दिनों लार्ड रिपन उपनिवेश-सचिव थे। उनके पास अरजी भेजी गई। उसपर दस हजार हस्ताक्षर थे। दस हजार हस्ताक्षरके मानी हुए नेटालमें आजाद हिंदुस्तानियोंकी लगभग सारी

आबादी। लार्ड रिपनने बिलको नामंजूर किया। उन्होंने कहा कि ब्रिटिश साम्राज्य कानूनमें रंगभेदको स्वीकार नहीं कर सकता। यह जीत कितने महत्त्वकी थी, पाठक इसे आगे चलकर अधिक समझ सकेंगे। इसके जवाबमें नेटालकी सरकारने नया बिल पेश किया। इसमें रंग-भेद नहीं रखा गया, पर अप्रत्यक्ष रीतिसे चोट तो हिंदुस्तानियोंपर ही थी। हिंदुस्तानी जनता इसके विरुद्ध भी लड़ी, पर उसका विरोध विफल हुआ। यह कानून दोअर्थी था। उसका पक्का अर्थ करानेके लिए वह आखिरी अदालत यानी प्रिवी-कौंसिलतक लड़ सकती थी, पर लड़ना ठीक नहीं समझा गया। मेरा अब भी खयाल है कि न लड़ना ठीक ही हुआ। मूल वस्तु मान ली गई, यही क्या कम था।

पर नेटालके गोरों या वहांकी सरकारको इतनेसे संतोष होनेवाला नहीं था। हिंदुस्तानियोंकी राजनैतिक शक्ति जमने न देना तो एक बहुत जरूरी काम था ही, पर उनकी आंख असलमें तो भारतीय व्यापार और स्वतंत्र भारतीयोंके आगमनपर थी। तीस करोड़की आबादीवाला हिंदुस्तान नेटाल-की ओर उलट पड़े तो वहांके गोरोंकी क्या दशा होगी? वे तो इस समुद्रमें विलीन हो जाएंगे। इस आशंकासे वे बेचैन हो रहे थे। उस वक्त नेटालकी आबादी मोटे हिसाब से यह थी: ४ लाख हबशी, ४० हजार गोरे, ६० हजार गिरमिटिए, १० हजार गिर-मिट-मुक्त और १० हजार स्वतंत्र भारतीय। गोरोंके डरके लिए कोई ठोस कारण तो था ही नहीं, पर डरे हुए आदमीको दलीलसे समझाया नहीं जा सकता। हिंदुस्तानकी असहाय स्थिति और उसके रस्म-रिवाजसे वे अनजान थे। इससे उनको यह भ्रम हो रहा था कि जैसे साहसी और शक्तिमान हम हैं वैसे ही हिंदुस्तानी भी होंगे और इस कारण उन्होंने केवल त्रैराशिकका हिसाब कर लिया। इसलिए उनको दोष कैसे दिया जा

सकता है ? जो हो, नतीजा यह हुआ कि नेटालकी धारा सभाने जो दो दूसरे कानून पास किए उनमें भी मताधिकारकी लड़ाईमें हिंदुस्तानियोंकी जीत होनेके फलस्वरूप रंग-भेदको दूर रखना पड़ा और गर्भित भाषासे काम निकालना पड़ा। इसकी बदौलत स्थिति थोड़ी-बहुत सम्हली रह सकी। हिंदुस्तानी कौम इस मौकेपर भी खूब लड़ी, फिर भी कानून तो पास होकर ही रहे। एक कानूनके जरिये भारतीयोंके व्यापारपर कठोर अंकुश रखा गया, दूसरेके द्वारा उनके प्रवेश-पर। पहले कानूनका आशय यह था कि कानूनद्वारा नियुक्त अधिकारीकी अनुमतिके बिना किसीको भी व्यापारका परवाना न मिले। व्यवहारमें यह स्थिति थी कि कोई भी गोरा जाकर अनुमति-पत्र पा सकता था। पर भारतीयको वह बड़ी कठिनाईसे मिलता। उसमें वकील वगैरहका तो खर्च करना ही पड़ता। फलतः कच्चे और कमजोर दिलवाले तो बिना परवानेके ही रह जाते। दूसरे कानूनकी खास शर्त यह थी कि जो हिंदुस्तानी यूरोपकी किसी भी भाषामें प्रवेशका प्रार्थनापत्र लिख सके वही प्रवेशकी अनुमति पाये। अर्थात् करोड़ों हिंदुस्तानियोंके लिए तो नेटालका दरवाजा बिल्कुल ही बंद हो गया। जान या अनजानमें मुझसे नेटालके साथ अन्याय न हो जाय, इसलिए मुझे यह बता देना चाहिए कि जो भारतीय इस कानूनके पास होनेके तीन साल पहलेसे नेटालमें घर बनाकर रहता हो वह अगर नेटाल छोड़कर हिंदुस्तान या और कहीं जाय और फिर लौटे तो वह अपनी स्त्री और नाबालिग बच्चोंके साथ, यूरोपकी कोई भाषा न जाननेपर भी दाखिल हो सकता था। इनके अतिरिक्त गिरमिटियों और स्वतंत्र भारतीयोंपर दूसरी भी कितनी ही कानूनी और बेकानूनी रुकावटें थीं और अबतक हैं। पर पाठकोंको उन्हें सुनानेकी जरूरत मुझे नहीं दिखाई देती।

जितना विवरण इस पुस्तकका विषय समझानेके लिए जरूरी है उतनी ही मैं देना चाहता हूं। दक्षिण अफ्रीकाके हर एक राज्यके हिंदुस्तानियोंकी हालतका इतिहास बहुत लंबा होगा, यह तो हर पाठक समझ सकता है, पर ऐसा इतिहास देना इस पुस्तकका उद्देश्य नहीं है।

: ५ :

मुबसीतोंका सिंहावलोकन—२

ट्रांसवाल और दूसरे उपनिवेश

जैसा नेटालमें हुआ वैसा ही कमोबेश दक्षिण अफ्रीकाके दूसरे उपनिवेशोंमें भी हुआ। १८८० के पहलेसे ही हिंदुस्तानियोंको नफरतकी निगाहसे देखना शुरू हो गया और केप कॉलोनीको छोड़कर और सभी उपनिवेशोंमें यह धारणा हो गई थी कि हिंदुस्तानी मजदूरके रूपमें तो बहुत अच्छे हैं। पर बहुतेरे गोरोंके मनमें यह बात पक्के तौरसे बैठ गई थी कि स्वतंत्र भारतीयोंसे तो दक्षिण अफ्रीकाकी हानि ही है। ट्रांसवाल प्रजातंत्र राज्य था। उसके अध्यक्षके सामने हिंदुस्तानियोंका यह कहना कि हम ब्रिटिश प्रजा कहलाते हैं, अपनी हँसी कराना था। हिंदुस्तानियोंको कोई भी शिकायत करनी हो तो वे ब्रिटिश दूतके ही पास कर सकते थे। पर ऐसा होते हुए भी अचरजकी बात यह थी कि ट्रांसवाल जब ब्रिटिश साम्राज्यसे बाहर था उस वक्त ब्रिटिश दूत जो मदद कर सकता था वह मदद जब ट्रांसवाल ब्रिटिश साम्राज्यके अंदर मान लिया गया, बिलकुल बंद हो गई। जब लार्ड मोर्ले भारत मंत्री थे और ट्रांसवालके हिंदुस्तानियोंकी वकालत करनेके लिए एक प्रतिनिधि मंडल उनके पास गया तब उन्होंने साफ

कह दिया कि "उत्तरदायी—स्वराज्य भोगी—सरकारोंपर बड़ी (साम्राज्य) सरकारका काबू बहुत ही थोड़ा होता है। स्वतंत्र राज्यको वह लड़ाईकी धमकी दे सकती है, उससे लड़ाई कर भी सकती है; पर उपनिवेशोंके साथ तो महज मशविरा ही किया जा सकता है। उनके साथ हमारा संबंध कच्चे धागेसे जुड़ा हुआ है। जरा ताना कि टूटा। बलसे तो काम लिया ही नहीं जा सकता। कलसे—युक्तिसे—जो कुछ कर सकता हूं वह सब करनेका विश्वास आपको दिलाता हूं।" ट्रांसवालके साथ जब लड़ाई छिड़ी तब लार्ड लैंसडाउन, लार्ड सेलबर्न आदि ब्रिटिश अधिकारियोंने कहा था कि भारतीयोंकी दुःखद स्थिति भी इस युद्धका एक कारण है।

अब हम इस दुःखके प्रकरणको देखें। ट्रांसवालमें हिंदुस्तानी पहले-पहल १८८१ ई० में दाखिल हुए। स्वर्गीय सेठ अबूबकरने ट्रांसवालकी राजधानी प्रिटोरियामें दुकान खोली और उसके एक खास महल्लेमें जमीन भी खरीदी। इसके बाद दूसरे व्यापारी भी एक-एक करके वहां पहुंचे। उनका व्यापार खूब तेजीसे चला तो गोरे व्यापारियोंके दिलमें डाह पैदा हुई। अखबारोंमें हिंदुस्तानियोंके खिलाफ लेख लिखे जाने लगे। धारा सभाको अर्जियां भेजी गईं, जिनमें हिंदुस्तानियोंको निकाल बाहर करने और उनका व्यापार बंद करा देनेकी प्रार्थनाएं की गईं। इस नए देशमें गोरोंकी धन-तृष्णाकी कोई हद न थी! नीति-अनीतिका भेद वे शायद ही समझते हों। धारा सभाको उन्होंने जो आवेदनपत्र भेजा था उसके अंदर इस तरहके वाक्य हैं—"ये लोग (हिंदुस्तानी व्यापारी) मानवी सभ्यता क्या चीज है यह जानते ही नहीं। वे बदचलनीसे पैदा होनेवाले रोगोंसे सड़ रहे हैं। हरएक स्त्रीको वे अपना शिकार समझते हैं और उन्हें आत्मा-रहित मानते हैं।" इन चार वाक्योंमें चार झूठ भरे हैं। ऐसे नमूने

बीसियों पेश किए जा सकते हैं। जैसी जनता, वैसे ही उसके प्रतिनिधि। हमारे व्यापारी भाइयोंको इसकी क्या खबर कि उनके विरुद्ध कैसा बेहूदा और अन्याय-भरा आन्दोलन चल रहा है? अखबार वे पढ़ते न थे। अखबारी और अर्जियोंके आंदोलनका असर धारा सभा पर हुआ और उसमें एक बिल पेश किया गया। इसकी खबर प्रमुख भारतीयोंके कान तक पहुंची तो वे चौंके। वे राष्ट्रपति क्रूगरके पास गए। दिवंगत राष्ट्रपतिने तो उन लोगोंको घरके अंदर कदम भी न रखने दिया। आंगनमें ही खड़ा करके उनकी बात थोड़ी बहुत सुननेके बाद कहा--"आप लोग तो इस्माईल[1]की औलाद हैं, इसलिए आप लोग ईसो[1]की औलादकी गुलामी करनेके लिए ही पैदा हुए हैं। हम ईसोकी औलाद माने जाते हैं। इसलिए हमारी बराबरीका हक तो आपको मिल ही नहीं सकता। हम जो हक दे रहे हैं उसीसे आपको संतोष मानना चाहिए।" इस जवाबमें द्वेष या रोष था, यह हम नहीं कह सकते। राष्ट्रपति क्रूगरकी शिक्षा ही इस प्रकारकी थी कि बचपनसे ही बाइबिलके पुराने इकरारनामे (ओल्ड टेस्टामेंट) में कही हुई बातें उन्हें सिखाई गईं और वह उनपर

---

[1]इब्राहीम (२२५०-२१०० ई० पू०)के बड़े और अभिशप्त बेटे, जो उनकी कनिष्ठा पत्नी (दासी) हाजरासे पैदा हुए थे। ज्येष्ठा पत्नी सारा के पेटसे इसहाकका जन्म होनेपर, उसके कहनेसे, इब्राहीम हाजरा और इस्माईलको उस जगह ले जाकर छोड़ आये, जहाँ अब मक्का नगर है। मुसलमान हजरत इब्राहीमके समान इन्हें भी पैगंबर मानते हैं। अरबका प्रमुखतम कबीला कुरेश, जिसमें हजरत मुहम्मदका जन्म हुआ था, इन्हींकी औलाद माना जाता है। ईसो इसहाक़के सबसे बड़े बेटे थे। बाइबिलके सृष्टिखंडमें इनकी कथाएं विस्तारसे दी हुई हैं। --अनु०

विश्वास करने लगे। जो आदमी जैसा मानता हो वैसा ही सच्चे दिलसे कहे तो इसमें उसको कौन दोष दे सकता है ? फिर भी इस सरलतामें रहनेवाले अज्ञानका बुरा असर तो होता ही है और नतीजा यह हुआ कि १८८५ में बहुत कड़ा कानून धारा सभामें जल्दी-जल्दी पास किया गया, मानों हजारों हिन्दुस्तानी ट्रांसवालमें घुसकर लूट मचानेके लिए तैयार बैठे हों ! प्रमुख भारतीयोंकी प्रेरणासे इस कानूनके खिलाफ ब्रिटिश राजदूतको कदम उठाना पड़ा। मामला उपनिवेश सचिव तक पहुंचा। इस कानूनके अनुसार ट्रांसवालमें दाखिल होनेवाले हरएक हिंदुस्तानीको २५ पौंड देकर अपनी रजिस्ट्री करानी पड़ती और वह एक इंच भी जमीन न ले सकता। चुनावमें मत देनेका अधिकारी तो वह हो ही नहीं सकता था। यह सारी बात इतनी अनुचित थी कि ट्रांसवालकी सरकारको बचावके लिए कोई दलील ही नहीं सूझती थी। ट्रांसवाल सरकार और बड़ी सरकारके बीच एक सुलहनामा हुआ था जिसे 'लंडन कन्वेंशन' कहते थे। उसमें ब्रिटिश प्रजाके अधिकारोंकी रक्षा करनेकी एक धारा--१४वीं--थी। इस धाराके आधारपर बड़ी सरकारने इस कानूनका विरोध किया। ट्रांसवालकी सरकारने इसके जवाबमें यह दलील दी कि हमने जो कानून बनाया है, बड़ी सरकार पहलेसे उसको स्पष्ट या गर्भित सम्मति दे चुकी है।

यों उभयपक्षमें मतभेद होनेसे मामला पंचके पास गया। पंचका पंगु फैसला हुआ। उसने दोनों पक्षोंको राजी रखनेकी कोशिश की। नतीजा यह हुआ कि हिंदुस्तानियोंने यहां भी कुछ खोया ही। लाभ इतना ही हुआ कि अधिक खोनेके बदले कम खोया। पंचके इस फैसलेके अनुसार १८८६ में कानूनमें सुधार हुआ। उसके अनुसार रजिस्ट्रीकी फीस २५ पौंडके

बजाय ३ पौंड लेना तय हुआ और जमीन जो कहीं भी खरीद और रख न सकनेकी कड़ी शर्त थी उसके बदले यह निश्चय हुआ कि ट्रांसवालकी सरकार जिस हलके, महल्ले, बाड़ेमें तै कर दे उसीमें हिंदुस्तानी जमीन ले सकें। इस दफापर अमल करानेमें भी ट्रांसवाल सरकारने दिलमें चोर रखा। अतः ऐसे महल्लोंमें भी जरखरीद जमीन लेनेका हक तो नहीं ही दिया। हर शहर-कसबेमें जहां हिंदुस्तानी बसते थे, ये महल्ले नगरसे बहुत दूर और गंदी-से-गंदी जगहोंमें रखे गए। वहां पानी-रोशनीका सुभीता कम-से-कम था, पाखानोंकी सफाईका हाल भी वही था। यानी हम हिंदुस्तानी ट्रांसवालके 'पंचम' बन गए और कह सकते हैं कि इन महल्लों और हिंदुस्तानके भंगी-बाड़ोंमें कुछ भी फर्क न था। लगभग यह स्थिति हो गई कि जैसे हिंदू भंगी-चमारको छूने और उनके पड़ोसमें बसनेसे 'अपवित्र' हो जाता है वैसे ही भारतीयके स्पर्श या पड़ोससे गोरा नापाक हो जाता! फिर इस १८८५ के तीसरे कानूनका ट्रांसवालकी सरकारने यह अर्थ किया कि हिंदुस्तानी व्यापार भी इन महल्लोंमें ही कर सकते हैं। यह अर्थ सही है या नहीं, इसके निर्णयका अधिकार पंचने ट्रांसवालकी अदालतोंको ही दे रखा था। इसलिए भारतीय व्यापारियोंकी स्थिति अति विषम हो गई। फिर भी कहीं बात-चीत चलाकर, कहीं मुकदमे लड़कर, कहीं सिफ़ारिशसे काम लेकर भारतीय व्यापारी अपनी स्थितिकी रक्षा समुचित रीतिसे कर सके। बोअर-युद्ध आरंभ होनेके समय ट्रांसवालमें भारतीयोंकी ऐसी दुःखद और अनिश्चित स्थिति थी।

अब हम फ्री स्टेटकी दशा देखें। वहां दस-पंद्रहसे अधिक हिंदुस्तानी दुकानें नहीं खुलवाई थीं कि गोरोंने जबर्दस्त आंदोलन उठा दिया। वहांकी धारा सभाने चौकसीसे काम करके खतरेकी जड़ ही काट दी। उसने एक कड़ा कानून

पास करके और नुकसानका नगण्य मुआवजा देकर, हरएक हिंदुस्तानी दुकानदारको फ्री स्टेटसे निकाल बाहर किया। इस कानूनके अनुसार कोई हिंदुस्तानी व्यापारी, जमीनके मालिक या किसानकी हैसियतसे फ्री स्टेटमें नहीं रह सकता था। चुनावमें मत देनेका अधिकारी तो हो ही नहीं सकता था। खास तौरसे इजाजत हासिल करके मजदूर या होटलके 'वेटर' (खिदमतगार) के रूपमें रह सकता था! यह इजाजत भी हरएक प्रार्थीको मिल ही जाय, सो बात नहीं थी। नतीजा यह हुआ कि फ्री स्टेटमें कोई प्रतिष्ठित भारतीय दो-चार दिन रहना चाहे तो भी बड़ी कठिनाईसे ही रह सकता था। बोअर-युद्धके समय वहां कोई चालीस हिंदुस्तानी वेटरोंके सिवा और कोई हिंदुस्तानी नहीं था।

केप कॉलोनीमें यद्यपि हिंदुस्तानियोंके खिलाफ थोड़ा आंदोलन होता रहता था, स्कूलों आदिमें भारतीय बालकका प्रवेश नहीं हो सकता, होटलों वगैरहमें हिंदुस्तानी मुसाफिर शायद ही उतर सकता—इस तरहके हिंदुस्तानियोंकी अवहेलना करनेवाले बरताव तो वहां भी होते थे, फिर भी व्यापार करने और जमीन रख सकनेके बारेमें कोई रुकावट बहुत दिनोंतक वहां नहीं थी।

ऐसा होनेके कारण मुझे बता देने चाहिए। एक तो, जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, केपटाउनमें खासतौरसे और सारी केप कॉलोनीमें आमतौरसे मलायी लोगोंकी आबादी अच्छी खासी तादादमें थी। मलायी लोग खुद मुसलमान हैं। इसलिए हिंदुस्तानी मुसलमानोंके साथ तुरंत उनकी राह-रस्म हो गई और उनके जरिये दूसरे हिंदुस्तानियोंसे भी थोड़ी-बहुत तो हो ही गई। इसके सिवा कुछ हिंदुस्तानी मुसलमानोंने मलायी स्त्रियोंसे ब्याह भी कर लिया। मलायीके खिलाफ किसी तरहका कायदा-कानून केपकी सरकार कैसे बना

सकती थी ? उनकी तो केप कॉलोनी जन्मभूमि है। उनकी भाषा भी डच है। डच लोगोंके साथ ही वे शुरूसे ही रहते आ रहे हैं। अतः रहन-सहनमें भी उनकी बहुत नकल करने लगे हैं। इन कारणोंसे केप कॉलोनीमें सदा कम-से-कम वर्णद्वेष रहा है। इसके सिवा केप कॉलोनी सबसे पुराना उपनिवेश और दक्षिण अफ्रीकाका शिक्षण-केन्द्र है। इससे वहां प्रौढ़, विनयशील और उदारहृदय गोरे भी पैदा हुए। मैं तो मानता हूं कि दुनियामें एक भी ऐसी जगह और एक भी जाति ऐसी नहीं है जहां या जिसमें उपयुक्त अवसर मिले और संस्कार डाले जायं तो सुन्दर-से-सुन्दर मानव-पुष्प उत्पन्न न हो सकते हों। दक्षिण अफ्रीकामें सौभाग्यसे मुझे सभी जगह इसकी मिसालें दिखाई दीं; पर केप कॉलोनीमें ऐसे पुरुषोंका अनुपात बहुत बड़ा है। उनमें सर्वाधिक विख्यात और विद्वान् श्री मेरीमैन हैं, जो दक्षिण अफ्रीकाके ग्लैडस्टन कहे जाते हैं और केप कॉलोनीके प्रधान मंत्री भी रह चुके हैं।[1] श्री मेरीमैनके बराबर नहीं तो उनसे दूसरे दरजेपर विराजनेवाला है संपूर्ण श्राइनर परिवार, और मोल्टीनो परिवार[2]का भी वही पद है। श्राइनर घरानेमें कानूनके मशहूर हिमायती श्री डब्ल्यू० पी० श्राइनर[3] हो गए हैं। वह एक समय केप कॉलोनीके मंत्रिमंडलमें भी रह चुके हैं। उनकी बहन ऑलिव

---

[1]श्रीमेरीमैन १८७२में केप कॉलोनीमें उत्तरदायी शासन व्यवस्था स्थापित होनेके बाद उसके हरएक मंत्रिमण्डलके सदस्य रहे और १९१०में जब यूनियनकी स्थापना हुई तो अंतिम मंत्रिमण्डलके प्रधान थे।

[2]सर जान मोल्टीनो १८७२ के प्रथम मंत्रिमण्डलमें प्रधान मंत्री थे।

[3]श्रीश्राइनर कुछ दिनोंतक एटर्नी-जनरल रहे और पीछे प्रधान मंत्री हुए।

श्राइनर दक्षिण अफ्रीकाकी लोकप्रिय विदुषी थीं और जहां-जहां अंग्रेजी भाषा बोली जाती है वहां-वहां विख्यात थीं। मनुष्यमात्रपर उनका प्रेम असीम था। आंखोंसे जब देखिए प्रेमका झरना ही झरता होता। इस बहनने जब 'ड्रीम्स' (स्वप्न) नामक पुस्तक लिखी तबसे वह 'ड्रीम्स'की लेखिकाके नामसे प्रसिद्ध होगईं। इनकी सरलता इतनी थी कि ऐसे प्रतिष्ठित और प्रख्यात कुलकी तथा विदुषी होते हुए भी घरके बरतनतक खुद मांजा करती थीं। श्री मेरीमैन और इन दोनों परिवारोंने सदा हबशियोंका पक्ष लिया। जब-जब उनके हकपर हमला होता, उनकी जबर्दस्त हिमायत करते। उनके प्रेमकी धारा हिन्दुस्तानियोंकी ओर भी बहती थी, यद्यपि वे सभी हबशी और हिंदुस्तानीमें भेद करते थे। उनकी दलील यह थी कि हबशी दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंके आगमनसे पहलेके बाशिंदे हैं, इसलिए गोरे उनके स्वाभाविक अधिकारोंको छीन नहीं सकते; पर हिंदुस्तानियोंके बारेमें उनकी प्रतियोगिताका खतरा दूर करनेके लिए कोई कानून बनाया जाय तो यह बिलकुल अन्याय नहीं माना जायगा। फिर भी उनकी हमदर्दी हमेशा हिंदुस्तानियोंके साथ रहती। स्वर्गीय गोपालकृष्ण-गोखले जब दक्षिण अफ्रीका पधारे तब उनके सम्मानमें वहां जो पहली सभा केप टाउनके टाउनहालमें हुई उसमें श्री श्राइनरने सभापतिका आसन ग्रहण किया था। श्री मेरीमैनने भी उनके साथ बड़े सौजन्य और विनयसे बातें कीं और हिंदुस्तानियोंके साथ हमदर्दी जाहिर की। केप टाउनके अखबारोंमें भी और जगहके पत्रोंकी तुलनामें पक्षपातकी मात्रा बहुत कम थी।

श्री मेरीमैन आदिके बारेमें मैंने जो कुछ लिखा है वह दूसरे यूरोपियनोंके विषयमें भी कहा जा सकता है। यहां तो मैंने मिसालके तौरपर उपर्युक्त सर्वमान्य नाम दे दिये हैं।

इन कारणोंसे यद्यपि केप कॉलोनीमें रंगद्वेष सदा कम रहा, फिर भी दक्षिण अफ्रीकाके शेष तीनों उपनिवेशोंमें जो हवा हर वक्त बहा करती थी उसकी गंध केप कॉलोनीमें पहुंचे ही नहीं, यह कैसे हो सकता था? अतः वहां भी नेटालके जैसे भारतीयोंके प्रवेश और व्यापारके लिए परवानेकी शर्त लगा देनेवाले कानून पास हुए। यों कह सकते हैं कि दक्षिण अफ्रीकाका दरवाजा जो हिंदुस्तानियोंके लिए बिलकुल खुला हुआ था, बोअर-युद्धके समय वह लगभग बंद हो गया था। ट्रांसवालमें उनके प्रवेशपर ऊपर बताये हुए तीन पौंडके करके सिवा और कोई रोक न थी। पर जब नेटाल और केप कॉलोनीके बंदरगाह उनके लिए बंद हो गए तब बीचमें पड़नेवाले ट्रांसवालको जानेवाले हिंदुस्तानी कहां उतरें? एक रास्ता था--पुर्तगीजोंका डेलगोआबे बंदर। पर वहां भी ब्रिटिश उपनिवेशोंकी कमोबेश नकल की गई। इतना कह देना चाहिए कि बहुत कठिनाइयां उठाकर या रिशवत देकर नेटाल और डेलगोआबेके रास्ते भी इक्के-दुक्के हिंदुस्तानी ट्रांसवाल पहुंच पाते थे।

: ६ :

भारतीयोंने क्या किया ?—१

भारतीय जनताकी स्थितिका विचार करते हुए पिछले प्रकरणोंमें हम अंशतः देख चुके हैं कि उसपर होनेवाले हमलोंका उसने किस तरह सामना किया, पर सत्याग्रहकी उत्पत्तिकी कल्पना पाठकोंको भली भांति हो सके इसके लिए जरूरी है कि भारतीय जनताकी सुरक्षाके विषयमें किये गए प्रयत्नोंपर एक अलग प्रकरण लिखा जाय।

१८९३ ई० तक दक्षिण अफ्रीकामें ऐसे स्वतंत्र और यथेष्ट शिक्षा प्राप्त भारतीय थोड़े ही थे जो भारतीय जनताके लिए लड़ सकें। अंग्रेजी जाननेवाले हिंदुस्तानियोंमें मुख्यतः क्लर्क और मुनीम थे। वे अपना काम चलाने भर अंग्रेजी जानते थे, पर अर्जियां आदि उनसे नहीं लिखी जा सकती थीं। फिर उन्हें अपने मालिकको सारा वक्त देना ही चाहिए था। इनके सिवा अंग्रेजी पढ़ा हुआ दूसरा वर्ग उन हिंदुस्तानियोंका था जो दक्षिण अफ्रीकामें ही पैदा हुए थे। इनमें अधिकांश गिरमिटियोंकी संतान थे और उनमेंसे बहुतेरे जिन्होंने थोड़ीसी योग्यता भी प्राप्त कर ली हो, कचहरीमें दुभाषियाकी सरकारी नौकरी करते थे। अतः जातिकी उनसे बड़ी-से-बड़ी सेवा, हमदर्दी दिखानेके सिवा और क्या हो सकती थी ? इसके सिवा गिरमिटिया और गिरमिटमुक्त दोनों मुख्यतः संयुक्त प्रांत और मद्राससे आये हुए हिंदुस्तानी थे। स्वतंत्र भारतीय थे गुजरातके मुसलमान और वे खास तौरसे व्यापारी थे। हिंदू अधिकांश क्लर्क-मुनीम थे, यह हम पीछे देख चुके हैं। इनके अतिरिक्त थोड़े पारसी भी व्यापारी और क्लर्क वर्गमें थे। पर सारे दक्षिण अफ्रीकामें पारसियोंकी आबादी ३०-४० से अधिक होनेकी संभावना न थी। स्वतंत्र व्यापारी वर्गमें चौथी जमात थी सिंधके व्यापारियोंकी। सारे दक्षिण अफ्रीकामें दो सौ या इससे कुछ अधिक सिंधी होंगे। कह सकते हैं कि उनका व्यापार हिंदुस्तानके बाहर जहां कहीं भी वे बसे हैं वहां एक ही तरहका होता है। वे 'फैंसी गुड्स'के व्यापारी कहे जाते हैं। 'फैंसी गुड्स'के मानी हैं रेशम, जरी वगैरहकी चीजें, बंबईके बने शीशम, चन्दन और हाथी दांतके नक्काशीदार संदूक वगैरह घरकी सजावट। इसी तरहका सामान वे खास तौरसे बेचते हैं। उनके गाहक ज्यादातर गोरे ही होते हैं।

गिरमिटियोंको गोरे 'कुली' कहकर ही पुकारते हैं। कुलीके मानी हैं बोझ ढोनेवाला। यह नाम इतना चल गया है कि गिरमिटिया खुद भी अपने आपको 'कुली' कहते नहीं हिचकता। पीछे तो यह नाम भारतीयमात्रको मिल गया। सैकड़ों गोरे हिंदुस्तानी वकील और हिंदुस्तानी व्यापारीको क्रमशः 'कुली वकील' और 'कुली व्यापारी' कहा करते। इस विशेषणके व्यवहारमें कोई दोष है, इसे कितने ही गोरे तो मानते या जानते भी नहीं; पर बहुतेरे तो तिरस्कार प्रकट करनेके लिए ही 'कुली' शब्दका उपयोग करते। इससे स्वतंत्र भारतीय अपने आपको गिरमिटियोंसे भिन्न बतानेका यत्न करते हैं। इस तथा जिन्हें हम हिंदुस्तानसे ही साथ ले जाते हैं उन कारणोंसे भी स्वतंत्र भारतीय वर्ग और गिर-मिटिया तथा गिरमिटमुक्त वर्गके बीच दक्षिण अफ्रीकामें भेद किया जा रहा था।

इस दुःखके दरियाके सामने बांध बननेका काम स्वतंत्र हिंदुस्तानी व्यापारियों और खास तौरसे मुसलमान व्यापारियोंने अपने ऊपर लिया। पर गिरमिटियों या गिरमिटमुक्त हिंदु-स्तानियोंको साथ लेनेकी कोशिश इरादेके साथ नहीं की गई। यह बात उस वक्त शायद सूझी भी नहीं। सूझती भी तो उन्हें साथ लेनेसे काम बिगड़नेका ही डर होता। दूसरे मुख्य आपत्ति तो स्वतंत्र व्यापारी वर्गपर ही है, यह सोचा गया। इसलिए बचावके प्रयत्नने ऐसा संकुचित रूप धारण किया। इन स्वतंत्र व्यापारियोंमें अंग्रेजीके ज्ञानका अभाव था। हिंदु-स्तानमें उन्हें सार्वजनिक कामोंका अनुभव नहीं हुआ था, पर इन कठिनाइयोंके होते हुए भी कह सकते हैं कि उन्होंने मुसी-बतका सामना डटकर किया। उन्होंने यूरोपियन वकीलोंकी मदद ली, अर्जियां तैयार कराईं, जब-तब शिष्ट-मण्डल भी ले गए और जहां-जहां बन पड़ा और सूझा वहां-वहां अन्यायसे

लोहा लिया। यह स्थिति १८९३ ई० तक थी।

इस पुस्तकको अच्छी तरह समझनेके लिए पाठकोंको कुछ मुख्य तिथियां याद रखनी होंगी। पुस्तकके अंतमें मुख्य घटनाओंका तारीखवार परिशिष्ट दिया गया है। उसे वे समय-समयपर देख लिया करेंगे तो इस युद्धका रहस्य और रूप समझनेमें मदद मिलेगी। १८९३ तक फ्री स्टेटमें हमारी हस्ती मिट चुकी थी। ट्रांसवालमें १८८५का तीसरा कानून जारी था और नेटालके अंदर यह विचार चल रहा था कि कैसे केवल गिरमिटिया हिंदुस्तानी ही वहां रह सकें, दूसरे निकाल बाहर किए जाएं, और इस उद्देश्यसे उत्तरदायी शासनव्यवस्था प्राप्त कर ली गई थी।

१८९३ ई० के अप्रैल महीनेमें मैं दक्षिण अफ्रीका जानेके लिए हिंदुस्तानसे रवाना हुआ। गिरमिटियोंके पिछले इतिहासका मुझे कुछ भी ज्ञान न था। मैं केवल स्वार्थ बुद्धिसे गया। पोरबंदरके मेमन लोगोंकी दादा अब्दुल्लाके नामकी एक मशहूर कोठी डर्बनमें कारबार करती थी। उतनी ही प्रसिद्ध और उसकी प्रतिस्पर्द्धी कोठी पोरबंदरके दूसरे मेमन तैयब हाजी खान मुहम्मदके नामकी प्रिटोरियामें थी। दुर्भाग्यवश दोनों प्रतिस्पर्द्धियोंके बीच एक बड़ा मुकदमा चल रहा था। दादा अब्दुल्लाके एक साथीने, जो पोरबंदरमें थे, सोचा कि मुझ जैसा नौसिखिया फिर भी बैरिस्टर वहां चला जाय तो मुकदमा लड़नेमें उन्हें कुछ ज्यादा सहूलियत होगी। मुझसा निपट अनजान और अनाड़ी वकील उनका काम बिगाड़ देगा, इसका डर उन्हें नहीं था। कारण कि मुझे कुछ अदालतमें जाकर काम करना नहीं था। मुझे तो महज उन धुरंधर वकील-बैरिस्टरोंको, जो उन्होंने नियुक्त कर रखे थे, मामला समझा देना यानी दुभाषियेका काम करना था। मुझे नए अनुभव प्राप्त करनेका शौक था। मुसाफिरी रुचती

थी। बैरिस्टरके रूपमें दलालको कमीशन देना जहरसा लगता था। काठियावाड़की साजिशोंमें मेरा दम घुटता था। एक ही बरसके बंधनपर जाना था। मैंने सोचा कि मेरे लिए तो इस इकरारनामेमें कुछ भी अड़चन नहीं है। हानि तो है ही नहीं; क्योंकि मेरे जाने-आने और रहनेका खर्च दादा अब्दुल्ला ही देनेवाले थे। इसके अलावा १०५ पौंडका मेहनताना भी मिलता। मेरे स्वर्गीय बड़े भाईकी मारफत ये सारी बातें तै हुई थीं। मेरे लिए तो वह पिता तुल्य थे। उनकी रजामंदी मेरी रजामंदी थी। उन्हें मेरे दक्षिण अफ्रीका जानेकी बात पसंद आई और १८९३ ई० के मई महीनेमें मैं डर्बन जा पहुंचा।

बैरिस्टरकी बात तो पूछनी ही क्या ? मैं अपनी समझके अनुसार बढ़िया फ्रॉक-कोट इत्यादि डाटकर शानसे जहाजसे उतरा। पर उतरते ही मेरी आंखें कुछ-कुछ खुल गईं। दादा अब्दुल्लाके जिस साझीके साथ बात हुई थी उसने जो वर्णन मुझे सुनाया था वह तो मुझे उलटा ही दिखाई दिया। इसमें उसका कोई दोष न था। यह था उसका भोलापन, सरलता और परिस्थितिका अज्ञान। नेटालमें हिंदुस्तानियोंको जो-जो तकलीफें भुगतनी पड़ती थीं उन सबका उसे पता नहीं था। और जिन बर्तावोंमें हमारा तीव्र अपमान था वे उन्हें अपमानकारक नहीं जान पड़े थे; पर मेरी आंखोंने तो पहले ही दिन यह देख लिया कि गोरोंका बर्ताव हमारे साथ बहुत ही अशिष्ट और अपमानकर है।

नेटाल पहुंचनेके १५ दिनके अंदर ही कचहरियोंमें मुझे जो कड़वे अनुभव हुए, ट्रेनके अंदर जो कष्ट उठाने पड़े, रास्तेमें जो मार खाई, होटलमें जगह पानेमें जो कठिनाई हुई, बल्कि जगह पाना लगभग नामुमकिन था--इस सबका वर्णन मैं यहां नहीं करूंगा। इतना ही कहूंगा कि ये सारे अनुभव मेरी रग-रग में समा गए। मैं तो सिर्फ एक मुकदमेके लिए गया था,

स्वार्थ और कुतूहलकी दृष्टिसे, इसलिए इस पहले वर्षमें तो मैं इन दुःखोंका साक्षी और अनुभवकर्ता मात्र रहा। मेरे धर्मका पालन यहींसे आरंभ हुआ। मैंने देखा कि स्वार्थ-दृष्टिसे दक्षिण अफ्रीका मेरे लिए बेकार मुल्क है। जहां अपमान होता हो वहां रहकर पैसा कमाने या सैर-सपाटा करनेका लोभ मुझे तनिक भी न था। यही नहीं, इससे अत्यन्त अरुचि थी। मेरे सामने धर्मसंकट खड़ा हो गया। मेरे सामने दो रास्ते थे। एक यह कि जिस स्थितिको मैं जान नहीं सकता था उसे अब जान लिया। इसलिए दादा अब्दुल्लाके साथ किए हुए इकरारनामेसे छुटकारा प्राप्तकर भाग जाऊं। दूसरा यह कि चाहे जो संकट सहने पड़ें सहूं और अंगीकृत कामको पूरा करूँ। कड़ाकेकी ठंडमें मारित्सबर्ग स्टेशनपर रेलवे पुलिसके धक्के खाकर, यात्रा स्थगित कर और ट्रेनसे उतरकर, वेटिंग रूममें बैठा था। मेरा सामान कहां है, इसकी खबर मुझे न थी। किसीसे पूछनेकी हिम्मत भी नहीं होती थी। कहीं फिर अपमान हो, मार खानी पड़े तो? ऐसी दशामें, ठंडसे कांपते हुए नींद कहांसे आती! मन चक्करदार झूलेपर सवार हुआ। बड़ी रातको निश्चय किया, "निकल भागना तो नामर्दी है, लिए हुए कामको पूरा करना ही चाहिए। व्यक्तिगत अपमान सहना पड़े, मार खानी पड़े, तो सह और खाकर भी प्रिटोरिया पहुंचना ही चाहिए।" प्रिटोरिया मेरे लिए केंद्र स्थान था। मुकदमा वहीं चल रहा था। अपना काम करते हुए कोई उपाय हो सके तो करूं। यह निश्चय कर लेनेपर मनको कुछ शांति हुई, हृदयमें कुछ बल भी आया। पर मैं सो तो नहीं ही सका।

सवेरा होते ही मैंने दादा अब्दुल्लाकी कोठी और रेलवेके जनरल मैनेजरको तार किया। दोनों जगहसे जवाब भी आ गया। दादा अब्दुल्ला और उनके उस वक्त नेटालमें

रहनेवाले साझी सेठ अब्दुल्ला हाजी आदम झवेरीने फौरन सब प्रबंध कर दिया। भिन्न-भिन्न स्थानोंमें अपने हिंदुस्तानी आढ़तियोंको मेरी फिक्र रखनेके लिए तार किए। जनरल मैनेजरसे भी मिले। आढ़तियेको भेजे हुए तारके फलस्वरूप मारित्सवर्गके भारतीय व्यापारी आकर मुझसे मिले। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया और कहा कि आपके जैसे कड़वे अनुभव हम सबको हो चुके हैं। पर हम इसके आदी हो गये हैं, इसलिए इसकी परवा नहीं करते। व्यापार करना और नाजुक दिल रखना दोनों बातें साथ कैसे चल सकती हैं? इसलिए पैसेके साथ-साथ अपमान भी मिले तो उसे भी बक्समें धर लेनेका नियम हमने स्वीकार कर लिया है। उन्होंने मुझे यह भी बताया कि इस स्टेशनपर हिंदुस्तानियोंको सदर दरवाजेसे आनेकी मनाही है और टिकट लेनेमें भी उन्हें बड़ी कठिनाई होती है। उसी रातमें जो ट्रेन आई उससे मैं रवाना हो गया। मेरा निश्चय ठीक था या नहीं, इसकी परीक्षा अंतर्यामीने पूरे तौरपर की। प्रिटोरिया पहुंचनेके पहले मुझे और अपमान सहने पड़े और मार बर्दाश्त करनी पड़ी। पर इस सबका मेरे मनपर यही असर हुआ कि मेरा निश्चय और पक्का हो गया।

यों १८९३ में मुझे अनायास दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी स्थितिका सच्चा अनुभव हो गया। वैसा अवसर आनेपर प्रिटोरियाके भारतीयोंके साथ मैं इस विषयमें बातचीत करता, उन्हें समझाता भी, पर इससे अधिक मैंने कुछ नहीं किया। मुझे ऐसा जान पड़ा कि दादा अब्दुल्लाके मुकदमेकी पैरवी करना और दक्षिण अफ्रीकाके हिंदुस्तानियोंके दुःखके निवारणकी चिंता करना, ये दोनों बातें साथ नहीं चल सकतीं। मैंने देखा कि दोनोंको साधनेकी कोशिशमें दोनों जाएंगे। इस तरह करते-करते १८९४ आ पहुंचा। मुकदमा भी खतम हो

गया। मैं डर्बन लौटा। देश लौटनेकी तैयारी की। दादा अब्दुल्लाने मेरी बिदाईके लिए एक जलसा भी किया। उसमें किसीने डर्बनके 'मर्करी' अखबारका एक पर्चा मेरे हाथमें दिया। उसमें धारा सभा नेटाल असेंबलीकी कारवाईके विवरणमें कुछ पंक्तियां मैंने 'भारतीय मताधिकार' (इंडियन फ्रेंचाइज) उपशीर्षकके नीचे पढ़ीं। 'सरकारकी ओरसे उसमें एक बिल पेश किया गया था जो हिंदुस्तानियोंको धारा सभाके चुनावमें मत देनेके अधिकारसे वंचित करता था। मैंने देखा कि हिंदुस्तानियोंके सारे हक छीन लेनेकी यह शुरूआत है। उस मौकेपर किये गए भाषणोंमें ही यह इरादा स्पष्ट था। जलसेमें आये हुए सेठों आदिको मैंने वह खबर पढ़कर सुनाई। जितना समझाते बना समझाया भी। सारी हकीकत तो मैं जानता नहीं था। मैंने उन्हें सलाह दी कि हिंदुस्तानियोंको इस हमलेका सामना डटकर करना चाहिए। उन्होंने भी इस बातको कबूल किया; पर कहा कि इस तरहकी लड़ाई हमारे लड़े नहीं लड़ी जा सकती और मुझसे रुक जानेका आग्रह किया। मैंने यह लड़ाई लड़ने तक, यानी महीने दो महीने, रुक जाना मंजूर किया। उसी रात धारा सभाको भेजनेके लिए अर्जी तैयार की। बिलके और वाचन मुल्तवी रखनेके लिए तार भेजा गया। तुरंत एक कमेटी बनाई गई। उसके अध्यक्ष सेठ अब्दुल्ला हाजी बनाये गये। तार उन्हींके नामसे भेजा गया। बिलकी कारवाई दो दिन रुकी रही। दक्षिण अफ्रीकाकी धारा सभाओंमेंसे नेटालकी धारा सभामें हिंदुस्तानियोंका यह पहला आवेदनपत्र था। उसका असर तो अच्छा हुआ, पर बिल पास हुआ ही। उसका अंत क्या हुआ, यह तो चौथे प्रकरणमें बता चुका हूं। इस तरह लड़नेका वहां हिंदुस्तानियोंका यह पहला अनुभव था। इससे उनमें खूब जोश पैदा हुआ। रोज सभाएं होतीं और

अधिकाधिक लोग उनमें सम्मिलित होते। इस कामके लिए जितना चाहिए था उससे अधिक पैसा इकट्ठा हो गया। नकलें करने, दस्तखत लेने आदिके कामोंमें मदद करनेके लिए बिना पैसा लिए और पासका पैसा लगाकर काम करनेवाले भी बहुसंख्यक स्वयंसेवक मिल गये। गिरमिटमुक्त हिंदुस्तानियोंकी संतान भी इस काममें उत्साहके साथ शामिल हुई। ये सभी अंग्रेजी जाननेवाले और सुंदर अक्षर लिखनेवाले युवक थे। उन्होंने नकलें तैयार करने आदिका काम रात-दिनका ख्याल न कर बड़े उत्साहसे किया। एक महीनेके अंदर ही दस हजार हस्ताक्षरों वाला आवेदनपत्र लार्ड रिपनके पास भेज दिया और मेरा तात्कालिक काम पूरा हुआ।

मैंने विदा मांगी; पर भारतीय जनताको इस संघर्षमें इतना रस मिलने लगा था कि अब वह मुझे छोड़ना ही नहीं चाहती थी। उसने कहा—"आप ही तो हमें समझाते हैं कि हमें जड़मूलसे उखाड़ फेंकनेका यह पहला कदम है। विलायतसे क्या जवाब आयेगा, इसे कौन जानता है ? हमारा उत्साह आपने देख लिया। हम काम करनेको तैयार हैं। करना चाहते भी हैं। हमारे पास पैसा भी है। पर रास्ता दिखानेवाला न हुआ तो इतना किया-धरा बेकार हो जायगा। इसलिए हम तो मानते हैं कि कुछ दिन यहां और रह जाना आपका फर्ज है।" मुझे भी दिखाई दिया कि कोई स्थायी संस्था हो जाय तो अच्छा है। पर रहूं कहां और किस तरह ? उन लोगोंने मुझे तनख्वाह देनेकी बात कही, पर मैंने तनख्वाह लेनेसे साफ इनकार कर दिया। सार्वजनिक कार्य बड़ी-बड़ी तनख्वाह लेकर नहीं हो सकता। फिर मैं तो नींव डालनेवाला था। रहना भी ऐसे ढंगसे चाहिए कि उस वक्तके मेरे विचारोंके अनुसार बैरिस्टरको फबे और जातिको भी शोभा दे। अर्थात् खर्च भी भारी था। लोगोंको दबाकर

उनसे ऐसा करके आंदोलन बढ़ाना और इसके साथ-साथ अपनी रोजी भी कमा लेना, यह दो परस्पर विरोधी बातोंका संगम होगा। इससे मेरी अपनी काम करनेकी शक्ति भी घट जायगी। ऐसे अनेक कारणोंसे मैंने लोकसेवाके कार्यके लिए पैसा लेनेसे साफ इनकार कर दिया। पर मैंने यह सुझाव पेश किया कि आप लोगोंमेंसे बड़े व्यापारी अपनी वकालतका काम मुझे दें और इसके लिए मुझे पेशगी 'रिटेनर'[1] दें तो मैं रुकनेको तैयार हूं। एक बरसका रिटेनर आप दें। एक बरस हम एक-दूसरेका अनुभव प्राप्त करें, सालभरके कामका हिसाब करके देखें और फिर ठीक जान पड़े तो आगे काम चलाएं। इस सुझावका सबने स्वागत किया। मैंने वकालतकी सनदके लिए दरख्वास्त दी। वहांकी 'ला सोसायटी' अर्थात् वकील मंडलने मेरी दरख्वास्तका विरोध किया। उनकी दलील एक ही थी कि नेटालके कानूनके मंशाके अनुसार काले या गेहुँए रंगके लोगोंको वकालतकी सनद नहीं दी जा सकती। मेरी दरख्वास्तकी हिमायत वहांके मशहूर वकील श्री एस्कंबने की, जो पहले एटर्नी जनरल थे और पीछे नेटालके प्रधान-मंत्री हो गये थे। आमतौरपर लंबे अरसेसे यह रिवाज चला आ रहा था कि वकालतकी सनदकी दरख्वास्त कानून-पंडितोंमेंसे जो अग्रणी हो वह बिना मेहनतानेके अदालतके सामने पेश करे। इसी प्रथाके अनुसार श्री एस्कंबने मेरी वकालत मंजूर की। वह दादा अब्दुल्लाके बड़े (सीनियर) वकील भी थे। वकील-मंडलकी दलील बड़ी अदालत (सीनियर कोर्ट) ने रद्द करदी और मेरी दरख्वास्त मंजूर कर ली। यों वकील-मंडलका विरोध बिना चाहे मेरी दूसरी प्रसिद्धिका कारण हो गया।

---

[1] वकील-बैरिस्टरको इस दृष्टिसे दिया हुआ पेशगी मेहनताना कि जरूरत पड़नेपर काम लेनेका हक रहे।

दक्षिण अफ्रीकाके अखबारोंने वकील-मंडलकी हंसी उड़ाई और कुछने मुझे बधाई भी दी।

जो कामचलाऊ कमेटी बनाई गई थी उसे स्थायी रूप दिया गया। मैंने कांग्रेसकी एक भी बैठक देखी तो नहीं थी, पर कांग्रेसके बारेमें पढ़ा था। हिंदके दादा (दादा भाई) के दर्शन कर चुका था। उनकी मैं पूजा करता था। अतः कांग्रेसका भक्त तो होना ही चाहिए था। उसके नामको लोकप्रिय बनानेका भी ख्याल था। नया जवान नया नाम क्यों ढूंढ़ने जाय ? फिर उसमें भूल कर बैठनेका भी भारी भय था। अतः मैंने सलाह दी कि कमेटी 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' नाम ग्रहण करे। कांग्रेसके विषयमें अपना अधूरा ज्ञान अधूरी रीतिसे मैंने लोगोंके सामने रखा। १८९४ ई० के मई या जूनमें कांग्रेसकी स्थापना हुई। भारतीय संस्था और इस संस्थामें इतना अंतर था कि नेटाल कांग्रेसकी बैठकें बारहो मास हुआ करती थीं और जो सालमें कम-से-कम तीन पौंड दे सके वही उसका सदस्य हो सकता था। अधिक-से-अधिक तो जो कुछ भी दिया जाय वह सधन्यवाद स्वीकार किया जाता। पांच-सात सदस्य सालाना २४ पौंड देनेवाले भी निकल आए। १२ पौंड देनेवालोंकी तादाद तो काफी थी। एक महीनेके अंदर कोई तीन सौ सदस्योंके नाम दर्ज हो गये। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि जितने धर्मों और प्रान्तोंके लोग वहां थे उसमें शामिल हुए। पहले बरसभर काम बड़े जोशसे चला। सेठ लोग निजकी सवारियां लेकर दूर-दूरके गावोंमें नये मेंबर बनाने और चंदा इकट्ठा करने जाते थे। हर आदमी मांगते ही पैसा नहीं दे देता था। उन्हें समझाना होता था। समझानेमें एक प्रकारकी राजनैतिक शिक्षा मिलती थी और लोग परिस्थितिसे परिचित होते थे। फिर हर महीने कम-से-कम एक बार तो कांग्रेसकी बैठक होती

ही थी। उसमें उस महीनेका पाई-पाईका हिसाब सुनाया जाता और वह पास होता। महीनेके अंदर घटित सारी घटनाएं भी सुनाई जातीं और कार्रवाई लिख ली जाती। सदस्य-गण जुदा-जुदा सवाल पूछते। नए कामोंपर मशवरा होता। यह सब करते हुए जो लोग कभी ऐसी सभाओंमें नहीं बोलते थे वे वक्ता बन जाते थे। भाषण भी शिष्टता, औचित्यका ध्यान रखकर ही करते थे। यह सारा हमारे लिए नया अनु-भव था। लोगोंने इसमें बहुत रस लिया। इस बीच लार्ड-रिपनके नेटालका (मताधिकार हरण) बिल नामंजूर कर देनेकी खबर आई। इससे लोगोंका हर्ष और आत्म-विश्वास दोनों बढ़े।

जैसे बाहर काम हो रहा था वैसे लोगोंके अंदर काम करने-का आंदोलन भी चल रहा था। हमारी रहन-सहनके बारेमें सारे दक्षिण अफ्रीकामें गोरे जोरदार आंदोलन कर रहे थे। हिंदुस्तानी बहुत गंदे हैं, कंजूस हैं, जिस मकानमें व्यापार करते हैं उसीमें रहते भी हैं, उनके घर जैसे मांद हों, अपने आरामके लिए भी वे पैसा नहीं खर्च करते। ऐसे मैले, मक्खीचूस लोगोंके साथ साफ-सुथरे, उदार और बहुत ज्यादा जरूरतों वाले गोरे व्यापारमें कैसे प्रतियोगिता कर सकते हैं? यह उनकी हमेशाकी दलील थी। इससे घर साफ-सुथरा रखने, घर और दुकान अलग-अलग रखने, कपड़े साफ रखने, बड़ी कमाईवाले व्यापारीको फबने लायक रहन-सहन रखने आदिके बारेमें भी कांग्रेसकी बैठकोंमें विवेचन और विवाद होता, सुझाव रखे जाते। कार्रवाई सारी मातृभाषामें ही होती।

इस सबसे लोगोंको अनायास कितनी व्यावहारिक शिक्षा और राजनैतिक काम-काजका कितना अनुभव मिल रहा था, पाठक इसे समझ सकते हैं। कांग्रेसके ही अंतर्गत गिरमिट-मुक्त हिंदुस्तानियोंकी सन्तान अर्थात् नेटालमें ही जन्मे हुए

अंग्रेजी बोलनेवाले भारतीय युवकोंके सुभीतेके लिए एक शिक्षण-मंडल भी स्थापित किया गया। उसमें नामकी फीस रखी गई। मुख्य उद्देश्य था उन नौजवानोंको इकट्ठा करना, उनमें हिन्दुस्तानके प्रति प्रेम उत्पन्न करना और उसका सामान्य ज्ञान करा देना। साथ ही यह हेतु भी था कि स्वतंत्र भारतीय व्यापारी उन्हें अपना ही समझते हैं। यह उन्हें दिखा दिया जाय और व्यापारीवर्गमें भी उनके लिए आदर उत्पन्न किया जाय। अपना खर्च चलाते हुए भी कांग्रेसके पास एक बड़ी रकम इकट्ठी हो गई थी। उसकी जमीन खरीदी गई और इस जमीनकी आमदनी आजतक उसे मिला करती है।

इतना ब्यौरा मैंने जानबूझ कर दिया है। सत्याग्रह कैसे स्वाभाविक रीतिसे उत्पन्न हुआ और लोग कैसे उसके लिए तैयार हुए। ऊपरके ब्यौरे जाने बिना पाठक इस बात-को पूरी तरह नहीं समझ सकते थे। कांग्रेसके ऊपर मुसीबतें आईं, सरकारी अधिकारियोंकी ओरसे हमले हुए, उन हमलोंसे वह कैसे बची, यह और ऐसी दूसरी बातोंका जानने लायक इतिहास मुझे छोड़ देना पड़ रहा है। पर एक बात बता देना जरूरी है। अतिशयोक्तिसे भारतीय जनता सदा बचती रहती। उसकी कमियां उसे दिखानेका यत्न सदा किया जाता। गोरोंकी दलीलोंमें जितनी सचाई होती, वह तुरंत स्वीकार कर ली जाती और गोरोंके साथ स्वतंत्रता और आत्मसम्मानकी रक्षा करते हुए सहयोग करनेके हर अवसरका स्वागत किया जाता। हिन्दुस्तानियोंके आन्दोलनका जितना समाचार वहांके अखबार ले सकते थे उतना उन्हें दे दिया जाता और अखबारोंमें हिंदुस्तानियोंपर बेजा हमला होता तो उसका जवाब भी दिया जाता।

नेटालमें जैसी 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' थी वैसी ही संस्था

ट्रांसवालमें भी थी। पर ट्रांसवालकी संस्था नेटालसे सर्वथा स्वतंत्र थी। उनके विधानमें भी अंतर था। पर उसकी चर्चामें पाठकोंको उलझाना नहीं चाहता। ऐसी संस्था केप टाउनमें भी थी। उसका विधान नेटाल और ट्रांसवाल दोनोंकी संस्थाओंसे भिन्न प्रकारका था। फिर भी तीनोंके कार्य लगभग एक ही तरहके कहे जा सकते हैं।

१८९४का साल खतम हुआ। कांग्रेसका पहला बरस भी १८९५के मध्यमें पूरा हो गया। मेरा वकालतका काम भी मवक्किलोंको पसंद आया। मेरा प्रवासकाल और लंबा हो गया। १८९६ में लोगोंसे इजाजत लेकर ६ महीनेके लिए हिंदुस्तान लौटा, पर पूरे छः महीने भी न रह पाया था कि नेटालसे तार मिला और मुझे तुरंत लौट जाना पड़ा। १८९६-९७ का हाल हमें अलग अध्यायमें मिलेगा।

: ७ :

भारतीयोंने क्या किया ?—२

इस प्रकार नेटाल इंडियन कांग्रेसका काम स्थिर हो गया। मैंने भी लगभग ढाई बरस अधिकतर राजनैतिक काम करते हुए नेटालमें बिता लिए। अब मैंने सोचा कि अगर मुझे दक्षिण अफ्रीकामें अभी और रहना हो तो बाल-बच्चोंको भी साथ रखना जरूरी है। कुछ समय देशका दौरा कर आनेका भी मन हुआ। सोचा कि उस बीच भारतके नेताओंको नेटाल और दक्षिण अफ्रीकाके दूसरे भागोंमें बसनेवाले भारतीयोंकी स्थितिकी संक्षिप्त कल्पना भी करा दूंगा। कांग्रेसने ६ महीनेकी छुट्टी दी और मेरी जगह नेटालके सुप्रसिद्ध व्यापारी स्व० आदमजी मियां खांको मंत्री

नियुक्त किया। उन्होंने बड़ी होशियारीसे काम किया। स्व० आदमजी मियां खां अंग्रेजी अच्छी जानते थे। अनुभवसे अपने कामचलाऊ ज्ञानको उन्होंने खूब बढ़ा लिया था। गुजरातीका सामान्य अभ्यास था। उनका व्यापार खासतौरसे हबशियोंमें था। अतः जुलू भाषा और हबशियोंके रस्म-रिवाजकी उन्हें अच्छी जानकारी थी। स्वभाव शांत और बहुत ही मिलनसार था। जितना जरूरी हो उतना ही बोलनेकी आदत थी। यह सब लिखनेका हेतु इतना ही है कि बड़ी जिम्मेदारीके पदपर काम करनेके लिए अंग्रेजीके या दूसरे अक्षरज्ञानकी जितनी आवश्यकता होती है उससे कहीं अधिक आवश्यकता सचाई, शान्ति, सहनशीलता, दृढ़ता, अवसरकी पहचान और तदनुरूप कार्य करनेकी योग्यता, हिम्मत और व्यवहार-बुद्धिकी होती है। ये गुण न हों तो अच्छे-से-अच्छे अक्षरज्ञानकी भी सामाजिक कामभें धेले भर कीमत नहीं होती।

१८९६ के मध्यमें मैं हिंदुस्तान लौटा। कलकत्तेके रास्ते आया; क्योंकि उस वक्त नेटालसे कलकत्ते जानेवाले स्टीमर आसानीसे मिल जाते थे। गिरमिटिया कलकत्ते या मद्राससे जहाजपर सवार होते थे। कलकत्तेसे बंबई आते हुए रास्तेमें मेरी ट्रेन छूट गई। इससे मुझे एक दिन इलाहाबादमें अटकना पड़ा। वहींसे मैंने अपना काम शुरू किया। 'पायोनियर'के मि० चेजनीसे मिला। उन्होंने सौजन्यके साथ बातें कीं। सचाईके साथ मुझे बता दिया कि उनका झुकाव उपनिवेशोंकी ओर है; पर कहा कि आप जो कुछ लिखेंगे उसे पढ़ जाऊंगा और अपने पत्रमें उसपर टिप्पणी भी लिखूंगा। मैंने इतनेको ही काफी समझा।

देशमें रहनेके दिनोंमें दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी स्थितिके विषयमें मैंने एक पुस्तिका लिखी। उस पर लगभग सभी अखबारोंमें टीका-टिप्पणी हुई। उसके दो संस्करण

छपवाने पड़े। पांच हजार प्रतियां देशके भिन्न-भिन्न स्थानों-में भेजी गईं। इन्हीं दिनों मैंने भारतके नेताओंके दर्शन किये--बंबईमें सर फीरोजशाह मेहता, न्यायमूर्ति बदरुद्दीन तैयबजी, न्यायमूर्ति रानडे इत्यादिके, पूनामें लोकमान्य-तिलक और उनके मंडल, प्रोफेसर भांडारकर, गोपाल कृष्ण गोखले और उनके मंडल वालोंके। बंबईसे आरंभ करके पूना और मद्रासमें भाषण भी किये। इनका विवरण यहां नहीं देना चाहता।

पर पूनाका एक पवित्र संस्मरण दिये बिना नहीं रह सकता, यद्यपि अपने विषयके साथ उसका कोई संबंध नहीं। पूनामें सार्व-जनिक सभा लोकमान्य तिलकके हाथमें थी। स्वर्गीय गोखले-जीका संबंध दक्खिन सभाके साथ था। मैं पहले मिला तिलक महाराजसे। उनसे मैंने जब पूनामें सभा करनेकी बात कही तो उन्होंने मुझसे पूछा--"आप गोपालरावसे मिल चुके हैं?"

मैंने पहले उनका आशय नहीं समझा। अतः उन्होंने फिर पूछा--"श्री गोखलेसे आप मिल चुके हैं? उन्हें जानते हैं?"

मैंने जवाब दिया--"अभी मिला नहीं। उन्हें नामसे ही जानता हूं। पर मिलनेका इरादा है।"

लोकमान्य--"आप हिंदुस्तानकी राजनीतिसे परिचित नहीं जान पड़ते।"

मैंने कहा--"विलायतसे पढ़कर लौटनेके बाद मैं हिंदु-स्तानमें थोड़े ही दिन रहा और उस अल्पकालमें भी राजनैतिक मामलोंमें जरा भी दखल नहीं दिया। इस चीजको मैं अपने बसके बाहरकी बात मानता था।"

लोकमान्य--"तब मुझे आपको कुछ परिचय देना पड़ेगा। पूनामें दो पक्ष हैं--एक सार्वजनिक सभाका, दूसरा दक्खिन सभाका।"

मैंने कहा—“इसके बारेमें तो मैं कुछ-कुछ जानता हूं ।”

लोकमान्य—“यहां सभा करना तो आसान है; पर मैं देखता हूं कि आप अपना सवाल सब पक्षोंके सामने रखना चाहते हैं और मदद भी सबकी चाहते हैं। यह बात मुझे पसंद आती है; पर आपकी सभाका सभापति हममेंसे कोई हो तो दक्खिन सभावाले नहीं आयंगे और दक्खिन सभाका कोई आदमी सभापति बने तो हममेंसे कोई नहीं जायगा। अतः आपको तटस्थ सभापति ढूंढ़ना चाहिए। मैं तो इस मामलेमें सलाह भर दे सकता हूं। दूसरी मदद मुझसे नहीं हो सकेगी। आप प्रोफेसर भांडारकरको जानते हैं ? न जानते हों तो भी उनके पास जाइए। वह तटस्थ माने जाते हैं। राजनैतिक कामोंमें शामिल भी नहीं होते; पर शायद आप उन्हें ललचा सकें। श्री गोखलेसे इस बारेमें बात कीजिए। उनकी सलाह भी लीजिए। बहुत करके वह भी आपको यही सलाह देंगे। प्रोफेसर भांडारकर जैसा पुरुष सभापति बनना स्वीकार कर ले तो मुझे विश्वास है कि दोनों पक्ष सभाका आयोजन करनेका काम उठा लेंगे। हमारी मदद तो इसमें आपको पूरी रहेगी।”

यह सलाह लेकर मैं गोखलेजीके पास गया। इस पहले मिलनमें ही उन्होंने मेरे हृदयमें कैसे राज्याधिकार प्राप्त कर लिया, इसे तो दूसरे प्रसंगमें लिख चुका हूं। जिज्ञासुजन ‘यंग इंडिया’ या ‘नवजीवन’की फाइल देखनेका कष्ट करें।[१] लोकमान्यकी सलाह गोखलेजीको भी पसंद आई। मैं तुरंत प्रोफेसर भांडारकरके पास पहुंचा। उन विद्वान् बुजुर्गके दर्शन किए। नेटालकी कहानी ध्यान-पूर्वक सुनकर उन्होंने कहा—“आप देखते हैं कि मैं तो सार्वजनिक जीवनमें क्वचित् ही पड़ता हूं। अब तो बूढ़ा भी हुआ। फिर भी आपकी

---

[१]देखिये ‘यंग इंडिया’ १३ जुलाई १९२१, ‘नवजीवन’ २८ जुलाई ’२१

बातोंने मेरे मनपर बहुत असर किया है। आपके सब पक्षोंकी सहायता प्राप्त करनेके विचारको मैं पसंद करता हूं। फिर आप हिंदुस्तानकी राजनीतिसे अनजान जान पड़ते हैं और युवक हैं। अतः दोनों पक्षोंसे कहिए कि मैंने आपका अनुरोध स्वीकार कर लिया। जब सभा हो तो उनमेंसे कोई भी मुझे खबर दे देगा तो मैं जरूर हाजिर हूंगा।" पूनामें सुंदर सभा हुई। दोनों पक्षोंके नेता उपस्थित हुए और भाषण दिये।

अनन्तर मैं मद्रास गया। वहां जस्टिस सुब्रह्मण्यम् ऐयरसे मिला। श्री आनंद चार्लु, 'हिंदू' के तत्कालीन संपादक श्री जी० सुब्रह्मण्यम्, 'मद्रास स्टैंडर्ड'के संपादक श्री परमेश्वरम् पिल्ले, प्रख्यात वकील श्री भाष्यम् आयंगार, मि० नॉर्टन आदिसे भी मिला। वहां भी सभा हुई। वहांसे मैं कलकत्ते गया। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, महाराज ज्योतीन्द्रमोहन ठाकुर, 'इंग्लिशमैन' के संपादक मि० सांडर्स आदिसे भी मिला। वहां सभाकी तैयारी हो रही थी कि इतनेमें, यानी १८९६ ई० के नवंबर महीनेमें, मुझे नेटालसे तार मिला—"अविलंब आइए।" मैं समझ गया कि हिंदुस्तानियोंके खिलाफ कोई नया आन्दोलन उठा होगा। अतः कलकत्तेका काम पूरा किये बिना ही पीछे फिरा और बम्बईसे जानेवाले पहले ही जहाजपर सवार हो गया। यह स्टीमर दादा अब्दुल्लाकी फर्मने खरीद लिया था और उसके अनेक साहसोंमें नेटाल और पोरबंदरके बीच जहाज चलानेका यह पहला साहस था। इस स्टीमरका नाम 'कोर्लैंड' था। इस स्टीमरके बाद तुरंत ही पर्शियन स्टीम नेविगेशन कंपनीका स्टीमर 'नादरी' भी नेटालके लिए रवाना हुआ। मेरा टिकट 'कोर्लैंड'का था। मेरा कुटुंब भी मेरे साथ था। दोनों जहाजोंमें सब मिलाकर दक्षिण अफ्रीका जानेवाले कोई ८०० मुसाफिर रहे होंगे।

हिंदुस्तानमें जो आंदोलन मैंने किया वह इतनी बड़ी चीज

हो गया--और बड़े अखबारोंमेंसे अधिकांशने उसपर लेख-टिप्पणियां लिखीं--कि रायटरने उसके बारेमें विलायत तार भेजे। यह खबर मुझे नेटाल पहुंचते ही मिली। विलायतके तारोंपरसे रायटरके वहांके प्रतिनिधिने एक मुख्तसर तार दक्षिण अफ्रीका भी भेजा। इस तारमें जो कुछ मैंने हिंदुस्तानमें कहा था उसमें थोड़ा नमक-मिर्च लगा दिया गया था। ऐसी अतिशयोक्ति हम अकसर होते देखते हैं। यह सब जान-बूझकर नहीं किया जाता। बहुधंधी लोग किसी चीजको ऊपर-ऊपरसे पढ़ लेते हैं। उनका कुछ अपना खयाल तो होता ही है। उसका एक खुलासा होता है। दिमाग उसका एक दूसराही खुलासा बना लेता है। फिर वह जहां-जहां जाता है वहां उसका एक नया ही अर्थ किया जाता है। ये सारी बातें अनायास हुआ करती हैं। सार्वजनिक कामोंमें यह खतरा रहता है और यह उनकी हद भी होती है। हिंदुस्तानमें मैंने नेटालके गोरोंपर आक्षेप किए। गिरमिटियोंपर लगाये गए तीन पौंडके करके विरुद्ध बहुत कड़ी बातें कहीं। सुब्रह्मण्यम् नामक निरपराध गिरमिटियाको उसके मालिकने पीट दिया। उसके जख्म मैंने अपनी आंखों देखे। उसका सारा मामला मेरे ही हाथमें था। इससे उसकी तसवीर अपनी शक्तिके अनुसार मैं ठीक-ठीक खींच सका था। इस सबका खुलासा जब नेटालवासी गोरोंने पढ़ा तब वे मुझपर बहुत क्रुद्ध हुए। खूबी यह थी कि जो कुछ मैंने नेटालमें लिखा था वह हिंदुस्तानमें कही और लिखी हुई बातोंसे अधिक तीखा और अधिक ब्योरेवार था। हिंदुस्तानमें मैंने एक भी बात नहीं कही थी जिसमें तनिक भी अतिशयोक्ति हो; पर अनुभवसे मैं इतना जानता था कि किसी भी घटनाका वर्णन अनजान आदमीके सामने करो तो जितना अर्थ हमने उसमें रखा हो वह अनजान श्रोता या पाठक उससे अधिक अर्थ उसमें

देखता है। इससे जानबूझकर हिंदुस्तानमें नेटालका चित्र मैंने कुछ हलका ही खींचा था। पर नेटालमें तो मेरा लेख बहुत थोड़े गोरे पढ़ते और उसकी परवाह करनेवाले और भी कम होते। हिंदुस्तानमें कही हुई बातके विषयमें इसका उलटा ही होता और हुआ। रायटरके खुलासोंको तो हजारों गोरे पढ़ते थे। फिर जो बात तारमें लिखने लायक समझी गई हो उसका महत्व जितना वास्तवमें हो उससे अधिक समझा जाता है। नेटालके गोरे जितना सोचते थे उतना असर हिंदुस्तानमें किए हुए मेरे कामका पड़ा होता तो गिरमिटकी प्रथा शायद बंद हो जाती और इससे सैकड़ों गोरे मालिकोंका नुकसान होता। इसके सिवा यह भी समझा जा सकता है कि नेटालके गोरोंकी हिंदुस्तानमें बदनामी हुई।

इस प्रकार नेटालके गोरोंका पारा गरम हो रहा था कि इतनेमें उन्होंने सुना कि मैं बाल-बच्चोंके साथ 'कोलैंड' जहाजसे लौट रहा हूं। उस जहाजमें ३-४ सौ हिंदुस्तानी यात्री हैं। उसीके साथ 'नादरी' नामका दूसरा स्टीमर भी उतने ही मुसाफिर लेकर आ रहा है। इससे बलती आगमें घी पड़ा और वह बड़े जोरसे भड़क उठी। नेटालके गोरोंने बड़ी-बड़ी सभाएं कीं और लगभग सभी प्रमुख यूरोपियन उनमें शामिल हुए। खासतौरसे मेरी और आमतौरसे हिंदुस्तानी कौमकी कड़ी आलोचना की गई। 'कोलैंड' और 'नादरी' के आगमनको 'नेटालपर चढ़ाई' का रूप दिया गया। सभामें बोलनेवालोंने यह अर्थ निकाला कि मैं इन ८०० यात्रियोंको साथ ले आया हूं और नेटालको स्वतंत्र भारतीयोंसे भर देनेके प्रयत्नमें यह मेरा पहला कदम है। सभामें एकमतसे यह प्रस्ताव पास हुआ कि दोनों स्टीमरोंके मुसाफिरोंको और मुझे जहाजसे उतरने न दिया जाय। नेटालकी सरकार उन्हें न रोके या न रोक सके तो अपनी जो कमेटी बनाई गई है

वह कानूनको अपने हाथमें ले ले और अपने ही बलसे हिंदुस्तानियोंको उतरनेसे रोके। दोनों स्टीमर एक ही दिन नेटालके बंदर डर्बन पहुंचे।

पाठकोंको याद होगा कि १८९६ ई० में हिंदुस्तानमें प्लेगके प्रथम दर्शन हुए। नेटालकी सरकारके पास हमें पीछे लौटानेका कोई कानून-संगत साधन तो था ही नहीं, प्रवेश प्रतिबंधक कानून तबतक नहीं बना था। नेटाल सरकारकी सारी हमदर्दी तो ऊपर लिखी हुई कमेटीकी तरफ ही थी। उसके एक मंत्री स्व० मि० एस्कंब उसके काममें पूरा हिस्सा ले रहे थे। उसको भड़का भी वही रहे थे। सभी बंदरगाहोंमें यह नियम है कि किसी भी जहाजमें छूतके रोगकी शिकायत हो या वह ऐसे बंदरगाहसे होकर आ रहा हो जहां कोई छूतवाला रोग फैला हुआ हो तो वह इतने दिनोंतक 'क्वारंटाइन'में रखा जाय यानी उस जहाजके साथ संसर्ग बंद रखा जाय और मुसाफिर, माल आदिको उस अवधितक उतारनेकी मनाही रहे। यह रोक आरोग्य-नियमोंके अंदर और बंदरगाहके डाक्टरकी आज्ञासे ही लगाई जा सकती है। नेटालकी सरकारने इस प्रतिबंधके अधिकारका शुद्ध राजनैतिक उपयोग अर्थात् दुरुपयोग किया और दोनों स्टीमरोंपर कोई भी छूतका रोगी न होनेपर भी दोनोंको २३ दिनतक डर्बनके बंदरगाहके प्रवेशपथमें रोक रखा। इस बीच कमेटीका काम चलता रहा। दादा अब्दुल्ला 'कोलैंड'के मालिक और 'नादरी' के एजेंट थे। कमेटीने उन्हें खूब धमकाया। जहाजोंको लौटा दें तो लाभका लोभ भी दिखाया गया और न लौटानेपर व्यापारको धक्का पहुंचानेका डर भी कितनोंने दिखाया। पर कोठीके हिस्सेदार डरपोक न थे। धमकी देनेवालोंको जवाब दिया—जबतक हमारा सारा कार-बार चौपट न हो जाय, हम बिलकुल बरबाद न हो जायं, हम

लड़ते रहेंगे। पर डरकर इन निर्दोष यात्रियोंको लौटा देनेका पाप हम करनेवाले नहीं। जैसे आपको अपने देशका अभिमान है वैसे ही मान लीजिए कि हमें भी कुछ होना चाहिए।" इस कोठीके जो पुराने वकील मि० एफ० ए० लॉटन थे वह भी हिम्मतवाले और बहादुर थे।

इसी बीच भाग्यवश स्वर्गीय श्री मनसुखलाल हीरालाल नाजर (सूरतके कायस्थ और स्वर्गीय न्यायमूर्ति नानाभाई हरिदासके भानजे) अफ्रीका पहुंचे। मैं उन्हें जानता नहीं था। उनके जानेकी भी मुझे खबर नहीं थी। मुझे यह कहनेकी जरूरत शायद ही हो कि 'नादरी' और 'कोर्लैंड' के यात्रियोंके लानेमें मेरा कुछ भी हाथ नहीं था। उनमें अधिकतर तो दक्षिण अफ्रीकाके पुराने बाशिंदे थे। उनमेंसे भी बहुतेरे ट्रांसवाल जानेके लिए सवार हुए थे। इन मुसाफिरोंके लिए भी कमेटीने धमकीके नोटिस भिजवाये। कप्तानने उन्हें पढ़कर यात्रियों-को सुनाया। उनमें साफ लिखा हुआ था——"नेटालके गोरे बहुत उत्तेजित हैं और उनके मिजाजकी हालत जानते हुए भी अगर हिंदुस्तानी यात्री उतरनेकी कोशिश करेंगे तो बंदरगाहके ऊपर कमेटीके आदमी खड़े रहेंगे और एक-एक भारतीयको उठाकर समुद्रमें फेंक देंगे।" 'कोर्लैंड'के मुसाफिरों-को इस नोटिसका उलथा मैंने सुनाया। 'नादरी' के मुसाफिरों-को उनमेंसे किसी अंग्रेजी जाननेवालेने उसका आशय सम-झाया। दोनों जहाजोंके यात्रियोंने वापस जानेसे साफ इनकार कर दिया। यह भी जता दिया——"बहुतेरे यात्रियोंको तो ट्रांसवाल जाना है। जो नेटालमें उतरना चाहते हैं उनमें भी बहुतसे नेटालके पुराने निवासी हैं। कुछ भी हो, हरएकको नेटालमें उतरनेका कानूनन् हक है और कमेटीकी धमकीके बावजूद अपना हक साबित करनेके लिए मुसाफिर यहां उतरेंगे ही।"

नेटालकी सरकार भी हारी। अनुचित प्रतिबंध कितने दिन चल सकता है ? २३ दिन तो हो गए, पर दादा अब्दुल्ला न डिगे और न हिंदुस्तानी यात्री ही। अतः २३ दिन बाद रोक हटा ली गई और जहाजोंको अंदर आनेकी इजाजत मिली। इस बीच मि० एस्कंबने उत्तेजित कमेटीको ठंडा कर दिया। उन्होंने सभा करके कहा—"डर्बनमें यूरोपियनोंने खूब एकता और हिम्मत दिखाई। आप लोगोंसे जितना हो सकता था उतना आपने किया, सरकारने भी आपकी सहायता की। इन लोगोंको २३ दिनतक जहाजसे उतरने नहीं दिया। अपनी भावना और अपने जोशका जो दृश्य आपने दिखाया है वह काफी है। इसका गहरा असर बड़ी सरकारपर पड़ेगा। आपके कामसे नेटाल सरकारका रास्ता आसान हो गया। अब आपने बल-प्रयोग करके एक भी हिंदुस्तानी मुसाफिरको उतरनेसे रोका तो अपना काम आप अपने हाथों बिगाड़ देंगे। नेटाल सरकारकी स्थिति भी कठिन हो जायगी और ऐसा करके भी इन लोगोंको रोकनेमें आप सफल नहीं होंगे। मुसाफिरोंका तो कोई दोष है ही नहीं। उनमें स्त्रियां और बच्चे भी हैं। बम्बईमें जब वे जहाजपर सवार हुए उस वक्त आपकी मनोदशाकी उन्हें खबर भी नहीं थी। इसलिए अब आप मेरी सलाह मानकर अपने-अपने घर चले जाएं और इन लोगोंके आनेमें तनिक भी रुकावट न डालें। पर मैं आप लोगोंको यह वचन देता हूं कि इसके बाद आनेवालोंको रोकनेका अधिकार नेटालकी सरकार धारा सभासे प्राप्त करेगी।" यह तो भाषणका सारमात्र है। मि० एस्कंबके श्रोता निराश तो हुए, पर नेटालके गोरोंपर उनका बहुत भारी प्रभाव था। अतः उनके कहनेसे वे बिखर गए। दोनों जहाज बंदरगाहके अंदर आये।

मेरे बारेमें उन्होंने कहला भेजा—"आप दिन रहते जहाज-

से न उतरें। शामको मैं (मि० एस्कंब) बंदरगाहके सुपरिंटेंडेंटको आपको लेनेके लिए भेजूंगा। उनके साथ आप घर जायं। आपके घरवाले जब चाहें उतर सकते हैं।" यह कोई जाब्तेका हुक्म नहीं था, बल्कि कप्तानके लिए मुझे उतरने न देनेकी सलाह थी और मेरे सिरपर जो खतरा झूल रहा था उसकी चेतावनी थी। कप्तान मुझे जबर्दस्ती तो रोक नहीं सकता था। पर मैंने सोचा कि मुझे यह सलाह मान लेनी चाहिए। बाल-बच्चोंको मैंने घर न भेजकर डर्बनके प्रसिद्ध व्यापारी और मेरे पुराने मवक्किल तथा मित्र पारसी रुस्तमजीके यहां भेजा और उनसे कहा कि वहीं तुम लोगोंसे मिलूंगा। मुसाफिर वगैरह उतर गए। इतनेमें मि० लॉटन, दादा अब्दुल्लाके वकील और मेरे मित्र, आये और मुझसे मिले। उन्होंने पूछा—"आप अबतक क्यों नहीं उतरे?" मैंने मि० एस्कंबके पत्रकी बात कही। उन्होंने कहा—"मुझे तो शामतक इंतजार करना और फिर चोर या अपराधीकी तरह शहरमें दाखिल होना पसंद नहीं आता। आपको कोई डर न हो तो अभी मेरे साथ चलें और हम इस तरह पैदल शहरसे होकर चले जायंगे कि जैसे कुछ हुआ ही न हो।" मैंने जवाब दिया—"मैं यह नहीं मानता कि मुझे किसी तरहका डर है। मि० एस्कंबकी सूचनाका आदर करूं या नहीं, यही सवाल मेरे सामने है। इसमें कप्तानकी कुछ जिम्मेदारी है या नहीं, इसको भी थोड़ा सोच लेना चाहिए।" मि० लॉटनने हंसकर कहा—"मि० एस्कंबने ऐसा क्या किया है कि उनकी सूचनापर आपको तनिक भी ध्यान देना ही पड़े। फिर इस सूचनामें शुद्ध भलमनसी ही है, कोई छल-कपट नहीं है, यह माननेके लिए भी आपके पास क्या आधार है? शहरमें क्या हुआ है और उसमें इन भाईसाहबका कितना हाथ है, यह जितना आप जानते हैं उससे ज्यादा मैं जानता हूं। (मैंने

बीचमें सिर हिलाया।) फिर यह मानलें कि उन्होंने अच्छे इरादेसे सलाह दी है तो भी उसपर अमल करनेमें आपकी प्रतिष्ठाकी हानि है, यह मैं पक्का मानता हूं। इसलिए मेरी तो सलाह ह कि आप तैयार हों तो अभी चलें। कप्तान तो अपना ही आदमी है। इसलिए उसकी जिम्मेदारी अपनी जिम्मेदारी है। उससे पूछनेवाले केवल दादा अब्दुल्ला हो सकते हैं। वह क्या सोचेंगे, यह मैं जानता हूं; क्योंकि इस लड़ाईमें उन्होंने खूब बहादुरी दिखाई है।" मैंने कहा--"तो फिर चलें। मुझे कोई तैयारी नहीं करनी है। सिर्फ पगड़ी सिरपर धर लेना बाकी है। कप्तानको बताऊं और चल दें।" हमने कप्तानकी इजाजत ले ली।

मि० लॉटन डर्बनके बहुत पुराने और प्रसिद्ध वकील थे। हिंदुस्तान लौटनेके पहले ही उनके साथ मेरा बहुत निकटका संबंध स्थापित हो चुका था। अपने टेढ़े मुकदमोंमें मैं उनकी ही मदद लेता और अकसर उन्हें बड़ा (सीनियर) वकील भी बनाता था। वह खुद हिम्मतवाले आदमी थे। कद ऊंचा-पूरा था।

हमारा रास्ता डर्बनके बड़े-से-बड़े महल्लेसे होकर जाता था। हम जब रवाना हुए तब शामके चार-साढ़े चार बजे होंगे। आकाशमें कुछ योंहीस बादल थे, पर सूरजको छिपा देनेके लिए काफीथे। सेठ रुस्तमजीके मकान का पैदल जानेपर कम-से-कम एक घंटेका रास्ता था। ज्योंही हम जहाजसे उतरे, कुछ लड़कोंने हमें देख लिया। उनमें कोई बड़ी उम्रवाला तो था ही नहीं। आमतौरसे बंदरगाहपर जितने आदमी रहा करते हैं उतने ही आदमी दिखाई देते थे। मेरी जैसी पगड़ी पहननेवाला अकेला मैं ही था। इससे लड़कोंने मुझे तुरंत पहचान लिया और 'गांधी' 'गांधी', 'इसको मारो,' 'घेरो' चिल्लाते हुए हमारी ओर बढ़ आए। कुछ लड़के ढेले भी

फेंकने लगे। कुछ अधेड़ उम्रवाले गोरे भी उनमें शामिल हो गए। धीरे-धीरे हल्ला बढ़ा। मि० लॉटनने देखा कि पैदल जानेमें खतरा लेना है। अतः उन्होंने 'रिक्शा' बुलाया। 'रिक्शा'के मानी हैं आदमीके खींचनेकी छोटी-सी गाड़ी। मैं तो कभी 'रिक्शा'में बैठा ही न था, कारण कि जिस सवारी-को आदमी खींचता हो उसमें बैठनेसे मुझे सख्त नफरत थी। मगर आज मुझे जान पड़ा कि रिक्शामें बैठ जाना मेरा धर्म है। पर भगवान् जिसको बचाना चाहते हों वह गिरना चाहे तो भी नहीं गिर सकता, इसका तो मुझे अपने जीवनके पांच-सात कठिन प्रसंगोंमें प्रत्यक्ष अनुभव हो चुका है। मैं नहीं गिरा, इसका तनिक भी यश मैं नहीं ले सकता। रिक्शा खींचनेवाले हबशी ही होते हैं। छोकरों और बड़ी उम्रवाले गोरोंने भी रिक्शावालेको धमकाया कि तुमने इस आदमीको रिक्शामें बैठाया तो हम तुम्हें पीटेंगे और तुम्हारा रिक्शा भी तोड़ डालेंगे। अतः रिक्शावाला 'खा' अर्थात् ना कहकर चलता बना और मेरा रिक्शामें बैठना रह गया।

अब पैदल चलकर जानेके सिवा हमारे पास दूसरा रास्ता नहीं रहा। हमारे पीछे खासा मजमा जुट गया। ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते, मजमा भी बढ़ता जाता था। मुख्य रास्ते वैस्ट स्ट्रीटमें पहुंचनेपर तो छोटे-बड़े सैकड़ों लोग उसमें शामिल हो गये। एक तगड़े आदमीने मि० लॉटनको दोनों हाथोंमें पकड़कर मुझसे अलग कर दिया। अतः अब उनकी स्थिति ऐसी न रही कि मेरे पास पहुंच सकें। मुझपर गालियों, पत्थरों और जो कुछ भी उनके हाथमें आया उस सब की वर्षा होने लगी। मेरी पगड़ी सिरसे गिरा दी गई। इतनेमें एक मोटे-तगड़े आदमीने पहुंचकर मुझको थप्पड़ जमाया और फिर लात भी मारी। मैं चक्कर खाकर गिरही रहा था कि इतनेमें रास्तेके पासके एक मकानके आंगनकी रेलिंग मेरे

हाथमें आ गई। मैंने जरा दम लिया और चक्कर दूर होनेपर आगे बढ़ा। जीता घर पहुंचनेकी आशा लगभग छोड़ चुका था; पर इतना मुझे अच्छी तरह याद है कि उस वक्त भी मेरा दिल मारनेवालोंका रत्ती भर भी दोष नहीं देखता था।

इस तरह मैं अपना रास्ता तै कर रहा था कि इतनेमें डर्बनके पुलिस सुपरिंटेंडेंटकी पत्नी सामनेकी ओरसे आ निकलीं। हम एक-दूसरेको अच्छी तरह पहचानते थे। यह महिला बहादुर थीं। यद्यपि आकाशमें बादल घिर रहे थे और सूरज भी डूबनेको था, फिर भी इस महिलाने अपनी छतरी मेरी रक्षाके लिए खोल दी और मेरी बगलमें होकर चलने लगीं। स्त्रीका अपमान और वह भी डर्बनके बहुत पुराने और लोक-प्रिय कप्तानकी पत्नीका यह गोरे नहीं कर सकते थे। उन्हें चोट भी नहीं पहुंचा सकते थे। अतः उनको बचाते हुए मुझपर जो मार पड़ती वह बहुत हल्की होती। इस बीच पुलिस सुप-रिंटेंडेंटको इस हमलेकी खबर मिली और उन्होंने पुलिसका एक दस्ता भेज दिया, जिसने मुझको घेर लिया। हमारा रास्ता पुलिस चौकीकी बगलसे होकर जाता था। वहां पहुंचे तो देखा कि पुलिस सुपरिंटेंडेंट खड़े हमारी राह देख रहे हैं। उन्होंने मुझे चौकीमें ही चले जानेकी सलाह दी। मैंने उन्हें धन्यवाद दिया और उसमें आश्रय लेनेसे इनकार कर दिया। मैंने कहा कि मुझे तो अपने ठिकाने पर ही पहुंचना है। मुझे डर्बनके लोगोंकी न्यायवृत्ति और अपने सत्यपर विश्वास है। आपने जो मेरे रक्षार्थ पुलिस भेजी उसके लिए अहसानमंद हूं। इसके सिवा मिसेज अलेक्जेंडरने भी मेरी रक्षा की है।"

मैं सही-सलामत रुस्तमजीके यहां पहुंचा। वहां पहुंचते-पहुंचते लगभग शाम हो गई थी। 'कोलैंड' के डाक्टर दाजी बरजोर रुस्तमजी सेठके यहां मौजूद थे। उन्होंने मेरी चोटोंका इलाज शुरू किया। चोटें देखीं। वे अधिक नहीं थीं।

एक भीतरी बंद मुंहकी चोट बहुत दुख रही थी, पर अभी मुझे शांति पानेका अधिकार नहीं मिला था। रुस्तमजी सेठके घरके सामने हजारों आदमी जमा हो गए। रात हुई तो बहुत-से लफंगे लोग भी उस मजमेमें मिल गए। उन लोगोंने रुस्तमजी सेठको कहला भेजा कि गांधीको हमारे हवाले नहीं कर दोगे तो उसके साथ ही तुम्हें और तुम्हारी दुकानको भी जलाकर खाक कर देंगे। रुस्तमजी ऐसे भारतीय न थे जो किसीके डरानेसे डर जाते। सुपरिंटेंडेंट अलेक्जेंडरको इसकी खबर मिली तो वह अपनी खुफिया पुलिसके साथ आकर चुपकेसे इस मजमेमें घुस गए। एक चौकी मंगाकर वह उसके ऊपर खड़े हो गए। यों लोगोंसे बातचीत करनेके बहाने रुस्तमजीके मकानके दरवाजेपर कब्जा कर लिया, जिससे कोई उसको तोड़कर घुस न सके। खुफिया पुलिसके आदमियोंको उन्होंने पहले ही मुनासिब जगहों पर रख दिया था। पहुंचनेके साथ ही उन्होंने अपने एक अहलकारको कह दिया था कि हिंदुस्तानीकी पोशाक पहन और चेहरा रंगकर हिंदुस्तानी व्यापारीका भेष बना ले और मुझसे मिलकर कहे——"आप अपने मित्रकी, उनके मेहमानोंकी, उनके मालकी और अपने बालबच्चोंकी रक्षा चाहते हों तो हिंदुस्तानी सिपाहीका पहनावा पहनकर रुस्तमजीके गोदामसे निकलकर मजमेमेंसे ही मेरे आदमीके साथ चुपकेसे निकल जाइए और पुलिस चौकीपर पहुंच जाइए। इस गलीके मोड़पर आपके लिए गाड़ी तैयार खड़ी है। आपको और दूसरोंको बचानेका मेरे पास बस यही एक रास्ता है। मजमा इतना उत्तेजित है कि उसे रोक रखनेके लिए मेरे पास कोई साधन नहीं। आप जल्दी न करेंगे तो यह मकान जमींदोज कर दिया जायगा। यही नहीं, जानमालका कितना नुकसान होगा, इसका अंदाजा भी मैं नहीं कर सकता।"

मैं स्थितिको तुरंत समझ गया। मैंने उसी क्षण सिपाहीकी पोशाक मांगी और उसे पहनकर निकल गया और उक्त पुलिस कर्मचारीके साथ सही-सलामत चौकीपर पहुंच गया। इस बीच श्री अलेक्जैंडर अवसरके अनुरूप गीतों और भाषणसे भीड़को रिझा रहे थे। जब उन्हें यह इशारा मिल गया कि मैं पुलिस चौकीमें पहुंच गया तब उन्होंने अपना सच्चा भाषण आरंभ किया :

"आप लोग क्या चाहते हैं ?"

"हम गांधीको चाहते हैं।"

"उसको क्या करना चाहते हैं ?"

"उसे हम जलाएंगे।"

"उसने आपका क्या बिगाड़ा है ?"

"उसने हमारे बारेमें हिंदुस्तानमें बहुतसी झूठी बातें कही हैं और नेटालमें हजारों हिंदुस्तानियोंको घुसा देना चाहता है।"

"पर वह बाहर न निकले तो क्या कीजिएगा ?"

"तो हम इस मकानमें आग लगा देंगे।"

"इसमें तो उसके बाल-बच्चे हैं। दूसरे स्त्री-पुरुष हैं। स्त्रियों और बच्चोंको आगमें भूनते आपको शर्म नहीं आती ?"

"यह तो आपका दोष है। आप हमें लाचार करते हैं तो हम क्या करें ? हम तो और किसीको कष्ट देना नहीं चाहते। गांधीको सौंप दीजिए। बस हमें और कुछ नहीं चाहिए। आप अपराधीको न सौंपें और उसे पकड़नेमें दूसरोंको नुकसान पहुंचे तो इसका दोष हमारे सिर डालना कहांका न्याय है ?"

सुपरिंटेंडेंटने हलकी हंसी हंसकर उन लोगोंको यह खबर दी कि गांधी तो उन लोगोंके बीचसे होकर सही-सलामत दूसरी जगह पहुंच गया ! लोग खिलखिलाकर हंस पड़े और 'झूठ-झूठ' चिल्ला उठे।

सुपरिंटेंडेंट बोले--"आप अपने बूढ़े कप्तानकी बातका विश्वास न करते हों तो जिन तीन या चार आदमियोंको पसंद करें उनकी कमेटी चुन दें। दूसरे सब लोग यह वचन दें कि कोई मकानके अंदर न घुसेगा और अगर कमेटी गांधीको घरके भीतर न पा सके तो सब लोग शांत होकर घर लौट जाएंगे। आप लोगोंने जोशमें आकर पुलिसके अधिकारको आज नहीं माना, इसमें बदनामी पुलिसकी नहीं, आपकी ही है। इसीसे पुलिसने आपके साथ चाल चली। आपके शिकारको आपके बीचसे ही निकाल लेगई और आप हार गए, इसमें पुलिसको तो आप दोष दे ही नहीं सकते। जिस पुलिस को आपने ही नियुक्त किया है उसने अपने कर्तव्यका पालन किया है।"

यह सारी बातचीत सुपरिंटेंडेंटने इतनी मिठास, इतने हास्य और इतनी दृढ़ताके साथ की कि जो वचन वह मांग रहे थे लोगोंने दे दिया। कमेटी बनी। उसने पारसी रुस्तमजीके मकानका कोना-कोना छान डाला और लोगोंसे कहा--"सुपरिंटेंडेंटकी बात सच है। उसने हमें हरा दिया।" लोग निराश तो हुए; पर अपने वचनपर स्थिर रहे, कोई नुकसान नहीं किया और अपने-अपने घर चले गए। यह दिन १८९७ ई० की १३ वीं जनवरीका था।

इसी दिन सवेरे ज्योंही मुसाफिरोंपर लगी हुई रोक हटी, डर्बनके एक अखबारका रिपोर्टर मेरे पास आया और मुझसे सारी बातें पूछ गया था। मुझपर लगाये गए इलजामोंकी पूरी सफाई दे देना बहुत ही आसान था। मैंने मिसालें देकर दिखा दिया था कि मैंने तिलभर भी अत्युक्ति नहीं की है। जो कुछ मैंने किया है वह मेरा धर्म था। वह मैं न करूं तो मनुष्य कहलानेका भी अधिकारी न होऊंगा। यह सारी कैफियत दूसरे दिन पूरी-की-पूरी प्रकाशित हुई और समझदार

यूरोपियनोंने अपना दोष स्वीकार किया। अखबारोंने नेटालकी परिस्थितिसे सहानुभूति प्रकट की, पर साथ ही मेरे कार्यका पूरा समर्थन किया। इससे मेरी प्रतिष्ठा बढ़ी और साथ-साथ हिंदुस्तानी कौमकी भी। गोरोंपर यह बात साबित हो गई कि गरीब हिंदुस्तानी भी नामर्द नहीं हैं, और व्यापारी भी अपने व्यापारकी परवा किए बिना स्वाभिमान और स्वदेशके लिए लड़ सकते हैं।

इससे एक ओर यद्यपि जातिको दुःख सहन करना पड़ा और स्वयं दादा अब्दुल्लाको भारी नुकसान उठाना पड़ा, फिर भी मैं मानता हूं कि इसके अंतमें तो लाभ ही हुआ। जातिको अपनी शक्तिका कुछ अंदाजा मिला और उसका आत्मविश्वास बढ़ा। मैं भी कुछ अधिक कामका बना, बहुमूल्य अनुभव प्राप्त किया। उस दिनका विचार करता हूं तो देखता हूं कि ईश्वर मुझे सत्याग्रहके लिए तैयार कर रहा था।

नेटालकी घटनाओंका असर विलायतमें भी हुआ। उपनिवेश-सचिव श्री चेंबरलेनने नेटालकी सरकारको तार दिया कि जिन लोगोंने मुझपर हमला किया उनपर मुकदमा चलाया जाना चाहिए और मुझको न्याय मिलना चाहिए।

मि० एस्कंब न्याय-विभागके प्रधान एटर्नी-जनरल थे। उन्होंने मुझे बुलाया और मि० चेंबरलेनके तारकी बात कही। मुझे जो चोट पहुंची थी उसके लिए दुःख प्रकट किया और मैं बच गया इसपर प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने कहा—"मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आपको या आपकी कौमके किसी आदमीको कष्ट पहुंचे, यह मैं तनिक भी नहीं चाहता था। आपको कष्ट पहुंचनेका मुझे डर था, इसीसे रातमें जहाजसे उतरनेके लिए संदेसा भेजा; पर आपको मेरा सुझाव पसंद नहीं आया। मि० लॉटनकी सलाह आपने मानी

इसके लिए मैं आपको तनिक भी दोष नहीं देना चाहता। आपको जो ठीक जान पड़े उसे करनेका आपको पूरा अधिकार था। मि० चेंबरलेनकी मांगके साथ नेटालकी सरकार पूरी तरह सहमत है। हम चाहते हैं कि अपराधियोंको दंड मिले। हमला करनेवालोंमेंसे आप किसीको पहचान सकते हैं?" मैंने जवाब दिया—"मुमकिन है, एक-दो आदमियोंको मैं पहचान सकूं; पर यह बात आगे बढ़े इसके पहले ही मुझे आपको यह बता देना चाहिए कि मैंने अपने दिलमें यह निश्चय कर रखा है कि अपने ऊपर हुए हमलेके बारेमें मैं किसीके खिलाफ अदालतमें फरियाद नहीं करूँगा। हमला करनेवालोंका तो मैं कोई दोष भी नहीं देखता। उन्हें जो कुछ भी खबर मिली वह अपने नेताओंसे मिली। उसकी सचाईकी जांच करने वह थोड़े बैठ सकते हैं? मेरे बारेमें उन्होंने जो कुछ सुना वह सही हो तो वे भड़क उठें और आवेशमें आकर जो न करना चाहिए वह कर बैठें, इसके लिए मैं उन्हें दोष नहीं दे सकता। उत्तेजित जनसमूह इसी रीतिसे न्याय करता आया है। अगर इस विषयमें किसीका दोष है तो उस कमेटीका है जो इस मामलेमें बनाई गई थी, और खुद आपका है और इसलिए नेटालकी सरकारका है। रायटरने चाहे जैसे तार भेजे हों, पर जब आप जानते थे कि मैं खुद यहां आ रहा हूं तब आपका और कमेटीका फर्ज था कि जो अनुमान आपने किए उनके बारेमें पहले मुझसे पूछते और मेरा जवाब सुनते, फिर जो आपको मुनासिब मालूम होता है वह करते। अब मुझपर जो हमला हुआ उसके लिए मैं आपपर या कमेटीपर मुकदमा चला सकूं, ऐसा तो है ही नहीं और यह मुमकिन हो तो भी अदालतके द्वारा न्याय पानेकी इच्छा मुझे नहीं है। नेटालके गोरोंके हककी रक्षाके लिए आपको जो कुछ करना ठीक जान पड़ा वह आपने किया।

यह राजनैतिक विषय हुआ। मुझे भी इसी मैदानमें आपसे लड़ना और आपको और दूसरे गोरोंको यह दिखाना है कि भारतीय राष्ट्र ब्रिटिश साम्राज्यके एक बड़े भागके रूपमें, गोरोंको नुकसान पहुंचाए बिना, केवल अपने सम्मान और अधिकारकी रक्षा करना चाहता है।"

मि० एस्कंब बोले--"आपने जो कुछ कहा वह मैंने समझ लिया और वह मुझे पसंद भी आया। आपसे यह सुननेकी मैं आशा नहीं रखता था कि आप मुकदमा चलाना नहीं चाहते, और आप मुकदमा चलाना चाहते तो मैं जरा भी नाखुश न होता; पर जब आपने फरियाद न करनेका विचार प्रकट कर दिया है तब मुझे यह कहनेमें हिचक नहीं कि आपने उचित निश्चय किया है। इतना ही नहीं, अपने इस संयमसे आप अपनी कौमकी विशेष सेवा करेंगे। साथ ही मुझे यह भी कबूल करना चाहिए कि अपने इस निश्चयसे आप नेटाल सरकारको विषम स्थितिसे बचा लेंगे। आप चाहें तो हम धर-पकड़ वगैरह करेंगे, पर आपको यह बतानेकी जरूरत नहीं है कि यह सब करनेसे गोरोंका क्रोध फिर उमड़ेगा, अनेक प्रकारकी टीकाएं होंगी और ये बातें किसी भी सरकारको नहीं रुच सकतीं। पर अगर आपने अंतिम निश्चय कर लिया हो तो आप अपना विचार जतानेवाली एक चिट्ठी मुझको लिख दें। हमारी बातचीतका खुलासा भेजकर ही हम मि० चेंबरलेनके सामने अपनी सरकारका बचाव नहीं कर सकते। मुझे तो आपके पत्रके भावार्थका ही तार करना होगा। पर मैं यह नहीं कहता कि यह चिट्ठी आप मुझे अभी लिखकर देदें। अपने मित्रोंके साथ आप मशविरा करलें। मि० लॉटनकी भी सलाह लेलें। इसके बाद भी अगर आप अपनी रायपर कायम रहें तो मुझे लिखें। पर इतना मुझे कह देना चाहिए कि अपनी चिट्ठीमें फरियाद न करनेकी जिम्मेदारी आपको साफ तौरपर अपने

ही ऊपर लेनी होगी। तभी मैं उसका उपयोग कर सकूंगा।" मैंने कहा--"इस बारेमें मैंने किसीके साथ मशविरा नहीं किया है। आपने इस बातके लिए मुझे बुलाया है, यह भी मैं नहीं जानता था। और इस विषयमें किसीसे सलाह-मशविरा करनेकी इच्छा भी नहीं है। जब मि० लॉटनके साथ चल देनेका निश्चय किया तभी अपने दिलमें तै कर लिया था कि मुझे कोई चोट पहुंचे तो इसके लिए दिलमें बुरा नहीं मानूंगा। अतः पीछे फरियाद करनेका तो सवाल ही नहीं हो सकता। मेरे लिए तो यह धार्मिक प्रश्न है और जैसा कि आप कहते हैं, मैं यह मानता भी हूं कि अपने इस संयमसे मैं अपनी कौमकी सेवा करूँगा। यही नहीं, खुद मेरा भी इससे लाभ ही है। इसलिए मैं अपने ऊपर सारी जिम्मेदारी लेकर यहीं आपको पत्र लिख देना चाहता हूं।" और मैंने वहीं उनसे सादा कागज लेकर चिट्ठी लिख दी।

: ८ :

भारतीयोंने क्या किया ?—३

विलायतसे संबंध

पिछले प्रकरणोंमें पाठकोंने देखा होगा कि भारतीय समाजने अपनी स्थिति सुधारनेके लिए विशेष और सामान्य रूपसे कितना प्रयत्न किया और उससे अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाई। दक्षिण अफ्रीकामें जैसे उसने अपने सभी अंगोंका विकास करनेके लिए यथाशक्ति प्रयत्न किया उसी तरह हिंदुस्तान और विलायतसे जितनी मदद मिल सकती हो उतनी पानेकी कोशिश भी की। हिंदुस्तानके बारेमें तो थोड़ा पहले ही लिख चुका हूं। विलायतसे मदद पानेके लिए क्या-क्या किया

गया, अब इसका उल्लेख आवश्यक है। कांग्रेसको ब्रिटिश कमेटीके साथ तो संबंध जोड़ना ही चाहिए था। इसलिए हर हफ़्ते हिंदके दादा (दादाभाई नवरोजी) और कमेटीके अध्यक्ष सर विलियम वेडरबर्नको पूरे विवरणकी चिट्ठी लिखी जाती और जब-जब आवेदन-पत्रकी नकल वगैरह भेजनेकी जरूरत होती तब-तब डाक-खर्च वगैरह और कमेटीके साधारण खर्चमें सहायताके रूपमें कम-से-कम १० पौंड भेज दिए जाते।

यहीं दादाभाईका एक पवित्र संस्मरण लिख दूं। वह इस कमेटीके अध्यक्ष न थे, फिर भी हमें यही जान पड़ा कि रुपये उन्हींकी मार्फत भेजना हमें शोभा देगा, वह भले ही उन्हें हमारी ओरसे अध्यक्षको दे दिया करें। पर पहली ही बार जो रकम हमने भेजी, दादाभाईने उसे लौटा दिया और लिखा कि रुपये भेजने आदि कमेटीसे संबंध रखनेवाले काम आपको सर विलियम वेडरबर्नकी मार्फत ही करने चाहिए। मेरी अपनी (दादाभाईकी) मदद तो रहेगी ही। पर कमेटीकी प्रतिष्ठा सर विलियम वेडरबर्नकी मार्फत काम लेनेमें ही बढ़ेगी। मैंने यह भी देखा कि दादाभाई इतने बूढ़े होनेपर भी अपने पत्रव्यवहारमें बहुत ही नियमित थे। उन्हें कुछ लिखना न हो तो भी पत्रकी पहुंच तो लौटती डाकसे आ ही जाती और उसमें आश्वासनके दो शब्द तो होते ही। ऐसी चिट्ठियां भी खुद ही लिखते और इन पहुंचवाली चिट्ठियोंकी नकल भी अपनी टिशू पेपर बुकमें छाप लेते।

एक पिछले प्रकरणमें मैं यह भी दिखा चुका हूं कि यद्यपि कांग्रेसका नाम आदि हमने रखा था, पर अपने मसलेको एक पक्ष-का प्रश्न बना देनेकी बात हमने कभी सोची ही नहीं थी। इससे दादाभाईकी जानकारीमें दूसरे पक्षोंके साथ भी हमारा पत्र-व्यवहार चलता रहता। इसमें दो आदमी मुख्य थे: एक सर मंचेरजी भावनगरी और दूसरे सर विलियम विलसन हंटर। सर

मंचेरजी भावनगरी उन दिनों पार्लमेंटके सदस्य थे। इनको अच्छी मदद मिलती और वह सदा उपयोगी सूचनाएं भी दिया करते; पर दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नके महत्त्वको भारतीयोंसे भी पहले समझने और कीमती मदद देनेवाले थे सर विलियम विलसन हंटर। ये 'टाइम्स'के भारतीय विभागके सम्पादक थे। उनको जब हमारा पहला पत्र मिला तभीसे वह दक्षिण अफ्रीकाकी स्थितिका सच्चा रूप ब्रिटिश जनताके सामने रखने लगे और जहां-जहां ठीक जान पड़ा वहां-वहां निजी पत्र भी लिखे। जब कोई जरूरी मसला पेश होता तब उनकी डाक लगभग हर हफ्ते आती। अपने पहले ही उत्तरमें उन्होंने लिखा--"आपने जो स्थिति जताई है उसे पढ़कर मुझे दुःख हुआ है। अपना काम आप विनयसे, शांतिसे और अत्युक्तिसे बचते हुए कर रहे हैं। मेरी हमदर्दी इस मामलेमें पूरे तौरपर आपकी तरफ है और आपको न्याय मिले इसके लिए जो कुछ मुझसे हो सके वह निजी और सार्वजनिक रूपमें भी करना चाहता हूं। मुझे निश्चय है कि इस मामलेमें हम एक इंच भी पीछे नहीं हट सकते। आपकी मांग ऐसी है कि निष्पक्ष मनुष्य उसमें काटछांट करनेकी बात कह ही नहीं सकता।" लगभग यही शब्द 'टाइम्स'में इस विषयपर उन्होंने जो पहला लेख लिखा उसमें भी लिखे। यही स्थिति उन्होंने अंततक कायम रखी। लेडी हंटरने एक पत्रमें लिखा था कि जीवनके आखिरी दिनोंमें भी वह भारतीय प्रश्नपर एक लेखमाला लिखनेकी बात सोच रहे थे और उसका खाका तैयार कर लिया था।

मनसुखलाल नाजरका नाम पिछले प्रकरणमें दे चुका हूं। अपने प्रश्नको अधिक अच्छी तरह समझानेके लिए वे कौमकी तरफसे विलायत भेजे गए थे। उन्हें दोनों पक्षोंसे मिलकर काम करनेकी हिदायत की गई थी और विलायतमें

रहनेके दिनोंमें वह स्व० सर विलियम हंटर, सर मंचेरजी भावनगरी और कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीके साथ बराबर मिलते रहते थे। वैसेही वे भारतीय सिविल सर्विसके पेंशनर कर्मचारियों, भारतीय सचिवके दफ्तर और उपनिवेश विभाग आदिसे भी सम्पर्क रखते थे। इस प्रकार एक भी दिशा, जहां हमारी पहुंच हो सकती थी, कोशिशसे खाली नहीं रखी। इस सबका फल इतना तो पक्के तौरसे हुआ कि प्रवासी भारतीयोंको स्थिति बड़ी सरकारके लिए एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न बन गई और उसका भला-बुरा असर दूसरे उपनिवेशोंपर भी पड़ा। यानी जहां-जहां हिंदुस्तानी बसते थे वहां-वहां हिंदुस्तानी और गोरे दोनों जाग्रत हो गए।

: ९ :

बोअर-युद्ध

जिन पाठकोंने पिछले प्रकरणोंको ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा उन्हें इसकी कल्पना हो गई होगी कि बोअर-युद्धके समय दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी क्या स्थिति थी। तबतक हुए प्रयत्नोंकी चर्चा भी की जा चुकी है।

१८९९ ई० में डाक्टर जेमिसनने, खानोंके मालिकोंके साथ हुए गुप्त परामर्शके अनुसार, जोहान्सबर्गपर धावा किया। दोनोंकी आशा तो यह थी कि जोहान्सबर्गपर कब्जा हो जानेके बाद ही बोअर सरकारको उनके धावेकी खबर होगी; पर यह हिसाब लगानेमें डा० जेमिसन और उनके दोस्तोंने भारी भूल की। उनका दूसरा अंदाजा यह था कि उनकी गुप्त योजना प्रकट हो भी गई तो रोडेशियामें सिखाये हुए निशानबाजोंके सामने रण-शिक्षासे कोरे बोअर किसान क्या कर

सकेंगे; उन्होंने यह भी सोच रखा था कि जोहान्सबर्गकी आबादीका बहुत बड़ा भाग तो हमारा स्वागत ही करेगा। पर इस भले डाक्टरका यह हिसाब भी गलत रहा। राष्ट्रपति क्रूगरको सारी योजनाकी खबर वक्तसे मिल गई थी। उन्होंने अतिशय शांति और कुशलताके साथ गुप्त रीतिसे डाक्टर जेमिसनका सामना करनेकी तैयारी कर ली और साथ-साथ जो लोग साजिशमें उनके साथी थे उन्हें गिरफ्तार कर लेनेकी तैयारी भी कर रखी। अतः डाक्टर जेमिसन जोहान्सबर्गके पास पहुंच पाएं इसके पहले ही बोअर सेनाने गोलियोंकी बौछारसे उनका स्वागत किया। इस सेनाके सामने डाक्टर जेमिसनका जत्था टिक नहीं सकता था। जोहान्सबर्गमें कोई बगावत न कर सके, इसका भी पूरा प्रबंध कर लिया गया था। इससे वहां किसीने सिर उठानेका साहस नहीं किया। राष्ट्रपति क्रूगरकी सरगर्मीसे जोहान्सबर्गके करोड़पति अवाक् रह गये। इतनी बढ़िया तैयारी कर रखनेका अति सुंदर फल यह हुआ कि इस संकटका सामना करनेमें सरकारका कम-से-कम पैसा खर्च हुआ और जानका नुकसान भी कम-से-कम हुआ।

डा० जेमिसन और उनके दोस्त सोनेकी खानोंके मालिक पकड़े गए। उनपर तुरंत मुकदमा चलाया गया। कितनोंको फांसीकी सजा हुई। इनमें अधिकांश तो करोड़पति ही थे। बड़ी सरकार इसमें क्या कर सकती थी? दिन-दहाड़ेका हमला था। राष्ट्रपति क्रूगरका महत्व एकबारगी बढ़ गया। उपनिवेश-सचिव मि० चेंबरलेनने दीनवचन-युक्त तार भेजा और राष्ट्रपति क्रूगरके दयाभावको जगाकर उन बड़े आदमियोंके लिए दयाकी भीख मांगी। राष्ट्रपति क्रूगर अपना दाव अच्छी तरह खेलना जानते थे। दक्षिण अफ्रीकामें कोई शक्ति उनकी राजशक्ति छीन सकती है, इसका डर उन्हें था ही नहीं।

डाक्टर जेमिसन और उनके मित्रोंकी साजिश उनकी गणनाके अनुसार तो सुयोजित वस्तु थी, पर राष्ट्रपति क्रूगरके हिसाबसे वह बालबुद्धिका कार्य थी । इसलिए उन्होंने मि० चेंबरलेनकी विनती स्वीकार कर ली और किसीको भी फांसीकी सजा नहीं दी । इतना ही नहीं, सभी अपराधियोंको क्षमा देकर छोड़ दिया !

पर उछला हुआ अन्न कबतक पेटमें रह सकता है ? राष्ट्रपति क्रूगर भी जानते थे कि डा० जेमिसनका हमला तो गंभीर रोगका छोटासा चिन्ह-मात्र था । जोहान्सबर्गके करोड़पति अपनी बेइज्जतीको किसी तरह भी धो डालनेका प्रयत्न न करें, यह हो नहीं सकता था । फिर जिन सुधारोंके लिए डा० जेमिसनके हमलेकी योजना की गई थी उनमेंसे तो एक भी नहीं हो पाया था । इसलिए करोड़पति मुंह बंद किये बैठे रहें यह मुमकिन नहीं था । उनकी मांगोंके साथ दक्षिण अफ्रीकामें ब्रिटिश साम्राज्यके प्रधान प्रतिनिधि (हाई कमिश्नर) लार्ड मिल्नरकी पूरी हमदर्दी थी । वैसे ही मि० चेंबरलेनने भी ट्रांसवालके विद्रोहियोंके प्रति राष्ट्रपति क्रूगरकी महती उदारताकी सराहना करनेके साथ ही सुधार करनेकी आवश्यकताकी ओर भी उनका ध्यान खींचा था । सभी मानते थे कि बिना तलवार उठाये यह झगड़ा मिटनेवाला नहीं है । खानोंके मालिकोंकी मांगें ऐसी थीं कि उनका अन्तिम परिणाम ट्रांसवालमें बोअरोंकी प्रधानताका नष्ट हो जाना ही हो सकता था । दोनों पक्ष समझते थे कि आखिरी नतीजा लड़ाई ही है। इसलिए दोनों उसकी तैयारी कर रहे थे । इस समयका शब्द-युद्ध देखने लायक था । राष्ट्रपति क्रूगर बाहरसे अधिक हथियार मंगाते तो ब्रिटिश एजंट उन्हें चेतावनी देता कि आत्मरक्षाके लिए अंग्रेज सरकारको भी दक्षिण अफ्रीकामें थोड़ी सेना लानी होगी । जब ब्रिटिश सेना दक्षिण

अफ्रीकामें दाखिल होती तो राष्ट्रपति क्रूगरकी ओरसे ताना मारा जाता और ज्यादा तैयारी की जाती। यों एक पक्ष दूसरेपर दोष लगाता और दोनों युद्धकी तैयारी करते जाते।

राष्ट्रपति क्रूगर जब पूरी तैयारी कर चुके तब उन्होंने देखा कि अब बैठे रहना तो अपनी गरदन खुद दुश्मनके हाथमें दे देना है। ब्रिटिश साम्राज्यके पास धन-जनका अक्षय्य भंडार है। वह लंबे अरसेतक धीरे-धीरे तैयारी करते और राष्ट्रपति क्रूगरको समझाते-बुझाते न्यायकी विनती करते हुए वक्त गुजार सकता है और यों दुनियाको दिखा सकता है कि जब राष्ट्रपति क्रूगर खान मालिकोंको न्याय दे ही नहीं रहे हैं तब हमें निरुपाय होकर युद्ध करना पड़ रहा है। यों कहकर वह ऐसी जबर्दस्त तैयारीके साथ युद्ध करेगा कि बोअर उसके सामने टिक ही नहीं सकेंगे और उन्हें दीन बनकर उसकी मांगें मंजूर करनी पड़ेंगी। जिस जातिके १८ से लगाकर साठ सालतकके सारे पुरुष कुशल योद्धा हों, जिसकी स्त्रियां भी चाहें तो तलवारके हाथ दिखा सकती हों, जिस जातिमें स्वतंत्रता धार्मिक सिद्धांत माना जाता हो, वह जाति चक्रवर्ती राजाके बलके सामने भी दैन्य ग्रहण नहीं करेगी! बोअर जनता ऐसी ही वीर थी।

आरेंज फ्री स्टेटके साथ राष्ट्रपति क्रूगरने पहले ही मंत्रणा कर ली थी। इन दोनों बोअर राज्योंकी एक ही पद्धति थी। राष्ट्रपति क्रूगरका यह इरादा बिल्कुल ही नहीं था कि ब्रिटिश मांगको पूरा-पूरा या इस हदतक मंजूर कर लें कि खानोंके मालिकोंको संतोष हो जाय। अतः दोनों राज्योंने सोचा कि जब युद्ध होना ही है तब अब इसमें जितनी देर की जायगी उतना ही वक्त ब्रिटिश सल्तनतको अपनी तैयारी बढ़ानेके लिए मिलेगा। फलतः राष्ट्रपति क्रूगरने अपना अंतिम विचार और आखिरी मांग लार्ड मिल्नरको लिख भेजी। इसके साथ ही ट्रांसवाल और आरेंज फ्री स्टेटकी सरहदोंपर फौज

भी जमादी। इसका नतीजा दूसरा कुछ हो ही नहीं सकता था। ब्रिटिश साम्राज्य जैसा चक्रवर्ती राज्य धमकीके सामने कब झुक सकता है? 'अल्टिमेटम'की अवधि पूरी हुई और बोअर सेना विद्युद्वेगसे आगे बढ़ी। उसने लेडी स्मिथ, किंबरली और मेफेकिंगका घेरा डाल दिया। इस प्रकार १८९९ में यह महायुद्ध आरंभ हुआ। पाठक जानते ही हैं कि इस युद्धके कारणोंमें यानी ब्रिटिश मांगोंमें बोअर राज्योंमें भारतीयोंकी परिस्थिति, और उनके साथ होनेवाला व्यवहार भी शामिल था।

इस अवसरपर दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंका कर्तव्य क्या है, यह महत्वपूर्ण प्रश्न उनके सामने उपस्थित हुआ। बोअर लोगोंमेंसे तो सारा पुरुषवर्ग लड़ाईपर चला गया। वकीलोंने वकालत छोड़ी, किसानोंने अपने खेत छोड़े, व्यापारियोंने अपनी कोठियों-दुकानोंपर ताले डाल दिए, नौकरी करनेवालोंने नौकरी छोड़ी। अंग्रेजोंकी तरफसे बोअरोंके बराबर तो नहीं, फिर भी केप कॉलोनी, नेटाल और रोडेशियामें असैनिक वर्गके बहुसंख्यक लोग स्वयंसेवक बने। बहुतसे बड़े अंग्रेज वकीलों और व्यापारियोंने उनमें नाम लिखाया। जिस अदालतमें मैं वकालत करता था उसमें भी अब बहुत ही थोड़े वकील दिखाई दिये। बड़े वकीलोंमेंसे तो अधिकांश लड़ाईके काममें लग गये थे। हिन्दुस्तानियों पर जो तुहमतें लगाई जाती हैं उनमेंसे एक यह है, "ये लोग दक्षिण अफ्रीकामें केवल पैसा कमाने और जोड़नेके लिए आते हैं। हम (अंग्रेजों) पर वे निरे भार रूप हैं और जैसे कीड़ा काठके भीतर बसकर उसको कुरेदकर खोखला कर देता है वैसे ही ये लोग हमारा कलेजा कुरेदकर खा जानेके लिए ही आये हैं। इस देशपर हमला हो, हमारा घरबार लुट जानेका वक्त आजाय तो ये हमारे कुछ भी काम आनेवाले नहीं। हमें लुटेरोंसे अपना ही बचाव नहीं करना होगा, इन लोगोंकी रक्षा भी करनी होगी।"

इस आरोपपर भी हम सभी भारतीयोंने विचार किया। हम सबको जान पड़ा कि यह आरोप मिथ्या, निराधार है। इसे सिद्ध करनेका यह बहुत बढ़िया मौका है। पर दूसरी ओरसे नीचे लिखी बातें भी सोचनी पड़ीं :

"हमें तो अंग्रेज और बोअर दोनों एकसा सताते हैं। ट्रांसवालमें दुःख हो और नेटाल, केप कॉलोनीमें न हो, सो बात नहीं है। कोई अंतर है तो केवल मात्राका। फिर हमारी स्थिति तो गुलाम कौमकी-सी कही जाती है। हम जानते हैं कि बोअर जैसी मुट्ठीभर आदमियोंकी कौम अपने अस्तित्वके लिए लड़ रही है। इस दशामें भी हम उसका विनाश होनेमें सहायक क्यों हों? अंतमें व्यवहारकी दृष्टिसे देखें तो कोई यह कहनेका साहस नहीं कर सकता कि बोअर इस लड़ाईमें हार जाएंगे। वह जीत गए तो हमसे बदला चुकानेमें कब चूकनेवाले हैं?"

इस दलीलको पेश करनेवाला हममेंसे एक सबल पक्ष था। मैं खुद भी इस दलीलको समझता और उसको मुनासिब वजन भी देता था। फिर भी वह मुझे ठीक नहीं लगी और उसके भीतर भरे हुए अर्थका उत्तर मैंने अपने आपको और कौमको इस प्रकार दिया :

"दक्षिण अफ्रीकामें हमारी हस्ती महज ब्रिटिश प्रजाकी हैसियतसे ही है। हरएक अर्जीमें हमने ब्रिटिश प्रजाकी हैसियतसे ही हक मांगे हैं। ब्रिटिश प्रजा होनेमें हमने गौरव माना है, या अपने ऊपर शासन करनेवालों और दुनियासे यह मनवाया है कि उसमें हमारा गौरव है। राज्याधिकारियोंने भी हमारे हकोंकी रक्षा केवल इसीलिए की है कि हम ब्रिटिश प्रजाजन हैं और जो थोड़े-बहुत हक बचाए जा सके हैं वह भी हमारे ब्रिटिश प्रजा होनेसे ही। जब अंग्रेजोंका और हमारा भी घरबार लुट जानेका खतरा हो तब महज दर्शककी

तरह दूरसे तमाशा देखते रहें तो यह हमारे मनुष्यत्वको शोभा नहीं देगा। यही नहीं, यह अपने कष्टको और बढ़ा लेना भी होगा। जिस आरोपको हम मिथ्या मानते हैं उसको झूठा साबित कर देनेका हमें अनायास अवसर मिला है। इस अवसरको खो देना अपने हाथों ही उस इल्जामकी सचाईका सबूत पेश कर देना होगा। फिर हमारे ऊपर अधिक दुःख आए और अंग्रेज और ज्यादा ताना मारें तो यह अचरजकी बात न होगी। यह तो हमारा ही अपराध माना जायगा। अंग्रेजोंके सारे आरोप आधार-रहित हैं, उनमें दलीलके लायक भी दम नहीं है, यह कहना अपने आपको ठगने जैसा है। यह सही है कि ब्रिटिश साम्राज्यमें हमारी हैसियत गुलाम की-सी है, पर अबतक हमारा व्यवहार यही रहा है कि साम्राज्यमें रहते हुए गुलामीसे छूटनेकी कोशिश करते रहें। हिंदुस्तानके सभी नेता इसी नीतिका अनुसरण कर रहे हैं। हम भी यही करते रहे हैं। अगर हम चाहते हों कि ब्रिटिश साम्राज्यके अंग बने रहकर ही अपनी स्वाधीनता प्राप्त करें और उन्नति करें तो इस वक्त लड़ाईमें तन-मन-धनसे अंग्रेजोंकी मदद करके वैसा करनेका यह सुनहला मौका है। बोअरोंका पक्ष न्यायका पक्ष है, यह बात अधिकांशमें स्वीकार की जा सकती है; पर किसी राज्यतंत्रके अंदर रहकर प्रजावर्गका प्रत्येक जन हर मामलेमें अपनी निजकी रायपर अमल नहीं कर सकता। राज्याधिकारी जितने काम करें सब ठीक ही हों, यह नहीं होता। फिर भी प्रजावर्ग जबतक शासन-विशेषको स्वीकार करता है तबतक उसके कार्योंके अनुकूल होना और उनमें सहायता करना उसका स्पष्ट धर्म है।

"फिर प्रजाका कोई वर्ग धार्मिक दृष्टिसे राज्यके किसी कार्यको अनीतिमय मानता हो तो उसका फर्ज है कि उस कार्यमें विघ्न डालने या सहायता करनेके पहले राज्यको उस

अनीतिसे बचानेकी कोशिश पूरे तौरसे और जानकी जोखिम उठाकर भी करे। हमने ऐसा कुछ नहीं किया। ऐसा धर्म हमारे सामने उपस्थित भी नहीं है और न हममेंसे किसीने यह कहा या माना है कि ऐसे सार्वजनिक और व्यापक कारणसे हम इस लड़ाईमें शामिल होना नहीं चाहते। अतः प्रजारूपमें हमारा सामान्य धर्म तो यही है कि लड़ाईके गुण-दोषका विचार न कर जब वह हो ही रही है तो उसमें यथाशक्ति सहायता करें। अंतमें यह कहना या मानना कि बोअर राज्योंकी जीत होनेपर--वे न जीतेंगे यह माननेके लिए कोई भी कारण नहीं है--हम चूल्हेसे निकलकर भाड़में गिरेंगे और पीछे वे मनमाना बैर चुकाएंगे, वीर बोअर-जाति और खुद अपने साथ भी अन्याय करना है। यह बात तो महज हमारी नामर्दीकी निशानी गिनी जायगी। ऐसा सोचना तक अपनी वफादारीको बट्टा लगाना होगा। कोई अंग्रेज क्या क्षणभरके लिए भी यह सोच सकता है कि अंग्रेज हार गए तो मेरी अपनी क्या दशा होगी? लड़ाईके मैदानमें उतरनेवाला कोई भी आदमी अपनी मनुष्यता गंवाए बिना ऐसी दलील कर ही नहीं सकता।"

यह दलील मैंने १८९९ में सामने रखी थी और आज भी उसमें कहीं रद्दोबदलकी गुंजाइश नहीं दिखाई देती। अर्थात् ब्रिटिश राज्यतंत्रके प्रति जो मोह उस वक्त मेरे मनमें था, उस राज्यतंत्रके अधीन रहकर अपनी आजादी हासिल कर लेनेकी जो आशा उस समय मैंने बांधी थी वह मोह और वह आशा आज भी मेरे मनमें बनी हो तो मैं अक्षरशः यही दलील दक्षिण अफ्रीकामें और वैसी परिस्थितिमें यहां भी पेश करूंगा। इस दलीलका खंडन करनेवाली बहुतेरी दलीलें मैंने दक्षिण अफ्रीकामें सुनीं और उसके बाद विलायतमें भी सुनीं। फिर भी अपने विचार बदलनेका

कोई भी कारण मैं नहीं देख सका। मैं जानता हूं कि मेरे आजके विचारोंका प्रस्तुत विषयके साथ कुछ भी संबंध नहीं; पर ऊपरका भेद जता देनेके लिए दो सबल कारण हैं। एक तो यह कि यह पुस्तक उतावलीसे हाथमें लेनेवाला इसे धीरजके साथ और ध्यानपूर्वक पढ़ेगा, यह आशा रखनेका मुझे कोई हक नहीं। ऐसे पाठकको मेरी आजकलकी सरगर्मीके साथ उपर्युक्त विचारोंका मेल बैठाना कठिन होगा। दूसरा कारण यह है कि इस विचार-श्रेणीके अन्दर भी सत्यका ही आग्रह है। जैसा अन्तरमें है वैसा ही दिखाना और तदनुसार आचरण करना धर्माचरणकी आखिरी नहीं, पहली सीढ़ी है। धर्मकी इमारत इस नींवके बिना खड़ी करना असंभव है।

अब हम पिछले इतिहासकी ओर लौटें।

मेरी दलील बहुतोंको पसंद आई। मैं पाठकोंसे यह मनवाना नहीं चाहता कि यह दलील अकेले मेरी ही थी। फिर यह दलील पेश की जानेके पहले भी लड़ाईमें साथ देनेका विचार रखनेवाले बहुतेरे हिंदुस्तानी थे ही; पर अब व्यावहारिक प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि युद्धके इस नक्कारखानेमें हिंदुस्तानी तूतीकी आवाज कौन सुनेगा? उसकी क्या गिनती होगी? हथियार तो हममेंसे किसीने कभी हाथमें लिया ही नहीं था। युद्धके बिना हथियारवाले काम करनेके लिए भी तालीम तो मिलनी ही चाहिए। यहां तो एक तालपर कूच करना भी हममेंसे किसीको नहीं आता था। सेनाके साथ लंबी मंजिलें करना, अपना सामान खुद लादकर चलना, यह भी हमसे कैसे होगा? फिर गोरे हम सबको कुली ही समझेंगे। अपमान भी करेंगे, तिरस्कारकी दृष्टिसे देखेंगे। यह सब कैसे सहन होगा? हमने फौजमें भरती होनेकी मांग की तो इस मांगको मंजूर कैसे करायेंगे? अन्तमें हम सब इस

निश्चयपर पहुंचे कि इस मांगको मंजूर करानेके लिए जोरदार कोशिश करें। काम कामको सिखाता है। इच्छा होगी तो शक्ति ईश्वर देगा ही। सौंपा हुआ काम कैसे होगा, इसकी चिंता छोड़ दें। युद्ध-कार्यकी जितनी शिक्षा मिल सके उतनी ले लें और एक बार सेवा-धर्म स्वीकार करनेका निश्चय कर लें तो फिर मान-अपमान के विचारको दूर रखें। अपमान हो तो उसे सहकर भी सेवा करते रहें।

अपनी मांगको मंजूर करानेमें हमें बेहद कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। उनका इतिहास रोचक है, पर उसे देनेका यह स्थान नहीं। इसलिए इतना ही कह देना काफी होगा कि हममेंसे मुख्य जनोंने घायलों और रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा करनेकी शिक्षा प्राप्त की, अपनी शारीरिक स्थितिके विषयमें डाक्टरका सार्टिफिकेट हासिल किया और लड़ाईपर जानेकी मांग सरकारके पास भेज दी। इस पत्र और मांगको मंजूर करनेके लिए उसमें जो आग्रह दिखाया गया था उसका बहुत अच्छा असर हुआ। पत्रके उत्तरमें सरकारने हमारा उपकार माना, पर उस वक्त हमारी मांग मंजूर करनेसे इन्कार किया। इस बीच बोअरोंका बल बढ़ता गया। उनका बढ़ाव जबर्दस्त बाढ़की तरह हुआ और नेटालकी राजधानीतक पहुंच जानेका खतरा दिखाई देने लगा। हजारों जख्मी हुए। हमारी कोशिश तो जारी ही थी। अंतमें 'ऐम्ब्युलेंस कोर' (घायलोंको उठाने और उनकी सेवा करनेवाले दस्ते) के रूपमें हमें स्वीकार कर लिया गया। हम तो लिख ही चुके थे कि अस्पतालोंमें पाखाने साफ करने या झाड़ू लगानेका काम भी हमें मंजूर होगा। अतः ऐम्ब्युलेंस कोर बनानेका सरकारका विचार हमें स्वागत करने योग्य जान पड़े, इसमें कोई अचरजकी बात नहीं। हमारा प्रस्ताव स्वतंत्र और गिरमिट-मुक्त भारतीयोंके विषयमें ही था, पर हमने सलाह दी थी कि

गिरमिटियोंको भी इसमें शामिल कर लेना वांछनीय है। इस वक्त तो सरकारको जितने भी आदमी मिल सकें उतने दरकार थे। इससे सब कोठियोंमें भी निमंत्रण भेजे गये। फलतः लगभग ११०० भारतीयोंका शानदार विशाल दस्ता डर्बनसे रवाना हुआ। उसके प्रस्थानके समय श्री एस्कंबने, जिनके नामसे पाठक परिचित ही हैं और जो नेटालके गोरे स्वयं-सेवकोंके महानायक थे, हमें धन्यवाद और आशीर्वाद दिया।

अंग्रेजी अखबारोंको यह सब चमत्कार-सा लगा। हिंदुस्तानी युद्धमें कुछ भी मदद देंगे इसकी उन्हें आशा ही नहीं थी। एक अंग्रेजने अपने एक प्रमुख पत्रमें एक स्तुतिकाव्य लिखा, जिसके टेककी पंक्तिका अर्थ यह है, "अन्ततः हम सभी एक ही साम्राज्यके बच्चे हैं।"

इस दस्तेमें ३०० से ४०० तक गिरमिट-मुक्त हिंदुस्तानी थे जो स्वतंत्र भारतीयोंकी कोशिशसे इकट्ठा हुए थे। इनमेंसे ३७ मुखिया माने जाते थे। इन्हीं लोगोंके हस्ताक्षरसे सरकारके पास प्रस्ताव भेजा गया था और दूसरोंको इकट्ठा करनेवाले भी यही थे। नेताओंमें बैरिस्टर, क्लर्क, मुनीम आदि थे। बाकीके लोगोंमें कारीगर, राज, बढ़ई और मामूली मजदूर वगैरह थे। इनमें हिंदू, मुसलमान, मद्रासी, उत्तर भारत वाले इस प्रकार सभी वर्गोंके लोग थे। व्यापारी वर्गमेंसे, कह सकते हैं कि एक भी आदमी नहीं था; पर व्यापारियोंने अपना हिस्सा पैसेके रूपमें दिया और काफी दिया।

इतने बड़े दस्तेको जो फौजी भत्ता मिलता है उसके अतिरिक्त दूसरी जरूरतें भी होती हैं और वे पूरी हो जायं तो इस कठिन जीवनमें कुछ राहत मिल जाती है। ऐसी राहत देनेवाली चीजें जुटानेका भार व्यापारी वर्गने अपने सिर लिया। इसके साथ-साथ जिन घायलोंकी हमें सेवा करनी पड़ती थी उनके लिए भी मिठाई, बीड़ी-सिगरेट आदि देनेमें

उन्होंने अच्छी मदद की। हमारा पड़ाव जब किसी नगरके पास होता तो वहांके व्यापारी ऐसी मदद देनेमें पूरा हिस्सा लेते थे।

जो गिरमिटिए हमारे दस्तेमें शामिल हुए थे उनके लिए उनकी अपनी कोठियोंसे अंग्रेज नायक भेजे गए थे; पर काम तो सबका एक ही था। सबको साथ ही रहना भी होता था। ये गिरमिटिए हमें देखकर बहुत खुश हुए और एक पूरे दस्तेकी व्यवस्था सहज ही हमारे हाथमें आ गई। इससे यह सारा दस्ता हिंदुस्तानी दस्ता ही कहा गया और उसके कामका यश भी भारतीय जनताको ही मिला। सच पूछिये तो गिरमिटियोंके इसमें शामिल होनेका यश भारतीय जनता नहीं ले सकती थी, उसके अधिकारी तो कोठीवाले ही थे। पर इतना सही है कि दस्ते संगठित हो जानेके बाद उसकी सुव्यवस्थाका यश स्वतंत्र भारतीय अर्थात् भारतीय जनता ही ले सकती थी और इसका स्वीकार जनरल बूलरने अपने खरीतोंमें किया है।

हमें घायलों और पीड़ितोंकी सेवा-शुश्रूषाकी शिक्षा देनेवाले डाक्टर बूथ भी मेडिकल सुपरिंटेंडेंटके रूपमें हमारे दस्तेके साथ थे। ये भले पादरी थे और भारतीय ईसाइयोंमें काम करते हुए भी सबके साथ मिलते-जुलते थे। ऊपर जिन ३७ आदमियोंको मैंने नेताओंमें गिनाया है उनमेंसे अधिकांश इस भले पादरीके शिष्य थे।

जैसे हिंदुस्तानियोंका दस्ता बना था वैसे ही यूरोपियनोंका भी बनाया गया था। दोनोंको एक ही जगह काम भी करना होता था।

हमारा प्रस्ताव बिना शर्तके था। पर स्वीकार-पत्रमें यह जता दिया गया था कि हमें तोप या बंदूककी मारकी हदमें जाकर काम नहीं करना होगा। इसके मानी यह होते थे कि

रणक्षेत्रमें जो सिपाही घायल हों उन्हें सेनाके साथ रहनेवाला स्थायी सेवादल (ऐम्ब्युलेंस कोर) उठाकर फौजके पीछे, तोप-बंदूककी मारके बाहर पहुंचा दे। गोरोंका और हमारा तात्कालिक सेवादल संगठित करनेका कारण यह था कि लेडी स्मिथमें घिरे हुए जनरल व्हाइटको छुड़ानेके लिए जनरल बूलर महाप्रयास करनेवाले थे और इसमें इतने आदमियोंके घायल होनेका डर था कि स्थायी सेवादल उन्हें सम्हाल नहीं सकता था। लड़ाई ऐसे प्रदेशमें हो रही थी जहां रणक्षेत्र और केन्द्रके बीच पक्की सड़कें भी नहीं थीं। इस कारण घोड़ा-गाड़ी आदि सवारियोंसे घायलोंको ले जाना भी मुमकिन नहीं था। केन्द्रीय शिविर सदा किसी-न-किसी रेलवे स्टेशनके पास रखा जाता था और वह मैदानसे सात-आठसे लगाकर पच्चीस मीलतकके फासले पर होता था।

हमें काम तुरंत मिल गया और वह जितना हमने सोचा था उससे ज्यादा कड़ा था। घायलोंको उठाकर ७-८ मील ले जाना तो मामूली बात थी; पर अकसर बुरी तरह घायल सैनिकों और अफसरोंको उठाकर हमें पच्चीस-पच्चीस मील ले जाना पड़ता था। रास्तेमें उन्हें दवा भी देनी पड़ती थी। कूच सवेरे ८ बजे शुरू होता और शामके पांच बजे छावनीके अस्पतालपर पहुंच जाना पड़ता। यह बहुत कठिन काम समझा जाता। घायलको उठाकर एक ही दिनमें २५ मील ले जानेका मौका तो एक ही बार आया। फिर शुरूमें अंग्रेजोंकी हार-पर-हार हो गई और जख्मियोंकी तादाद बहुत बढ़ गई। इससे हमें मारके अंदर ले जानेका विचार भी अधिकारियोंको ताकपर रख देना पड़ा। पर मुझे यह बता देना होगा कि जब ऐसा मौका आया तब हमसे यह कह दिया गया कि आपके साथ की हुई शर्तके अनुसार आप लोग ऐसी जगह नहीं भेजे जा सकते जहां आपको तोपका गोला या बंदूककी गोली लगनेका खतरा हो। इसलिए

अगर आप इस खतरेमें न पड़ना चाहते हों तो आपको इसके लिए मजबूर करनेका जनरल बूलरका जरा भी इरादा नहीं। पर आप यह जोखिम उठा लेंगे तो सरकार आपका अहसान मानेगी। हम तो जोखिम लेना चाहते ही थे। खतरेसे बाहर रहना हमें कभी पसंद नहीं आया था। अतः हम सबने इस अवसरका स्वागत किया; पर किसीको न गोली लगी और न कोई और तरहकी चोट पहुंची।

इस दस्तेके रोचक अनुभव तो कितने ही हैं, पर उन सबको देनेके लिए यहां स्थान नहीं। फिर भी इतना बता देना चाहिए कि हमारे दस्तेको, जिसमें अनघड़, शिक्षा-संस्कार-रहित गिरमिटिए भी शामिल थे, यूरोपियनोंके स्थायी सेवादल और काली फौजके गोरे सिपाहियोंसे अकसर मिलने-जुलने और साथ काम करनेके मौके आते; पर हममेंसे किसीको यह नहीं जान पड़ा कि गोरे हमारे साथ अशिष्ट व्यवहार करते हैं या हमें तुच्छ समझते हैं। गोरोंके तात्कालिक दस्तेमें तो दक्षिण अफ्रीकामें बसे हुए गोरे ही भरती हुए थे। लड़ाईके पहले वे हिंदुस्तानी विरोधी आन्दोलन करनेवालोंमें से थे; पर इस संकट-कालमें हिंदुस्तानी अपने निजके दुःख भूलकर हमारी मददके लिए आगे आये हैं, इस ज्ञान और इस दृश्यने उनके दिलको भी क्षण भरके लिए पिघला दिया था। जनरल बूलरके खरीतेमें हमारे कामकी तारीफ की गई थी, यह लिख चुका हूं। ३७ मुखियोंको लड़ाईमें अच्छा काम करनेके लिए तमगे भी दिए गये।

लेडी स्मिथके छुटकारेके लिए जनरल बूलरने जो यह हमला किया था उसके पूरा होनेके दो महीनेके अंदर ही हमारे और गोरोंके दस्तोंको भी घर जानेकी इजाजत दे दी गई। लड़ाई तो इसके बाद बहुत दिनोंतक चलती रही। हम तो फिर शामिल होनेके लिए सदा ही तैयार थे और विघटनके आदेशके

साथ यह कह दिया गया था कि फिर ऐसी जबर्दस्त जंगी कार्रवाई करनी पड़ी तो सरकार आपकी सेवाका उपयोग अवश्य करेगी।

दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयों द्वारा युद्धमें अर्पित यह सहायता नगण्य गिनी जायगी। उनके काममें जानका खतरा तो कह सकते हैं कि बिलकुल ही नहीं था। फिर भी शुद्ध इच्छाका असर तो हुए बिना रहता ही नहीं। फिर इस इच्छाका अनुभव ऐसे वक्त हो जब कोई उसकी आशा न रखता हो तब तो उसकी कीमत दूनी आंकी जाती है। जबतक लड़ाई चलती रही, भारतीयोंके विषयमें ऐसी सुंदर भावना बनी रही।

इस प्रकरणको समाप्त करनेके पहले मुझे एक जानने योग्य वृत्तांत सुना देना चाहिए। लेडी स्मिथमें घिरे हुए लोगोंमें अंग्रेजोंके साथ-साथ वहां बसनेवाले इक्के-दुक्के हिंदुस्तानी भी थे। उनमें कुछ व्यापारी और शेष गिरमिटिया थे, जो रेलवे कर्मचारी और गोरे गृहस्थोंके यहां खिदमतगारी करते थे। उनमें एक प्रभुसिंह नामका गिरमिटिया था। घिरे हुए आदमियोंको अफसर कुछ काम तो सौंपता ही है। एक बड़ा ही जोखिमवाला और उतना ही मूल्यवान् काम कुलियोंमें गिने जानेवाले प्रभुसिंहके जिम्मे किया गया था। लेडी स्मिथके पासकी पहाड़ीपर बोअर लोगोंकी एक 'पोम-पोम' तोप थी। इसके गोलोंसे बहुत-से मकान धराशायी हुए और बहुत-से लोगोंने जानसे भी हाथ धोया। तोपसे गोलेके दगने और दूरके निशानेतक पहुंचनेमें एक-दो मिनट तो लग ही जाते हैं। इतनी देरकी चेतावनी भी घिरे हुए लोगोंको मिल जाय तो वे किसी-न-किसी आड़में छिप जाते और अपनी जान बचा लेते। प्रभुसिंहको एक पेड़के नीचे बैठनेकी ड्यूटी दी गई थी। जबसे तोप दगने लगीं और जबतक दगती रहीं तबतक उसे वहां बैठे और तोपवाली पहाड़ीकी ओर आंख लगाये

रहना पड़ता। ज्योंही उसे आग भड़कती दिखाई दे, तुरंत घंटा बजा देना होता। उसे सुनकर जैसे बिल्लीको देखकर चूहे अपने बिलमें घुस जाते हैं वैसे ही जानलेवा गोलेके आनेकी सूचनाका घंटा बजते ही नगरवासी अपनी-अपनी छिपनेकी जगहमें छिप जाते और अपनी जान बचा लेते।

प्रभुसिंहकी इस अमूल्य सेवाकी सराहना करते हुए लेडी स्मिथके फौजी अफसरने लिखा है कि प्रभुसिंहने ऐसी निष्ठासे काम किया कि एक बार भी वह घंटा बजानेसे नहीं चूका। यह बतानेकी जरूरत शायद ही हो कि प्रभुसिंहको खुद तो सदा खतरेमें ही रहना पड़ता था। यह बात नेटालमें तो मशहूर हुई ही, लार्ड कर्जन (हिंदुस्तानके तत्कालीन वाइसराय) के कानतक भी पहुंची। उन्होंने प्रभुसिंहको भेंट करनेके लिए एक काश्मीरी जामा भेजा और नेटालकी सरकारको लिखा कि प्रभुसिंहको यह उपहार समारोह-पूर्वक प्रदान किया जाय और जिस कारगुजारीके लिए उसे यह दिया जा रहा है उसका जितना ढिंढोरा पीटा जा सकता हो पीटा जाय। यह काम डर्बनके मेयरको सौंपा गया और डर्बनके टाउनहालमें सार्वजनिक सभा करके प्रभुसिंहको उक्त उपहार अर्पित किया गया। यह दृष्टांत हमें दो बातें सिखाता है: एक तो यह कि हम किसी भी मनुष्यको तुच्छ न समझें। दूसरी यह कि डरपोक-से-डरपोक आदमी भी अवसर आनेपर वीर बन सकता है।

: १० :

लड़ाईके बाद

युद्धका मुख्य भाग १९०० में पूरा हो गया। इस बीच लेडी स्मिथ, किंबरली और मेफेकिंगका छुटकारा हो गया

था। जनरल क्रोंजे हार चुके थे। बोअरोंने ब्रिटिश उपनि-वेशोंका जितना भाग जीत लिया था वह सब ब्रिटिश सल्त-नतको वापस मिल चुका था। लार्ड किचनरने ट्रांसवाल और ऑरेंज फ्री स्टेटको भी जीत लिया था। अब कुछ बाकी था तो केवल 'बानर युद्ध' (गोरीला वारफेयर)।

मैंने सोचा कि दक्षिण अफ्रीकामें अब मेरा काम पूरा हो गया मान लिया जा सकता है। एक महीनेके बदले मैं छः बरस रह गया। कार्यकी रूप-रेखा बंध गई थी। फिर भी भारतीय जनताके खुशीसे इजाजत दिये बिना मेरा निकास नहीं हो सकता था। मैंने अपने साथियोंको बताया कि मेरा इरादा हिंदुस्तानमें लोकसेवा करनेका है। स्वार्थके बदले सेवाधर्मका पाठ मैं दक्षिण अफ्रीकामें पढ़ चुका था। उसकी धुन समा चुकी थी। मनसुखलाल नाजर दक्षिण अफ्रीकामें थे ही। खान भी थे। दक्षिण अफ्रीकासे ही गये हुए कितने ही भारतीय युवक बैरिस्टर होकर लौट भी चुके थे। अतः मेरा देश लौटना किसी तरह अनुचित नहीं माना जा सकता था। यह सब दलीलें देते हुए भी मुझे इस शर्तपर इजाजत मिली कि दक्षिण अफ्रीकामें कोई अनसोची अड़चन आ पड़े और मेरी जरूरत समझी जाय तो कौम मुझे चाहे जब वापस बुला सकती है और मुझे तुरंत वापस जाना होगा। यात्राका और मेरे रहनेका खर्च कौमको उठाना होगा। यह शर्त मंजूर कर मैं देश लौटा।

मैंने बम्बईमें बैरिस्टरी करनेका निश्चय किया और चेंबर ले लिया। इसमें मुख्य हेतु तो था स्वर्गीय गोखलेकी सलाहसे और उनकी देखरेखमें सार्वजनिक कार्य करना, पर साथ ही आजीविका कमानेका भी उद्देश्य था। मेरी वकालत भी कुछ चल निकली। दक्षिण अफ्रीकाके साथ जो मेरा इतना गहरा संबंध जुड़ गया था उससे

वहांसे लौटे हुए मवक्किलोंसे ही मुझे इतना पैसा मिल जाता था कि मेरा खर्च आसानीसे चल जाता। पर मेरे भाग्यमें स्थिर होकर बैठना लिखा ही न था। मुश्किलसे तीन-चार महीने बंबईमें स्थिर होकर बैठा हूंगा कि दक्षिण अफ्रीकासे तार आया--"स्थिति गंभीर है। मि० चेंबरलेन जल्दी ही आ रहे हैं। आपकी उपस्थिति आवश्यक है।"

बम्बईका दफ्तर और घर समेटा और पहले ही जहाजसे दक्षिण अफ्रीकाके लिए रवाना हो गया। यह सन् १९०२ के अंतका समय था। १९०१के आखिरमें मैं हिंदुस्तान लौटा था। १९०२के मार्च-अप्रैलमें बंबईमें दफ्तर खोला। तारसे मैं पूरी बात जान नहीं सका था। मैंने अटकल लगाई कि संकट कहीं ट्रांसवालमें ही होगा। पर चार-छः महीनेके अंदर लौट सकूंगा, यह सोचकर बाल-बच्चोंको साथ लिए बिना ही मैं चल दिया था। मगर ज्योंही डर्बन पहुंचा और सारी हकीकत सुनी मैं दिग्मूढ़ हो गया। हममेंसे बहुतोंने सोचा था कि युद्धके बाद सारे दक्षिण अफ्रीकामें हिंदुस्तानियोंकी हालत सुधर जायगी। ट्रांसवाल और फ्री स्टेटमें तो कोई कठिनाई हो ही नहीं सकती, क्योंकि लार्ड लेंसडाउन, लार्ड सेलबर्न आदि बड़े ब्रिटिश अधिकारियोंने कहा था कि बोअर राज्योंमें भारतीयोंकी विषम स्थिति भी इस युद्धका एक कारण है। प्रिटोरियामें रहनेवाला ब्रिटिश राजदूत भी अनेक बार मेरे सामने कह चुका था कि ट्रांसवाल ब्रिटिश उपनिवेश हो जाय तो हिंदुस्तानियोंके सारे कष्ट तुरंत मिट जायंगे। यूरोपियन भी मानते थे कि राज्य-व्यवस्था बदल जानेपर ट्रांसवालके पुराने (भारतीय विरोधी) कानून हिंदुस्तानियोंपर लागू नहीं हो सकेंगे। यह बात इतनी सर्वमान्य हो गई थी कि नीलाम करनेवाले जो गोरे जमीनकी बोली बोलते समय लड़ाईके पहले हिंदुस्तानियोंकी बोली मंजूर नहीं करते थे वे

अब खुले तौरपर उसे स्वीकार करने लगे। कितने ही हिंदुस्तानियोंने इस तरह नीलाममें जमीन खरीद भी ली। पर जब वे तहसीलमें जमीनकी रजिस्ट्री कराने गये तो मालके अफसरने १८८५ का कानून सामने रख दिया और दस्तावेजकी रजिस्ट्री करनेसे इन्कार कर दिया। डर्बनमें उतरनेपर मैंने इतना तो सुन लिया। नेताओंने मुझसे कहा कि आपको ट्रांसवाल जाना है। मि० चेंबरलेन पहले तो यहीं आयंगे। यहांकी (नेटालकी) स्थितिसे भी उनको वाकिफ करा देना जरूरी है। यहांका काम निबटाकर उन्हींके पीछे-पीछे आपको ट्रांसवाल जाना होगा।

नेटालमें श्री चेंबरलेनसे एक शिष्टमंडल मिला। उन्होंने सारी बातें बड़े सौजन्यके साथ सुन लीं और नेटालके मंत्रिमंडलके साथ बातें करनेका वचन दिया। नेटालमें जो कानून युद्धके पहले बन गए थे उनमें तुरंत हेर फेर होनेकी आशा मैं खुद नहीं करता था। इन कानूनोंका वर्णन पिछले प्रकरणोंमें किया जा चुका है।

पाठक यह तो जानते ही हैं कि लड़ाईके पहले चाहे जो हिंदुस्तानी चाहे जब ट्रांसवालमें दाखिल हो सकता था। पर मैंने देखा कि अब ऐसी स्थिति नहीं है। फिर भी इस वक्त जो रुकावटें थीं वे गोरे और हिंदुस्तानी दोनोंपर समान रूपसे लागू होती थीं। आज भी देशकी दशा ऐसी थी कि बहुतसे लोग एक साथ उसमें भर जायं तो सबको अन्न-वस्त्र भी पूरा न मिल सके। लड़ाईके कारण बन्द हुई बहुतसी दुकानें अब भी बन्द थीं। दुकानोंका अधिकांश माल बोअर सरकार साफ कर गई थी। अतः मैंने मनमें सोचा कि अगर यह रुकावट एक बंधी मुद्दतके लिए ही हो तो भय करनेका कारण नहीं; पर गोरे और हिंदुस्तानीके लिए ट्रांसवाल जानेका परवाना लेनेकी रीतिमें अंतर था और यह भेद ही

भयका कारण हो गया। परवाने देनेके दफ्तर दक्षिण अफ्रीकाके-जुदा-जुदा बंदरगाहोंमें खोले गये थे। गोरेको तो कह सकते हैं कि मांगते ही परवाना मिल जाता था; पर हिंदुस्तानियोंके लिए तो ट्रांसवालमें एक एशियाटिक विभाग स्थापित किया गया था।

यह अलग महकमेकी स्थापना एक नयी घटना थी। हिंदुस्तानियोंको इस महकमेके अफसरके पास अर्जी भेजनी होती। वह मंजूर हो गई तो डर्बन या किसी दूसरे बंदरगाहसे आमतौरसे परवाना मिल जाता था। यह अर्जी मुझे भी देनी होती तो मि० चेंबरलेनके ट्रांसवालसे चल देनेके पहले परवाना मिलनेकी आशा नहीं रखी जा सकती थी। ट्रांसवालके भारतीय वैसा परवाना प्राप्त कर मुझे नहीं भेज सके थे। यह बात उनके बसके बाहर थी। मेरे परवानेका आधार उन्होंने डर्बनसे मेरे परिचय, मेरे संबंधका बनाया था। परवाना देनेवाले अफसरसे मेरी जान-पहचान नहीं थी, पर डर्बनके पुलिस सुपरिंटेंडेंटसे थी। इसलिए उन्हें साथ लेजाकर अपनी पहचान दिला दी। १८९३ में मैं एक सालतक ट्रांसवालमें रह चुका हूं, यह अधिकार बताकर मैंने परवाना हासिल किया और प्रिटोरिया पहुंचा।

यहां मैंने बिलकुल दूसरा ही वातावरण पाया। मैंने देखा कि एशियाटिक विभाग एक भयानक महकमा है और महज हिंदुस्तानियोंको दबानेके लिए कायम किया गया है। उसके अफसर उन लोगोंमेंसे थे जो युद्धकालमें हिंदुस्तानी सेनाके साथ दक्षिण अफ्रीका गए थे और भाग्यपरीक्षाके लिए वहां रह गए थे। उनमेंसे कितने तो घूसखोर थे। दो अफसरोंपर मुकदमा भी चला। जूरीने तो उन्हें छोड़ दिया, पर चूंकि उनके घूस खानेके बारेमें कोई संदेह नहीं रह गया था, इसलिए वे नौकरीसे अलग कर दिये गए। पक्षपातकी

तो कोई हद ही न थी, जहां इस तौरपर एक खास महकमा कायम किया गया हो और जब वर्ग-विशेषके स्वत्वोंपर अंकुश रखनेके लिए ही उसका निर्माण हुआ हो तब अपनी हस्ती कायम रखनेके लिए और वह अपने कर्तव्यका पालन ठीक तौरसे कर रहा है यह दिखानेके लिए उसका झुकाव नए-नए अंकुश ढूंढ़ते रहनेकी ओर ही होता है। हुआ भी यही।

मैंने देखा कि मुझे फिरसे श्रीगणेश करना होगा। एशियाटिक महकमेको तुरंत इसका पता नहीं लग सका कि मैं ट्रांसवालमें कैसे दाखिल हो गया। मुझसे पूछनेकी तो यकायक उसकी हिम्मत हुई नहीं। मैं मानता हूं कि उसके अधिकारियोंने इतना तो माना होगा कि मैं चोरीसे नहीं दाखिल हुआ हूंगा। इधर-उधरसे पूछताछकर उन्होंने यह भी मालूम कर लिया कि मैंने परवाना कैसे हासिल कर लिया। प्रिटोरियाका शिष्ट-मण्डल भी मि० चेंबरलेनके पास जानेको तैयार हुआ। जो आवेदनपत्र उनके सामने पेश किया जानेवाला था उसका मसविदा मैंने बना दिया। पर एशियाटिक महकमेने मुझे उनके सामने जानेकी मनाही कर दी। भारतीय नेताओंने सोचा कि ऐसी दशामें हमें भी मि० चेंबरलेनसे मिलने नहीं जाना चाहिए; पर मुझे यह विचार नहीं रुचा। मैंने उन्हें यह सलाह दी कि मेरा जो अपमान हुआ है उसे मुझे तो पी ही जाना चाहिए, कौमको भी उसकी परवा नहीं करनी चाहिए। अर्जी तो तैयार है ही, मि० चेंबरलेनको उसे सुना देना बहुत जरूरी है। हिंदुस्तानके एक बैरिस्टर मि० जार्ज गाडफ्रे वहां मौजूद थे। मैंने उन्हें अर्जी पढ़ देनेके लिए तैयार कर लिया। शिष्ट-मण्डल गया। मेरी बात उठी तो मि० चेंबरलेनने कहा—"मि० गांधीसे तो मैं डर्बनमें मिल चुका हूं। इसलिए यह सोचकर कि यहांके लोगोंका वृत्तांत यहींके लोगोंसे सुनना ज्यादा अच्छा

होगा मैंने उनसे मिलनेसे इन्कार कर दिया।" मेरी दृष्टिसे तो इस उत्तरने आगमें घीका काम दिया। एशियाटिक महकमेने जो सिखाया था, मि० चेंबरलेन वही बोले। जो हवा हिंदुस्तानमें बहा करती है वही उक्त विभागने ट्रांसवालमें बहा दी। गुजराती भाइयोंको यह बात मालूम होनी ही चाहिए कि बम्बईका रहनेवाला चंपारनमें अंग्रेज अफसरोंके लिए परदेसी होता है। इस नियमके अनुसार डर्बनमें रहनेवाला मैं ट्रांसवालकी स्थिति कैसे जान सकता हूं, यह पाठ एशियाटिक विभागने मि० चेंबरलेनको पढ़ाया। उनको क्या मालूम कि मैं ट्रांसवालमें रह चुका हूं और न रहा होऊं तो भी ट्रांसवालकी पूरी परिस्थितिसे परिचित हूं। सवाल एक ही था: ट्रांसवालकी परिस्थितिसे सर्वाधिक परिचित कौन है? हिंदुस्तानसे मुझे खास तौरसे बुलाकर भारतीय जनताने इस प्रश्नका उत्तर दे दिया था; पर हुकूमत करनेवालेके सामने न्यायशास्त्रकी दलील नहीं चल सकती, यह कोई नया अनुभव नहीं। मि० चेंबरलेनपर इस वक्त स्थानीय ब्रिटिश अधिकारियोंका इतना असर था और गोरोंको सन्तुष्ट करनेके लिए वह इतने आतुर थे कि उनके हाथों न्याय होनेकी आशा तनिक भी नहीं थी या बहुत ही कम थी। पर न्याय पानेका एक भी उचित उपाय भूलसे या स्वाभिमानवश किये बिना न रह जाय, इस खयालसे शिष्ट-मण्डल उनके पास भेजा गया।

पर मेरे सामने १८९४से भी अधिक विषम प्रसंग उपस्थित हो गया। एक दृष्टिसे देखनेसे मुझे ऐसा दिखाई दिया कि मि० चेंबरलेन यहांसे रवाना हुए कि मैं हिंदुस्तानको वापस जा सकता हूं। दूसरी ओर मैं यह भी साफ देख सकता था कि अगर मैं कौमको भयावह स्थितिमें देखते हुए भी हिंदुस्तानमें सेवा करनेके अभिमानसे वापस जाऊं तो जिस सेवा-

धर्मकी झांकी मुझे हुई है वह दूषित हो जायगी। मैंने सोचा कि मेरी सारी जिंदगी भले ही दक्षिण अफ्रीकामें बीत जाय, पर जबतक घिरे हुए बादल बिखर नहीं जाते या हमारी सारी कोशिशके बावजूद और अधिक उमड़कर कौमपर फट नहीं पड़ते, तबतक मुझे ट्रांसवालमें ही रहना चाहिए। मैंने नेताओंके साथ इस प्रकारकी बातचीत की और १८९४ की तरह वकालतकी आमदनीसे गुजर करनेका अपना निश्चय भी बता दिया। कौमको तो इतना ही चाहिए था।

मैंने तुरंत ट्रांसवालमें वकालत करनेकी इजाजतकी दरख्वास्त दे दी। डर था कि यहां भी वकीलोंका मण्डल मेरी अर्जीका विरोध करेगा, पर वह निराधार निकला। मुझे सनद मिल गई और मैंने जोहान्सबर्गमें दफ्तर खोला। ट्रांसवालमें हिंदुस्तानियोंकी सबसे बड़ी आबादी जोहान्सबर्गमें ही थी। इसलिए मेरी आजीविका और सार्वजनिक काम दोनोंकी दृष्टिसे जोहान्सबर्ग ही मेरे लिए अनुकूल केन्द्र था। एशियाटिक विभागकी भ्रष्टताका कटु अनुभव मुझे दिन-दिन हो रहा था और वहांके भारतीय मंडल (ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन असोसियेशन) का सारा जोर इस सड़नको दूर करनेकी ही ओर लग रहा था। १८८५ के कानूनको रद कराना तो अब दूरका लक्ष्य हो गया था। तात्कालिक कार्य एशियाटिक विभागके रूपमें जो बाढ़ हमारी ओर चढ़ी आ रही थी उससे अपना बचाव करना था। लार्ड मिलनर, लार्ड सेलबोर्न जो वहां आये थे, सर आर्थर लॉली जो ट्रांसवालमें लफ्टिनेंट गवर्नर थे और पीछे मद्रासके गवर्नर हुए, इन तथा इनसे नीचेकी श्रेणीके अधिकारियोंके पास भी शिष्टमण्डल गये। मैं अकेले भी अकसर उनसे मिलता। थोड़ीबहुत राहत भी मिलती। पर वह सभी फटे कपड़ेमें पैवंद लगा देना जैसा था। लुटेरे हमारा सारा धन हर लें और पीछे

हम गिड़गिड़ावें तो उसमेंसे कुछ लौटा दें, इसमें हम जिस प्रकारका सन्तोष मान सकते हैं कुछ वैसा ही संतोष हमें मिलता। जिन अहलकारोंके बरखास्त किये जानेकी बात ऊपर लिख चुका हूं उनपर इस आन्दोलनके फलस्वरूप ही मुकदमा चलाया गया। भारतीयोंके प्रवेशके विषयमें जो आशंका होनेकी बात पहले बता चुका हूं वह सही निकली। गोरोंको परवाना लेना जरूरी नहीं रहा; पर हिंदुस्तानियोंके लिए उसकी पख लगी ही रही। ट्रांसवालकी पुरानी बोअर सरकारने जैसे कड़े कानून बनाये थे वैसी कड़ाईसे उनपर अमल नहीं होता था। यह कुछ उसकी उदारता या भलमनसाहत नहीं थी, बल्कि उसका शासन-विभाग लापरवाह था और इस विभागके अधिकारी भले हों तो भलमनसी बरतनेका उन्हें जितना अवकाश पिछली सरकारकी अधीनतामें था उतना ब्रिटिश सरकारकी मातहतीमें नहीं था। ब्रिटिश राज्यतंत्र पुराना होनेसे दृढ़ और व्यवस्थित हो गया है और अफसरों-अहलकारोंको उसमें यंत्रकी तरह काम करना पड़ता है; क्योंकि उनके ऊपर एकके बाद एक चढ़ते-उतरते अंकुश लगे हुए हैं। इससे ब्रिटिश विधानमें राज्यपद्धति उदार हो तो प्रजाको उसकी उदारताका अधिक-से-अधिक लाभ मिल सकता है और अगर वह पद्धति जुल्म करनेवाली या कंजूस हो तो इस नियंत्रित शासनतंत्रमें उसका दबाव भी वह पूरा-पूरा अनुभव करती है। इसकी उलटी स्थिति ट्रांसवालकी पुरानी शासन-व्यवस्था जैसे राज्यतंत्रमें होती है। उदार कायदे-कानूनका लाभ मिलना न मिलना अधिकांशमें उस विभागके अधिकारियोंके भले-बुरे होनेपर अवलंबित होता है। अतः जब ट्रांसवालमें ब्रिटिश राज्य स्थापित हुआ तो भारतीयोंसे संबंध रखनेवाले सभी कानूनोंपर उत्तरोत्तर अधिक कड़ाईसे अमल होने लगा। पकड़से बचनेके जो रास्ते पहले खुले रह

गये थे वे सब बन्द कर दिये गये। यह तो हम देख ही चुके हैं कि एशियाटिक विभागकी नीति कड़ाईकी होनी ही चाहिए थी। अतः पुराने कानून कैसे रद करायें जायं, यह सवाल तो अलग रहा, पर उनकी कठोरता अमलमें नरम कैसे कराई जा सकती है, फिलहाल तो इसी दृष्टिसे भारतीय जनताको प्रयत्न करना रहा।

एक सिद्धांतकी चर्चा जल्दी या देरसे हमें करनी ही होगी और इस जगह कर देनेसे आगे पैदा होनेवाली परिस्थिति और भारतीय दृष्टिविन्दुको समझनेमें कुछ आसानी हो सकती है। ज्योंही ट्रांसवाल और औरेंज फ्री स्टेटमें ब्रिटिश पताका फहराने लगी, लार्ड मिल्नरने एक कमेटी नियुक्त की। उसका काम था दोनों राज्योंके पुराने कानूनोंकी जांचकर ऐसे कानूनोंकी सूची तैयार करना जो प्रजाके अधिकारपर प्रतिबंध लगाते हों या ब्रिटिश विधानके तत्वके विरुद्ध हों। भारतीयोंकी स्वतंत्रतापर आघात करनेवाले कानून भी साफ-तौरसे इस सूचीमें आते थे। पर यह कमेटी नियुक्त करनेमें लार्ड मिल्नरका उद्देश्य हिंदुस्तानियोंके कष्टोंका नहीं, बल्कि अंग्रेजोंके कष्टोंका निवारण था। जिन कानूनोंसे अप्रत्यक्ष रीतिसे अंग्रेजोंको बाधा होती थी उन्हें जितनी जल्दी हो सके रद कर देना उनका उद्देश्य था। कमेटीकी रिपोर्ट बहुत ही थोड़े समयमें तैयार हो गई और छोटे-बड़े कितने ही कानून जो अंग्रेजोंके स्वार्थके विरोधी थे, कह सकते हैं कि कलमके एक ही फर्राटेमें रद कर दिये गए।

इसी कमेटीने भारतीय विरोधी कानूनोंको भी छांटकर अलग किया। वे एक पुस्तकके रूपमें छापे गये, जिसका उपयोग या हमारी दृष्टिसे दुरुपयोग एशियाटिक विभाग आसानीसे करने लगा।

अब अगर भारतीय विरोधी कानून बिना हिंदुस्तानियोंका

नाम उनमें रखे और इस ढंगपर बनाये गए हों कि वे खास तौरसे उन्हींके खिलाफ न हों; बल्कि सबपर लागू होते हों, सिर्फ उनपर अमल करना न करना अधिकारीकी मर्जीपर छोड़ा गया हो, या उन कानूनोंके अंदर ऐसे प्रतिबंध रखे गये हों जिनका अर्थ तो सार्वजनिक हो; पर उनकी अधिक चोट हिंदुस्तानियोंपर ही पड़ती हो, तो ऐसे कानूनोंसे भी कानून बनानेवालोंका अर्थ सिद्ध हो सकता था और फिर भी वे सार्वजनिक रूपसे लागू होनेवाले कहे जाते। उनसे किसीका अपमान न होता और कालक्रमसे जब विरोधका भाव नरम हो जाता तब कानूनमें कोई हेरफेर किये बिना, केवल उदार दृष्टिसे उसपर अमल होनेसे, जिस जाति-वर्गके विरुद्ध वह कानून बना होता वह बच जाता। जिस प्रकार दूसरी श्रेणीके कानूनोंको मैंने सार्वजनिक कानून कहा है, वैसे ही पहले प्रकारके कानूनोंको एकदेशीय या जातीय कानून कह सकते हैं। दक्षिण अफ्रीकामें उन्हें रंग-भेदकारी कानून कहते हैं, इसलिए कि उनमें चमड़ेके रंगका भेद करके काले या गेहुंआ रंगके चमड़ेवाली जनतापर गोरोंके मुकाबले अधिक अंकुश रखा जाता है।

जो कानून बन चुके थे उनमेंसे ही एक मिसाल लीजिये। पाठकोंको याद होगा कि मताधिकार (हरण) का जो पहला कानून नेटालमें पास हुआ और जो पीछे साम्राज्य सरकार द्वारा रद कर दिया गया उसमें इस आशयकी धारा थी कि एशियाई मात्रको आगेसे चुनावमें मत देनेका अधिकार न होगा। अब ऐसे कानूनको बदलना हो तो लोकमतको इतना शिक्षित करना होगा कि अधिकांश जन एशियाइयोंसे द्वेष करनेके बदले उनकी ओर मित्रभाव रखनेवाले हो जायं। जब ऐसा सुअवसर आये तभी नया क़ानून बनाकर यह रंगका दाग दूर किया जा सकता है। यह हुआ एकदेशीय या रंग-भेद करनेवाले

कानूनका दृष्टान्त। अब ऊपर बताया हुआ कानून रद होकर उसकी जगहपर जो दूसरा कानून बना उसमें भी मूल उद्देश्यकी लगभग रक्षा कर ली गई थी, फिर भी वह सार्वजनिक था और रंग-भेदका डंक उसमेंसे दूरकर दिया गया था। इस कानूनकी एक दफाका भावार्थ यह है : "जिस देशकी जनताको 'पार्लमेंटरी फ्रेंचाइज' अर्थात् ब्रिटिश जनताको अपनी साधारण सभा-सदस्यके चुनावमें मत देनेका जैसा अधिकार प्राप्त है वैसा मताधिकार नहीं है उस देशका निवासी नेटालमें मताधिकारी नहीं हो सकता।" इसमें कहीं भी हिंदुस्तानी या एशियाईका नाम नहीं आता। हिंदुस्तानमें इंगलैंडका-सा मताधिकार है या नहीं, इस विषयमें विधान-शास्त्री तो भिन्न-भिन्न मत देंगे। पर दलीलकी खातिर मान लीजिये कि हिंदुस्तानमें उस वक्त यानी १८९४ में मताधिकार नहीं था या आज भी नहीं है, फिर भी नेटालमें मताधिकारियों—वोटके अधिकारियोंके नाम दर्ज करनेवाला अधिकारी हिंदुस्तानियोंका नाम वोटर-सूचीमें लिख ले तो यकायक कोई यह नहीं कह सकता कि उसने गैरकानूनी काम किया। सामान्य अनुमान सदा प्रजाके अधिकारकी ओर किया जाता है। अतः उस वक्तकी सरकार जबतक विरोध करनेका इरादा न करले तबतक ऊपर लिखे हुए कानूनके मौजूद रहते हुए भी भारतीयों और दूसरोंके नाम वोटर-सूचीमें दर्ज किये जा सकते हैं अर्थात् कुछ दिनोंमें नेटालमें हिंदुस्तानीसे नफरत करनेका भाव घट जाय, वहांकी सरकार हिंदुस्तानियोंका विरोध न करना चाहे तो कानूनमें कुछ भी फेरफार किये बिना हिंदुस्तानियोंके नाम वोटरोंके रजिस्टरमें दर्ज किये जा सकते हैं। सामान्य या सार्वजनिक कानूनकी यह खूबी होती है। ऐसी और मिसालें दक्षिण अफ्रीकाके उन कानूनोंसे दी जा सकती हैं जिनका जिक्र पिछले प्रकरणोंमें किया जा चुका है। इसलिए

बुद्धिमानीकी राजनीति यही मानी जाती है कि एकदेशीय——वर्ग या जाति विशेषपर ही लागू होनेवाले——कानून कम-से-कम बनाये जायं। बिलकुल ही न बनाना तो सर्वोत्कृष्ट नीति है। कोई कानून जब एक बार बन गया तो उसे बदलनेमें अनेक कठिनाइयां आती हैं। लोकमत जब बहुत शिक्षित समझदार हो जाय तभी कोई कानून रद किया जा सकता है। जिस लोकतंत्रमें सदा कानूनोंमें रद्दोबदल होती रहती है वह लोकतंत्र सुव्यवस्थित नहीं माना जा सकता।

ट्रांसवालमें एशियाइयोंके खिलाफ जो कानून बने थे उनमें भरे हुए जहरका अन्दाजा अब हम अधिक अच्छी तरह कर सकते हैं। ये सारे कानून एकदेशीय थे। इनके अनुसार एशियावासी चुनावमें मत नहीं दे सकता था। सरकारने जो रकबे या महल्ले ठहरा दिये थे उनके बाहर न जमीन खरीद सकता था और न रख सकता था। इन कानूनोंके रद हुए बिना अधिकारी वर्ग हिंदुस्तानियोंकी मदद कर ही नहीं सकता था। ये कानून सार्वजनिक नहीं थे। इसीसे लार्ड मिल्नरकी कमेटी उन्हें अलग छांट सकी थी। वे सार्वजनिक होते तो दूसरे कानूनोंके साथ वे सब कानून भी रद हो गये होते, जिनमें एशियाइयोंका नाम तो खासतौरसे नहीं लिया गया है, पर जिनका अमल उन्हींके खिलाफ होता था। अधिकारीवर्ग यह तो कह ही नहीं सकता था——"हम क्या कर सकते हैं? हम लाचार हैं। जबतक नई धारा सभा इन कानूनोंको रद नहीं कर देती तबतक हमें तो उनको अमलमें लाना ही होगा।"

जब ये कानून एशियाटिक महकमेके हाथमें आये तो उसने उनपर पूरे तौरसे अमल करना शुरू किया। इतना ही नहीं, शासक-मंडल अगर उन कानूनोंको अमल करने योग्य माने तो उनमें जो त्रुटियाँ छूट गई हों, बचावके रास्ते रह गये

हों, उन्हें बंद कर देनेके नये अधिकार भी उसे प्राप्त करने ही होंगे। दलील तो सीधी-सादी मालूम होती है। कानून अगर बुरे हैं तो उन्हें रद कर देना चाहिए और अच्छे हैं तो उनमें जो त्रुटियां रह गई हों उन्हें दूर कर देना चाहिए। कानूनोंपर अमल करानेकी नीति शासक-मंडलने स्वीकार कर ली थी। भारतीय जनता बोअर-युद्धमें अंग्रेजोंके कंधे-से-कंधा सटाकर खड़ी हुई थी और जानकी जोखिम उठाई थी, पर यह तो तीन-चार बरसकी पुरानी बात हो गई थी। ट्रांसवालका ब्रिटिश राजदूत भारतीय जनताका पक्ष लेकर लड़ा था, यह भी पुराने राजतंत्रकी बात थी। युद्धके कारणोंमें भारतीयोंके कष्ट भी बताये गये थे; पर यह ऐसे अधिकारियोंकी घोषणा थी जो दूरदर्शितासे रहित और स्थानीय अनुभवसे कोरे थे। स्थानीय अनुभवने तो स्थानीय अधिकारियोंको साफ बता दिया कि बोअर-राज्यमें हिंदुस्तानियोंके खिलाफ जो कानून बनाये गये थे वे न यथेष्ट थे और न व्यवस्थित। हिंदुस्तानी जब जीमें आये ट्रांसवालमें घुस आयें और जहां जैसे जीमें आये रोजगार करने लगें तब तो अंग्रेज व्यापारियोंकी भारी हानि होगी। इन और ऐसी दूसरी दलीलोंने गोरों और उनके प्रतिनिधि शासक-मंडलके दिमागपर कसकर कब्जा जमाया। गोरे कम-से-कम समयमें अधिक-से-अधिक पैसा इकट्ठा कर लेना चाहते थे। हिंदुस्तानी इसमें थोड़ा भी हिस्सा बटाएं, यह उन्हें कब पसन्द आता? राजनीतिमें तत्त्वज्ञानका ढोंग भी घुसा। दक्षिण अफ्रीकाके बुद्धिमान पुरुषोंका सन्तोष निरी बनियाशाही, अपने लाभ, स्वार्थकी दलीलसे नहीं हो सकता था। अन्याय करनेके लिए भी मानव-बुद्धि सदा ऐसी दलीलें ढूंढ़ती है जो उसे ठीक लगे। दक्षिण अफ्रीकाकी बुद्धिने भी यही किया। जनरल स्मट्स आदिने जो दलीलें दीं वे इस प्रकार थीं :

"दक्षिण अफ्रीका पश्चिमकी सभ्यताका प्रतिनिधि है। हिंदुस्तान पूर्वकी सभ्यताका केंद्र-स्थान है। दोनों सभ्यताओंका सम्मिलन हो सकता है, इस बातको इस जमानेके तत्त्वज्ञानी तो स्वीकार नहीं करते। इन दोनों सभ्यताओंकी प्रतिनिधि जातियोंका छोटे समुदायोंमें भी संगम हो तो इसका परिणाम विस्फोटके सिवा और कुछ नहीं हो सकता। पश्चिम सादगीका विरोधी है, पूर्वके लोग सादगीको प्रधान पद देते हैं। इन दोनोंका मेल कैसे हो सकता है? इन दोनोंमें कौन सभ्यता अधिक अच्छी है, यह देखना राजकाजी अर्थात् व्यावहारिक पुरुषोंका काम नहीं। पश्चिमकी सभ्यता अच्छी हो या बुरी; पर पश्चिमकी जनता उसे ही अपनाये रहना चाहती है। उस सभ्यताके रक्षार्थ पश्चिमकी जनताने अथक प्रयत्न किया है। खूनकी नदियां बहाई हैं। अनेक प्रकारके दूसरे दुःख सहे हैं। अतः पश्चिमकी जनताको अब दूसरा रास्ता नहीं सूझनेका। इस दृष्टिसे देखा जाय तो हिंदुस्तानी और गोरोंका सवाल न व्यापारद्वेषका है और न वर्णद्वेषका। केवल अपनी सभ्यताके रक्षणका, अर्थात् आत्मरक्षाके उच्चतम अधिकारके उपयोग और उससे प्राप्त कर्तव्यके पालनका सवाल है। हिंदुस्तानियोंके दोष निकालना भाषणकर्ताओंको लोगोंको भड़कानेके लिए भले ही रुचता हो, पर राजनैतिक दृष्टिसे विचार करनेवाले तो यही मानते और कहते हैं कि भारतीयोंके गुण ही दक्षिण अफ्रीकामें दोषरूप हो रहे हैं। अपनी सादगी, अपने लंबे समयतक श्रम करनेके धैर्य, अपनी किफायतशारी, अपनी परलोक-परायणता, अपनी सहनशीलता, इत्यादि गुणोंके कारण ही हिंदुस्तानी दक्षिण अफ्रीकामें अप्रिय हो रहे हैं। पश्चिमकी जनता साहसिक, अधीर, दुनियवी आवश्यकताओंको बढ़ाने और उन्हें पूरी करनेमें मग्न, खाने-पीनेकी शौकीन, शरीरश्रम बचानेको आतुर और उड़ाऊ

स्वभावकी है। इससे उसे यह डर रहता है कि पूर्वकी सभ्यताके हजारों प्रतिनिधि दक्षिण अफ्रीकामें बस गये तो पश्चिमके लोगोंका पछाड़ा जाना निश्चित ही है। इस आत्मघातके लिए दक्षिण अफ्रीकामें बसनेवाली पश्चिमकी जनता हर्गिज तैयार नहीं हो सकती और इस जनताके हिमायती उसे इस खतरेमें कभी नहीं पड़ने देंगे।"

मैं समझता हूं, भले-से-भले और चरित्रवान् यूरोपियन इस दलीलको जिस शक्लमें पेश करते हैं मैंने उसी रूपमें निष्पक्षभावसे यहां उसे उपस्थित किया है। मैं ऊपर इस दलीलको तत्त्वज्ञानका ढोंग बता आया हूं; पर इससे मैं यह सूचित करना नहीं चाहता कि इस दलीलमें कुछ भी सार नहीं है। व्यावहारिक दृष्टि, अर्थात् तात्कालिक स्वार्थ-दृष्टिसे तो उसमें बहुत-कुछ सार है; पर तात्त्विक दृष्टिसे वह निरा ढोंग है। मेरी छोटीसी अक्लको तो यही दिखाई देता है कि तटस्थ मनुष्यकी बुद्धि ऐसे निर्णयको स्वीकार नहीं कर सकती। कोई सुधारक अपनी सभ्यताको वैसी असहाय स्थितिमें नहीं डालेगा जैसी स्थितिमें ऊपरकी दलीलें देनेवालोंने अपनी सभ्यताको डाल दिया है। पूर्वके किसी तत्त्वज्ञानीको यह भय होता हो कि पश्चिमकी जनता पूर्वके साथ आजादीसे मिले-जुले तो पूर्वकी सभ्यता पश्चिमकी बाढ़में बालूकी तरह बह जायगी। यह मैं नहीं जानता। पूर्वके तत्त्वज्ञानको जहांतक मैं समझ पाया हूं, मुझे तो यही दिखाई देता है कि पूर्वकी सभ्यता पश्चिमके स्वतंत्र संगमसे निर्भय रहती है। यही नहीं, वैसे सम्पर्कका स्वागत करती है। इसकी उलटी मिसालें पूर्वमें दिखाई दें तो जिस सिद्धांतका प्रतिपादन मैंने किया है उसको इससे आंच नहीं आती, क्योंकि मैं मानता हूं कि इस सिद्धांतके समर्थनमें अनेक दृष्टान्त दिये जा सकते हैं। कुछ भी हो, पश्चिमके तत्त्वज्ञानियोंका दावा तो यह है कि

पश्चिमकी सभ्यताका मूल सिद्धांत यही है कि पशुबल सर्वोपरि है और इसीसे इस सभ्यताके हिमायती पशुबलके रक्षणमें अपने समयका अधिक-से-अधिक भाग लगाते हैं। उनका तो यह भी सिद्धांत है कि जो राष्ट्र अपनी आवश्यकताएं नहीं बढ़ाता उसका अंतमें नाश होना निश्चित है। इसी सिद्धांतका अनुसरण करके तो पश्चिमकी जातियां दक्षिण अफ्रीकामें बसी हैं और अपनी संख्याकी तुलनामें सैकड़ों गुना बड़ी तादादवाले हबशियोंको अपने वशमें कर लिया है। उन्हें हिंदुस्तानकी रंक जनताका भय हो ही कैसे सकता है? इस सभ्यताकी दृष्टिसे वस्तुतः उन्हें कुछ भी भय नहीं है, इसका सबसे बड़ा सबूत तो यह है कि हिंदुस्तानी अगर सदाके लिए दक्षिण अफ्रीकामें मजदूर बनकर ही रहते तो उनके बसनेके विरुद्ध कोई आन्दोलन उठा ही नहीं होता।

अतः जो चीज बाकी रह जाती है वह है केवल व्यापार और वर्ण। हजारों यूरोपियनोंने लिखा और कबूल किया है कि हिंदुस्तानियोंका व्यापार छोटे अंग्रेज व्यापारियोंके लिए हानिकर है और गेंहुए रंगसे नफरत तो फिलहाल गोरे चमड़ेवाली जातियोंकी हड्डी-हड्डीमें व्याप्त हो गई है। उत्तरी अमरीकामें कानूनमें सबका बराबर हक है, पर वहां भी बुकरटी वाशिंगटन जैसा पुरुष, जिसने ऊंची-से-ऊंची पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त की थी, जो अतिशय चरित्रवान और ईसाई धर्मको माननेवाला था और जिसने पश्चिमकी सभ्यताको पूरे तौरपर अपना लिया था, राष्ट्रपति रूजवेल्टके दरबारमें न जा सका और न आज तक जा सकता है। वहांके हबशियोंने पश्चिमी सभ्यताको स्वीकार कर लिया है। वे ईसाई भी बन गये हैं; पर उनका काला चमड़ा उनका अपराध है और उत्तरी अमरीकामें अगर लोक व्यवहारमें उनका तिरस्कार किया जाता है तो दक्षिण अमरीकामें अपराधके संदेह-

मात्रसे गोरे उन्हें जिंदा जला देते हैं। दक्षिण अमरीकामें इस दंडनीतिका एक खास नाम भी है जो आज अंग्रेजी भाषाका प्रचलित शब्द हो गया है। वह है 'लिंच-ला।' लिंच-ला के मानी उस दंडनीतिके हैं जिसके अनुसार पहले सजा दी जाती है, पीछे अपराधका विचार किया जाता है। यह प्रथा लिंच नामके व्यक्तिसे चली है। अतः उसीके नाम पर इसका नामकरण हुआ है।

इस विवेचनसे पाठक देख सकते हैं कि ऊपर दी हुई तात्त्विक मानी जानेवाली दलीलमें अधिक तत्त्व या सार नहीं है। पर वे यह अर्थ भी न करें कि यह दलील देनेवाले सभी लोग उसे झूठी जानते हुए भी पेश करते हैं। उनमेंसे बहुतेरे सचाईके साथ मानते हैं कि उनकी दलील तात्त्विक है। हो सकता है कि हम वैसी स्थितिमें हों तो हम भी वैसी ही दलील पेश करें। कुछ ऐसे ही कारणोंसे 'बुद्धिः कर्मानुसारिणी' कहावत निकली होगी। इसका अनुभव किसको नहीं हुआ होगा कि हमारी अन्तर्वृत्ति जैसी बनी हो वैसी ही दलीलें हमें सूझा करती हैं और वे दूसरेके गले न उतरें तो हमें असन्तोष, अधीरता और अन्तमें रोष भी होता है।

इतनी बारीकीमें मैं जानबूझकर गया हूं। मैं चाहता हूं कि पाठक भिन्न-भिन्न दृष्टियोंको समझें और जो अबतक वैसा न करते आये हों वे भिन्न-भिन्न दृष्टियोंको समझने और उनका आदर करनेकी आदत डालें। सत्याग्रहका रहस्य समझने और खासकर इस अस्त्रको आजमानेके लिए ऐसी उदारता और ऐसी सहनशक्तिकी अति आवश्यकता है। इसके बिना सत्याग्रह हो ही नहीं सकता। यह पुस्तक कुछ लिखनेके शौकसे तो लिखी नहीं जा रही है। दक्षिण अफ्रीका-के इतिहासका एक प्रकरण जनताके आगे रखना भी उसका उद्देश्य नहीं। मेरा हेतु तो यह है कि जिस वस्तुके लिए मैं जीता

हूं, जीना चाहता हूं और यह मानता हूं कि जिसके लिए मरनेको भी उतना ही तैयार हूं, वह वस्तु कैसे पैदा हुई, उसका पहला सामुदायिक प्रयोग किस तरह किया गया, इसको सारी जनता जाने, समझे और जहांतक पसन्द करे और उसकी शक्ति हो वहांतक उसे अमलमें भी लाये।

अब हम अपनी कहानीको फिर चलायें। हम यह देख चुके कि ब्रिटिश शासनाधिकारियोंने यह निर्णय किया कि ट्रांसवालमें नये आनेवाले हिंदुस्तानियोंको रोकें और पुराने बाशिन्दोंकी स्थिति ऐसी कठिन कर दें कि वे ऊबकर ट्रांसवाल छोड़ दें और न छोड़ें तो लगभग मजदूर बनकर ही रह सकें। दक्षिण अफ्रीकाके महान् माने जानेवाले कितने ही राजपुरुष एकाधिक बार कह चुके हैं कि इस देशमें हिंदुस्तानी लकड़हारे और पानी भरने वालेके रूपमें ही खप सकते हैं। ऊपर जिस एशियाटिक विभागकी चर्चा की गई है उसके अधिकारियोंमें मि० लायनल कर्टिस भी थे जो हिंदुस्तानमें रह चुके थे और दो अमली शासन पद्धति (डायर्की) की खोज और प्रचार करनेवालेके रूपमें प्रसिद्ध हैं। वह एक कुलीन घरानेके नौजवान हैं। कम-से-कम उस वक्त, १९०५-६ में तो नौजवान ही थे। लार्ड मिलनरके विश्वासपात्र थे। हर कामको शास्त्रीय पद्धतिसे ही करनेका दावा करते थे, पर उनसे भारी भूलें भी हो सकती थीं। जोहान्सबर्गकी म्युनिसिपैलिटीको अपनी एक ऐसी ही गलतीसे १४ हजार पौंडके घाटेमें डाल दिया था। उन्होंने इस बातकी खोज की कि नये हिंदुस्तानियोंका आना रोकना हो तो इस बारेमें सरकारका पहला कदम यह होना चाहिए कि हरएक पुराने हिंदुस्तानीका नाम-पता इस तौरपर दर्ज कर लिया जाय कि उसके बदले दूसरा इस देशमें दाखिल न हो सके और हो तो तुरंत पकड़ लिया जाय। ट्रांस-

वालमें अंग्रेजी राज्य कायम होनेके बाद हिंदुस्तानियोंके लिए जो परवाने निकाले गए थे उनमें उनके हस्ताक्षर और जो हस्ताक्षर न कर सकें तो उनके अंगूठे की निशानी ली जाती थी। पीछे किसी अधिकारीने सुझाया कि उनका फोटो भी ले लिया जाय। यों फोटो, अंगूठेकी निशानी और दस्तखत तीनों लिए जाने लगे। इसके लिए किसी कानून-कायदेकी जरूरत तो थी नहीं, अतः नेताओंको तुरंत इसकी खबर भी नहीं हो सकी। धीरे-धीरे उन्हें इन नवीनताओंकी खबर हुई। जनताकी ओरसे अधिकारियोंके पास आवेदनपत्र भेजे गए, शिष्ट-मण्डल भी भेजे गए। अधिकारियोंकी दलील यह थी कि चाहे जो आदमी चाहे जिस रीतिसे इस देशमें दाखिल हो जाय, यह हमसे सहन नहीं हो सकता। अतः सभी हिंदुस्तानियोंके पास एक ही तरहका परवाना होना चाहिए और उसमें इतना ब्योरा होना चाहिए कि परवाना पानेवाल असल आदमी ही उसके जरिए इस देशमें दाखिल हो सकें, दूसरा कोई नहीं। मैंने यह सलाह दी कि गोकि कोई कानून तो ऐसा नहीं है जिसकी रूसे हम ऐसे परवाने रखनेको बंधे हों, फिर भी जबतक शांति-रक्षा कानून मौजूद है तबतक ये लोग हमसे परवाना तो मांग ही सकते हैं। जैसे हिंदुस्तानमें भारतरक्षा कानून (डिफेंस आव इंडिया ऐक्ट)था वैसे ही दक्षिण अफ्रीकामें शांति-रक्षा कानून (पीस प्रिजर्वेशन आर्डिनेंस) था और जैसे हिंदुस्तानमें भारत-रक्षा कानून महज जनताको तंग करनेके लिए ही लंबी मुद्दततक कायम रखा गया वैसे ही यह शांति-रक्षा कानून भी महज हिंदुस्तानियोंको हैरान करनेके लिए रख छोड़ा गया था। गोरोंके ऊपर एक तरहसे उसका अमल बिलकुल ही नहीं होता था। अब अगर परवाना लेना ही हो तो उसमें पहचानकी कोई निशानी तो होनी ही चाहिए। इसलिए जो लोग अपना नाम न लिख सकते हों उनका अंगूठे-

की निशानी लगाना ठीक ही था। पुलिसवालोंने यह बात ढूंढ़ निकाली है कि दो आदमियोंकी उंगलियोंकी रेखाएं एकसी होती ही नहीं। उनके रूप और संख्याका उन्होंने वर्गीकरण किया है और इस शास्त्रके जानकार दो अंगूठोंकी छापकी तुलना करके एक-दो मिनटमें ही कह सकते हैं कि वे अलग-अलग आदमियोंके अंगूठेकी हैं या एक ही आदमीके अंगूठेकी। फोटो देना मुझे तो तनिक भी पसंद नहीं था और मुसलमानोंकी दृष्टिसे तो इसमें धार्मिक आपत्ति भी थी।

अन्तमें अधिकारियोंके साथ हमारी बातचीतके फलस्वरूप यह तै पाया कि हरएक हिंदुस्तानी अपना पुराना परवाना देकर उसके बदलेमें नये नमूनेके परवाने बनवाले और नये आनेवाले हिंदुस्तानी नये नमूनेके परवाने ही लें। यह करना हिंदुस्तानियोंका कानूनन फर्ज नहीं था, पर इस आशासे लगभग सभी भारतीयोंने अपनी खुशीसे फिरसे परवाने लेना मंजूर कर लिया कि कहीं उनपर नई रुकावटें न लगादी जायं, दूसरे वे दुनियाको यह दिखा देना चाहते थे कि भारतीय जनता धोखा देकर किसीको इस देशमें नहीं घुसाना चाहती और शांतिरक्षा कानूनका उपयोग नये आनेवाले हिंदुस्तानियोंको हैरान करनेके लिए न किया जायगा। यह कोई ऐसी-वैसी बात न थी। जो काम करना हिंदुस्तानियोंको कानूनसे तनिक भी फर्ज नहीं था उसे उन्होंने पूरे एका और बड़ी ही शीघ्रतासे कर दिखाया। यह उनकी सचाई, व्यवहार-कुशलता, भलमनसी, समझदारी और नम्रताका चिह्न था। इस कामसे भारतीय जनताने यह भी साबित कर दिया कि ट्रांसवालके किसी भी कानूनका किसी भी रीतिसे उल्लंघन करना वह चाहती ही नहीं। हिंदुस्तानी समझते थे कि जिस सरकारके साथ जो जनसमाज इतनी भलमनसीका बरताव करेगा वह उसे अपनायेगी, अपना विशेष प्रेमपात्र समझेगी। ट्रांसवालकी ब्रिटिश सर-

कारने इस भारी भलमनसीका बदला किस प्रकार दिया, इसे हम अगले प्रकरणमें देखेंगे।

: ११ :

भलमनसीका बदला—ख़ूनी कानून

परवानोंका रद्दोबदल होनेतक हम १९०६ में प्रवेश कर चुके थे। १९०३ में मैं ट्रांसवालमें फिर दाखिल हुआ था। उस सालके लगभग मध्यमें मैंने जोहान्सबर्गमें दफ्तर खोला। यानी दो बरस ऐशियाटिक महकमेके हमलोंका सामना करनेमें ही गये। हम सबने मान लिया था कि परवानोंका झगड़ा तै होते ही सरकारको पूरा संतोष हो जायगा और भारतीय जनताको कुछ शांति मिलेगी। पर उसके भाग्यमें शांति थी ही नहीं। मि० लायनल कर्टिसका परिचय पिछले प्रकरणमें दे चुका हूं। उन्होंने सोचा कि हिंदुस्तानियोंके नये परवाने ले लेनेसे ही गोरोंका उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। उनकी दृष्टिसे बड़े कामोंका आपसके समझौतेसे होना ही काफी नहीं था। ऐसे कामोंके पीछे कानूनका बल होना चाहिए। तभी उनकी शोभा है और उनके मूलभूत सिद्धातोंकी रक्षा हो सकती है। मि० कर्टिसका विचार था कि हिंदुस्तानियोंको जकड़नेके लिए कोई ऐसा काम किया जाय जिसका असर सारे दक्षिण अफ्रीकापर पड़े और अंतमें दूसरे उपनिवेश भी उसका अनुकरण करें। उनकी रायमें जबतक दक्षिण अफ्रीकाका एक भी दरवाजा हिंदुस्तानियोंके लिए खुला रहेगा तबतक ट्रांसवाल सुरक्षित नहीं माना जा सकता। फिर उनकी दृष्टिसे सरकार और भारतीय जनताके बीच समझौता होनेसे तो भारतीय जनताकी प्रतिष्ठा और बढ़ जाती थी। उनका

इरादा इस प्रतिष्ठाको बढ़ानेका नहीं, बल्कि घटानेका था। उनको हिंदुस्तानियोंकी रजामंदीकी जरूरत नहीं थी। वह तो चाहते थे उनपर बाहरी प्रतिबंध लगाकर उन्हें थर्रा देना। अतः उन्होंने एशियाटिक ऐक्टका मसविदा बनाया और सरकारको सलाह दी कि जबतक इस मसविदेके अनुसार कानून बनकर तैयार नहीं हो जाता तबतक हिंदुस्तानियोंका लुक-छिपकर ट्रांसवालमें दाखिल होना रोका नहीं जा सकता और जो इस तरह यहां पहुंच जायं उन्हें निकाल बाहर करनेकी प्रचलित कानूनोंमें कोई व्यवस्था नहीं है। मि० कर्टिसकी दलीलें और मसविदा सरकारको पसंद आया और उसने इस मसविदेके अनुरूप बिल ट्रांसवालकी धारा सभामें पेश करनेके लिए ट्रांसवालके सरकारी गजटमें प्रकाशित कर दिया।

इस बिलकी तफसीलमें जानेके पहले एक महत्त्वकी घटना-की चर्चा थोड़े शब्दोंमें कर देना आवश्यक है। सत्याग्रहकी प्रेरणा करनेवाला मैं ही हूं। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि पाठक मेरी स्थितियोंको पूरी तरह समझलें। यों जब ट्रांसवालमें हिंदुस्तानियोंपर प्रतिबंध लगानेके प्रयत्न हो रहे थे, नेटालमें वहांके हबशियों—जुलू लोगोंने बगावत कर दी। इस झगड़ेको बगावत कह सकते हैं या नहीं, इस बारेमें मुझे शंका थी और आज भी है। फिर भी नेटालमें इस घटनाका परिचय सदा इसी नामसे दिया गया है। इस मौकेपर भी नेटालमें रहनेवाले बहुतसे गोरे इस विप्लवको शांत करनेमें सहायता देनेके लिए स्वयंसेवकके रूपमें सेनामें भरती हुए। मैं भी नेटालका ही निवासी माना जाता था। इसलिए मैंने सोचा कि मुझे भी उसमें काम करने चाहिए। भारतीय जनताकी अनुमति प्राप्तकर मैंने सरकारको लिखा कि घायलों-की सेवा करनेवाली एक छोटी-सी टुकड़ी खड़ी करनेकी

इजाजत मुझे दे दी जाय। सरकारने प्रस्ताव स्वीकार किया। अतः मैंने ट्रांसवालका घर तोड़ दिया। बालबच्चोंको नेटालमें उस खेतपर भेज दिया जहांसे 'इंडियन ओपीनियन' नामका साप्ताहिक अखबार निकाला जाता था और जहां मेरे सहकारी रहते थे। दफ्तर कायम रखा, क्योंकि मैं जानता था कि मुझे इसमें बहुत दिन नहीं लगेंगे।

२०-२५ आदमियोंकी छोटीसी टुकड़ी खड़ी करके मैं फौजमें शामिल हो गया। इस छोटी-सी टुकड़ीमें भी लगभग सभी जातियोंके भारतीय थे। इस टुकड़ीको एक महीने सेवा करनी पड़ी। हमें जो काम सौंपा गया उसको मैंने सदा ईश्वरका अनुग्रह माना है। मैंने देखा कि जो हबशी जख्मी होते थे उन्हें हम ही उठायें तो वे उठें, नहीं तो वहीं पड़े सड़ा करें। इन जख्मियोंके जख्मोंकी मरहम-पट्टी करनेमें कोई भी गोरा हाथ न बटाता। जिस शस्त्रवैद्य डा० सैवेजकी मातहतीमें हमें काम करना था वह स्वयं अतिशय दयालु थे। घायलोंको उठाकर अस्पताल पहुंचा देनेके बाद उनकी सेवा-शुश्रूषा हमारे कार्य-क्षेत्रके बाहरकी बात हो जाती थी। पर हम तो यह सोच कर गए थे कि जो भी सेवा हमें सौंपी जाय वह हमारी कर्त्तव्य-परिधिके अन्दर ही होगी। अतः इस भले डाक्टरने हमसे कहा कि मुझे कोई भी गोरा हबशियोंकी सेवा करनेके लिए नहीं मिलता और मुझमें यह शक्ति नहीं कि किसीको इसके लिए मजबूर कर सकूं। आप यह दयाका काम करें तो आपका अहसान मानूंगा। हमने इस कामका स्वागत किया। कितने ही हबशियोंके जख्म पांच-पांच, छः-छः दिनसे साफतक नहीं किये गये थे, इससे उनसे दुर्गंध आ रही थी। इन सबको साफ करना हमारे सिर पड़ा और हमें यह सेवा बहुत रुची। हबशी हमारे साथ बात तो कर ही नहीं सकते थे; पर उनकी चेष्टाओं और उनकी आंखोंमें हम यह देख सकते थे कि उनका

मन कह रहा है कि मानों भगवानने ही हमें उनकी सहायताके लिए भेज दिया हो। इस काममें अकसर हमें चालीस-चालीस मीलकी मंजिल करनी होती।

एक महीनेमें हमारा काम समाप्त हो गया। अधिकारियों-को संतोष हुआ। गवर्नरने कृतज्ञता-प्रकाशका पत्र लिखा। हमारी टुकड़ीमें तीन गुजराती थे, जिन्हें सार्जेंटका अधिकार दिया गया था। उनके नाम जानकर गुजरातियोंको प्रसन्नता होगी। उनमें एक थे उमियाशंकर, दूसरे सुरेन्द्रराय मेढ और तीसरे हरिशंकर जोशी। तीनों कसे हुए बदनके थे और तीनोंने बड़ी कड़ी मेहनत की। दूसरे भारतीयोंके नाम मुझे इस वक्त याद नहीं आ रहे हैं। पर एक पठान भी उनमें था, यह मुझे अच्छी तरह याद है। यह भी याद है कि हम उसके बराबर बोझ उठा लेते थे और कूचमें भी उसके साथ-साथ रहते थे, यह देखकर उसे अचरज होता था।

इस टुकड़ीके कामके सिलसिलेमें मेरे दो विचार, जो अरसेसे मनमें धीरे-धीरे पक रहे थे, पूरी तरह पक गये। उनमें एक तो यह है कि सेवाधर्मका प्रधानपद देनेवालेको ब्रह्मचर्यका पालन करना ही चाहिए, दूसरा यह कि सेवाधर्म स्वीकार करनेवालेको गरीबीको सदाके लिए अपना लेना चाहिए। वह किसी ऐसे धंधेमें न लगे जिससे सेवाधर्मके पालनमें उसे कभी संकोच होनेका अवसर आये, या उसमें तनिक भी रुकावट हो सके।

मैं इस टुकड़ीमें काम कर रहा था तभी जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी ट्रांसवाल लौट आनेकी चिट्ठियां और तार आ रहे थे। अतः फिनिक्समें सब लोगोंसे मिलकर मैं तुरंत जोहान्सबर्ग पहुंचा और वहां वह बिल पढ़ा जिसके बारेमें ऊपर लिख चुका हूं। बिलवाला गजट २२ अगस्त १९०६ ई० का मैं दफ्तरसे घर ले गया था। घरके पास एक

छोटीसी पहाड़ी थी। वहां अपने साथीको लेकर इस बिलका उलथा 'इंडियन ओपीनियन' के लिए करने लगा। ज्यों-ज्यों मैं उसकी धाराओंको पढ़ता गया त्यों-त्यों मेरा कलेजा अधिकाधिक कांपने लगा। उसमें मैं भारतीयोंके द्वेषके सिवा और कुछ भी नहीं देख सका। मुझे दिखाई दिया कि अगर यह बिल पास हो गया और भारतीयोंने उसे मंजूर कर लिया तो दक्षिण अफ्रीकासे उनके पैर जड़मूलसे उखड़ जायंगे। मुझे स्पष्ट दिखाई दिया कि भारतीय जनताके लिए यह जीवन-मरणका प्रश्न है। मुझे यह भी दिखाई दिया कि अर्जी अब देने-से सफलता नहीं मिली तो वह चुप नहीं बैठ सकती। इस कानून-के सामने सिर झुकानेसे मर मिटना बेहतर है। पर मरें कैसे? भारतीय जनता किस खतरेमें कूदे या कूदनेका साहस करे कि उसके सामने विजय या मृत्यु इन दोके सिवा तीसरा रास्ता रह ही न जाय? मेरे सामने तो ऐसी संगीन दीवार खड़ी हो गई कि मुझे रास्ता सूझा ही नहीं। जिस प्रस्तावित बिलने मेरे अंतरमें इतनी हलचल मचा दी थी उसका ब्यौरा पाठकों-को जान लेना ही चाहिए। उसका सार यह है:

"ट्रांसवालमें रहनेका हक रखनेवाला हरएक भारतीय पुरुष, स्त्री और आठ बरस या इससे ऊपरका लड़का-लड़की एशियाई दफ्तरमें अपना नाम दर्ज कराके परवाना हासिल करे। यह परवाना लेते समय पुराना परवाना अधिकारी (रजिस्ट्रार) को सौंप दे। नाम दर्ज करनेकी अर्जीमें नाम, ठिकाना, जाति, उम्र आदि लिख दें। रजिस्ट्रार प्रार्थीके शरीरपर जो खास निशान हों उन्हें नोट कर लें और उसकी दसों उंगलियों और अँगूठेका निशान ले लें। जो भारतीय स्त्री-पुरुष नियत अवधिके अंदर ऐसी दर्खास्त न दे, उसका ट्रांसवालमें रहनेका हक रद हो जायगा। दर्खास्त न देना कानूनन् अपराध माना जायगा। उसके लिए जेलकी सजा

मिल सकती है, जुर्माना किया जा सकता है और अदालत उचित समझे तो देशनिकालेका दंड भी दे सकती है। बच्चोंकी ओरसे मां-बापको दरख्वास्त देनी होगी और उंगलियोंके निशान आदि लेनेके लिए उन्हें रजिट्रारके सामने हाजिर करनेकी जिम्मेदारी भी मां-बापपर होगी। मां-बापने इस कर्त्तव्यका पालन नहीं किया हो तो १६ बरसका होनेपर बालकको खुद यह फर्ज अदा करना चाहिए। उसके अदा न किये जानेपर मां-बाप जिस-जिस दंडके पात्र होते हैं उस दंडके अधिकारी १६ की उम्रको पहुंचते हुए लड़की-लड़के भी माने जायंगे। प्रार्थीको जो परवाना या रजिस्टरीका सार्टिफिकेट दिया जाय उसे हर पुलिस अफसरके सामने, जब और जहां वह मांगा जाय, पेश करना लाजिमी होगा। उसे पेश न करना अपराध माना जायगा और अदालत उसके लिए कैद या जुर्मानेकी सजा दे सकती है। राह चलते व्यक्तिसे भी परवाना पेश करनेको कहा जा सकता है। परवानेकी जांचके लिए पुलिस अफसर घरमें भी घुस सकते हैं। ट्रांसवालके बाहरसे आनेवाले भारतीय स्त्री-पुरुषको जांच करनेवाले अफसरके सामने अपना परवाना पेश करना ही होगा। कोई कामसे अदालतमें जाय या मालके दफ्तरमें व्यापार या बाइसिकिल रखनेको अनुमति-पत्र लेने जाय तो वहां भी अफसर उससे परवाना मांग सकता है। अर्थात् कोई भारतीय किसी भी सरकारी दफ्तरमें उस दफ्तरसे संबद्ध कार्यके लिये जाय तो अफसर उसकी प्रार्थना स्वीकार करनेसे पहले उससे उसका परवाना मांग सकता है। उसे पेश करने या उसे रखनेवाले व्यक्तिसे अधिकारी इस बारेमें जो कुछ पूछे उसे बतानेसे इन्कार करना भी अपराध माना जायगा और अदालत उसके लिए भी जेल या जुर्मानेकी सजा दे सकती है।"

दुनियाके किसी भी हिस्सेमें स्वतंत्र मनुष्योंके लिए इस

तरहका कानून है, इसका पता मुझे नहीं है। मैं जानता हूं कि नेटालके गिरमिटिया हिंदुस्तानियोंके लिए परवानेका कानून बहुत सख्त है पर वे बचारे तो स्वतंत्र लोग माने ही नहीं जा सकते। फिर भी कह सकते हैं कि उनके परवानेका कानून इस कानूनकी तुलनामें नरम है, और उस कानूनके तोड़नेकी सजा तो इस कानूनमें निर्दिष्ट दण्डके सामने कुछ भी नहीं है। लाखोंका कारबार करनेवाला रोजगारी इस कानूनके अनुसार देश निकालेकी सजा पा सकता है, यानी इस कानूनका भंग होनेसे उसके बिलकुल तबाह हो जानेकी स्थिति उत्पन्न हो सकती है। धैर्यवान् पाठक आगे चलकर देख सकेंगे कि इस अपराधकेलिए लोगोंको देशनिकालेकी सजा भी मिल चुकी है। जरायम पेशा जातियोंके लिए हिंदुस्तानमें कितना कड़ा कानून है। इस कानूनमें जो दसों उंगलियोंकी निशानी लेनेकी दफा थी वह तो दक्षिण अफ्रीकामें बिलकुल नई बात थी। इस विषयका कुछ साहित्य पढ़ जाना चाहिए, यह सोचकर मैं मि० हेनरी नामक पुलिस अफसर की लिखी हुई 'उंगलियोंकी निशानी' (फिंगर इंप्रेशन्स) पुस्तक पढ़ गया। उसमें मैंने देखा कि इस प्रकार कानूनन् उंगलियोंका निशान केवल अपराधियोंसे ही लिया जा सकता है। अतः जबर्दस्ती दसों उंगलियोंकी छाप लेनेकी बात मुझे अति भयानक लगी। स्त्रियोंको और वैसे ही १६ बरसके अंदरके लड़के-लड़कियोंको भी परवाना लेना होगा, यह बात इस बिलमें पहलेपहल रखी गई थी।

अगले दिन कुछ गण्यमान्य हिंदुस्तानियोंको इकट्ठा कर मैंने इस कानूनका अक्षर-अक्षर समझाया। फलतः उसका जो असर मुझपर हुआ था वही उनपर भी हुआ। उनमेंसे एक तो आवेशमें आकर बोल उठे—"कोई मेरी स्त्रीसे परवाना मांगने आया तो मैं उसको वहीं गोली मार दूंगा, पीछे मेरा जो होना हो वह होता रहे।" मैंने उन्हें शांत किया और सबको

सुनाकर कहा—"यह मामला बहुत ही गंभीर है। यह बिल अगर पास हो गया और हमने उसे मान लिया तो उसका अनुकरण सारे दक्षिण अफ्रीकामें किया जायगा। मुझे तो उसका उद्देश्य ही इस देशमें हमारी हस्ती मिटा देना मालूम होता है। यह कानून आखिरी सीढ़ी नहीं है, बल्कि हमें सताकर दक्षिण अफ्रीकासे भगा देनेका पहला कदम है। अतः हमपर केवल ट्रांसवालमें बसनेवाले १०-१५ हजार हिंदुस्तानियोंकी ही जिम्मेदारी नहीं है, बल्कि दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय मात्रकी है। फिर अगर हम इस बिलका अर्थ पूरे तौरपर समझ सकते हों तो संपूर्ण भारतवर्षकी प्रतिष्ठाकी जिम्मेदारी भी हमपर ही आती है; क्योंकि इस बिलसे केवल हमारा ही अपमान नहीं होता, बल्कि इसमें सारे हिंदुस्तानका अपमान है। अपमानका अर्थ ही है निर्दोष व्यक्तिका मान भंग होना। हम इस कानूनके पात्र हैं यह तो कोई कह ही नहीं सकता। हम निर्दोष हैं और राष्ट्रके एक भी निर्दोष व्यक्तिका अपमान सारे राष्ट्रका अपमान है। अतः इस कठिन अवसरपर हमने जल्दबाजीकी, अधीरता दिखाई, क्रोध किया तो उससे इस हमलेसे नहीं बच सकेंगे। पर अगर शांतिसे उपाय ढूंढकर वक्तपर उसका अवलम्बन करें, आपसमें एकता रखें और अपमानका सामना करते हुए जो कष्ट पड़ें उन्हें झेल लें तो मैं मानता हूं कि ईश्वर स्वयं ही हमारी सहायता करेगा।" बिलकी गंभीरता सबने समझ ली और यह निश्चय किया कि सार्वजनिक सभा करके कुछ प्रस्ताव पास किये जायं। यहूदियोंकी एक नाटकशाला भाड़ेपर लेकर उसमें सभा की गई।

अब पाठक समझ सकते हैं कि इस प्रकरणके शीर्षकमें इस बिलका परिचय 'खूनी कानून' कहकर क्यों दिया गया है। यह विशेषण मैंने इस प्रकरणके लिए नहीं गढ़ा ह,

बल्कि इस विशेषणका उपयोग दक्षिण अफ्रीकामें ही इस कानूनका परिचय देनेके लिए प्रचलित हो गया था।

: १२ :

सत्याग्रहका जन्म

१९०६ की ११ वीं सितंबरको उक्त नाटकशालामें सभा हुई। ट्रांसवालके भिन्न-भिन्न नगरोंसे प्रतिनिधि बुलाये गये। पर मुझे कबूल करना होगा कि जो प्रस्ताव मैंने बनाये थे उनका पूरा अर्थ मैं खुद नहीं समझ सका। उनसे क्या नतीजे निकलेंगे, इसका भी अंदाजा उस वक्त नहीं कर सका था। सभा हुई। नाटकशाला ठसाठस भर गई थी। कुछ नया करना है, कुछ नया होना है—यह भाव मैं हरएकके चेहरेपर देख सकता था। ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनके अध्यक्ष श्री अब्दुलगनी सभापतिके आसन पर विराज रहे थे। वह ट्रांसवालके बहुत ही पुरानेवाले बाशिंदोंमेंसे थे। मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन नामक प्रसिद्ध फ़र्मके हिस्सेदार और उसकी जोहान्सबर्गकी शाखाके व्यवस्थापक थे। जो प्रस्ताव सभामें उपस्थित किये गये उनमें सच पूछिए तो एक ही महत्त्वका प्रस्ताव था। उसका आशय यह था कि इस बिलके विरोधमें सब उपाय करते हुए भी अगर वह पास हो जाय तो भारतीय उसके आगे सिर न झुकाएं और सिर न झुकानेसे जो-जो कष्ट सहने पड़ें उन्हें सह लें।

यह प्रस्ताव मैंने सभाको पूरी तरह समझा दिया। सभाने भी शांतिसे उसे सुन लिया। सभाका सारा कामकाज तो हिंदी या गुजरातीमें ही होता था, इसलिए यह तो हो ही नहीं सकता था कि कोई भी उसकी कोई बात न समझ पाये।

हिंदी न समझनेवाले तामिल और तेलगू भाइयोंके लिए उन भाषाओंके बोलनेवाले सारी बातोंको पूरे तौरपर समझा देते थे। प्रस्ताव नियम-पूर्वक उपस्थित किया गया। बहुतों-ने अनुमोदन-समर्थन भी किया। उनमें एक बोलनेवाले सेठ हाजी हबीब थे। ये भी दक्षिण अफ्रीकाके बहुत पुराने और अनुभवी बाशिंदे थे। उन्होंने बड़ा ही जोशीला भाषण दिया। आवेशमें आकर यहांतक कह गये—"यह प्रस्ताव हमें खुदाको साक्षी करके स्वीकार करना है। हमें चाहिए कि नामर्द बनकर इस कानूनके सामने कभी सिर न झुकाएं। इसलिए मैं खुदाकी कसम खाकर कहता हूं कि हरगिज इस कानूनके ताबे न होऊंगा। और मैं इस सारे जलसेको सलाह देता हूं कि सब लोग खुदाको साक्षी करके कसम खायं।"

प्रस्तावके समर्थनमें और भी तीखे और जोरदार भाषण हुए थे। सेठ हाजी हबीब जब बोल रहे थे और कसमकी बातपर पहुंचे तो मैं तुरंत चौंका और सावधान हो गया। तभी मैं अपनी निजकी और कौमकी जिम्मेदारीको पूरे तौरपर समझ सका। कौमने अबतक कितने ही प्रस्ताव पास किये थे। अधिक विचार या नये अनुभवसे उनमें फेरफार भी किये गये। यह भी हुआ कि सबने उन निश्चयोंपर अमल नहीं किया। स्वीकृत प्रस्तावमें रद्दोबदल, उससे सहमत हुए लोगोंका इन्कार आदि सारी दुनियामें सार्वजनिक जीवनके सामान्य अनुभव हैं। पर ऐसे प्रस्तावोंमें कोई ईश्वरका नाम बीचमें नहीं लाता। तात्त्विक दृष्टिसे विचार किया जाय तो निश्चय और ईश्वरका नाम लेकर की हुई प्रतिज्ञामें कोई अन्तर होनाही नहीं चाहिए। बुद्धिशाली मनुष्य सोच-समझकर कोई निश्चय करे तो उससे वह डिगता नहीं। उसकी निगाहमें उसका वजन ईश्वरको साक्षी करके की हुई प्रतिज्ञाके बराबर ही होता है। पर

दुनिया तात्त्विक निर्णयोंसे नहीं चलती। ईश्वरको साक्षी बनाकर की हुई प्रतिज्ञा और सामान्य निश्चयके बीच वह जमीन-आसमानका अंतर मानती है। सामान्य निश्चयको बदलनेमें निश्चय करने वाला शर्माता नहीं, पर प्रतिज्ञा करनेवाला अगर अपनी प्रतिज्ञाको तोड़ता है तो वह खुद तो शर्माता ही ह, समाजभी उसको धिक्कारता है और पापी समझता है। इन बातोंकी जड़ इतनी गहरी हो गई है कि कानून भी कसम खाकर कही हुई बात झूठी ठहरे तो कसम खानेवालेको अपराधी मानता है और सख्त सजा मिलती है।

इन विचारोंसे भरा हुआ मैं जो प्रतिज्ञाओंका अनुभवी था और उनके मीठे फल चख चुका था, ऊपर लिखी प्रतिज्ञाकी बात सुनकर भयसे स्तब्ध हो गया। उसके परिणाम एक क्षणमें मेरे मानसचक्षुके सामने आ गये। इस घबराहटसे जोश पैदा हुआ और यद्यपि मैं इस सभामें प्रतिज्ञा करने या लोगोंसे करानेका इरादा लेकर नहीं गया था फिर भी सेठ हाजी हबीबका सुझाव मुझे बहुत पसंद आया। पर इसके साथ-साथ मैंने यह भी सोचा कि इस प्रतिज्ञाके सारे नतीजोंसे लोगोंको वाकिफ करा देना चाहिए, प्रतिज्ञाका अर्थ स्पष्ट रूपसे समझा देना चाहिए। इसके बाद अगर वे प्रतिज्ञा कर सकें तो उसका स्वागत करना चाहिए और न कर सकें तो मुझे समझ लेना होगा कि अभी वे आखिरी कसौटीपर चढ़नेको तैयार नहीं हुए हैं। अतः मैंने सभापतिसे प्रार्थना की कि मुझे सेठ हाजी हबीबके कथनका अर्थ समझानेकी इजाजत दें। मुझे इसकी इजाजत मिल गई। मैं उठा और जो कुछ कहा उसका खुलासा जैसा आज मुझे याद है वैसा नीचे दे रहा हूं :

"मैं सभाको यह बात समझा देना चाहता हूं कि आजतक जो प्रस्ताव हमने स्वीकार किये हैं और जिस रीतिसे स्वीकार किये हैं उन प्रस्तावों और उस रीतिसे इस प्रस्ताव और इसकी

रीतिमें भारी अंतर है। यह प्रस्ताव अति गंभीर है, क्योंकि इसपर पूरा-पूरा अमल होनेपर दक्षिण अफ्रीकामें हमारी हस्तीका रहना-मिटना अवलंबित है। यह प्रस्ताव स्वीकार करनेकी जो रीति हमारे भाईने सुझायी है वह जितनी गंभीर है उतनी ही नवीन है। मैं खुद इस रीतिसे निश्चय करानेका विचार करके यहां नहीं आया था। इस यशके अधिकारी अकेले सेठ हाजी हबीब हैं और इसकी जवाबदेही भी उन्हींपर है। उन्हें मैं मुबारकबाद देता हूँ। इनका सुझाव मुझे बहुत रुचा है, पर आप उसे स्वीकार कर लेंगे तो आप भी उनकी जिम्मेदारीमें साझी हो जाएंगे। यह जिम्मेदारी क्या है, यह आपको समझ लेना चाहिए और कौमके सलाहकार और सेवकके रूपमें उसे पूरे तौरपर समझा देना मेरा फर्ज है।

"हम सभी एक ही सिरजनहारको माननेवाले हैं। उसको मुसलमान भले ही खुदा कहकर पुकारें, हिंदू भले ही उसको ईश्वरके नामसे भजें, पर है वह एक ही स्वरूप। उसको साक्षी करके, उसको बीचमें रखकर हम कोई प्रतिज्ञा करें या कसम खाएं, यह कोई ऐसी-वैसी बात नहीं है। ऐसी कसम खाकर अगर हम उससे फिर जायं तो हम कौमके, दुनियाके और खुदाके सामने गुनहगार होंगे। मैं तो मानता हूं कि सावधानीसे, शुद्धबुद्धिसे मनुष्य कोई प्रतिज्ञा करे और पीछे उसको तोड़ दे तो वह अपनी इंसानियत, अपनी मनुष्यताको खो बैठता है। और जैसे पारा चढ़ा हुआ तांबेका सिक्का रुपया नहीं है--यह मालूम होते ही उसकी कोई कीमत नहीं रहती, इतना ही नहीं, बल्कि उस खोटे सिक्केका मालिक दण्डका पात्र हो जाता है--वैसे ही झूठी कसम खानेवालेकी भी कोई कीमत नहीं होती, बल्कि लोक-परलोक दोनोंमें वह दण्डका अधिकारी होता है। सेठ हाजी हबीब ऐसी ही गंभीर कसम खानेकी हमें सलाह दे रहे हैं। इस सभामें

ऐसा एक भी आदमी नहीं है जो बालक या नासमझ माना जा सके। आप सभी पुख्ता उम्रवाले हैं, दुनिया देखे हुए हैं; बहुतेरे तो प्रतिनिधि हैं और कमोबेश जिम्मेदारी भी उठा चुके हैं। अतः इस सभामें एक भी आदमी नहीं है जो 'मैंने बिना समझे प्रतिज्ञा कर दी थी' कहकर कभी उस बंधनसे निकल सके।

"मैं जानता हूं कि प्रतिज्ञाएं, व्रत आदि गंभीर अवसरोंपर ही लिए जाते हैं। उठते-बैठते प्रतिज्ञा करनेवाला जरूर ठोकर खायगा और गिरेगा। पर इस देशमें, अपने सामाजिक जीवनमें मैं प्रतिज्ञा करने योग्य किसी अवसरकी कल्पना कर सकता हूं तो वह अवसर अवश्य उपस्थित है। बहुत सम्हाल-कर और डर-डरके कदम उठाना बुद्धिमानी है। पर डर और सम्हालकी भी हद होती है। हम उस हदको पहुंच गये हैं। सरकार सभ्यताकी मर्यादा लांघ गई है। हमारे चारों ओर जब उसने दावानल सुलगा दिया है तब भी हम बलिदानकी पुकार न करें और सोच-विचारमें पड़े रहें तो हम नालायक और नामर्द साबित होंगे। अतः यह अवसर शपथ लेनेका है, इस विषयमें तनिक भी शंका नहीं। पर इस शपथकी शक्ति अपनेमें है या नहीं, यह हरएक को खुद सोच लेना होगा। ऐसे प्रस्ताव बहुमतसे पास नहीं किये जाते। जितने लोग कसम खाएं उतने ही उस कसमसे बंधेंगे। ऐसी कसम दिखावेके लिए नहीं खाई जाती। उसका असर यहांकी सरकार, बड़ी (साम्राज्य) सरकार या भारत सरकारपर क्या होगा, इसका ख्याल कोई तनिक भी न करे। हरएक अपने हृदयपर हाथ रख उसको ही टटोले। अगर उसकी अन्त-रात्मा कहे कि तुममें शपथ लेनेकी शक्ति है तभी शपथ ले, तभी वह फलवती होगी।

"अब दो शब्द परिणामके विषयमें। बड़ी-से-बड़ी आशा

बांधें तो यह कह सकते हैं कि अगर सब लोग अपनी कसमपर कायम रहें और भारतीय जनताका बड़ा भाग कसम खा सके तो यह कानून (आर्डिनेंस) या तो पास ही न होगा या पास होगा तो तुरंत रद हो जायगा। कौमको अधिक कष्ट न सहना पड़ेगा। हो सकता है कि कुछ भी कष्ट न सहना पड़े। पर कसम खानेवालेका धर्म जैसे एक ओरसे श्रद्धापूर्वक आशा रखना है, वैसे ही दूसरी ओरसे नितांत आशा-रहित होकर कसम खानेको तैयार होना है। इसलिए मैं चाहता हूं कि हमारी लड़ाईमें जो कड़वे-से-कड़वे परिणाम हमारे सामने आ सकते हैं, उनकी तसवीर इस सभाके सामने खींचदूं। मान लीजिए कि यहां उपस्थित हम सब लोग शपथ ले लेते हैं। हमारी संख्या अधिक-से-अधिक ३ हजार होगी। यह भी हो सकता है कि बाकीके १० हजार भारतीय कसम न खायं। शुरूमें तो हमारी हंसी होनी ही है। फिर इतनी सारी चेतावनी दे देनेपर भी यह मुमकिन है कि कसम खाने वालोंमें कुछ या बहुत-से पहली ही परीक्षामें कमजोर साबित हो जायं। हमें जेल जाना पड़े, जेलमें अपमान सहने पड़ें। भूख-प्यास, सरदी-गरमी भी सहनी पड़े। कड़ी मशक्कत करनी पड़े। उद्धत दरोगाओं (वार्डरों) के कोड़े खाने पड़ें। जुर्माना हो और कुर्कीमें हमारा माल-असबाब भी बिक जाय। लड़नेवाले बहुत थोड़े रह गये तो आज हमारे पास बहुत पैसा होते हुए भी हम कल कंगाल हो जा सकते हैं। हमें देशनिकालेकी सजा भी मिल सकती है। जेलमें भूखे रहते और दूसरे कष्ट सहते हुए हममेंसे कुछ बीमार हो सकते हैं और कोई मर भी सकता है। अर्थात्, थोड़ेमें कहा जा सकता है कि यह बात तनिक भी नामुमकिन नहीं कि जितने कष्टोंकी कल्पना हम कर सकते हैं वे सभी हमें सहने पड़ें और समझदारी इसीमें है कि ये सारे कष्ट सहन करने होंगे यह मानकर ही

हम कसम खायं। मुझसे कोई पूछे कि इस लड़ाईका अंत क्या होगा और कब होगा तो मैं कह सकता हूं कि अगर सारी कौम परीक्षामें पूरी तरह उत्तीर्ण हो गई तो लड़ाईका फैसला बहुत जल्दी हो जायगा। पर अगर हममेंसे बहुतसे संकटका सामना होनेपर फिसल गये तो लड़ाई लंबी होगी। पर इतना तो मैं हिम्मतके साथ और निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि जबतक मुट्ठीभर लोग भी अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहनेवाले होंगे तबतक इस युद्धका एक ही अंत समझिये——अर्थात् इसमें हमारी जीत ही होगी।

"अब दो शब्द अपनी व्यक्तिगत जिम्मेदारीके बारेमें भी कह दूं। यद्यपि मैं प्रतिज्ञा करनेकी जोखिमोंको बता रहा हूं, पर साथ ही आपको शपथ खानेकी प्रेरणा भी कर रहा हूं। इसमें मेरी अपनी जिम्मेदारी कितनी है, इसे मैं पूरे तौरपर समझता हूं। हो सकता है कि आवेशमें या गुस्सेमें आकर इस सभामें उपस्थित लोगोंका बड़ा भाग प्रतिज्ञा करले, पर संकट-कालमें कमजोर साबित हो, और मुट्ठीभर लोग ही अंतका ताप सहन करनेके लिए रह जायं। फिर भी मुझ जैसे आदमीकेलिए तो एक ही रास्ता होगा——'मर मिटना, पर इस कानूनके आगे सिर न झुकाना।' मैं तो मानता हूं कि मान लीजिये ऐसा होनेकी तनिक भी संभावना नहीं, फिर भी फर्ज कर लीजिए कि सब गिर गये और मैं अकेला ही रह गया, तो भी मेरा विश्वास है कि प्रतिज्ञाका भंग मुझसे हो ही नहीं सकता। यह कहनेका मतलब आप समझ लें। यह घमंडकी बात नहीं, बल्कि खासतौरसे इस मंचपर बैठे हुए नेताओंको सावधान करनेकी बात है। अपनी मिसाल लेकर मैं नेताओंसे विनयपूर्वक कहना चाहता हूं कि अगर आपमें अकेला रह जानेपर भी दृढ़ रहनेका निश्चय या वैसा करनेकी शक्ति न हो तो आप इतना ही न करें कि खुद प्रतिज्ञा न करें,

बल्कि लोगोंके सामने यह प्रस्ताव रखकर उनसे प्रतिज्ञा कराई जाय, इसके पहले ही आप अपना विरोध लोगोंपर प्रकट कर दें और अपनी सम्मति उसमें न दें। यह प्रतिज्ञा यद्यपि हम सब साथ मिलकर करना चाहते हैं तो भी कोई इसका यह अर्थ कदापि न करे कि एक या अनेक लोग अपनी प्रतिज्ञाको तोड़ दें तो दूसरे सहज ही उसके बंधनसे मुक्त हो सकते हैं। हरएक अपनी-अपनी जिम्मेदारीको समझ कर स्वतंत्र रूपसे प्रतिज्ञा करे और यह समझकर करे कि दूसरे कुछ भी करें, पर मैं खुद तो मरते दम तक उसका पालन करूंगा ही।"

इस आशयका भाषण करके मैं अपनी जगहपर बैठ गया। लोगोंने अतिशय शांतिसे उसका एक-एक शब्द सुना। दूसरे नेता भी बोले। सबने अपनी और श्रोताओंकी जिम्मेदारीका विवेचन किया। सभापति उठे। उन्होंने भी स्थितिको समझाया और अंतमें सारी सभाने खड़े होकर हाथ उठाकर और ईश्वरको साक्षी करके प्रतिज्ञा की कि यह कानून पास हो गया तो हम उसके आगे सिर न झुकाएंगे। वह दृश्य मुझे तो कभी भूलनेका नहीं। लोगोंके उत्साहकी सीमा न थी। अगले ही दिन इस नाटकशालामें कोई दुर्घटना हुई और सारी नाटकशाला जलकर खाक हो गई। तीसरे दिन लोग मेरे पास यह खबर लाये और कौमको यह कहकर मुबारकबाद देने लगे कि नाटकशालाका भस्म हो जाना शुभ शकुन है। जैसे नाटकशाला जल गई वैसे ही यह कानून भी एक दिन आगकी नजर हो जायगा। इन लक्षणोंका मुझपर कभी असर न हुआ था। अतः मैंने इस घटनाको कोई महत्त्व न दिया। यहां उसका उल्लेख केवल यह बतानेके लिए किया है कि लोगोंमें इस समय कितना शौर्य और श्रद्धा थी। इन दोनों बातोंके दूसरे बहुतसे चिह्न पाठक अगले प्रकरणोंमें देखेंगे।

यह विराट सभा करनेके बाद काम करनेवाले बैठ नहीं रहे। जगह-जगह सभाएं की गईं और सर्वत्र सर्वसम्मतिसे प्रतिज्ञाएं दुहराई गईं। 'इंडियन ओपीनियन'में अब यह खूनी कानून ही चर्चाका मुख्य विषय था। दूसरी ओर स्थानीय (प्रादेशिक) सरकारसे मिलनेके भी यत्न किये गये। उपनिवेश सचिव मि० डन्कनके पास एक शिष्ट-मंडल भेजा गया। प्रतिज्ञाकी बात उन्हें सुनाई गई। इस शिष्ट-मंडलमें सेठ हाजी हबीब भी थे। उन्होंने कहा—"कोई अफसर मेरी स्त्रीकी उंगलियोंका निशान लेने आया तो मैं अपने गुस्सेको जरा भी काबूमें न रख सकूंगा। मैं उसको वहीं मार डालूंगा और फिर अपने आपको खतम कर दूंगा!" मंत्री महोदय क्षण भर सेठ हाजी हबीबके मुंहकी ओर ताकते रह गये। फिर कहा—"यह कानून औरतों पर लागू हो या नहीं, इस बारेमें सरकार विचार कर ही रही है। इतना इतमीनान तो मैं आप लोगोंको अभी दिला सकता हूं कि स्त्रियोंसे संबंध रखनेवाली धाराएं वापस ले ली जाएंगी। इस विषयमें आपकी भावनाको सरकार समझ सकती है और उसका लिहाज करना चाहती है। पर दूसरी दफाओंके बारेमें तो मुझे खेदके साथ बता देना होगा कि सरकार दृढ़ है और रहेगी। जनरल बोथा चाहते हैं कि आप भली भांति सोच-विचारकर इस कानूनको मंजूर कर लें। गोरोंकी हस्तीके लिए सरकार उसको जरूरी समझती है। कानूनके मूल उद्देश्यकी रक्षा करते हुए ब्यौरेके बारेमें आपको कोई सुझाव पेश करना हो तो सरकार उसपर अवश्य ध्यान देगी। शिष्ट-मंडलको मेरी सलाह है कि अगर आप कानूनको स्वीकार करके तफसीलके बारेमें ही सुझाव पेश करें तो इसमें आपका हित है।" मंत्री महोदयके साथ जो दलीलें की गईं उन्हें मैं यहां नहीं देता; क्योंकि वे सभी दलीलें पीछे दी जा चुकी

हैं। उनके सामने रखनेमें भेद केवल भाषाका था। दलीलें तो वही थीं। मंत्रीजीको यह सूचित करके कि आपकी सलाह होते हुए भी कोई इस कानूनको मंजूर नहीं कर सकता और स्त्रियोंको उससे मुक्त रखनेके इरादेके लिए सरकारको धन्यवाद देकर शिष्ट-मंडलने उनसे बिदा ली। स्त्रियोंकी मुक्ति भारतीय जनताके आन्दोलन की बदौलत हुई या सरकारने ही और विचार करके मि० कर्टिसकी शास्त्रीय पद्धतिको अस्वीकार करके कुछ लोक-व्यवहारका भी लिहाज किया, यह कहना कठिन है। सरकारी पक्षका कहना था कि सरकारने भारतीयोंके आन्दोलनके कारण नहीं, बल्कि स्वतंत्र रूपसे विचार करके ही यह निश्चय किया है। चाहे जो हो, पर भारतीय जनताने तो 'काकतालीय न्याय'से यह मान ही लिया कि यह उसके आन्दोलनका ही फल है और इससे लड़नेका उत्साह बढ़ा।

कौमके इस संकल्प या आन्दोलनको कौनसा नाम दिया जाय, यह हममेंसे कोई नहीं जानता था। उस वक्त मैं इस आन्दोलनको 'पैसिव रेजिस्टेंस' कहता था। 'पैसिव रेजिस्टेंस'-का अर्थ भी पूरी तरह नहीं समझता था। इतना ही समझा था कि किसी नई वस्तुका जन्म हुआ है। लड़ाई ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती गई त्यों-त्यों 'पैसिव रेजिस्टेंस' नामसे उलझन पैदा होने लगी और इस महान् युद्धका अंग्रेजी नामसे ही परिचय देना मुझे लज्जा-जनक जान पड़ा। फिर कौमकी जबानपर यह शब्द चढ़ भी नहीं सकता था। अतः 'इंडियन ओपीनियन' में सबसे अच्छा नाम ढूंढ़ निकालनेवालेके लिए छोटे-से इनामकी घोषणा की। कुछ नाम मिले। इस वक्त तक इस युद्धके अर्थ की 'इंडियन ओपीनियन' में भली भांति चर्चा हो चुकी थी। इससे प्रतियोगिता करनेवालोंके पास खोजके लिए काफी मसाला हो गया था। मगनलाल गांधीने भी इस

प्रतियोगितामें भाग लिया। उन्होंने 'सदाग्रह' नाम भेजा। इस शब्दको पसंद करनेका कारण बताते हुए उन्होंने लिखा कि हिंदुस्तानी कौमका यह आन्दोलन एक भारी आग्रह है और यह आग्रह 'सद्' अर्थात् शुभ है। इसलिए यह नाम पसंद किया। उनकी दलीलका सार मैंने थोड़ेमें दिया है। मुझे यह नाम रुचा। फिर भी जिस वस्तुका समावेश मैं करना चाहता था उसका समावेश उसमें नहीं होता था। इसलिए मैंने 'द' को 'त्' करके और उसमें 'य' जोड़कर 'सत्याग्रह' नाम बनाया। सत्यमें शांतिका अंतर्भाव माना और आग्रह किसी भी वस्तुका किया जाय तो उसमेंसे बल उत्पन्न होता है। अतः आग्रहमें बलका भी समावेश किया, और भारतीय आन्दोलनको 'सत्याग्रह' अर्थात् शांतिसे उत्पन्न होनेवाले बलके नामसे पुकारना शुरू किया। तभीसे इस संग्रामके लिए 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्दका उपयोग बंद कर दिया गया, यहांतक कि अंग्रेजी लेखोंमें भी 'पैसिव रेजिस्टेंस' का उपयोग त्याग दिया और उसके बदले 'सत्याग्रह' या कोई दूसरा अंग्रेजी शब्द लिखना आरंभ किया। इस प्रकार जिस वस्तुका परिचय सत्याग्रहके नामसे दिया जाने लगा उस वस्तु और सत्याग्रह नामका जन्म हुआ। अपने इतिहासको आगे बढ़ानेके पहले 'पैसिव रेजिस्टेंस' और 'सत्याग्रह' का भेद हम समझ लें, यह जरूरी है। इसलिए अगले प्रकरणमें हम यह भेद समझेंगे।

: १३ :

'सत्याग्रह' बनाम 'पैसिव रेजिस्टेंस'

आन्दोलन ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता गया त्यों-त्यों अंग्रेजोंको

भी उससे दिलचस्पी होती गई। मुझे यह बता देना चाहिए कि यद्यपि ट्रांसवालके अंग्रेजी अखबार आम तौरसे खूनी कानूनके पक्षमें ही लिखते थे और गोरोंके विरोधका समर्थन करते थे, फिर भी कोई प्रसिद्ध भारतीय उनको कुछ लिख भेजता तो वे खुशीसे उसको छापते थे। भारतीय सरकारके पास जो अर्जियां भेजते उन्हें भी पूरा-पूरा या उनका सार प्रकाशित कर देते। बड़ी सभाओंमें कभी-कभी अपने रिपोर्टर भेजते और जब ऐसा न होता तो जो रिपोर्ट हम लिखकर भेज देते वह छोटी होती तो छाप देते।

यह भलमनसी भारतीय जनताके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई और आन्दोलन बढ़नेपर कुछ प्रमुख यूरोपियन भी उसमें रस लेने लगे। इन मुखियोंमें जोहान्सबर्गके लखपती मि० हॉस्किन भी थे। इनमें वर्ण-द्वेष तो आदिसे ही नहीं था। पर आन्दोलन आरंभ होनेके बाद हिंदुस्तानियोंके मसलेसे उन्हें गहरी दिलचस्पी हो गई। जर्मिस्टन नामका एक नगर है जो जोहान्सबर्गका उपनगर-सा है। वहांके गोरोंने मेरा भाषण सुननेकी इच्छा प्रकट की। सभा हुई। मि० हॉस्किनने उसमें हमारे आन्दोलनका और मेरा परिचय देते हुए कहा—"ट्रांसवालके भारतीयोंने न्याय प्राप्तिके लिए, दूसरे उपाय निष्फल हो जानेपर 'पैसिव रेजिस्टेंस' का अवलंबन किया है। उन्हें चुनावमें मत देनेका अधिकार नहीं। उनकी संख्या थोड़ी है। वे निर्बल हैं, उनके पास हथियार नहीं। इसलिए उन्होंने 'पैसिव रेजिस्टेंस' को, जो निर्बलोंका हथियार है, ग्रहण किया है।" यह सुनकर मैं चौंका और जो भाषण करने मैं गया था उसने दूसरा ही रूप ले लिया। मि० हॉस्किनकी दलीलका खंडन करते हुए मैंने 'पैसिव रेजिस्टेंस' को 'सोल-फोर्स' यानी आत्मबल बताया। इस सभामें मैंने देखा कि 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्दके उपयोगसे भयानक भ्रम होनेकी



सत्याग्रही गांधी

संभावना है। सभामें दी हुई दलील और 'पैसिव रेजिस्टेंस' और आत्मबलका भेद समझानेके लिए जो कुछ और कहनेकी आवश्यकता है उसे मिलाकर मैं दोनोंके बीच रहनेवाले विरोधको समझानेकी कोशिश करूंगा।

'पैसिव रेजिस्टेंस' इन दो शब्दोंका उपयोग अंग्रेजी भाषामें पहले-पहल किसने किया और कब किया, इसका पता तो मुझे नहीं है। पर ब्रिटिश जनतामें जब-जब किसी छोटे समुदायको कोई कानून पसंद नहीं आया तब-तब उसने उस कानूनके विरुद्ध विद्रोह करनेके बदले उस कानूनके सामने सिर न झुकानेका 'पैसिव' अर्थात् हलका कदम उठाया और उसके फलस्वरूप जो सजा मिले उसे भुगत लेना पसंद किया। कुछ बरस पहले जब ब्रिटिश पार्लमेंटने शिक्षाका कानून (एजूकेशन-ऐक्ट) पास किया तब डाक्टर क्लिफर्डके नेतृत्वमें 'नान-कनफार्मिस्ट' नामक इसाई सम्प्रदायने 'पैसिव रेजिस्टेंस'का अवलंबन किया था। इंगलैंडकी स्त्रियोंने मताधिकार पानेके लिए जो जबर्दस्त आन्दोलन किया था उसे भी 'पैसिव रेजिस्टेंस'का नाम दिया गया था। इन दोनों आन्दोलनोंको ध्यानमें रखकर ही मि० हॉस्किनने कहा कि 'पैसिव रेजिस्टेंस' निर्बल अथवा मताधिकार-रहितका हथियार है। डाक्टर क्लिफर्डके पक्षको मताधिकार प्राप्त था, पर आम सभामें उसकी संख्या इतनी कम थी कि वह वोटके बलसे शिक्षा-कानूनका पास होना नहीं रोक सका, अर्थात् यह पक्ष संख्याबलमें कमजोर ठहरा। अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिए यह पक्ष शस्त्रका उपयोग कभी करता ही नहीं, सो बात नहीं थी। पर इस काममें उसका उपयोग करके वह सफल नहीं हो पाता। सुव्यवस्थित राज्यतंत्रमें हर वक्त यकायक बगावत करके ही हक हासिल करनेका तरीका चल ही नहीं सकता। फिर डाक्टर क्लिफर्डके पक्षके कुछ ईसाई सामान्य रीतिसे हथियारका इस्तेमाल हो

सकता हो तो भी उसका विरोध करते। स्त्रियोंके आन्दोलनमें मताधिकार तो था ही नहीं। संख्या और शरीर-बलमें भी वे कमजोर थीं। अतः यह उदाहरण भी मि० हॉस्किनकी दलीलका पोषण ही करता था। स्त्रियोंके आन्दोलनमें हथियारके उपयोगका त्याग नहीं किया गया था। उनके एक पक्षने तो मकानोंमें आग लगाई और पुरुषोंपर हमला भी किया। किसीकी हत्या करनेका इरादा उन्होंने कभी किया हो यह तो मैं नहीं सोचता; पर मौका मिलनेपर लोगोंकी मरम्मत करना और इस प्रकार कुछ-न-कुछ उपद्रव खड़े करते रहना तो अवश्य उनका उद्देश्य था।

पर हिंदुस्तानियोंके आन्दोलनमें हथियारके लिए तो कहीं और किसी भी स्थितिमें स्थान ही नहीं था, और ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ेंगे पाठक देखेंगे कि बड़े-बड़े कष्ट पड़नेपर भी सत्याग्रहियोंने शरीरबलसे काम नहीं लिया और वह भी ऐसे मौकोंपर जब इस बलका सफलता-पूर्वक उपयोग करनेमें वे समर्थ थे। फिर हिंदुस्तानियोंको मताधिकार नहीं था और वे कमजोर थे यह दोनों बातें सही हैं। फिर भी आन्दोलनकी योजनाका इनके साथ कोई संबंध नहीं था। यह कहनेमें मेरा आशय यह नहीं है कि भारतीय जनताके पास मताधिकारका या हथियारका बल होता तो भी वह सत्याग्रह ही करती। मताधिकारका बल हो तो सत्याग्रहके-लिए बहुत करके अवकाश ही नहीं होता। हथियारका बल हो तो विपक्षी अवश्य सम्हलकर चलता है। अतः यह भी समझमें आनेवाली बात है कि हथियार-बलवालेके लिए सत्याग्रहके अवसर थोड़े ही आएंगे। मेरे कहनेका तात्पर्य इतना ही है कि मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि भारतीय आन्दोलनकी कल्पनामें शस्त्रबलकी शक्यता-अशक्यताका सवाल मेरे मनमें उठा ही नहीं। सत्याग्रह केवल आत्माका बल है और जहां

और जितने अंशमें हथियार यानी शरीरबल या पशुबलका उपयोग होता हो या सोचा जाता हो वहां उतने अंशमें आत्म-बलका कम उपयोग होता है। मैं मानता हूं कि ये दोनों शुद्ध विरोधी शक्तियां हैं और आन्दोलनके जन्मकालमें भी यह विचार मेरे मनमें पूरा-पूरा बैठ गया था।

पर यहां हमें इसका निर्णय नहीं करना है कि ये विचार योग्य हैं या अयोग्य। हमें तो केवल 'पैसिव रेजिस्टेंस' और सत्याग्रहके बीचके अंतरको ही समझ लेना है। हमने यह देख लिया कि इन दोनों शक्तियोंके बीच मूलमें ही बहुत बड़ा अंतर है। इस भेदको समझे बिना अपने आपको 'पैसिव रेजि-स्टर' या सत्याग्रही माननेवाले दोनोंको एक ही चीज मान लें तो यह दोनोंके साथ अन्याय है और इसके बुरे नतीजे भी होंगे। हम खुद दक्षिण अफ्रीकामें 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्दका उपयोग किया करते थे। उससे मताधिकारके लिए लड़ने-वाली स्त्रियोंकी वीरता और आत्मबलका हमपर आरोप करके हमें यश देनेवाले तो बहुत थोड़े होते, पर हम भी उन स्त्रियोंकी तरह लोगोंके जान-मालको नुकसान पहुंचानेवाले मान लिये जाते और मि० हॉस्किन जैसे उदार हृदयके सच्चे मित्रने भी हमें कमजोर मान लिया। विचारमें यह बल है कि मनुष्य अपने आपको जैसा मानता है अंतमें वैसा ही बन जाता है। हम यह मानते रहें कि हम निर्बल हैं, इसलिए निरुपाय होकर 'पैसिव रेजिस्टेंस' का उपयोग कर रहे हैं और दूसरोंसे भी यही मनवाया करें तो 'पैसिव रेजिस्टेंस' करते हुए हम कभी बलवान हो ही नहीं सकेंगे और मौका मिलते ही इस निर्बलोंके हथियारको फेंक देंगे। इसके विपरीत अगर हम सत्याग्रही हों और अपने आपको सबल मानकर इस ताकतको इस्तेमाल करें तो इसके दो स्पष्ट परिणाम होते हैं। बलके विचारका पोषण करते हुए हम दिन-दिन अधिक बलवान होते जाते हैं

और ज्यों-ज्यों हमारा बल बढ़ता जाता है त्यों-त्यों सत्याग्रहका तेज बढ़ता जाता है और इस शक्तिका उपयोग छोड़ देनेका मौका हम कभी ढूंढ़ते ही नहीं। फिर 'पैसिव रेजिस्टेंस'में जहां प्रेम-भावका अवकाश नहीं, वहां सत्याग्रहमें बैरभावके लिए अवकाश नहीं। इतना ही नहीं, बल्कि वह अधर्म माना जायगा। 'पैसिव रेजिस्टेंस' में मौका मिले तो शस्त्र-बलका उपयोग किया जा सकता है, सत्याग्रहमें शस्त्र-बलके उपयोगके लिए अच्छे-से-अच्छे अवसर उपस्थित हों तो भी वह सर्वथा त्याज्य है। 'पैसिव रेजिस्टेंस' अक्सर शस्त्र-बलके उपयोगकी तैयारी समझा जाता है। सत्याग्रहका उपयोग इस रूपमें किया ही नहीं जा सकता। 'पैसिव रेजिस्टेंस' हथियारकी ताकतके साथ-साथ चल सकता है। सत्याग्रह तो शस्त्र-बलका नितान्त विरोधी है। इसलिए दोनोंका मेल कभी मिल ही नहीं सकता, यानी दोनोंका साथ निभ ही नहीं सकता। सत्याग्रहका उपयोग अपने प्रिय जनोंके साथ भी हो सकता है और होता है, 'पैसिव रेजिस्टेंस' का उपयोग वस्तुतः प्रियजनोंके साथ हो ही नहीं सकता, अर्थात् प्यारोंको बैरी मानिये तभी उसके साथ 'पैसिव रेजिस्टेंस' किया जा सकता है। 'पैसिव रेजिस्टेंस'-में विपक्षको दुःख देने, हैरान करनेकी कल्पना सदा विद्यमान रहती है और उसे दुःख देते हुए खुद कष्ट सहना पड़े तो उसे सह लेनेको तैयार रहना होता है। पर सत्याग्रहमें विरोधीको दुःख देनेका खयाल तक नहीं होना चाहिए। उसमें तो स्वयं दुःखको मोल लेकर-सहकर विरोधीको जीत लेनेकी ही बात सोची जानी चाहिए।

इस प्रकार इन दो शक्तियोंके बीचके मुख्य भेद मैंने गिना दिये। मेरे कहनेका यह मतलब नहीं कि 'पैसिव रेजिस्टेंस' के जो गुण—या दोष कहिए—मैंने गिनाये हैं वे हर प्रकारके 'पैसिव रेजिस्टेंस'में पाये जाते हैं। पर यह दिखाया जा सकता है कि

'पैसिव रेजिस्टेंस' के बहुतेरे उदाहरणोंमें ये दोष देखनेमें आये हैं। मुझे यह भी पाठकोंको बता देना चाहिए कि ईसा मसीहको बहुतसे इसाई 'पैसिव रेजिस्टेंस' के आदि-नेताके रूपमें मानते हैं; पर वहां तो 'पैसिव रेजिस्टेंस' का अर्थ शुद्ध सत्याग्रह ही मानना चाहिए। इस अर्थमें 'पैसिव रेजिस्टेंस' के अधिक उदाहरण इतिहासमें नहीं मिलते। टॉलस्टॉयने रूसके दूखोबोर लोगोंकी मिसाल दी है। वह ऐसे ही 'पैसिव रेजिस्टेंस' यानी सत्याग्रहकी है। हजरत ईसाके बाद हजारों ईसाइयोंने जो जुल्म बर्दाश्त किये हैं उस वक्त 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्दका उपयोग होता ही नहीं था। अतः उनके समान निर्मल उदाहरण जो मिलते हैं उन्हें मैं तो सत्याग्रह ही कहूंगा और अगर आप उन्हें 'पैसिव रेजिस्टेंस'की मिसाल मानें तो 'पैसिव रेजिस्टेंस' और सत्याग्रहमें कोई भेद नहीं रहता। इस प्रकरणका उद्देश्य तो यह दिखाना है कि अंग्रेजीमें 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्दका व्यवहार आमतौरसे जिस अर्थमें होता है, सत्याग्रहकी कल्पना उससे बिलकुल जुदी है।

जैसे 'पैसिव रेजिस्टेंस' के लक्षण गिनाते हुए, इस शक्तिका उपयोग करनेवालेके साथ किसी भी रीतिसे अन्याय न हो इस खयालसे मुझे ऊपर लिखी चेतावनी देनी पड़ी है, वैसे ही सत्याग्रहके गुण गिनाते हुए मुझे यह बता देना भी जरूरी है कि जो लोग अपने आपको सत्याग्रही कहते हैं उनकी ओरसे मैं उन सारे गुणोंका दावा नहीं करता। मैं इस बातसे अनभिज्ञ नहीं हूं कि सत्याग्रहके जो गुण मैंने ऊपर बताये हैं उनसे कितने ही सत्याग्रही निरे अनजान हैं। बहुतेरे यह मानते हैं कि सत्याग्रह निर्बलोंका हथियार है। कितनोंके मुंहसे मैंने यह भी सुना है कि सत्याग्रह शस्त्र-बलसे काम लेनेकी तैयारी है। पर मुझे फिरसे कह देना चाहिए कि सत्याग्रही किन गुणोंसे युक्त देखनेमें आते हैं यह मैंने नहीं बताया है, बल्कि यह दिखानेका यत्न

किया है कि सत्याग्रहकी कल्पनामें कौन-कौनसी बातें हैं और उसके अनुसार सत्याग्रहीको कैसा होना चाहिए। जिस शक्तिसे काम लेना ट्रांसवालमें भारतीयोंने आरंभ किया, पाठक उस शक्तिको स्पष्ट रूपसे समझ लें और वह शक्ति 'पैसिव रेजिस्टेंस' के नामसे परिचित शक्तिके साथ मिला न दी जाय, इस विचारसे इस शक्तिके अर्थका सूचक शब्द ढूंढ़ना पड़ा और उस वक्त उसमें किन-किन वस्तुओंका समावेश माना गया था, यही बता देना, थोड़ेमें, इस प्रकरणके लिखनेका उद्‌देश्य है।

: १४ :

विलायतको शिष्ट-मण्डल

ट्रांसवालमें खूनी कानूनके खिलाफ अर्जियां आदि भेजनेके जो-जो काम करने थे सब कर दिये गए। धारा सभाने स्त्रियोंसे संबंध रखनेवाली दफा निकाल दी। बाकीका बिल लगभग उसी रूपमें पास हुआ जिस रूपमें प्रकाशित हुआ था। कौममें इस वक्त भरपूर हिम्मत थी और उतना ही एका और एकमतता भी। अतः कोई निराश नहीं हुआ। फिर भी कोई वैध उपाय उठा न रखनेका निश्चय भी कायम रहा। ट्रांसवाल इस वक्त 'क्राउन कॉलोनी था। 'क्राउन कॉलोनी' का शब्दार्थ है बादशाही उपनिवेश, अर्थात् ऐसा उपनिवेश जिसके कानून, शासन-प्रबंध आदिके लिए बड़ी सरकार जवाबदेह समझी जाती है। अतः जो कानून शाही उपनिवेशकी धारा सभा पास करे उनपर बादशाहकी मंजूरी महज रस्म और सौजन्यकी रक्षाके लिए नहीं लेनी होती, बल्कि जो कानून ब्रिटिश विधानके सिद्धांतके विरुद्ध हो उस कानूनको बादशाह अपने मंत्रिमंडलकी सलाहसे स्वीकृति

देनेसे इन्कार कर सकता है, और ऐसा करनेके मौके भी काफी आते हैं। इसके विपरीत उत्तरदायी शासन-व्यवस्था (रस्पांसिबल गवर्नमेंट) वाले उपनिवेशकी धारा सभा जो कानून बनाये उसके लिए बादशाहकी मंजूरी मुख्यतः सौजन्यकी खातिर ही ली जाती है।

शिष्ट-मण्डल इंगलैंड जाय तो कौमको अपनी जिम्मेदारी और अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए। इसे बतानेका भार मेरे ही सिर रहा। इसलिए मैंने अपने मंडलके सामने तीन सुझाव रखे। एक तो यह कि यद्यपि यहूदी नाटकशाला (इम्पायर थियेटर) वाली सभामें हम प्रतिज्ञाएं कर चुके हैं फिर भी प्रमुख भारतीयोंसे फिरसे व्यक्तिगत प्रतिज्ञा करा लेनी चाहिए जिससे लोगोंके मनमें कोई शंका या कमजोरी आ गई हो तो मालूम हो जाय। यह सुझाव पेश करनेमें मेरी एक दलील यह थी कि शिष्ट-मण्डल सत्याग्रहके बलसे जाय तो निर्भय होकर जाय और कौमका निश्चय विलायतमें उपनिवेश सचिव और भारत सचिवके सामने निर्भयताके साथ रख सके। दूसरा यह कि शिष्ट-मण्डलके खर्चका पूरा बंदोबस्त पहलेसे ही हो जाना चाहिए। तीसरा यह कि शिष्ट-मंडलमें कम-से-कम आदमी जायं। अक्सर लोगोंका यह खयाल देखनेमें आता है कि ज्यादा आदमी जायं तो ज्यादा काम हो सकता है। इसीसे यह सूचना की गई। शिष्ट-मण्डलमें जानेवाले अपने सम्मानके लिए नहीं, बल्कि शुद्ध सेवाके उद्देश्यसे जायं इस विचारको सामने लाने और खर्च बचानेकी व्यावहारिक दृष्टि इस सुझावमें थी। तीनों सुझाव मंजूर हुए। प्रतिज्ञापत्रपर लोगोंसे हस्ताक्षर कराये गये। बहुतोंने हस्ताक्षर किये। पर मैंने देखा कि जो लोग सभामें प्रतिज्ञा कर चुके थे उनमें भी कुछ ऐसे थे जो दस्तखत करते हिचकते थे। एक बार कोई प्रतिज्ञा कर चुकनेके बाद उसे फिर पचास बार

दुहराना पड़े तो इसमें हिचक होनी ही नहीं चाहिए। फिर भी किसे यह अनुभव नहीं हुआ है कि लोगोंने जो प्रतिज्ञा सोच-समझकर की हो उसमें भी पीछे ढीले पड़ जाते हैं या मुंहसे की हुई प्रतिज्ञाको लिखते हुए घबराते हैं? पैसा भी हमारे अंदाजके अनुसार इकट्ठा हो गया। सबसे अधिक कठिनाई प्रतिनिधियोंके चुनावमें पड़ी। मेरा नाम तो था ही। पर मेरे साथ कौन जाय? इस विचारमें कमेटीने बहुत वक्त गुजारा, कितनी ही रातें बीत गईं और सभा-समितियोंमें जो बुरी आदतें देखनेमें आती हैं उनका अनुभव पूरे तौरपर हुआ। कोई कहता कि अकेले गांधी ही जायं, इससे सबका संतोष हो जायगा। पर मैंने ऐसा करनेसे साफ इन्कार कर दिया। मोटे हिसाबसे यह कह सकते हैं कि दक्षिण अफ्रीकामें हिंदू मुसलमानका सवाल नहीं था, पर यह दावा नहीं किया जा सकता कि दोनों कौमोंके बीच जरा भी अंतर नहीं था। और इस भेदने कभी जहरीली शक्ल नहीं अख्तियार की तो इसका कारण वहांकी विचित्र परिस्थिति किसी हदतक भले ही हो, पर इसका असल और पक्का कारण तो यही है कि नेताओंने एकनिष्ठा और सच्चे दिलसे अपना काम किया और कौमको सही रास्ता दिखाया। मेरी सलाह यह थी कि मेरे साथ एक मुसलमान सज्जनको तो होना ही चाहिए और दोसे अधिक आदमियोंकी जरूरत नहीं; पर हिंदुओंकी ओरसे तुरंत कहा गया कि आप तो सारी कौमके प्रतिनिधि माने जाते हैं, इसलिए हिंदुओंका भी एक प्रतिनिधि होना ही चाहिए। कुछ यह भी कहते कि एक प्रतिनिधि कोंकणी मुसलमानोंका, एक मेमनोंका और हिंदुओंमें एक किसानोंका और एक अनाविल लोगोंका होना चाहिए। इस प्रकार अनेक जातियोंके दावे पेश हुए। अंतमें सब समझ गये और हाजी वजीर अली और मैं यही दो आदमी एकमतसे चुने गये।

हाजी वजीर अली आधे मलायी कहे जा सकते हैं। उनके बाप हिंदी मुसलमान और मां मलायी थीं। इनकी मादरी जबान डच कही जा सकती है; पर अंग्रेजी भी इतनी पढ़ ली थी कि डच और अंग्रेजी दोनों अच्छी तरह बोल सकते थे। अंग्रेजीमें भाषण करनेमें उन्हें कहीं अटकना नहीं पड़ता। अखबारोंमें पत्र लिखनेका अभ्यास भी कर लिया था। ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनके सदस्य थे और लंबे अरसेसे सार्वजनिक कामोंमें हिस्सा लेते आ रहे थे। हिंदुस्तानी भी अच्छी तरह बोल लेते थे। उनका ब्याह एक मलायी स्त्रीसे हुआ था और इस स्त्रीसे उनके बहुतसे बाल-बच्चे थे। विलायत पहुंचते ही हम दोनों काममें जुट गये। उपनिवेश सचिव और भारत सचिवके सामने जो आवेदनपत्र पेश करना था उसका मसविदा तो जहाजपर ही बना लिया था। उसको छपा डाला। लार्ड एल्गिन उपनिवेश मंत्री थे, लार्ड मॉर्ले भारत-मंत्री थे। हम हिंदके दादा (दादाभाई नवरोजी) से मिले। फिर उनके जरिये कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीसे मिले। हमने अपना पक्ष उसे सुनाया और बताया कि हम तो सब पक्षोंको साथ लेकर काम करना चाहते हैं। दादाभाईकी तो यह सलाह थी ही। कमेटीको भी यह ठीक जान पड़ा। इसी तरह हम सर मंचेरजी भावनगरीसे मिले। उन्होंने भी खूब मदद की। इनकी और दादाभाईकी भी सलाह थी कि लार्ड एल्गिनके पास जो शिष्ट-मण्डल जाय उसका नेता कोई तटस्थ और प्रसिद्ध एंग्लो इंडियन बनाया जा सके तो अच्छा है। सर मंचेरजीने कुछ नाम भी सुझाए। उनमें सर लेपल ग्रिफिनका भी नाम था। पाठकोंको जान लेना चाहिए कि सर विलियम विल्सन हंटर इस वक्त जीवित नहीं थे। वह होते तो दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी स्थितिसे उनका गहरा परिचय होनेके कारण वही शिष्ट-मण्डलके नेता हुए होते या उन्होंने

उमराव (लार्ड) वर्गके किसी बड़े नेताको इस कामके लिए ढूंढ़ दिया होता।

हम सर लेपल ग्रिफिनसे मिले। उनकी राजनीति तो हिंदुस्तानमें चलते हुए सार्वजनिक आन्दोलनोंकी विरोधी ही थी; पर इस मसलेसे उनको गहरी दिलचस्पी हो गई और सौजन्यकेलिए नहीं, बल्कि न्यायकी दृष्टिसे उन्होंने हमारा अगुआ बनना मंजूर कर लिया। उन्होंने सारे कागज-पत्र पढ़ डाले और हमारे मसलेसे पूरी जानकारी कर ली। हम दूसरे एंग्लो इंडियन सज्जनोंसे भी मिले। आम सभाके बहुतसे सदस्यों-से और जिनका कुछ भी प्रभाव था ऐसे जितने आदमियों तक हमारी पहुंच हो सकती थी उन सबसे मिले। लार्ड एल्गिनके पास शिष्ट-मण्डल गया। उन्होंने सारी बातें ध्यानपूर्वक सुनलीं। अपनी हमदर्दी जाहिर की और साथ-ही-साथ अपनी कठिनाइयां भी बताईं। फिर भी जितना हो सके उतना करनेका वचन दिया। यही शिष्ट-मंडल लार्ड मॉर्लेसे भी मिला। उन्होंने भी सहानुभूति प्रकट की। उनके उत्तरका सार पीछे दे चुका हूं। सर विलियम वेडरबर्नकी कोशिशसे आम सभाके हिंदुस्तानके राज-काजसे लगाव रखनेवाले सदस्योंकी सभा उसी भवनके एक दीवानखानेमें हुई और हमने उसके सामने भी अपना पक्ष जितना हमसे हो सका रखा। इस वक्त आइरिश पक्षके नेता मि० रेडमंड थे। इसलिए हम उनसे भी खास तौरसे मिलने गये। खुलासा यह कि आम सभाके सब पक्षोंके जिन-जिन सदस्योंसे हम मिल सकते थे उन सबसे मिले। इंगलैंडमें हमें कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीकी भरपूर मदद तो थी ही। पर यहांके रीति-रिवाजके मुताबिक उसमें तो पक्ष-विशेष और मतविशेषके आदमी ही आ सकते थे। ऐसे बहुतेरे थे जो उक्त कमेटीमें तो नहीं आते थे; पर हमारे काममें पूरी मदद देते थे। हमने सोचा कि इन सबको

इकट्ठा करके हम इस काममें लगा सकें तो अधिक अच्छा काम हो सकता है और इस विचारसे एक स्थायी कमेटी बनानेका निश्चय किया। सब पक्षोंके लोगोंको यह विचार पसंद आया।

हरएक संस्थाका आधार मुख्यतः उसका मंत्री होता है। मंत्री ऐसा होना चाहिए जिसे संस्थाके उद्देश्यपर पूरा-पूरा विश्वास हो, साथ-ही-साथ उसमें इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए अपना अधिकांश समय देनेकी शक्ति और काम करनेकी योग्यता भी हो। मि० एल० डब्ल्यू० रिचमें ये सभी गुण थे। वह दक्षिण अफ्रीकाके ही थे। वहां मेरे दफ्तरमें गुमाश्तेका काम करते थे और इन दिनों लंदनमें बैरिस्टरी पढ़ रहे थे। वह इंगलैंडमें मौजूद थे और यह काम करनेके इच्छुक भी थे। इससे कमेटी (साउथ अफ्रीका ब्रिटिश इंडियन कमेटी) बनानेकी हिम्मत हम कर सके।

विलायतमें, बल्कि सारे पश्चिममें, मेरी दृष्टिसे एक असभ्य रिवाज यह है कि अच्छे-से-अच्छे कामका मुहूर्त्त भोजनके समय रखा जाता है। ब्रिटिश प्रधान मंत्री हर साल ९ नवंबरको लंदनके लार्ड मेयरके सरकारी वासस्थान मैंशन हॉउसमें जो भाषण दिया करते हैं उसमें वह अगले बरसके अपने कार्यक्रमका संकेत करते हैं और भविष्यके विषयमें अपना निजका अनुमान बताते हैं और इस कारण यह भाषण सारी दुनियाका ध्यान अपनी ओर खींचता है। लंदनके लार्ड मेयरकी ओरसे मंत्रिमंडलके सदस्यों आदिको उसमें भोजनका निमंत्रण दिया जाता है और वहां भी भोजनके बाद शराबकी बोतलें खुलती हैं और मेजबान तथा मेहमानकी स्वास्थ्य-कामनाके लिए सुरापान किया जाता है। जब इस शुभ या अशुभ (सब अपनी-अपनी दृष्टिके अनुसार विशेषण चुनलें) कार्यका दौर चल रहा हो उस वक्त भाषण भी दिये जाते हैं। इसमें बादशाहके मंत्रिमंडलका 'टोस्ट' (स्वास्थ्य-कामना) भी शामिल

होता है। इसी (टोस्ट) के जवाबमें प्रधान मंत्रीका उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण भाषण होता है। और जैसे सार्वजनिक रूपमें वैसे ही निजी तौरपर किसीके साथ खास मशविरा या बातचीत करनी हो तो उसे भोजनका न्यौता देनेका रिवाज है। कभी खाते-खाते तो कभी खाना खतम होनेपर वह विषय छिड़ता है। हमें भी एक नहीं, अनेक बार इस रिवाजके सामने नत मस्तक होना पड़ा था। पर कोई पाठक इसका अर्थ यह न करें कि हममेंसे किसीने कभी अभक्ष्यका भक्षण या अपेयका पान किया। इस प्रकार हमने एक दिन दोपहरके भोजनके निमंत्रण भेजे और उसमें अपने सभी मुख्य सहायकोंको आमंत्रित किया। लगभग सौ निमंत्रण भेजे गये थे। इस भोजका प्रयोजन सहायकोंके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना और उनसे बिदा लेना और साथ ही स्थायी समितिकी स्थापना भी था। उसमें भी प्रथाके अनुसार भोजनके उपरांत भाषण हुए और कमेटीकी स्थापना भी हुई। इस आयोजनसे हमारे आन्दोलनकी और अधिक प्रसिद्धि हुई।

इस प्रकार कोई ६ हफ्ते बिताकर हम दक्षिण अफ्रीकाको वापस हुए। मदीरा पहुंचनेपर हमें मि० रिचका तार मिला कि लार्ड एल्गिनने घोषणा की है कि मंत्रिमंडलने बादशाहसे ट्रांसवालके एशियाटिक ऐक्टको नामंजूर करनेकी सिफारिश की है। अब हमारे हर्षका क्या पूछना! मदीरासे केप टाउन पहुंचनेमें १४-१५ दिन लगते हैं। यह वक्त तो हमने बड़े चैनसे गुजारा और दूसरे कष्टोंके निवारण के लिए शेखचिल्लीकेसे हवाई महल बनाते रहे। पर दैवगति विचित्र है! हमारे ये महल कैसे धराशायी हो गये, इसे हम अगले प्रकरणमें देखेंगे।

पर इस प्रकरणको पूरा करनेके पहले एक–दो पवित्र संस्मरणोंको दिये बिना नहीं रहा जा सकता। मुझे यह तो कह ही देना होगा कि विलायतमें हमने एक क्षण भी

बेकार नहीं जाने दिया। बहुतसे सरक्यूलर (गश्ती चिट्ठियां) आदि भेजनेका सारा काम एक आदमीके किये नहीं हो सकता था। उसमें मददकी बड़ी जरूरत थी। पैसा खर्च करनेसे बहुत-कुछ मदद मिल सकती है, पर अपने ४० सालके अनुभवसे कह सकता हूं कि यह मदद शुद्ध स्वयंसेवककी सहायता जैसी फलदायिनी नहीं होती। सौभाग्यवश ऐसी मदद हमें मिल गई। बहुतसे भारतीय युवक जो वहां पढ़ते थे हमारे आसपास बने रहते और उनमेंसे अनेक सुबह-शाम, इनाम या नामकी आशा रखे बिना हमारी मदद करते। पते लिखना, नकलें करना, टिकट चिपकाना, डाकघर जाकर चिट्ठियां आदि छोड़ना--किसी भी कामको उनमेंसे किसीने अपनी शानके खिलाफ कहकर करनेसे इन्कार किया हो, यह मुझे याद नहीं आता। पर इन सबको एक ओर रखदे ऐसी मदद देनेवाला दक्षिण अफ्रीकामें मिला हुआ एक अंग्रेज मित्र था। वह हिंदुस्तानमें रह चुका था। उसका नाम था सिमंड्स। अंग्रेजीमें कहावत है कि देवता जिसे प्यार करते हैं उसे जल्दी अपने पास ले जाते हैं। इस 'परदुःखभंजन' अंग्रेजको भी यमदूत भरी जवानीमें उठा ले गये। 'परदुःखभंजन' विशेषणके व्यवहारका विशेष कारण है। यह भला भाई जब बंबईमें था तब यानी १८९७ में प्लेग-पीड़ित भारतीयोंके बीच निर्भय होकर विचरता और उनकी मदद करता था। छूतके रोगियोंकी सेवा करते हुए मौतसे तनिक भी नहीं डरना तो उसके खूनमें भर गया था। जाति या रंगका द्वेष उसे छू तक नहीं गया था। उसका स्वभाव अतिशय स्वतंत्र था। उसका एक सिद्धांत यह था कि सत्य सदा अल्पसंख्यक पक्ष यानी 'माइनारिटी'के साथ ही रहता है। इसी सिद्धांतसे प्रेरित होकर वह जोहान्सबर्गमें मेरी ओर आकृष्ट हुआ और अनेक बार विनोदमें मुझे सुना देता था कि आपका

पक्ष बड़ा हो जाय तो आप पक्का जानिये कि मैं हरगिज आपका साथ नहीं दूंगा, क्योंकि मैं मानता हूं कि 'मेजारिटी (बड़े पक्ष) के हाथमें सत्य भी असत्यका रूप ले लेता है। उसका अध्ययन विस्तृत था। जोहान्सबर्गके एक करोड़पति सर जार्ज फेररका वह विश्वास-भाजन प्राइवेट सेक्रेटरी था। शार्ट हैंड (लघु-लेखन) लिखनेमें तो निष्णात था। जब हम विलायत पहुंचे तो वह अनायास हमसे आ मिला। मुझे उसका पता-ठिकाना भी मालूम नहीं था। पर हम तो सार्वजनिक लोग थे, इसलिए अखबारकी चर्चाके विषय ठहरे। इससे इस भले अंग्रेजने हमें ढूंढ़ निकाला और कहा—"मुझसे जो कुछ सहायता हो सके वह करनेको तैयार हूं। मुझे चपरासीका काम सौंपिये तो वह भी करूंगा और शार्ट हैंडकी आवश्यकता हो तो आप जानते ही हैं कि मुझसा कुशल स्टेनोग्राफर आपको दूसरा नहीं मिलनेका।" हमें तो दोनों सहायताएं दरकार थीं और यह कहनेमें मैं तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूं कि यह अंग्रेज रात-दिन, बिना पैसा लिए, हमारी बेगार करता था। रातके बारह-बारह और एक-एक बजेतक वह सदा टाइपराइटरपर ही बैठा होता। संदेशे ले जाना, डाकखाने जाना, ये काम भी सिमंड्स करता और हंसते चेहरेसे। मुझे मालूम था कि उसकी माहवार आमदनी लगभग ४५ पौंडके थी; पर यह सारी आय वह मित्रों आदिकी मदद करनेमें खर्च कर डालता। उसकी उम्र उस वक्त कोई तीस बरसकी रही होगी। पर वह अविवाहित था और योंही जिंदगी बिता देनेका विचार था। मैंने उससे कुछ स्वीकार करनेके लिए बहुत आग्रह किया, पर उसने ऐसा करनेसे साफ इन्कार कर दिया। उसका उत्तर था—"मैं इस सेवाके बदलेमें कुछ लूं तो मैं धर्म-भ्रष्ट हो जाऊंगा।" मुझे याद है कि आखिरी रातको सामान वगैरह बांधते हमें तीन बज गये। तबतक वह भी जागता रहा।

अगले दिन हमें जहाजपर सवार कराके ही वह हमसे जुदा हुआ। यह वियोग हमारे लिए अति दुःखद था। मुझे अनेक अवसरोंपर इसका अनुभव हो चुका है कि परोपकार कुछ गेहुंए रंगवालोंकी बपौती नहीं है।

सार्वजनिक काम करनेवाले युवकोंकी जानकारीके लिए मैं यह भी बता दूं कि शिष्ट-मण्डलके खर्चका हिसाब रखनेका काम हमने इतनी सावधानीसे किया कि जहाजपर सोडावाटर पीना हो तो उसकी जो रसीद मिलती वह भी उतने पैसेके खर्चके सबूतके तौरपर रखली जाती। तारोंकी रसीदें भी इसी तरह रखी जातीं। ब्यौरेवार हिसाबमें फुटकर खर्चके नामसे एक भी रकम लिखी जानेकी बात मुझे याद नहीं है। यह मद तो हमारे हिसाबमें थी ही नहीं। 'याद नहीं' शब्द बढ़ानेका कारण यही है कि कभी शामको हिसाब लिखते वक्त दो-चार पेनी या दो चार शिलिंगका खर्च याद न रहा हो और फुटकरके नामसे लिख दिया गया हो तो नहीं कह सकता। इसीलिए अपवाद रूपमें 'याद नहीं' शब्दका व्यवहार किया है।

इस जीवनमें एक बात मुझे साफ तौरपर दिखाई दी है। वह यह कि जबसे हम होश सम्हालते हैं तभीसे ट्रस्टी या जवाब-देह बन जाते हैं। जबतक मां-बापके साथ होते हैं तबतक जो कोई काम या जो पैसा वे सौंपते हैं उसका हिसाब हमें उनको देना ही चाहिए। हमारा विश्वास करके वे हमसे हिसाब न मांगें तो इससे हम अपनी जवाबदेहीसे मुक्त नहीं होते। जब हम स्वतंत्र होते हैं तब स्त्री-पुत्र आदिके प्रति जवाबदेह हो जाते हैं। अपनी कमाईके मालिक अकेले हम ही नहीं हैं। वे भी उसमें हिस्सेदार हैं। उनकी खातिर हमें पाई-पाईका हिसाब रखना चाहिए। फिर जब हम सार्वजनिक जीवनमें आते हैं तब तो कहना ही क्या! मैंने देखा है कि स्वयंसेवकोंमें यह माननेकी आदत पड़ जाती है कि मानों अपने

हाथमें रहनेवाले काम या पैसेका हिसाब देना उनका फर्ज नहीं है, क्योंकि वे अविश्वासके पात्र तो हो ही नहीं सकते। यह घोर अज्ञान ही माना जा सकता है। हिसाब रखनेका विश्वास या अविश्वासके साथ कुछ भी संबंध नहीं। हिसाब रखना ही स्वतंत्र धर्म है। उसके बिना हमें अपने कामको खुद ही मैला मानना होगा। और जिस संस्थामें हम स्वयंसेवक हों उसका नेता अगर झूठी भलमनसीके डरसे हमसे हिसाब न मांगे तो वह भी दोषभागी है। काम और पैसेका हिसाब रखना जितना तनख्वाह देनेवालेका फर्ज है, स्वयंसेवकका उससे दूना फर्ज है। इसलिए कि उसने अपने कामको ही अपना वेतन मान लिया है। यह बात अति महत्त्वकी है और मैं जानता हूं कि आमतौरसे बहुतेरी संस्थाओंमें इसपर जितना चाहिए उतना ध्यान नहीं दिया जाता। इसीसे उसके लिए मैंने इस प्रकरणमें इतना स्थान देनेका साहस किया है।

: १५ :

वक्र राजनीति अथवा क्षणिक हर्ष

केप टाउनमें उतरते ही और खास तौरसे जोहान्सबर्ग पहुंचनेपर मैंने देखा कि मदीरामें मिले हुए तारकी जो कीमत हमने आंकी थी वह कीमत उसकी नहीं थी। इसमें भेजनेवाले मि० रिचका दोष नहीं था। उन्होंने कानूनके नामंजूर होनेके बारेमें जैसा सुना वैसा तार कर दिया। हम ऊपर देख चुके हैं कि इस वक्त यानी १९०६ में ट्रांसवाल शाही उपनिवेश था। ऐसे उपनिवेशोंके राजदूत अपने उपनिवेशसे सम्बद्ध विषयोंमें उपनिवेश सचिवको आवश्यक सलाह देनेकेलिए इंगलैंड (लंदन) में रहा करते हैं। ट्रांसवालके दूत दक्षिण अफ्रीका-

के प्रसिद्ध वकील सर रिचर्ड सॉलोमन थे। खूनी कानूनको नामंजूर करनेका निश्चय लार्ड एल्गिनने सर रिचर्डके साथ मशविरा करके किया था। १९०७ की पहली जनवरीसे ट्रांसवालको उत्तरदायी शासनका अधिकार मिलनेवाला था। अतः लार्ड एल्गिनने सर रिचर्डको यह आश्वासन दिया—"यही कानून ट्रांसवालको उत्तरदायी शासन मिलनेके बाद वहांकी धारा सभा पास करे तो बड़ी सरकार उसे नामंजूर नहीं करेगी। पर जबतक ट्रांसवाल शाही उपनिवेश माना जाता है तबतक ऐसे भेदभाववाले कानूनके लिए बड़ी सरकार सीधी जिम्मेदार समझी जायगी और चूंकि साम्राज्य सरकारके विधानमें भेदभाववाली राजनीतिको स्थान नहीं दिया जाता, इसलिए इस सिद्धांतका सम्मान करनेके लिए फिलहाल तो मुझे बादशाहको यह कानून नामंजूर करनेकी सलाह देनी ही होगी।"

इस प्रकार महज नामके लिए कानून रद हो जाय और साथ ही ट्रांसवालके गोरोंका काम भी बन जाय तो सर रिचर्डको इसमें कोई एतराज न था। होता क्यों? इस राजनीतिको मैंने 'वक्र' विशेषण लगाया है; पर मैं मानता हूं कि इससे अधिक तीखे विशेषणका व्यवहार किया जाय तो भी इस नीतिका संचालन करनेवालोंके साथ वस्तुतः कोई अन्याय नहीं होगा। शाही उपनिवेशके कानूनोंके लिए बड़ी सरकार प्रत्यक्षतः जिम्मेदार होती है। उसके विधानमें रंगभेद और जातिभेदके लिए स्थान नहीं। ये दोनों बातें बहुत सुंदर हैं। यह बात भी समझमें आ सकती है कि बड़ी सरकार उत्तरदायी शासन प्राप्त उपनिवेशोंके बनाये हुए कानूनोंको एकबारगी रद नहीं कर सकती; पर उपनिवेशके राजदूतोंके साथ गुप्त मंत्रणा करना, उन्हें पहलेसे साम्राज्यके विधानके विरुद्ध कानूनको नामंजूर न करनेका वचन दे देना,

इसमें क्या उन लोगोंके साथ दगा और अन्याय नहीं है जिनके हक छीने जा रहे हों ? सच पूछिये तो लार्ड एल्गिनने पहलेसे वचन देकर ट्रांसवालके गोरोंको भारतीयोंके विरुद्ध अपना आन्दोलन जारी रखनेका बढ़ावा दिया। उन्हें ऐसा करना था तो भारतीय प्रतिनिधियोंको इसे साफ बता देना था। सच तो यह है कि उत्तरदायी शासन भोगनेवाले उपनिवेशोंके कानूनोंके लिए भी बड़ी सरकार जिम्मेदार होती ही है। ब्रिटिश विधानके मूल सिद्धांत स्वराज्य-भोगी उपनिवेशोंको भी मानने ही होते हैं। जैसे, कोई भी उत्तरदायित्व प्राप्त उपनिवेश कानूनन् जायज गुलामीकी प्रथाका पुनरुद्धार नहीं कर सकता। लार्ड एल्गिनने अगर ख़ूनी कानूनको अनुचित मानकर नामंजूर किया हो—और ऐसा मानकर ही वह नामंजूर किया जा सकता था—तो उनका स्पष्ट कर्तव्य था कि सर रिचर्ड सॉलोमनको अकेलेमें बुलाकर कह देते कि उत्तरदायी शासन मिलनेके बाद ट्रांसवालकी सरकार ऐसा अन्यायकारी कानून न बनाये और उसका इरादा उसे बनानेका ही हो तो उसे जिम्मेदारी सौंपी जाय या नहीं, इसपर बड़ी सरकारको फिरसे विचार करना होगा। या हिंदुस्तानियोंके हकोंकी पूरी रक्षाकी शर्तपर ही ट्रांसवालको जवाबदेह हुकूमत सौंपनी चाहिए थी। यह करनेके बदले लार्ड एल्गिनने ऊपरसे तो हिंदुस्तानियोंकी हिमायत करनेका ढोंग किया, पर भीतरसे उसी वक्त ट्रांसवालकी सरकारकी सच्ची हिमायत की और जिस कनूनको खुद रद किया उसीको फिरसे पास करनेका बढ़ावा दिया। ऐसी वक्र राज-नीतिका यह एक ही या पहला उदाहरण नहीं था। ब्रिटिश साम्राज्यके इतिहासका साधारण विद्यार्थी भी ऐसी दूसरी मिसालें याद कर सकता है।

इसलिए जोहान्सबर्गमें हमने एक ही बात सुनी कि लार्ड

एल्गिन और बड़ी सरकारने हमें धोखा दिया। हमें तो मदीरामें जितनी खुशी हुई थी, दक्षिण अफ्रीकामें उतनी ही मायूसी हुई। फिर भी इस कुटिलताका तात्कालिक परिणाम तो यही हुआ कि कौममें और जोश फैला और सब कहने लगे--"अब हमें चिंता क्या है ? हमें क्या बड़ी सरकारकी सहायताके भरोसे लड़ना है ? हमें तो अपने बलपर और जिसका नाम लेकर हमने प्रतिज्ञा की है उस भगवान्के भरोसे लड़ना है। और हम सच्चे रहे तो टेढ़ी राजनीति भी सीधी हो ही जायगी।"

ट्रांसवालमें उत्तरदायी शासनकी स्थापना हुई। नई उत्तरदायी धारा सभाने जो पहला कानून पास किया वह था बजट और दूसरा कानून यही खूनी कानून (एशियाटिक रेजिस्ट्रेशन ऐक्ट) था। यह कानून ज्यों-का-त्यों उसी रूपमें पास हुआ जिस रूपमें पहले बना और पास हुआ था। उसकी एक दफामें तारीख दी हुई थी। उसे बदलना तो अधिक दिन बीत जानेसे जरूरी ही हो गया था। अतः यह तारीख उसमें बदली गई। २१ मार्च १९०७ की एक ही बैठकमें इस कानूनकी सारी विधियां पूरी करके वह पास कर दिया गया। इस शाब्दिक परिवर्तनका कानूनकी सख्तीके साथ कोई संबंध नहीं था। वह तो जैसी थी वैसी ही बनी रही। अतः यह कानून रद हुआ था, इस बातको लोग सपनेकी तरह भूल गये। भारतीय जनताने अपनी रीतिके अनुसार आवेदनपत्र आदि तो भेजे ही, पर इस तूतीकी आवाज उस नक्कारखानेमें कौन सुनता ? इस कानूनके १ जुलाई १९०७ से जारी होनेकी घोषणा की गई थी और भारतीयोंको ३१ जुलाईके पहले परवानेके लिए दर्खास्त देनेको हुक्म दिया गया था। इतनी मुद्दत रखनेका कारण हिंदुस्तानियोंपर कोई मेहरबानी करना नहीं था। पद्धतिके अनुसार इस कानूनको बड़ी

सरकारकी मंजूरी मिलनी चाहिए थी। इसमें कुछ वक्त लगना ही था। फिर उसके परिशिष्टके अनुसार परचे, परवाने वगैरह तैयार कराने और भिन्न-भिन्न स्थानोंमें परवानेके दफ्तर (परमिट आफिस) खोलनेमें भी कुछ वक्त लगता। इससे यह पांच-छः महीनेकी मुहलत ट्रांसवाल सरकारने अपने ही सुभीतेके लिए दी थी।

: १६ :

अहमद मुहम्मद काछलिया

शिष्ट-मण्डल जब विलायत जा रहा था तब एक अंग्रेज मुसाफिरने जो दक्षिण अफ्रीकामें रह चुका था, ट्रांसवालके कानून और हमारे विलायत जानेका कारण भी हमारे मुंहसे सुना। वह तुरंत बोल उठा--"आप कुत्तेका पट्टा (डॉग्स कॉलर) पहननेसे इन्कार करना चाहते हैं।" इस अंग्रेजने ट्रांसवालके परवानेको यह नाम दिया। उसने यह बात पट्टेपर अपना हर्ष और भारतीयोंके प्रति तिरस्कार प्रकट करने या अपनी हमदर्दी दिखानेके लिए कहीं, इसे मैं उस वक्त नहीं समझ सका था और आज इस घटनाका उल्लेख करते समय भी इस बारेमें कोई निश्चय नहीं कर सकता। किसी भी मनुष्यके कथनका ऐसा अर्थ हमें नहीं करना चाहिए जिससे उसके साथ अन्याय हो। इस सुनीतिका अनुसरण करते हुए मैं यह माने लेता हूं कि इस अंग्रेजने अपनी हमदर्दी दिखानेके लिए ऊपरके जैसे, भावनाकी तसवीर खींच देनेवाले शब्द कहे। एक ओर ट्रांसवाल सरकार हमें यह पट्टा पहनानेकी तैयारी कर रही थी, दूसरी ओर भारतीय जनता इसकी तैयारी कर रही थी कि यह पट्टा न पहननेके अपने निश्चयपर वह किस तरह

कायम रहे और ट्रांसवालकी सरकारकी कुनीतिके विरोधमें किस तरह युद्ध किया जाय । विलायत और हिंदुस्तानके अपने सहायकोंको पत्र लिखने और चालू परिस्थितिसे उनको परिचित कराते रहनेका काम तो चल ही रहा था। पर सत्याग्रहकी लड़ाई बाह्योपचारपर बहुत कम अवलंबित होती है। भीतरी उपचार ही सत्याग्रहमें अकसीर उपचार होता है। अतः कौमके सभी अंग ताजे और चुस्त रहें, इसके यत्नमें ही नेताओंका समय जा रहा था।

कौमके सामने एक महत्त्वका प्रश्न उपस्थित हुआ : सत्याग्रहका काम किस मंडलकी मारफत लिया जाय ? ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनमें तो बहुतसे सभासद थे। उसकी स्थापनाके समय सत्याग्रहका जन्म भी नहीं हुआ था। उस संस्थाको अनेक कानूनोंका विरोध करना पड़ा था और आज भी करना था। कानूनोंका विरोध करनेके अतिरिक्त उसे दूसरे राजनैतिक, सामाजिक आदि काम भी करने होते थे। फिर इस संस्थाके सभी सदस्योंने प्रतिज्ञा की थी, यह भी नहीं कहा जा सकता था। इसके साथ-साथ सत्याग्रहमें सम्मिलित होनेसे उस संस्थाको जो बाहरकी जोखिमें उठानी पड़तीं उनका विचार करना भी जरूरी था। सत्याग्रहकी लड़ाईको ट्रांसवालकी सरकार राजद्रोह मान ले और ऐसा मानकर यह युद्ध चलानेवाली संस्थाओंको गैर-कानूनी घोषित कर दे तो ? इस संस्थाके जो सदस्य सत्याग्रही नहीं होंगे उनकी स्थिति क्या होगी ? सत्याग्रहके पूर्व जिसने पैसा दिया हो उनके पैसेका क्या होगा ? ये बातें भी सोचनेकी थीं। अंतमें सत्याग्रहियोंका यह दृढ़ निश्चय था कि जो लोग अश्रद्धा, अशक्ति या दूसरे किसी भी कारणसे सत्याग्रहमें शामिल न हों उनके प्रति द्वेष न रखा जाय, इतना ही नहीं, उनके साथ बर्ताव करनेमें आजके स्नेह-भावमें कोई अंतर

न आने दिया जाय और सत्याग्रहको छोड़कर और आन्दोलनोंमें उनके साथ-साथ काम किया जाय।

इन विचारोंसे अंतमें सारी कौमने यही निश्चय किया कि सत्याग्रहकी लड़ाई किसी वर्तमान संस्थाके जरिये न चलाई जाय। दूसरी संस्थाएं जितनी सहायता दे सकती हों दें और सत्याग्रहको छोड़कर और जो उपाय खूनी कानूनके विरोधमें कर सकती हों करें। अतः 'पैसिव रेजिस्टेंस एसोसियेशन' अथवा 'सत्याग्रह-मंडल' नामकी नई संस्था सत्याग्रहियोंने स्थापित की। अंग्रेजी नामसे पाठक यह समझ लेंगे कि जिस वक्त इस नये मंडलकी स्थापना हुई उस वक्ततक सत्याग्रह नामकी खोज नहीं हो सकी थी। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों हमें यह मालूम होता गया कि अलग संस्था स्थापित करनेसे जनताका हर तरह लाभ ही हुआ और अगर वैसा न हुआ होता तो सत्याग्रहके आन्दोलनकी शायद हानि ही हुई होती। बहुतसे लोग इस नई संस्थाके सदस्य हुए और जनताने पैसा भी खुले हाथों दिया।

मेरे अनुभवने मुझे यह बताया है कि कोई भी आन्दोलन पैसेकी कमीसे टूटता, अटकता या निस्तेज नहीं होता। इसके मानी यह नहीं हैं कि कोई भी लौकिक आन्दोलन बिना पैसेके चल सकता है। पर इसका यह अर्थ अवश्य है कि जहां सच्चे संचालक हैं वहां पैसा अपने आप चला आता है। इसके विपरीत मुझे यह भी अनुभव हुआ है कि जिस आन्दोलनको पैसेका अतिरेक हो जाता है उसकी उसी समयसे अवनति आरंभ हो जाती है। इससे कोई सार्वजनिक संस्था पूंजी इकट्ठी करके उसके ब्याजसे अपना कारबार चलाये इसे पाप कहनेकी हिम्मत तो नहीं होती, इससे इतना ही कहता हूं कि यह अयोग्य है। सार्वजनिक संस्थाकी पूंजी तो जनसमुदाय ही है। जबतक वह चाहता है तभी तक उसे जीवित

रहना चाहिए। पूंजी इकट्ठी करके ब्याजसे काम चलानेवाली संस्था सार्वजनिक नहीं रहती, बल्कि स्वतंत्र और स्वच्छंद हो जाती है। सार्वजनिक टीकाके अंकुशके वश नहीं रहती। ब्याजपर चलनेवाली अनेक धार्मिक और लौकिक संस्थाओंमें कितनी बुराइयां घुस गई हैं, इसे बतानेका यह स्थान नहीं। यह लगभग स्वयंसिद्ध बात है।

अब हम फिर अपने मूल विषयपर आएं। बालकी खाल निकालना और नुक्ताचीनी करना कुछ वकीलों और अंग्रेजी पढ़े हुए लोगोंका ही ठेका नहीं है। मैंने देखा कि दक्षिण अफ्रीकाके अपढ़ हिंदुस्तानी भी बहुत ही बारीक दलीलें कर सकते हैं। कितनोंने यह दलील निकाली कि पहला खूनी कानून रद हो गया है, इसलिए नाटकशालामें की हुई प्रतिज्ञा पूरी हो गई। जो लोग ढीले पड़ रहे थे उन्होंने इस दलीलकी छायामें आश्रय लिया। इस दलीलमें कुछ दम न था, यह तो नहीं कहा जा सकता। फिर भी जिन लोगोंने उस कानूनका विरोध कानूनकी हैसियतसे नहीं, बल्कि उसके भीतर निहित तत्त्वके कारण किया था उनपर तो इस नुक्ताचीनीका कोई असर नहीं हो सकता था। पर यह होते हुए भी सलामतीकी खातिर, जन-जागरण बढ़ानेके लिए और लोगोंके भीतर जो कमजोरी आ गई है उसकी गहराई कितनी है यह देख लेनेके लिए लोगोंसे फिरसे प्रतिज्ञा कराना जरूरी समझा गया। इसलिए जगह-जगह सभाएं करके लोगोंको परिस्थिति समझाई गई और उनसे फिरसे प्रतिज्ञाएं भी कराई गईं। लोगोंका जोश कुछ ठंडा हो गया हो, यह नहीं दिखाई दिया।

इस बीच जुलाईके महीनेका अंत निकट आता जा रहा था। उसकी आखिरी तारीखको हमने ट्रांसवालकी राजधानी प्रिटोरियामें विराट् सभा करनेका निश्चय किया था। दूसरे शहरोंसे भी प्रतिनिधि बुलाये गये थे। सभा

प्रिटोरियाकी मस्जिदके मैदानमें हुई। सत्याग्रह आरंभ होनेके बादसे लोग सभाओंमें इतनी बड़ी तादादमें आने लगे थे कि किसी मकानमें सभा करना नामुमकिन हो गया था। सारे ट्रांसवालमें हिंदुस्तानियोंकी आबादी १३ हजारसे अधिक नहीं मानी जाती थी, जिसमेंसे १० हजारसे कुछ ऊपर जोहान्सवर्ग और प्रिटोरियामें ही बसते थे। इस तादादमेंसे पांच-छः हजार लोग सभामें उपस्थित हों, यह संख्या दुनियाके किसी भी भागमें बहुत बड़ी और अति संतोषजनक मानी जा सकती है। सार्वजनिक सत्याग्रहकी लड़ाई और किसी शर्तपर लड़ी भी नहीं जा सकती। जहां युद्धका आधार केवल अपना बल हो वहां उस विषयकी सार्वजनिक शिक्षा नहीं दी गई हो तो लड़ाई चल ही नहीं सकती। इससे यह उपस्थिति हम कार्यकर्ताओंके लिए कोई अचंभेकी चीज नहीं थी। हमने शुरूसे ही निश्चय कर लिया था कि अपने आम जलसे खुले मैदानमें ही करेंगे। इससे हमारा खर्च कुछ नहीं होता था और जगहकी तंगीके कारण एक भी आदमीको वापस नहीं जाना पड़ता था। यहीं यह बात भी लिख देना चाहिए कि ये सारी सभाएं अधिकांशमें बहुत शांत होतीं। आनेवाले सारी बातोंको बड़े ध्यानसे सुनते। कोई बहुत दूरपर खड़ा होनेके कारण सुन न सकता तो वक्तासे ऊंची आवाजमें बोलनेका अनुरोध करता। पाठकोंको यह बतानेकी जरूरत नहीं होनी चाहिए कि इन सभाओंमें कुर्सियों वगैरहका इंतजाम बिलकुल ही न होता। मंच इतना ही बड़ा बनाया जाता कि केवल सभापति, वक्ता और सभापतिके अगल-बगल दो-चार आदमी और बैठ लें। उसके ऊपर एक छोटीसी मेज और दो-चार कुर्सियां-तिपाइयां रख दी जातीं।

प्रिटोरियाकी इस सभाके सभापति ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनके कार्यकारी अध्यक्ष यूसुफ इस्माइल मियां थे। खूनी कानूनके अनुसार परवाने निकालनेका वक्त

नजदीक आता जा रहा था। इससे जैसे हिंदुस्तानियोंमें गहरा जोश होते हुए भी वे चितातुर थे वैसे ही जनरल बोथा और जनरल स्मट्स भी, उनकी सरकारके पास अमोघ बल होते हुए भी; चितातुर थे। एक सारी कौमको ताकतसे काम लेकर झुकाना किसीको रुच तो सकता ही नहीं। अतः जनरल बोथाने मि० हॉस्किनको इस सभामें हमें समझानेके लिए भेजा। मि० हॉस्किनका परिचय मैं ७ वें प्रकरणमें करा चुका हूं। सभाने उनका स्वागत किया। अपने भाषणमें उन्होंने कहा—"आप जानते हैं कि मैं आप लोगोंका मित्र हूं। मेरी सहानुभूति आपके साथ है, यह कहनेकी जरूरत नहीं होनी चाहिए। मेरे बसकी बात हो तो मैं आपकी मांग जरूर मंजूर करा दूं; पर यहांके सामान्य गोरोंके विरोधके विषयमें मुझे आपको कुछ बताना तो है ही नहीं। आज मैं आपके पास जनरल बोथाका भेजा हुआ आया हूं। उन्होंने इस सभामें आकर आपको उनका संदेसा सुना देनेको कहा है। भारतीय जनताके लिए उनके दिलमें इज्जत है। उसकी भावनाओंको वह समझते हैं। पर वह कहते हैं—'मैं लाचार हूं। ट्रांसवालके सारे यूरोपियन ऐसा कानून मांगते हैं। मैं खुद भी इस कानूनकी जरूरत देखता हूं। ट्रांसवाल सरकारकी शक्तिको भारतीय जनता जानती है। इस कानूनको बड़ी सरकारकी सम्मति प्राप्त है। भारतीय जनताको जितना करना चाहिए था उतना उसने किया और अपने सम्मानकी रक्षा कर ली। पर जब उसका विरोध सफल नहीं हुआ और कानून पास हो गया तब उसको चाहिए कि इस कानूनको शिरोधार्य कर अपनी वफादारी और शान्ति-प्रियताका सबूत दे। इस कानूनके अनुसार जो नियम बने हैं उनमें कोई छोटा-मोटा हेर-फेर कराना हो तो इस विषयमें आपका कहना जनरल स्मट्स ध्यानपूर्वक

सुनेंगे।' " यह संदेसा सुनाकर मि० हॉस्किनने कहा—"मैं खुद भी आपको यह सलाह देता हूं कि जनरल बोथाके संदेसेको आप मान लें। मैं जानता हूं कि ट्रांसवालकी सरकार इस कानूनके बारेमें दृढ़ है। उसका विरोध करना दीवारसे सिर टकराना जैसा है। मैं चाहता हूं कि आपकी कौम विरोध करके बरबाद न हो या बेकार कष्ट न भोगे।" मैंने इस भाषणके शब्द-शब्दका उलथा जनताको सुना दिया। खुद अपनी ओरसे भी चेतावनी दी। मि० हॉस्किन तालियोंकी आवाजके बीच बिदा हुए।

अब भारतीयोंके भाषण शुरू हुए। इस प्रकरणके और सच पूछिये तो इस इतिहासके, नायकका परिचय मुझे अभी कराना बाकी है। जो लोग बोलनेको खड़े हुए उनमें स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया भी थे। मैं तो उन्हें एक मवक्किल और दुभाषियेके रूपमें ही जानता था। वह अबतक सार्वजनिक कामोंमें आगे बढ़कर हिस्सा नहीं लेते थे। उनका अंग्रेजीका ज्ञान कामचलाऊ था। पर अनुभवसे उसको इतना बढ़ा लिया था कि अपने दोस्तोंको अंग्रेज वकीलोंके पास ले जाते तो खुद ही दुभाषियेका काम करते। दुभाषियेका काम कुछ उनका पेशा नहीं था। यह काम तो वह मित्ररूपमें ही करते थे। धंधा पहले कपड़ेकी फेरीका करते थे, फिर अपने भाईके साझेमें छोटे पैमानेपर व्यापार करने लगे। वह सूरती मेमन थे। उनका जन्म सूरत जिलेमें हुआ था और सूरती मुसलमानोंमें उनकी अच्छी इज्जत थी। उनका गुजरातीका ज्ञान भी साधारण ही था और अनुभवसे उसे भी काफी बढ़ा लिया था। पर उनकी बुद्धि इतनी तीक्ष्ण थी कि चाहे जो विषय हो उसे बहुत आसानीसे समझ लेते थे। मुकदमोंकी गुत्थियां इस तरह सुलझा लेते थे कि अकसर मैं देखकर दंग रह जाता। वकीलोंके साथ कानूनकी

बहस करते भी नहीं हिचकते थे और अकसर उनकी दलीलें वकीलोंके लिए भी विचारणीय होतीं।

बहादुरी और एकनिष्ठामें उनसे बढ़ जानेवाला आदमी न मुझे दक्षिण अफ्रीकामें दिखाई दिया और न हिंदुस्तानमें। कौमके लिए उन्होंने अपना सर्वस्व होम दिया था। जितनी बार उनसे मेरा सम्पर्क हुआ, मैंने उन्हें एक बातवाला प या। खुद पक्के मुसलमान थे। सूरतकी मेमन मस्जिदके मुतवल्लियों-मेंसे भी थे। पर इसके साथ-साथ हिंदू-मुसलमान दोनोंको एक निगाहसे देखते थे। मुझे एक भी ऐसा मौका याद नहीं जब उन्होंने धर्मान्धताके भावसे और अनुचित रीतिसे हिंदूके मुकाबिले मुसलमानकी तरफदारी की हो। वह नितांत निर्भय और पक्षपात-रहित थे। इसलिए जब जरूरी मालूम होता तब हिंदू-मुसलमान दोनोंको उनके दोष बतानेमें तनिक भी संकोच न करते। उनकी सरलता और निरभिमानता अनुकरण करने योग्य थी। उनके साथ बरसोंके गाढ़ परि-चयके बाद बनी हुई मेरी यह पक्की राय है कि स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया जैसा मनुष्य कौमको मिलना मुश्किल है।

प्रिटोरियाकी सभामें बोलनेवालोंमें यह नर-रत्न भी था। उन्होंने बहुत ही छोटा भाषण दिया। वह बोले—"इस खूनी कानूनको हर हिंदुस्तानी जानता है। उसका अर्थ हम सभीको मालूम है। मि० हॉस्किनका भाषण मैंने ध्यान-पूर्वक सुना है। आपने भी सुना है। मुझपर तो उसका एक ही असर हुआ है कि अपनी प्रतिज्ञापर मैं और पक्का हो गया हूं। ट्रांसवालकी सरकारका बल हम जानते हैं। पर इस खूनी कानूनके डरसे बड़ा डर वह हमें कौन-सा दिखा सकती है? वह हमें जेल भेजेगी, हमारा माल नीलाम कर देगी, हमें देशसे निकाल देगी, फांसीपर चढ़ा देगी। ये सारी बातें सहन हो सकती हैं, पर यह कानून तो

सहन नहीं होगा।" मैं देख रहा था कि ये वाक्य बोलते हुए अहमद मुहम्मद काछलिया बड़े उत्तेजित होते जा रहे थे। उनका चेहरा सुर्ख हो गया था, गर्दन और माथेकी रगें खूनके जोरसे दौरा करनेके कारण उभर आई थीं। शरीर कांप रहा था। अपने दाहिने हाथकी उंगलियां गर्दनपर फेरते हुए वह गरज उठे--"मैं खुदाकी कसम खाकर कहता हूं कि मैं कत्ल हो जाऊंगा, पर इस कानूनके सामने सिर न झुकाऊंगा। और मैं चाहता हूं कि यह सभा भी यही निश्चय करे।" यह कहकर वह बैठ गये। उन्होंने जब गर्दनपर उंगलियां फेरीं तो मंचपर बैठे हुए कुछ लोगोंके चेहरोंपर मुस्कराहट आगई। जहांतक मुझे याद है, मैंने भी उनका साथ दिया। सेठ काछलियाने अपने शब्दोंमें जितना बल भरा था उतना वह अपने कामोंमें दिखा सकेंगे, इस विषयमें मेरे मनमें थोड़ी शंका थी। जब-जब मैं इस शंकाकी बात सोचता हूं तब-तब और यहां इस बातका उल्लेख करते हुए भी मैं लज्जित हो रहा हूं। इस महान संग्राममें जिन बहुतोंने अपनी प्रतिज्ञाका अक्षरशः पालन किया उनमें सेठ काछलिया सदा आगे रहे। उनका रंग बदलता हुआ मैंने कभी देखा ही नहीं।

सभाने तो इस भाषणका तालियोंकी गड़गड़ाहटसे स्वागत किया। उस वक्त मैं उनको जितना जानता था उसकी बनिस्बत और सभासद कहीं ज्यादा जानते थे, क्योंकि उनमेंसे अधिकांशको तो इस गुदड़ीके लालका निजी परिचय था। वे जानते थे कि काछलियाको जो करना होता है वही कहते हैं और जो कहते हैं वही करते हैं। जोशीले भाषण और भी कई हुए। पर काछलिया सेठके भाषणको उल्लेखके लिए इस कारण चुना है कि यह भाषण उनकी भावी कार्यावलीकी भविष्यवाणी सिद्ध हुआ। जोशीले भाषण करनेवाले सभी नहीं टिक सके। इस पुरुषसिंहकी मृत्यु अपने देश-भाइयोंकी सेवा करते हुए

ही १९१८ में अर्थात् युद्ध समाप्तिके चार साल बाद हुई।

इनके एक संस्मरणको और कहीं स्थान मिलना संभव नहीं। इसलिए उसे भी यहीं दिये देता हूं। पाठक टाल्स्टाय फार्मकी बात आगे चलकर पढ़ेंगे। उसमें सत्याग्रहियोंके कुटुंब बसते थे। सेठ काछलियाने अपने बेटेको भी शिक्षा प्राप्तिके लिए इस फार्ममें भेजा था, केवल इस दृष्टिसे कि दूसरोंके लिए उदाहरण उपस्थित करें और अपने बेटेको भी सरल जीवनका अभ्यासी और जनताका सेवक बनाएं। और कह सकते हैं कि इसको देखकर ही दूसरे मुसलमान लड़कोंको भी उनके मां-बापने इस फार्ममें भेजा। बालक काछलियाका नाम अली था। उसकी उम्र उस वक्त १०-१२ सालकी होगी। वह नम्र, चंचल, सरल और सत्यवादी बालक था। काछलिया सेठके पहले, पर लड़ाईके बाद, फरिश्ते उसे भी खुदाके दरबारमें उठा लाये। मैं मानता हूं कि वह जिंदा रहता तो पिताकी कीर्तिको अवश्य चार चांद लगाता।

: १७ :

पहली फूट

१९०७की पहली जुलाई आई। परवाना जारी करनेके दफ्तर (परमिट आफिस) खुले। कौमका हुक्म था कि हरएक दफ्तरकी खुलेतौरपर पिकेटिंग की जाय, यानी दफ्तरोंको जानेवाले रास्तोंपर स्वयंसेवक रखे जाएं और वे दफ्तरमें जानेवालोंको सावधान करें। हरएक स्वयंसेवकको एक खास बिल्ला दिया गया था और हरएकको खासतौरसे यह समझा दिया गया था कि परवाना लेनेवाले किसी भी

हिंदुस्तानीके साथ विनय-विरुद्ध व्यवहार न करें। उनका नाम पूछें, पर वह न बताएं तो बलात्कार या अविनय न करें। कानूनको मान लेनेसे होनेवाली हानियोंकी जो सूची छपा रखी गई थी उसे एशियाई दफ्तरमें जानेवाले हर हिंदुस्तानी-को दे दें और उसमें क्या लिखा है यह समझा दें। पुलिसके साथ भी विनयका व्यवहार करें। वह गाली दे, मारे तो शान्तिसे सह लें। मार बर्दाश्त न हो तो वहांसे हट जायं। पुलिस पकड़े तो खुशीसे गिरफ्तार हो जायं। जोहान्सबर्गमें ऐसी कोई बात हो तो मुझको ही खबर दें। और कहीं हो तो उन स्थानोंमें नियुक्त मंत्रियोंको खबर दें और उनकी सलाहके अनुसार काम करें। स्वयंसेवकोंकी हरएक टुकड़ीका एक मुखिया या नायक था। उसकी आज्ञाका पालन करना दूसरे स्वयंसेवकों (पहरेदारों) का फर्ज था।

भारतीय जनताके लिए इस प्रकारका यह पहला ही अनुभव था। १२ बरससे ऊपरकी उम्रवाले सब लोग 'पिकेट' या पहरेदारका काम करनेके लिए चुन लिये गये थे। इससे १२ से १८ बरस तकके नवयुवक भी बड़ी संख्यामें स्वयंसेवक बना लिए गये थे; पर स्थानीय कार्यकर्ता जिसे न जानते हों ऐसा कोई भी व्यक्ति स्वीकार नहीं किया जाता था। इतनी सावधानीके अतिरिक्त हर सभामें दूसरे तौरपर लोगोंको जता दिया गया था कि नुकसानके डरसे या और किसी कारणसे जो कोई नया परवाना निकलवाना चाहे, नेता उसके साथ एक स्वयंसेवक कर देगा जो साथ जाकर उसे एशियाटिक दफ्तरमें पहुंचा देगा और काम हो जानेपर उसे फिर स्वयंसेवकोंके घरके बाहर पहुंचा आयेगा। बहुतोंने इस सुरक्षाके प्रबंधका लाभ भी उठाया। स्वयंसेवकोंने हर जगह बड़े उत्साहसे काम किया। वे सदा अपने काममें मुस्तैद और चौकन्ने रहते। मोटे हिसाबसे यह कह सकते

हैं कि पुलिसने उन्हें बहुत तंग नहीं किया। कभी-कभी करती तो स्वयंसेवक उसे सह लेते।

स्वयंसेवकोंने इस काममें हास्य रसका भी मिश्रण किया था जिसमें कभी-कभी पुलिस भी शामिल होती। अपना वक्त आनंदमें बितानेके लिए वे अनेक चुटकुले ढूंढ़ निकालते। एक बार रास्ता रोकनेके इंतजामपर वे राहदारीके कानूनके अंदर गिरफ्तार कर लिये गये। यहां सत्याग्रहमें असहयोग न था। इसलिए अदालतमें बचाव न करनेका नियम नहीं था, यद्यपि यह सामान्य नियम था कि जनताका पैसा खर्च करके वकील रखकर बचाव नहीं कराया जायगा। इन स्वयंसेवकोंको अदालतने निरपराध कहकर छोड़ दिया। इससे उनका उत्साह और बढ़ा।

इस प्रकार जो हिंदुस्तानी परवाना लेना चाहते थे यद्यपि उनपर प्रकटमें स्वयंसेवकोंकी ओरसे कोई असभ्य व्यवहार या जोर-जबर्दस्ती नहीं होती थी, फिर भी मुझे यह तो स्वीकार करना ही होगा कि लड़ाईके सिलसिलेमें एक ऐसा भी दल खड़ा हो गया था जिसका काम बिना स्वयंसेवक बने छिपे तौरपर परवाना लेनेवालोंको मारपीटकी धमकी देना या दूसरे तौरपर नुकसान पहुंचाना था। यह दुःखद बात थी। ज्योंही इसकी खबर मिली, इसे रोकनेके लिए खूब कड़े उपाय किये गये। इसके फलस्वरूप धमकियां देना बंद-सा हो गया, पर उसका जड़-मूलसे नाश नहीं हुआ। धमकियोंका असर रह ही गया और मैं यह भी देख सका कि उतने अंशमें लड़ाईको नुकसान पहुंचा। जिन्हें डर लग रहा था उन्होंने तुरंत सरकारी संरक्षण ढूंढ़ा और वह उन्हें मिला। यों कौममें विषका प्रवेश हुआ और जो कमजोर थे वे और भी कमजोर हो गये। इससे विषको पोषण मिला, क्योंकि दुर्बलताका स्वभाव बदला लेनेका होता ही है।

इन धमकियोंका असर बहुत ही थोड़ा हुआ, पर लोकमत और स्वयंसेवकोंकी उपस्थितिसे परवाना लेनेवालोंके नाम जनतापर प्रकट होंगे, इन दोनों बातोंका असर बहुत गहरा हुआ। मैं एक भी हिंदुस्तानीको नहीं जानता जो यह मानता हो कि खूनी कानूनके सामने सिर झुका देना अच्छा है। जो परवाने लेने गये वे महज इसलिए गये कि कष्ट सहने या हानि उठानेका दम उनमें नहीं था। इसीसे वे जाते हुए शरमाये भी।

एक ओर लोकलाज और दूसरी ओर अपने व्यापारको नुकसान पहुंचनेका डर इस दुहरी कठिनाईसे निकलनेका रास्ता कुछ मुखिया हिंदुस्तानियोंने ढूंढ निकाला। एशियाटिक दफ्तरके साथ बातचीत कर उन्होंने यह प्रबंध किया कि दफ्तरका कोई अहलकार किसी निजी मकानमें और वह भी रातमें नौ-दस बजेके बाद जाकर उन्हें परवाने दे दे। उन्होंने सोचा कि इस प्रबंधसे कुछ वक्ततक तो उनके खूनी कानूनके सामने घुटने टेक देनेकी किसीको खबर ही नहीं होगी, और चूंकि वे नेता थे, इसलिए उनको देखकर दूसरे भी उस कानूनको मान लेंगे। इससे और कुछ न हो तो लज्जाका बोझ तो कुछ हलका हो ही जायगा। पीछे बात लोगोंपर प्रकट हो गई तो उसकी चिंता नहीं।

पर स्वयंसेवकोंकी चौकसी इतनी कड़ी थी कि कौमको पल-पलकी खबर मिला करती थी। एशियाटिक दफ्तरमें भी ऐसा कोई होगा ही जो सत्याग्रहियोंको इस तरहकी सूचनाएं देता रहा हो। फिर कुछ ऐसे लोग भी थे जो खुद तो कमजोर थे, पर नेताओंका खूनी कानूनके सामने सिर झुका देना बर्दाश्त नहीं कर सकते थे और जो इस सद्भावसे सत्याग्रहियोंको खबर दे दिया करते थे कि वे दृढ़ रहे तो हम भी रह सकेंगे। यों एकबार इस चौकन्नेपनकी बदौलत कौमको

खबर मिली कि अमुक रातको अमुक दुकानमें फलां-फलां आदमी परवाना लेनेवाले हैं। इससे कौमने पहले तो यह इरादा रखनेवालोंको समझानेका यत्न किया, फिर उस दुकानपर पहरा भी बैठवा दिया। पर मनुष्य अपनी कमजोरी-को कबतक दबा सकता है? रातके दस-ग्यारह बजे कुछ मुखियोंने इस तरह परवाने लिये और एक सुरमें बजनेवाली बांसरीमें विसंवादी स्वर बज उठा। दूसरे ही दिन इनके नाम भी कौमने प्रकाशित कर दिये। पर शर्मकी भी एक हद होती है! स्वार्थ जब सामने आकर खड़ा होता है तब लाज-संकोच काम नहीं देता और मनुष्य सत्पथसे भ्रष्ट हो ही जाता है। इस पहली फूटके फलस्वरूप धीरे-धीरे कोई पांच सौ आदमियोंने परवाने ले लिये। कुछ दिनोंतक परवाने देनेका काम निजी मकानोंमें ही होता रहा, पर ज्यों-ज्यों लाजका बल घटता गया त्यों-त्यों इन पांच सौ आदमियोंमें कितने ही खुले आम भी अपने नाम दर्ज करानेके लिए एशिया-टिक दफ्तरमें जाने लगे।

: १८ :

पहला सत्याग्रही कैदी

अथक प्रयत्न करनेपर भी जब एशियाटिक दफ्तरको ५०० से अधिक आदमी नाम दर्ज करानेवाले नहीं मिल सके तब उस महकमेके अफसरोंने निश्चय किया कि अब हमें किसी-न-किसीको गिरफ्तार करना चाहिए। पाठक जर्मिस्टन नगरका नाम जानते हैं। वहां बहुतसे हिंदुस्तानी बसते थे। उनमें पंडित रामसुंदर नामका एक आदमी था। वह देखनेमें बहादुर आदमी-सा लगता था और वाचाल था।

थोड़े-बहुत श्लोक भी याद थे। उत्तर भारतका रहनेवाला था, इसलिए रामायणके कुछ दोहे-चौपाइयां तो उसे याद होने ही चाहिए। वह पंडित कहलाता था, इससे लोगोंमें उसकी प्रतिष्ठा भी थी। उसने जगह-जगह भाषण दिये। अपने भाषणोंमें वह खूब जोश उंडेल सकता था। अतः वहांके कुछ विघ्नसंतोषी भारतीयोंने एशियाटिक दफ्तरको सुझाया कि रामसुंदर पंडितको गिरफ्तार करलें तो जर्मिस्टनके बहुतसे हिंदुस्तानी परवाने ले लेंगे। उस विभागके अधिकारी रामसुंदर पंडितको पकड़नेके लिए इस लोभके वश हुए बिना नहीं रह सके। रामसुंदर पंडित गिरफ्तार कर लिया गया। इस तरहका यह पहला ही मुकदमा था। इसलिए सरकार और भारतीय जनतामें भी इससे गहरी हलचल मची। जिस रामसुंदर पंडितको अबतक केवल जर्मिस्टन ही जानता था, उसको क्षणभरमें सारा दक्षिण अफ्रीका जानने लगा। जैसे किसी महान् पुरुषपर मुकदमा चल रहा हो और वह सबकी निगाह अपनी ओर खींच ले वैसे ही सबकी आंखें राम-सुंदर पंडितपर लग गईं। शांति-रक्षाके लिए किसी प्रकारके प्रबंधकी आवश्यकता सरकारको नहीं थी, फिर भी उसने वैसा बंदोबस्त भी कर लिया। अदालतमें भी यह मानकर राम-सुंदरकी इज्जत की गई कि वह सामान्य अपराधी नहीं, बल्कि हिंदुस्तानी कौमका एक प्रतिनिधि है। अदालतका कमरा उत्सुक भारतीय दर्शकोंसे भर गया था। राम-सुंदरको एक महीनेकी सादी कैदकी सजा मिली। वह जोहान्सबर्गकी जेलमें रखा गया। उसके लिए यूरोपियन वार्डमें अलग कोठरी दी गई। उससे मिलने-जुलनेमें तनिक भी कठिनाई नहीं होती थी। बाहरसे खाना भेजनेकी इजाजत थी और भारतीय जनता नित्य उसके लिए सुंदर पकवान बनाकर भेजा करती। वह जिस चीजकी इच्छा करता वह

हाजिर कर दी जाती। जनताने उसका जेल-दिवस बड़ी धूम-धामसे मनाया। कोई हताश नहीं हुआ, बल्कि लोगोंका उत्साह और बढ़ा। जेल जानेको सैकड़ों तैयार थे। एशियाटिक विभागवालोंकी आशा फलीभूत नहीं हुई। जर्मिस्टनके भारतीय भी परवाना लेने नहीं गये। हिंदुस्तानी कौम ही नफेमें रही। महीना पूरा हुआ। रामसुंदर छूटा और बाजे-गाजेके साथ जुलूस बनाकर उसको सभाके लिए नियत स्थानपर ले गये। वहां उत्साह बढ़ानेवाले भाषण हुए। लोगोंने फूल-मालाओंसे रामसुन्दरको ढक दिया। स्वयंसेवकोंने उसके सम्मानमें दावत दी और सैकड़ों भारतीय यह सोचकर रामसुंदर पंडितसे मीठी ईर्ष्या करने लगे कि हम भी जेल गये होते तो कैसा अच्छा होता!

पर रामसुंदर खोटा सिक्का निकला। उसका बल झूठी सतीका-सा था। एक महीनेके पहले तो जेलसे निकला ही नहीं जा सकता था; क्योंकि उसकी गिरफ्तारी अचानक हुई थी। जेलमें तो उसने वह अमीरी की जो बाहर कभी मुयस्सर नहीं हुई थी। फिर भी स्वच्छंद विचरनेवाला और व्यसनी मनुष्य जेलके एकांत-वास और अनेक प्रकारके भोजन मिलते रहनेपर भी वहां रखे जानेवाले संयमको सहन नहीं कर सकता। यही बात रामसुंदर पंडितकी हुई। भारतीय जनता और जेलके अमले उसकी इतनी खुशामद बजा रहे थे, फिर भी जेल उसको कड़वी लगी और उसने ट्रांसवाल और युद्ध दोनोंसे आखिरी सलामकर अपना रास्ता लिया। हर कौममें कुछ चतुर दाव-पेच जाननेवाले लोग तो होते ही हैं। यही बात हरएक संग्रामके विषयमें भी कही जा सकती है। लोग रामसुंदरके रग-रेशेसे वाकिफ थे। पर उससे भी कौमका कोई अर्थ सध सकता है, यह सोचकर उन्होंने उसका गुप्त इतिहास, उसकी पोल खुलनेसे पहले, मुझपर

प्रकट नहीं होने दिया। पीछे मुझे मालूम हुआ कि रामसुंदर गिरमिटिया था जो अपना गिरमिट पूरा किये बिना भाग आया था। उसके गिरमिटिया होनेकी बात मैं यहां घृणासे नहीं लिख रहा हूं। गिरमिटिया होना कोई ऐब नहीं। पाठक अंतमें देखेंगे कि जिनसे इस युद्धको अतिशय शोभा मिली वे गिरमिटिए ही थे। लड़ाई जीतनेमें भी उनका हिस्सा बड़े-से-बड़ा था। हां, गिरमिटसे भाग निकलना अवश्य दोष था।

पर रामसुंदरका सारा इतिहास मैंने उसके दोष दिखानेके लिए नहीं लिखा है, बल्कि उसमें जो तत्त्व छिपा है उसे प्रकट करनेके लिए ही उसका समावेश किया है। हरएक शुद्ध संग्रामके नेताओंका फर्ज होता है कि केवल शुद्ध जनोंको ही लड़ाईमें लें; पर कितनी ही सावधानी क्यों न रखी जाय, अशुद्ध मनुष्योंका प्रवेश रोका नहीं जा सकता। फिर भी नेता निडर और सच्चे हों तो अशुद्ध जनोंके अनजानमें घुस आनेसे अंतमें लड़ाईको नुकसान नहीं पहुंचता। रामसुंदर पंडितका सच्चा रूप प्रकट हो गया तो उसकी कोई कीमत नहीं रही। वह बेचारा पंडित न रहकर केवल रामसुंदर रह गया। कौम उसको भूल गई, पर युद्धको तो उससे बल ही मिला। युद्धके निमित्त भोगी हुई कैद बट्टेखाते नहीं गई। उसके जेल जानेसे जो शक्ति जगी वह कायम रही और उसके उदाहरणसे दूसरे कमजोर दिलवाले अपने आप लड़ाईके मैदानसे खिसक गये। ऐसी कमजोरीकी कुछ और मिसालें भी सामने आईं; पर उनका इतिहास मैं नाम-धाम-सहित नहीं देना चाहता। उसे देनेसे कोई अर्थ नहीं सध सकता। पर हां, कौमकी सबलता-निर्बलता पाठकोंकी निगाहसे बाहर न रहे, इस दृष्टिसे इतना कह देना जरूरी है कि रामसुंदर अकेला ही रामसुंदर नहीं था; पर मैंने देखा कि सभी रामसुंदरोंने संग्रामकी सेवा ही की।

पाठक रामसुंदरके दोष न देखें। इस जगत्में मनुष्य-मात्र अपूर्ण है। किसीकी अपूर्णता अधिक देखनेमें आती है तो हम उसकी ओर उंगली उठाते हैं। वस्तुतः यह भूल है। रामसुंदर कुछ जान-बूझकर निर्बल नहीं बना। मनुष्य अपने स्वभावकी दशा बदल सकता है, उसपर अंकुश रख सकता है; पर उसे जड़मूलसे कौन मेट सकता है? जगत्-कर्ताने इतनी स्वतंत्रता उसको दी ही नहीं। बाघ अपनी खालकी विचित्रताको बदल सकता है तो मनुष्य भी अपने स्वभावकी विचित्रता बदल सकता है। भाग जानेपर भी रामसुंदरको अपनी कमजोरीपर कितना पश्चाताप हुआ होगा, यह हम कैसे जान सकते हैं? अथवा उसका भाग जाना ही क्या उसके पश्चातापका एक सबल प्रमाण नहीं माना जा सकता? वह बेशर्म होता तो उसे भागनेकी क्या जरूरत थी? परवाना निकलवाकर खूनी कानूनके अनुसार वह सदा जेल-मुक्त रह सकता था। यही नहीं, वह चाहता तो एशियाटिक दफ्तरका दलाल बनकर दूसरोंको बहका सकता था और सरकारका प्रिय भी बन सकता था। हम यह उदार अर्थ क्यों न करें कि यह करनेके बदले अपनी कमजोरी कौमको दिखानेमें उसको शर्म लगी और उसने मुंह छिपा लिया, और यह करके भी उसने कौमकी सेवा ही की?

: १६ :

'इंडियन ओपीनियन'

सत्याग्रहकी लड़ाईमें बाहरके और भीतरके जितने भी साधन अपने पास थे उन सबको मुझे पाठकोंके सामने रखना है। इसलिए 'इंडियन ओपीनियन' नामका जो साप्ताहिक पत्र

'दक्षिण अफ्रीकामें आज भी निकल रहा है उसका परिचय भी उन्हें करा देना जरूरी है। दक्षिण अफ्रीकामें पहला हिंदुस्तानी छापाखाना खोलनेका यश मदनजीत व्यावहारिक नामके गुजराती सज्जनको है। यह छापाखाना कुछ बरसोंतक कठिनाइयोंके बीच चलाते रहनेके बाद उन्होंने अखबार निकालनेका भी इरादा किया। इसमें उन्होंने स्व० मनसुखलाल नाजरकी और मेरी सलाह ली। अखबार डर्बनसे निकला, मनसुखलाल नाजर उसके अवैतनिक संपादक हुए। अखबारमें शुरूसे ही घाटा रहने लगा। अंतमें यह निश्चय हुआ कि उसमें काम करनेवालोंको हिस्सेदार या हिस्सेदार सरीखा बना लें, एक खेत खरीदकर उसमें उन लोगोंको आबाद करें और वहींसे अखबार निकालें। यह खेत डर्बनसे १३ मीलके फासलेपर एक सुंदर पहाड़ीपर अवस्थित है। उसके पासका रेलवे स्टेशन खेतसे ३ मील दूर है। उसका नाम फिनिक्स है। अखबारका नाम शुरूसे ही 'इंडियन ओपीनियन' है। एक समय वह अंग्रेजी, गुजराती, तामिल और हिंदी इन चार भाषाओंमें निकलता था। तामिल और हिंदीका बोझ हर तरह भारी लगता था। ऐसे तामिल और हिंदी लेखक नहीं मिलते थे जो खेतपर रहनेको तैयार हों और उनके लेखोंपर नियंत्रण भी नहीं रखा जा सकता था। इससे ये विभाग बंद कर दिये गये और अंग्रेजी तथा गुजराती विभाग चालू रखे गये। सत्याग्रहकी लड़ाई जब शुरू हुई उस वक्त वह इसी रूपमें निकल रहा था। इस संस्थामें बसनेवालोंमें गुजराती, हिंदुस्तानी, तामिल, अंग्रेज सभी थे। मनसुखलाल नाजरकी अकाल मृत्युके बाद एक अंग्रेज मित्र हर्बर्ट किचन संपादक हुए। अनन्तर हेनरी एस० एल० पोलक संपादक हुए और अनेक वर्षोंतक यह भार उठाये रहे। मेरे और उनके कारावास-कालमें भले पादरी स्वर्गीय जोसफ डोकने भी कुछ दिनोंतक

संपादकका काम सम्हाला। इस अखबारके जरिये हर हफ्ते कौमको हफ्तेकी सारी खबरें देनेका काम भलीभांति हो सकता था। अंग्रेजी विभागके द्वारा गुजराती न जाननेवाले हिन्दुस्तानियोंको लड़ाईकी थोड़ी-बहुत जानकारी होती रहती और हिंदुस्तान, इंगलैंड और दक्षिण अफ्रीकाके अंग्रेजोंके लिए तो 'इंडियन ओपीनियन' साप्ताहिक समाचारपत्रका काम देता। मैं मानता हूं कि जिस युद्धका मुख्य आधार आंतरिक बल हो वह अखबारके बिना लड़ा जा सकता है। पर इसके साथ-साथ मेरा यह भी अनुभव है कि 'इंडियन-ओपीनियन' के कारण हमें जो सुभीते मिले थे, जो शिक्षा कौमको सहज ही मिल सकती थी, जो खबरें दुनियामें जहां-जहां हिंदुस्तानी बसते थे वहां-वहां फैलाई जा सकती थीं, वह शायद दूसरी तरहसे नहीं हो सकता था। इसलिए इतना तो पक्के तौरपर कहा जा सकता है कि लड़ाई लड़नेके साधनोंमें 'इंडियन ओपीनियन' भी एक बड़ा उपयोगी और प्रबल साधन था।

युद्धकी प्रगतिके साथ-साथ और अनुभव प्राप्त करते-करते जैसे-जैसे कौममें अनेक परिवर्तन हुए, वैसे ही 'इंडियन ओपीनियन' में भी हुए। इस अखबारमें पहले विज्ञापन और बाहरकी फुटकर छपाईके काम भी लिये जाते थे। मैंने देखा कि इन दोनों कामोंमें अपने अच्छे-से-अच्छे आदमियोंको लगना पड़ता था। विज्ञापन लेने ही हों तो कौन-से लिये जायं और कौन-से न लिये जायं इसको तै करनेमें सदा धर्म-संकट उपस्थित होता था। फिर कोई विशेष विज्ञापन न लेनेका विचार हो फिर भी उसे भेजनेवाला जातिका कोई मुखिया हो तो उसका दिल दुखनेके डरसे भी न लेने योग्य विज्ञापन लेनेके लोभमें फंसना पड़ता। विज्ञापन प्राप्त करने और उसके पैसे वसूल करनेमें हमारे अच्छे-से-अच्छे आदमियोंका वक्त जाता, खुशामद

करनी होती वह अलग। इसके साथ-साथ यह बात भी सोची गई कि अगर यह अखबार पैसा कमानेकी गरजसे नहीं, बल्कि कौमकी सेवाके उद्देश्यसे ही चलाया जा रहा हो तो यह सेवा जबर्दस्ती नहीं होनी चाहिए। कौम चाहे तभी होनी चाहिए। और कौमकी इच्छाका पक्का प्रमाण तो यही माना जा सकता था कि वह आवश्यक संख्यामें ग्राहक होकर उसका खर्च उठा ले। फिर हमने यह भी सोचा कि अखबार चलानेके लिए महीनेका खर्च निकालनेमें थोड़ेसे व्यापारियोंको सेवाभावके नामपर अपने विज्ञापन देनेको समझानेसे कौमके आम लोगोंको अखबार खरीदनेका कर्त्तव्य समझाना लुभानेवाले और लुब्ध होनेवाले दोनोंकेलिए कैसी सुंदर शिक्षा होगी। यह निश्चय हुआ और तुरंत काममें लाया गया। फल यह हुआ कि जो लोग अबतक विज्ञापन आदिके झमेलेमें उलझे हुए थे वे अब अखबारको सुंदर बनानेकी कोशिशमें लगे। कौम तुरंत समझ गई कि 'इंडियन ओपीनियन'की मालिकी और उसे चलानेकी जिम्मेदारी दोनों उसी की है। हम सब काम करनेवाले निश्चिंत हो गये। हमें बस इतनी चिंता करनी रही कि कौम अखबार मांगे तो पूरी-पूरी मेहनत करदें और छुट्टी पाएं। और अब हर हिंदुस्तानीकी बांह पकड़कर उससे 'इंडियन ओपीनियन' लेनेको कहनेमें शर्म नहीं रही, बल्कि यह कहना हम अपना धर्म समझने लगे। 'इंडियन ओपीनियन' का आंतरिक बल और स्वरूप भी बदला और वह एक महाशक्ति बन गया। उसकी साधारण ग्राहक-संख्या १२००-१५०० तक थी। वह दिन-दिन बढ़ने लगी। उसका चंदा बढ़ाना पड़ा था, फिर भी जब युद्धने उग्र रूप ग्रहण किया तब ग्राहक इतने बढ़ गये कि ३५०० प्रतियांतक छापनी पड़तीं। 'इंडियन ओपीनियन' का पाठक-वर्ग अधिक-से-अधिक २० हजार माना जा सकता है। उनमें ३ हजारसे अधिक प्रतियोंका

खपना आश्चर्यजनक विस्तार कहा जा सकता है। कौमने इस वक्ततो इस अखबारको इतना अपना लिया था कि बंधे वक्तपर उसकी प्रतियां जोहान्सबर्ग न पहुंच जातीं तो मुझपर शिकायतोंकी झड़ी लग जाती। आमतौरसे वह इतवारको सवेरे जोहान्सबर्ग पहुंच जाता। मैं जानता हूं कि अखबार आनेपर बहुतसे लोगोंका पहला काम उसका गुजराती भाग आदिसे अंततक बांच जाना होता था। एक आदमी पढ़ता और उसके इर्द-गिर्द बैठे हुए दस-बीस लोग सुनते। हम लोग गरीब ठहरे! इसलिए कितने ही लोग साझेमें भी अखबार मंगाते।

छापेखानेमें बाहरका काम न लेनेके बारेमें भी मैं लिख आया हूं। उसे बंद करनेके कारण भी प्रायः वही थे जो विज्ञापन बंद कर देनेके थे। और उसे बंद कर देनेसे कंपोज करनेवालोंका जो वक्त बचा उसका उपयोग हमने छापेखानेसे पुस्तकें प्रकाशित करनेमें किया। कौमको मालूम था कि इस काममें भी हमारा उद्देश्य पैसा कमाना नहीं था और पुस्तकें चूंकि संग्राममें सहायता देनेके उद्देश्यसे ही छापी जाती थीं, इसलिए उनकी खपत भी अच्छी होने लगी। इस प्रकार अखबार और छापाखाना दोनोंने युद्धमें अपना भाग अर्पण किया और सत्याग्रहकी जड़ ज्यों-ज्यों कौममें गहरी होती गई त्यों-त्यों अखबार और छापेखानेकी सत्याग्रहकी दृष्टिसे नैतिक प्रगति भी होती गई, यह बात साफ तौरसे दिखाई दे सकती थी।

: २० :

पकड़-धकड़

हम यह देख चुके कि रामसुंदरकी गिरफ्तारी सरकारके

लिए मददगार नहीं साबित हुई। दूसरी ओर अधिकारियोंने यह भी देखा कि कौम बड़े जोशके साथ एकदिल होकर आगे बढ़ रही है। 'इंडियन ओपीनियन' के लेख तो एशियाटिक महकमेके अधिकारी ध्यानपूर्वक पढ़ते ही थे। लड़ाईसे संबंध रखनेवाली कोई भी बात छिपाई तो जाती ही नहीं थी। कौमकी निर्बलता-सबलता सभी शत्रु-मित्र-उदासीन जो कोई भी देखना चाहे इस अखबारमें देख सकता था। काम करनेवाले शुरूसे ही यह सीख गये थे कि जिस लड़ाईमें बुरा करनेको कुछ है ही नहीं, जिसमें फरेब और चालाकीके लिए जगह ही नहीं और जिसमें बल हो तभी विजय हो सकती है, उसमें छिपा रखनेको कुछ हो ही नहीं सकेगा। कौमके स्वार्थका ही यह आदेश था कि निर्बलता रूपी रोगको निर्मूल करना हो तो निर्बलताकी परीक्षा करके उसे समुचित रूपमें प्रकट करना चाहिए। अधिकारियोंने जब देखा कि 'इंडियन ओपीनियन' इसी नीतिसे चल रहा है तब उनके लिए वह हिंदुस्तानी कौमके वर्त्तमान इतिहासका दर्पण रूप हो गया और इससे उन्होंने सोचा कि जबतक हम कुछ खास नेताओंको न पकड़ें, लड़ाईका बल टूटनेका नहीं। अतः १९०७ के दिसंबर, बड़े दिनके हफ्तेमें, कुछ नेताओंको अदालतमें हाजिर होनेका नोटिस मिला। मुझे यह स्वीकार करना होगा कि यह नोटिस तामील करानेमें अधिकारियोंने सभ्यताका व्यवहार किया। वे चाहते तो नेताओंको वारंटसे गिरफ्तार कर सकते थे। इसके बदले उन्होंने हाजिर होनेका नोटिस देकर सभ्यताके साथ-साथ अपना यह विश्वास भी प्रकट किया कि नेता अपने आपको गिरफ्तार करानेको तैयार हैं। जिन लोगोंको नोटिस मिला था वे नियत तिथि अर्थात् शनिवार २२ दिसंबरको अदालतमें हाजिर हुए। नोटिसमें लिखा था कि कानूनके अनुसार तुम्हें परवाना लेना चाहिए था, वह तुमने नहीं लिया।

अतः कारण बताओ कि तुम्हें एक विशेष अवधिके अंदर ट्रांसवाल छोड़ देनेका हुक्म क्यों न दिया जाय ?

इन लोगोंमें क्विन नामका चीनी भी था जो जोहान्स-बर्गमें बसनेवाले चीनियोंका मुखिया था। जोहान्सबर्गमें उनकी आबादी ३-४ सौ व्यक्तियोंकी होगी। वे सभी व्यापार या छोटी-मोटी खेतीका धंधा करते थे। हिंदुस्तान खेतीके लिए मशहूर मुल्क है। पर मैं मानता हूं कि चीनके लोग इस धंधेमें जितना आगे बढ़ गये हैं वहांतक हम नहीं पहुंच पाये हैं। अमरीका आदि देशोंमें खेतीकी जो आधुनिक प्रगति हुई है उसका वर्णन नहीं हो सकता। पर पश्चिमकी खेतीको मैं अभी प्रयोग रूप ही मानता हूं। परंतु चीन तो हमारे देश जैसा ही प्राचीन देश है और वहां पुराने जमानेसे ही इस कलाका विकास किया गया है। इससे चीन और हिंदुस्तानकी तुलना करके हम कुछ सीख सकते हैं। जोहान्सबर्गके चीनियोंकी खेती देखकर और उनकी बातें सुनकर मुझे तो यही जान पड़ा कि चीनियोंका ज्ञान और उद्यम हमसे बहुत बढ़ा-चढ़ा है। जिस जमीनको हम पड़ती मानकर उसका कोई उपयोग नहीं करते, चीनी उसमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी जमीन-के अपने सूक्ष्म ज्ञानकी बदौलत अच्छी फसल उपजा सकते हैं।

यह उद्योगी और चतुर जाति भी खूनी कानूनकी श्रेणीमें आती थी। इससे उसने सत्याग्रहकी लड़ाईमें भारतीयोंका साथ देना मुनासिब समझा। पर यह होते हुए भी दोनोंके सारे काम-काज आदिसे अंततक बिलकुल अलग रहे। दोनों अपनी-अपनी संस्थाओंके जरिये लड़ रहे थे। इसका शुभ फल यह होता है कि जबतक दोनों कौमें अपने निश्चयपर अटल रहती हैं तबतक दोनोंका लाभ होता है; पर अगर एक गिर भी जाय तो दूसरेका कोई नुकसान पहुंचनेका

कारण नहीं रहता । गिरनेका तो रहता ही नहीं। अंतमें बहुत-से चीनी फिसल गये, क्योंकि उनके नेताने उन्हें दगा दिया । उसने खूनी कानूनके सामने घुटने तो नहीं टेके, पर एक दिन किसीने मुझे खबर दी कि वह बिना हिसाब-किताब दिये भाग गया। सरदारके चल देनेपर अनुयायियोंका टिका रहना सदा ही कठिन होता है। फिर उसमें कोई मलिनता देखनेमें आये तब तो दूना नैराश्य उत्पन्न होता है। पर जब पकड़-धकड़ शुरू हुई उस वक्त तो चीनियोंका जोश खूब बढ़ा हुआ था। उनमेंसे शायद ही किसीने परवाना लिया हो। इससे जैसे भारतीय नेता गिरफ्तार किये गये वैसे ही चीनियोंके कर्ता-धर्ता श्री क्विन भी पकड़े गये। कुछ दिनोंतक तो कह सकते हैं कि उन्होंने बहुत अच्छा काम किया।

गिरफ्तार किये गये लोगोंमें जिस दूसरे नेताका परिचय यहां देना चाहता हूं वह हैं थम्बी नायडू। थंबी नायडू तामिल थे। उनका जन्म मोरीशसमें हुआ था। पर माँ-बाप मद्रास इलाकेसे आजीविकाके लिए वहां गये थे। थंबी नायडू सामान्य व्यापारी थे, स्कूलकी पढ़ाई एक तरहसे कुछ भी न थी, पर अनुभव-ज्ञान ऊंचे प्रकारका था। अंग्रेजी बहुत अच्छी बोल-लिख सकते थे, यद्यपि भाषाशास्त्रकी दृष्टिसे उसमें दोष दिखाई देते थे। तामिलका ज्ञान भी अनुभवसे ही प्राप्त किया था। हिंदुस्तानी भी अच्छी तरह समझ और बोल लेते थे। तेलगू भी काफी जानते थे, पर हिंदी या तेलगू लिपि बिलकुल नहीं जानते थे। मोरीशसकी भाषाका भी, जिसे क्रीओल कहते हैं और जो फ्रेंचका अपभ्रंश कही जा सकती है, थंबी नायडूको बहुत अच्छा ज्ञान था। दक्षिणके भारतीयोंमें इतनी भाषाओंका कामचलाऊ ज्ञान होना अपवादरूप नहीं था। दक्षिण अफ्रीकामें सैकड़ों हिंदुस्तानी मिलेंगे जिन्हें इन सभी भाषाओंका सामान्य ज्ञान

है। इन सबके साथ हबशी भाषाका ज्ञान तो उन्हें होता ही है। इन सारी भाषाओंका ज्ञान उन्हें अनायास हो जाता है और हो सकता है। इसका कारण मुझे तो यही दिखाई दिया कि पर-भाषाके द्वारा शिक्षा प्राप्त करके उनका दिमाग थक नहीं गया था। उनकी स्मरण-शक्ति तीव्र होती है और उन भाषाओंके बोलनेवालोंके साथ बात-चीत और अवलोकन करके ही वे विविध भाषाओंका ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। इसमें उनके दिमागको बहुत श्रम नहीं करना पड़ता, पर दिमागकी इस हलकी कसरतसे उनकी बुद्धि स्वाभाविक रीतिसे खिल उठती है। यही बात थंबी नायडूकी भी थी। उनकी बुद्धि बहुत तीक्ष्ण थी। नये-नये मसलोंको झट समझ लेते थे। उनकी हाजिर-जवाबी देखकर तो लोग दंग रह जाते थे। हिंदुस्तानके उन्होंने दर्शन नहीं किये थे, फिर भी उसपर उनका अगाध प्रेम था। स्वदेशाभिमान उनकी नस-नसमें भर रहा था। उनकी दृढ़ता उनके चेहरेपर चित्रित थी। उनके शरीरकी गठन बड़ी मजबूत और कसी हुई थी। मेहनत करते थकना जानते ही नहीं थे। कुरसीपर बैठकर नेतृत्त्व करना हो तो इस पदको भी सुशोभित कर सकते थे और इतनी ही स्वाभाविक रीतिसे मोटियेका काम भी कर सकते थे। सरेआम बोझ उठाकर चलते वह तनिक भी नहीं शरमाते थे। मेहनत करनी हो तो रात-दिनका भेद नहीं जानते थे और कौमके लिये सर्वस्व होमनेमें हरएकके साथ प्रतिस्पर्द्धा कर सकते थे। अगर थंबी नायडू हदसे ज्यादा साहसी न होते और उनमें क्रोध न होता तो आज यह वीर पुरुष काछलियाकी अनुपस्थितिमें ट्रांसवालमें कौमके नेताकी जगह सहज ही ले सकता था। जबतक ट्रांसवालकी लड़ाई चलती रही, उनके क्रोधका विपरीत परिणाम नहीं हो सका और उनमें जो अमूल्य गुण थे वे रत्नकी भांति चमक रहे थे। पर पीछे मुझे मालूम हुआ कि

उनका क्रोध और साहसिकता (rashness) उनके प्रबल शत्रु सिद्ध हुए और उन्होंने उनके गुणोंको ढक दिया। कुछ भी हो, दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह-संग्राममें थंबी नायडूका नाम सदा प्रथम वर्गमें रहेगा।

हम सबको अदालतमें साथ ही हाजिर होना था; पर सबके मुकदमे अलग-अलग चलाये गये। मजिस्ट्रेटने कुछ अभियुक्तोंको ७ या १४ दिनके अंदर और बाकी सबको ४८ घंटेके अंदर ट्रांसवाल छोड़ देनेका हुक्म दिया। आज्ञाकी अवधि १९०८की १० वीं जनवरीको पूरी होती थी। उसी दिन सजा सुनानेकेलिए हमें अदालतमें हाजिर होनेका हुक्म मिला। हममेंसे किसीको कोई बचाव तो करना नहीं था। सबको यह स्वीकार करना था कि हमने कानूनके अनुसार परवाने नहीं लिये हैं और इस कारण मजिस्ट्रेटने जो हमें निर्दिष्ट अवधिके भीतर ट्रांसवाल छोड़ देनेका हुक्म दिया है उसका सविनय अनादर करनेका अपराध हमने किया है।

मैंने अदालतसे छोटा-सा बयान देनेकी इजाजत माँगी और वह मिल गई। मैंने इस आशयका बयान दिया—"मेरे और मेरे बाद सुने जाने वाले मुकदमोंमें भेद किया जाना चाहिए। मुझे अभी-अभी प्रिटोरियासे खबर मिली है कि वहाँ मेरे देशबंधुओंको तीन महीनेकी कड़ी कैदकी सजा मिली है और भारी जुर्माना भी किया गया है, जो अदा न किया गया तो तीन महीनेकी कड़ी कैद और भुगतनी होगी। इन लोगोंने अगर अपराध किया है तो मैंने और बड़ा अपराध किया है। अतः मजिस्ट्रेटसे मेरी प्रार्थना है कि वह मुझे बड़ी-से-बड़ी सजा दें।" पर मजिस्ट्रेटने मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं की और मुझे दो महीनेकी सादी कैदकी सजा दी। जिस अदालतमें मैं सकड़ों बार वकीलकी हैसियतसे खड़ा हुआ, वकील-मंडलीके साथ बैठता था उसमें आज मुलजिमके कटघरेमें खड़ा हूं, यह

विचार कुछ विचित्र अवश्य लगा; पर इतना तो मुझे अच्छी तरह याद है कि वकील-मंडलकी बैठकमें बैठनेमें जो कुछ सम्मान मैंने माना होगा, अभियुक्तके पींजड़ेमें खड़े होनेमें उससे कहीं अधिक सम्मान समझा। उसमें प्रवेश करनेमें लेशमात्र भी क्षोभ मेरे मनमें हुआ, यह मुझे याद नहीं आता। अदालतमें तो सैकड़ों हिंदुस्तानी भाइयों, वकीलों, मित्रों आदिके सामने मैं खड़ा था। ज्योंही सजा सुनाई गई, सिपाही मुझे, कैदियोंको बाहर ले जानेके दरवाजेसे उस जगह ले गया, जहां कैदी पहले रखे जाते हैं।

उस वक्त मुझे अपने आस-पास सब कुछ शून्य, निस्तब्ध दिखाई दिया। कैदियोंके बैठनेके लिए एक बेंच पड़ी थी। उसपर बैठनेको कहकर और दरवाजा बंद करके पुलिस कर्मचारी चलता बना। यहां मुझे क्षोभ अवश्य हुआ। मैं गहरे विचारमें डूब गया। कहां है घर-बार! कहां है वकालत! कहां हैं सभाएं! यह सब क्या स्वप्नवत् था और आज मैं कैदी हूं! दो महीनेमें क्या होगा? दो महीने पूरे काटनेही होंगे? लोग अपने वचनके अनुसार जेल चले आएं तो दो महीने क्यों बिताने पड़ेंगे? पर वे न आएं तो दो महीने कैसे पहाड़से हो जाएंगे? इन विचारोंको लिखनेमें जितना समय लग रहा है उसका सौवां हिस्सा भी दिमागमें इन और ऐसे अन्य विचारोंके आनेमें नहीं लगा। ये विचार ज्योंही मनमें आये, मैं लज्जित हुआ। यह कितना बड़ा मिथ्याभिमान है! मैं तो जेलको महल मनवानेवाला हूं! खूनी कानूनका सामना करते हुए जो कुछ सहन करना पड़े उसे दुःख नहीं। बल्कि सुख मानना चाहिए। उसका सामना करते हुए जान-माल सब अर्पण कर देना पड़े तो इसे तो सत्याग्रहमें बड़ा आनंद मानना चाहिए। यह सारा ज्ञान आज कहां चला गया? ये विचार मनमें आते ही मैं फिर होशमें आया

और अपनी मूर्खतापर हंसने लगा। दूसरे भाइयोंको कैसी कैद मिलेगी ? क्या उन्हें भी मेरे साथ ही रखेंगे ? इन व्यावहारिक विचारोंमें अब मैं उलझ गया। मैं इस उधेड़-बुनमें पड़ा था कि इतनेमें दरवाजा खुला और एक पुलिस कर्मचारीने मुझे अपने पीछे आनेका हुक्म दिया। मैं चला तो उसने मुझे आगे कर दिया और खुद पीछे हो लिया। वह मुझे जेलकी जंगलेदार गाड़ीके सामने ले गया और उसमें बैठ जानेको कहा। मुझे जोहान्सबर्गके जेलखानेकी ओर ले गये।

जेलमें ले जानेके बाद मेरे कपड़े उतरवाये गये। मुझे मालूम था कि जेलमें कैदियोंको नंगा कर दिया जाता है। हम सबने निश्चय कर लिया था कि जेलके कायदे जहांतक व्यक्तिगत अपमान करनेवाले या धर्म विरुद्ध न हों वहांतक उनका इच्छा-पूर्वक पालन करेंगे। इसे हमने सत्याग्रहीका धर्म माना था। जो कपड़े मुझे पहननेको मिले वे बहुत मैले थे। उन्हें पहनना तनिक भी नहीं रुचा। उन्हें पहनते और मनको इसके लिए झुकाते दुःख हुआ। पर यह सोचकर मनको दबाया कि थोड़ा मैल बर्दाश्त करना ही होगा। नाम-धाम लिखकर मुझे एक बड़े कमरेमें ले गये। वहां कुछ ही देर रहा हूंगा कि मेरे साथी भी हंसते-बोलते आ पहुंचे और उनका मुकदमा कैसे चला और क्या हुआ यह सब कह सुनाया। मैं इतना जान सका कि मेरा मुकदमा हो जानेके बाद लोगोंने काले झंडे हाथमें लेकर जुलूस निकाला। कुछ लोग उत्तेजित भी हो गये। पुलिसने दखल दिया और कुछ लोगोंपर मार भी पड़ी। हम सब एक ही जेलमें और एक ही बड़ी कोठरीमें रखे गये, इससे हम बहुत प्रसन्न हुए।

कोई छः बजे हमारा दरवाजा बंद कर दिया गया। वहांकी जेलोंकी कोठरियोंके दरवाजोंमें छड़ें वगैरह नहीं होतीं। बहुत ऊंचाईपर दीवारमें एक छोटा झरोखा हवाके लिए रखा जाता है।

अतः हमें जान पड़ा, जैसे हम संदूकमें बंद कर दिये गये हों। पाठक देखेंगे कि जो आदर-सत्कार जेल-अधिकारियोंने रामसुंदरका किया था वैसा कुछ हमारा नहीं किया। इसमें कोई अचरजकी बात नहीं। रामसुंदर पहला सत्याग्रही कैदी था। इसलिए उसके साथ किस तरह बर्ताव किया जाय, अधिकारी इसे पूरी तरह समझ भी नहीं पाये थे। हमारी तादाद तो शुरूसे ही खासी थी और दूसरोंको भी गिरफ्तार करनेका इरादा तो था ही। इसलिए हम हबशी वार्डमें रखे गये। दक्षिण अफ्रीकामें कैदियोंके दो ही विभाग होते हैं—गोरे और काले। और हम हिंदुस्तानी कैदियोंकी गिनती भी हबशी विभागमें ही होती है। मेरे साथियोंको भी मेरी जितनी ही और सादी कैदकी सजा हुई थी।

सवेरा होनेपर हमें मालूम हुआ कि सादी कैदवालोंको अपने निजके कपड़े पहननेका अधिकार होता है और वे उसे न पहनना चाहें तो सादी कैद वालोंके लिए जो खास पोशाक होती है वह दी जाती है। हमने तै कर लिया था कि घरके कपड़े पहनना अयोग्य है और जेलके ही कपड़े पहनना हमें मुनासिब होगा। हमने अधिकारियोंको यह बता दिया। इससे हमें सादी कैदवाले हबशी कैदियोंका पहनावा दिया गया। पर सादी कैदवाले सैकड़ों हबशी कैदी दक्षिण अफ्रीकाकी जेलमें होते ही नहीं। अतः जब दूसरे सादी कैदवाले हिंदुस्तानी पहुंचने लगे तो सादी कैदवाले कपड़े जेलमें चुक गये। हमें इस बारेमें तो कोई तकरार करनी थी ही नहीं, इसलिए हमने मशक्कतवाले कैदियोंके कपड़े पहननेमें आनाकानी नहीं की। कुछ लोग जो पीछे आये उन्होंने ये कपड़े पहननेके बदले अपने ही कपड़े पहने रहना पसंद किया। यह मुझे ठीक तो नहीं लगा, पर इस विषयमें आग्रह करना मुनासिब नहीं मालूम हुआ।

दूसरे या तीसरे दिनसे ही सत्याग्रही कैदी जेलमें भरने लगे। वे जानबूझकर गिरफ्तार होते थे। उनमें अधिकांश फेरी करनेवाले ही थे। दक्षिण अफ्रीकामें हरएक फेरी करने-वालेको, वह गोरा हो या काला, फेरी करनेका परवाना लेना पड़ता है। उसे हर वक्त अपने पास रखना होता है और पुलिस जब मांगे तब दिखाना होता है। बहुत करके रोज ही कोई-न-कोई पुलिस कर्मचारी परवाना मांगा ही करता है और जो न दिखाये उसे गिरफ्तार कर लेता है। हमारी गिरफ्तारीके बाद कौमने जेलको भर देनेका निश्चय किया था। फेरीवाले इसमें आगे बढ़े। उनके लिए गिरफ्तार होना आसान भी था। फेरीका परवाना नहीं दिखाया और गिरफ्तार हुए। यों गिरफ्तार होकर एक हफ्तेके अंदर १०० से ऊपर सत्याग्रही कैदी हो गये। और थोड़े बहुत तो आते ही रहते, इसलिए हमें तो एक तरहसे बिना अखबारके ही अखबार मिल जाता। रोजकी खबरें ये भाई लाया करते। जब सत्याग्रही बड़ी तादादमें गिरफ्तार होने लगे तब मजि-स्ट्रेट या तो थक गया या, जैसा कि हम मानते थे, सरकारसे उसे आदेश मिला कि सत्याग्रहियोंको आगेसे सादी कैद दी ही न जाय, मशक्कतवाली कैदकी ही सजा दी जाय। कारण कुछ भी हो, पर अब सत्याग्रहियोंको कड़ी कैदकी ही सजा मिलने लगी। मुझे तो आज भी जान पड़ता है कि कौमका अनुमान सही था, क्योंकि शुरूके मुकदमोंमें जो सादी कैदकी सजाएं दी गईं उसके बाद इसी वक्तकी लड़ाईमें और पीछे समय-समयपर जो और लड़ाइयां लड़ी गईं उनमें कभी पुरुष क्या, स्त्रियोंको भी सादी कैदकी सजा ट्रांसवाल या नेटालकी एक भी अदालतमें नहीं सुनाई गई। जबतक सबको एक ही तरहकी हिदायत या हुक्म न मिला हो तबतक हरएक मजिस्ट्रेटका हर बार हर पुरुष और स्त्रीको मशक्कतवाली ही सजा देना

अगर आकस्मिक संयोग मात्र हो तो यह चमत्कार-सा माना जायगा ।

इस जेलमें सादी कैदवाले कैदियोंको भोजनमें सवेरे मकई-की लपसी मिलती थी । उसमें नमक नहीं होता था, पर हर कैदीको अलगसे थोड़ा नमक दिया जाता था । दोपहरको बारह बजे पाव भर भात, थोड़ा नमक और आधी छटांक घी और पाव भर डबल रोटी दी जाती थी । शामको फिर मकईके आटेकी लपसी और उसके साथ थोड़ी तरकारी, मुख्यतः आलू दिया जाता था । आलू छोटे हों तो दो और बड़े हों तो एक दिया जाता था । इस खुराकसे किसीका पेट नहीं भरता । चावल गीला पकाया जाता था । वहांके डाक्टरसे हमने कुछ मसाला मांगा । उन्हें बताया कि हिंदुस्तानकी जेलोंमें भी मसाला मिलता है । "यह हिंदुस्तान नहीं है और कैदीके लिए स्वाद होता ही नहीं । इसलिए मसाला भी नहीं हो सकता ।" यह दोटूक जवाब मिला । हमने दालकी मांग की, क्योंकि उपर्युक्त आहारमें मांसपेशी या पट्ठे बनानेका गुण नहीं था । डाक्टरने जवाब दिया—"कैदियोंको डाक्टरी दलील नहीं देनी चाहिए । पट्ठे बनानेवाली खुराक आप लोगोंको दी जाती है, क्योंकि हफ्तेमें दो बार मक्कके बदलेमें उबली हुई मटर दी जाती है ।" मनुष्यका जठर यों हफ्तेमें या पखवाड़ेमें भिन्न-भिन्न गुणोंवाला आहार भिन्न-भिन्न समयपर लेकर उसके सत्वको खींच ले सके तो डाक्टरकी दलील सही थी । बात यह थी कि डाक्टरका इरादा किसी तरह हमारे अनुकूल होनेका था ही नहीं । सुपरिंटेंडेंटने हमारी यह मांग मंजूर कर ली कि अपना खाना हम खुद पका लिया करें । थंबी नायडूको हमने अपना पाक-शास्त्री चुना । रसोईमें उसको बहुत झगड़ा करना पड़ता । शाक-भाजी तौलमें कम मिले तो वह पूरी मांगता । यही बात दूसरी चीजोंके बारेमें भी थी । केवल दोपहरका खाना

पकाना ही हमारे जिम्मे किया गया था। वह हमारे हाथमें आनेके बाद हम अपना भोजन कुछ संतोषपूर्वक करने लगे।

पर ये सुभीते मिलें, या न मिलें, हर हालमें प्रसन्नतापूर्वक जेलकी सजा भोगनी है, इस निश्चयसे इस मंडलीमेंसे कोई भी नहीं डिगा। सत्याग्रही कैदियोंकी संख्या बढ़ते-बढ़ते १५० से ऊपर हो गई थी। हम सब सादी कैदवाले थे, इसलिए अपनी कोठरी वगैरह साफ करनेके सिवा हमारे लिये और कोई काम नहीं था। हमने काम मांगा। सुपरिंटेंडेंटने जवाब दिया—"मैं आप लोगोंको काम दूं तो माना जायगा कि मैंने अपराध किया। इससे मैं लाचार हूं। सफाई आदि करनेमें आप जितना पसंद करें उतना वक्त लगा सकते हैं।" हमने ड्रिल (कवायद) आदि किसी तरहकी कसरतकी मांग की, क्योंकि मशक्कतवाले हबशी कैदियोंसे भी ड्रिल कराई जाती थी। जवाब मिला—"आपके रखवाले (वार्डर) के पास वक्त हो और वह आपको कसरत कराये तो मैं एतराज नहीं करूंगा। पर उसे कराना मैं उसका फर्ज नहीं बना सकता।" रखवाला बड़ा भलामानस था। उसे तो इतनी इजाजत भरकी दरकार थी। उसने बड़ी दिलचस्पीके साथ हमें रोज सवेरेकी ड्रिल कराना शुरू किया। यह हम अपनी कोठरीके छोटे-से आंगनमें ही कर सकते थे। इसलिए हमें तो चक्कर-सा काटना होता था। यह भला रखवाला जिस तरह सिखा जाता उसी तरह नवाबखां नामके एक पठान भाई उसे जारी रखते और कवायदके अंग्रेजी शब्दोंका उर्दू उच्चारण करके हमें हंसा देते। 'स्टेंड ऐट ईज़' का वह 'संडलीज' कहते। कुछ दिनोंतक तो हम समझ ही न सके कि यह कौनसा हिंदुस्तानी शब्द है। बादमें सूझा कि यह तो नवाबखानी अंग्रेजी है।

: २१ :

पहला समझौता

इस तरह जेलमें एक पखवाड़ा बीता होगा कि नये आनेवाले यह खबर लाने लगे कि सरकारके साथ समझौतेकी कुछ बातचीत चल रही है। दो-तीन दिन बाद जोहान्सबर्गके 'ट्रांसवाल लीडर' नामक अंग्रेजी दैनिकके संपादक अलबर्ट कार्टराइट मुझसे मिलने आये। जोहान्सबर्गसे उन दिनों जितने दैनिक निकलते थे, सबका स्वामित्व सोनेकी खानवाले किसी-न-किसी गोरेके हाथमें था; पर जो उनके विशेष स्वार्थके विषय न हों उन सभी प्रश्नोंपर संपादक अपने स्वतंत्र-विचार प्रकट कर सकता था। इन अखबारोंके संपादक विद्वान् और विख्यात पुरुष ही चुने जाते थे। जैसे 'स्टार' नामके दैनिकके संपादक किसी वक्त लार्ड मिल्नरके प्राइवेट सेक्रेटरी थे और 'स्टार'से 'टाइम्स'के संपादक मि० बकलकी जगह लेने विलायत गये। मि० अलबर्ट कार्टराइट बुद्धिमान होनेके साथ-साथ अतिशय उदार हृदयके थे। आमतौरसे वह सदा अपने अग्र लेखोंमें भी भारतीयोंके पक्षका समर्थन करते थे। उनके और मेरे बीच गहरा स्नेह हो गया था। मेरे जेल जानेके बाद वह जनरल स्मट्ससे मिल आये थे। जनरल स्मट्सने उन्हें संधिकर्ता मंजूर कर लिया था। भारतीय नेताओंसे भी वह मिले। नेताओंने उन्हें एक ही जवाब दिया—"कानूनी नुक्तोंको हम नहीं समझ पाते। गांधी जेलमें हैं और हम समझौतेकी बातचीत करें, यह नहीं हो सकता। हम समझौता चाहते हैं; पर सरकार चाहती हो कि हमारे आदमी जेलमें बंद रहें और समझौता हो जाय तो आपको गांधीसे मिलना चाहिए। वह जो करेंगे वह हमें मंजूर होगा।"

इसपर अलबर्ट कार्टराइट मुझसे मिलने आये और अपने साथ जनरल स्मट्सका बनाया हुआ या पसंद किया हुआ समझौतेका मसविदा भी ले आये। उसकी भाषा गोल-मटोल थी। वह मुझे नहीं रुची। फिर भी एक परिवर्तनके साथ उस मसविदेपर दस्तखत करनेको मैं खुद तैयार था। पर मैंने उन्हें बताया कि बाहरवालोंकी इजाजत होनेपर भी जेलके अपने साथियोंकी राय लिये बिना मैं हस्ताक्षर नहीं कर सकता। इस मसविदेका मतलब यह था कि हिंदुस्तानी अपने परवाने स्वेच्छासे बदलवा लें। उनपर किसी कानूनका प्रयोग नहीं हो सके, नये परवानेका रूप सरकार भारतीयोंके साथ मशविरा करके तै करे और भारतीय जनताका बड़ा भाग स्वेच्छासे परवाना ले ले तो सरकार खूनी कानूनको रद कर देगी और अपनी खुशीसे लिए हुए परवानेको बाकायदा मान लेनेके लिए एक नया कानून पास करेगी। खूनी कानून रद करनेकी बात इस मसविदेमें स्पष्ट नहीं थी। मेरी दृष्टिसे उसे स्पष्ट करनेके लिए जो सुधार आवश्यक था वह मैंने सुझाया। पर अलबर्ट कार्टराइटको इतना परिवर्तन भी पसंद नहीं आया। उन्होंने कहा—"जनरल स्मट्स इस मसविदेको अंतिम मानते हैं। मैंने खुद भी इसे पसंद किया है और इस बातका तो मैं आपको इतमीनान दिलाता हूं कि अगर आप सबने परवाने ले लिये तो खूनी कानूनको रद हुआ ही समझिये।" मैंने जवाब दिया—"समझौता हो या न हो, पर आपकी सहानुभूति और सहायताके लिए हम सदा आपके अहसानमंद रहेंगे। मैं एक भी गैरजरूरी फेरफार नहीं कराना चाहता। जिस भाषासे सरकारकी प्रतिष्ठाकी रक्षा होती हो मैं उसका विरोध नहीं करूंगा। पर जहां मुझे खुद ही अर्थके विषयमें शंका हो वहां तो मुझे हेर-फेर सुझाना ही होगा और अंतको अगर समझौता होना ही है तो दोनों पक्षोंको मसविदेमें

अदल-बदल करनेका अधिकार होना ही चाहिए। यह अंतिम है, कहकर जनरल स्मट्सको पिस्तौल हमारे सामने नहीं कर देना चाहिए। खूनी कानून रूपी पिस्तौल तो हमारे सामने धरा ही है, अब इस दूसरे पिस्तौलका असर हमारे ऊपर क्या हो सकता है ?" मि० कार्टराइट इस दलीलके खिलाफ कुछ कह नहीं सके और सुझाया हुआ परिवर्तन जनरल स्मट्सके सामने रखना स्वीकार किया। मैंने साथियोंसे मशविरा किया। उन्हें भी भाषा नहीं भाई, पर जनरल स्मट्स इस सुझाये सुधारके साथ मसविदेको मंजूर कर लें तो समझौता कर लेना चाहिए, यह उन्हें भी पसंद आया। जो लोग बाहरसे आये थे उन्होंने मुझे नेताओंका यह संदेसा दिया था कि मुनासिब समझौता होता हो तो उनकी मंजूरीकी राह न देखकर मैं उसे कर लूं। इस मसविदे पर मैंने मि० क्विन और थंबी नायडूकी सही ली और तीनोंके हस्ताक्षरके साथ मसविदा कार्टराइटके हवाले किया।

दूसरे या तीसरे दिन १९०८ की ३० वीं जनवरीको जोहान्सबर्गके पुलिस सुपरिंटेंडेंट मुझे जनरल स्मट्सके पास प्रिटोरिया ले गये। हममें बहुतसी बातें हुईं। मि० कार्टराइटके साथ उनकी जो बातचीत हुई थी वह उन्होंने मुझे बताई। हिंदुस्तानी कौम मेरे जेल जानेके बाद भी दृढ़ रही, इसके लिये भी उन्होंने मुझे मुबारकबाद दी और कहा—"मुझे आपके देशवासियोंसे नफरत हो ही नहीं सकती। आप जानते ही हैं कि मैं भी बैरिस्टर हूं। मेरे वक्तमें कुछ हिंदुस्तानी विद्यार्थी भी मेरे साथ पढ़ रहे थे। मुझे तो अपने कर्तव्यका पालन भर कर देना है। गोरे यह कानून मांगते हैं और आप स्वीकार करेंगे कि वे मुख्यतः बोअर नहीं, बल्कि अंग्रेज हैं। आपका सुधार मैं स्वीकार करता हूं। जनरल बोथाके साथ भी मैंने बातचीत कर ली है और मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आप लोगोंमेंसे अधिकांश परवाना ले लेंगे तो मैं एशिया-

टिक ऐक्टको रद कर दूंगा। अपनी मर्जीसे लिये जानेवाले परवानेको जायज बनानेवाले कानूनका मसविदा जब बनाने लगूंगा तब उसकी एक नकल आपकी आलोचनाके लिए भेज दूंगा। मैं यह नहीं चाहता कि यह लड़ाई पीछे फिर शुरू हो और आपके देशवासियोंकी भावनाओंका आदर करना चाहता हूं।" यह कहकर जनरल स्मट्स उठकर खड़े हो गये। मैंने पूछा—"अब मुझे कहां जाना है? और मेरे साथके दूसरे कैदियोंका क्या होगा?" उन्होंने हंसकर जवाब दिया—"आप तो अभीसे आजाद हैं। आपके साथियोंको कल सवेरे छोड़ देनेके लिए टेलीफोन करता हूं। पर मेरी यह सलाह है कि आपके लोग बहुत जलसा-तमाशा न करें। करेंगे तो सरकारकी स्थिति कुछ कठिन हो जा सकती है।" मैंने जवाब दिया—"आप इतमीनान रखें, जलसेकी खातिर मैं एक भी जलसा नहीं होने दूंगा। पर समझौता कैसे हुआ, उसका स्वरूप क्या है और अब हिंदुस्तानियोंकी जिम्मेदारी कितनी बढ़ गई है, यह समझानेके लिए तो मुझे सभाएं करनी ही होंगी।" जनरल स्मट्सने कहा—"ऐसी सभाएं आप जितनी भी करनी चाहें करें। मैं क्या चाहता हूं यह आपने समझ लिया, इतना ही काफी है।"

इस वक्त शामके कोई सात बजे होंगे। मेरे पास तो एक धेला भी नहीं था। जनरल स्मट्सके सेक्रेटरीने मुझे जोहान्सबर्ग जानेका भाड़ा दिया। यह बातचीत प्रिटोरियामें हुई थी। प्रिटोरियाके भारतीयोंके पास रुकना और वहां समझौता प्रकट करना जरूरी नहीं था। मुख्य लोग जोहान्सबर्गमें ही थे। हमारा केंद्र भी वहीं था। वहां जानेवाली आखिरी ट्रेन बाकी थी। वह मुझे मिल भी गई।

: २२ :

समझौतेका विरोध : मुझपर हमला

रातके कोई नौ बजे जोहान्सबर्ग पहुंचा। तुरंत अध्यक्ष सेठ ईसप मियांके यहां गया। मुझे प्रिटोरिया ले जानेकी खबर उन्हें मिल गई थी। इससे कुछ मेरी राह भी देखते रहे होंगे। फिर भी मुझे अकेला पहुंचा हुआ देखकर सबको अचंभा हुआ और हर्ष भी। मैंने कहा कि जितने आदमी इकट्ठे किये जा सकें उतने ही को इकट्ठाकर हमें इसी वक्त सभा करनी होगी। ईसप मियां आदि मित्रोंको भी यह सलाह पसंद आई। अधिकांश भारतीय एक ही मुहल्लेमें रहते थे, इसलिए सूचना देना कठिन नहीं था। अध्यक्षका मकान मस्जिदके पास ही था, और सभाएं तो मस्जिदके मैदानमें ही हुआ करती थीं। इससे कोई भारी प्रबंध करना था ही नहीं। मंचपर एक बत्ती लगवा लेना, बस यही प्रबंध करना था। रातके ११ या १२ बजेके लगभग सभा हुई। सूचनाके लिए समय बहुत कम मिला था, फिर भी कोई एक हजार आदमी इकट्ठे हो गये थे।

सभा होनेके पहले जो खास-खास लोग मौजूद थे उन्हें मैंने समझौतेकी शर्तें समझा दी थीं। कुछ उसका विरोध करते थे। फिर भी उस मंडलीके सभी लोग मेरी दलीलें सुन लेनेके बाद समझौतेका औचित्य समझ गये। पर एक शंका तो सबके मनमें थी—"जनरल स्मट्सने विश्वासघात किया तो? खूनी कानून भले ही अमलमें न लाया जाय, पर हमारे सिरपर मूसलकी तरह खड़ा तो रहेगा ही। इस बीच हमने अपनी मर्जीसे परवाने लेकर अपना हाथ कटा दिया तो इस कानूनसे लड़नेके लिए हमारे पास जो एक बड़ा हथियार है उसे हाथसे

छोड़ देंगे। यह तो जानबूझकर अपने आपको दुश्मनके पंजेमें फंसा देना-सा होगा। सच्चा समझौता तो यह कहा जायगा कि पहले खूनी कानून रद करदें और फिर हम स्वेच्छासे परवाने निकलवा लें।"

मुझे यह दलील पसंद आई। दलील करनेवालोंकी तीक्ष्ण बुद्धि और हिम्मतपर मुझे गर्व हुआ और मैंने देखा कि सत्याग्रही ऐसे ही होने चाहिए। इस दलीलके जवाबमें मैंने कहा—"आपकी दलील बहुत अच्छी है और विचारने योग्य है। खूनी कानून रद हो जानेके बाद हीं हम अपनी इच्छासे परवाने लें, इससे अच्छी तो दूसरी कोई बात हो ही नहीं सकती, पर इसको मैं समझौतेका लक्षण नहीं मानता। समझौतेका अर्थ ही यह होता है कि जहां सिद्धान्तका भेद न हो वहां दोनों पक्ष खुद बहुत-कुछ करें और झगड़ा निबटालें। हमारा सिद्धान्त यह है कि हम खूनी कानूनके डरसे तो, उसके अनुसार जो कुछ करनेमें कोई बाधा न हो वह काम भी न करें। इस सिद्धान्तपर हमें अटल रहना है। सरकारका सिद्धान्त यह है कि हिंदुस्तानी नाजायज तौरपर ट्रांसवालमें दाखिल न हों। इसके लिए बहुतसे भारतीय ऐसे परवाने निकलवा लें जिनपर वह पहचानके निशान हों और जिनकी अदल-बदल न हो सके, और यों गोरोंका शक दूर कर उन्हें निर्भय कर दें। सरकार इस सिद्धान्तको नहीं छोड़ने की। आजतक अपने व्यवहारसे हमने इस सिद्धान्तको स्वीकार भी कर रखा है। अतः उसका विरोध करनेकी बात सोचें तो भी जबतक नये कारण उत्पन्न न हों तबतक उसके विरुद्ध नहीं लड़ा जा सकता। हमारी लड़ाई इस सिद्धान्तको काटनेके लिए नहीं, बल्कि कानूनका काला दाग दूर करनेके लिए है। अतः कौममें जो नया और प्रचंड बल प्रकट हुआ है उसका उपयोग करनेके लिए अब हम एक नई बातको सामने रखें तो सत्याग्रहीके सत्यको लांछन

लगेगा। अतः सच पूछिये तो इस समझौतेका विरोध किया ही नहीं जा सकता।

"अब इस दलीलपर विचार करें कि खूनी कानून रद किये जानेके पहले हम अपना हाथ कैसे कटा दें? क्यों अपने शस्त्र छोड़ दें? इसका जवाब तो बहुत आसान है। सत्याग्रही भयको तो कोसों दूर रखता है। इसलिए विश्वास करते वह कभी डरता ही नहीं। बीस बार विश्वासका घात हो तो भी इक्कीसवीं बार विश्वास करनेको तैयार रहता है। कारण यह है कि सत्याग्रही अपनी नाव विश्वासके सहारे ही चलाता है और विश्वास रखनेमें हम अपने हाथ कटा देते हैं यह कहना यह प्रकट करना है कि हम सत्याग्रहको नहीं समझते।

"मान लीजिये, हमने अपनी इच्छासे नये परवाने ले लिये। पीछे सरकार विश्वासघात करती है और कानूनको रद नहीं करती। तो क्या उस वक्त हम सत्याग्रह नहीं कर सकते? यह परवाना ले लेनेपर भी हम मुनासिब वक्तपर उसे दिखानेसे इन्कार कर दें तो उसकी क्या कीमत होगी? तब जो हजारों हिंदुस्तानी छिपे तौरपर ट्रांसवालमें दाखिल हो जाएं। सरकार उनमें और हममें किस तरह अंतर कर सकेगी? अतः कानून हो या न हो, किसी भी दशामें सरकार हमारी सहायताके बिना हमपर प्रतिबंध नहीं लगा सकती। कानूनका अर्थ इतना ही है कि जो रोक सरकार लगाना चाहती है उसे हम स्वीकार न करें तो हम दंडके पात्र होते हैं। और आमतौरसे ऐसा होता है कि मनुष्य सजाके डरसे अंकुशके अधीन होते हैं; पर सत्याग्रही इस सामान्य नियमका उल्लंघन करता है। वह अंकुशके अधीन होता है तो सजाके डरसे नहीं; बल्कि उसके माननेमें लोक-कल्याण है, यह मानकर अपनी इच्छासे वैसा करता है। ठीक यही स्थिति हमारी इस वक्त इन परवानोंके बारेमें है। इस स्थितिको सरकार कैसा ही विश्वास-

घात करके भी बदल नहीं सकती। इस स्थितिको उत्पन्न करनेवाले हम हैं और उसे बदल भी हमही सकते हैं। जबतक सत्याग्रहका हथियार हमारे हाथमें है तबतक हम स्वतंत्र और निर्भय हैं।

"और अगर कोई मुझसे यह कहे कि कौममें जो बल आज आ गया है वह फिर आनेवाला नहीं तो मैं यह जवाब दूंगा कि यह कहनेवाला सत्याग्रही नहीं, वह सत्याग्रहको समझता ही नहीं। यह कहनेका अर्थ तो यह होता है कि आज जो बल प्रकट हुआ है वह सच्चा नहीं है, बल्कि नशेके जैसा झूठा और क्षणिक है। यह बात सही हो तो हम विजयके अधिकारी नहीं। और जीत जाएं तो जीती हुई बाजी भी हार जायंगे। मान लीजिये, सरकारने खूनी कानूनको रद कर दिया। पीछे हमने ऐच्छिक परवाने ले लिये। इसके बाद सरकारने यही खूनी कानून फिर पास कर दिया और हमें परवाने लेनेको मजबूर करने लगे, तो उस वक्त उसे कौन इससे रोक सकता है? और अगर इस वक्त अपने बलके विषयमें हमें शंका हो तो उस वक्त भी हमारी ऐसी ही दुर्दशा होगी। अतः चाहे जिस दृष्टिसे हम इस समझौतेको देखें, हम यह कह सकते हैं कि उसे करनेमें कौम कुछ खोयेगी नहीं; बल्कि कुछ नफेमें ही रहेगी। और मैं तो यह भी मानता हूं कि हमारे विरोधी भी हमारी नम्रता और न्याय-बुद्धिको पहचान लेनेपर विरोध त्याग देंगे या उसे नरम कर देंगे।"

इस प्रकार जिन एक-दो आदमियोंने उस छोटी-सी मंडलीमें विरोध प्रकट किया था उनके मनका मैं पूरा समाधान कर सका। पर आधी रातवाली बड़ी सभामें जो बवंडर उठनेवाला था उसका तो मुझे स्वप्नमें भी ख्याल नहीं था। मैंने सभाको पूरा समझौता समझाया और कहा—"इस समझौतेसे कौमकी जिम्मे-दारी बहुत बढ़ गई है। हमें यह दिखानेके लिए अपनी खुशीसे

परवाना ले लेना है कि हम धोखा देकर या नाजायज तरीकेसे एक भी हिंदुस्तानीको ट्रांसवालमें घुसाना नहीं चाहते। कोई परवाना न ले तो इस वक्त तो उसे कोई सजा भी नहीं दी जायगी; पर न लेनेका अर्थ यही होगा कि कौम समझौतेको मंजूर नहीं करती। अतः यह जरूरी है कि आप लोग हाथ ऊंचा करके समझौतेका स्वागत करें। यह मैं चाहता भी हूं। पर इसका अर्थ यही होगा और मैं यही करूंगा कि आप हाथ उठानेवाले लोग, ज्योंही नये परवाने निकालनेका प्रबंध हो जाय, परवाने लेनेमें लग जाएंगे और आजतक जैसे परवाना न लेनेको समझानेके लिये आपमेंसे बहुतेरे स्वयंसेवक बने थे वैसे अब लोगोंको परवाने लेनेको समझानेके लिए स्वयंसेवक बनेंगे। जो काम हमें करना है वह कर देंगे तभी इस जीतका सच्चा फल हम पा सकेंगे।"

ज्योंही मेरा भाषण पूरा हुआ, एक पठान भाई खड़े हुए और मुझपर सवालोंकी झड़ी लगादी :

"इस समझौतेके अंदर हमें दसों उंगलियोंकी छाप देनी होगी न ?"

"हां और नहीं भी। मेरी अपनी सलाह तो यही होगी कि सब लोग दसों उंगलियोंकी छाप देदें; पर जिन्हें धर्मकी बाधा हो या जो निशानी देनेमें अपने आत्मसम्मानकी हानि मानते हों वे न दें तो भी चल सकता है।"

"आप खुद क्या करेंगे ?"

"मैंने तो दसों उंगलियोंकी छाप देनेका निश्चय कर रखा है। मैं खुद न दूं और दूसरोंको देनेकी सलाह दूं, यह मुझसे तो हो ही नहीं सकता।"

"दसों उंगलियोंकी निशानीके बारेमें आप बहुत लिखा करते थे। यह तो अपराधियोंसे ही ली जाती है, इत्यादि सिखानेवाले आप ही थे। यह लड़ाई दस उंगलियोंकी छापकी

लड़ाई है, यह कहनेवाले भी आप ही हैं। ये सारी बातें आज कहाँ गई ?"

"दसों उंगलियोंकी निशानीके बारेमें जो कुछ मैंने लिखा है उसपर आज भी कायम हूं। मैं आज भी कहता हूं कि उंगलियोंकी छाप हिंदुस्तानमें जरायम पेशा या अपराधी जातियोंसे ली जाती है। मैंने कहा है और आज भी कहता हूं कि खूनी कानूनके अनुसार दसों उंगलियोंकी निशानी देना तो क्या, दस्तखत करना भी पाप है। यह बात भी सच है कि उंगलियोंकी निशानीपर मैंने बहुत जोर दिया है और मैं मानता हूं कि वैसा करनेमें मैंने समझदारीसे काम लिया। खूनी कानूनकी बारीक बातोंपर, जिन्हें अबतक करते आ रहे थे, जोर देकर कौमको समझानेके बदले दसों उंगलियोंकी निशानी जैसी बड़ी और नई बातपर जोर देना आसान था और मैंने देखा कि कौम इस बातको तुरंत समझ गई।

"पर आजकी स्थिति भिन्न है। मैं जोर देकर कहना चाहता हूं कि जो बात कल अपराध थी वह आजकी नई स्थितिमें भलमनसी और शराफतका निशान है। आप मुझसे जबर्दस्ती सलाम कराना चाहें और मैं करूं तो मैं आपकी, दुनियाकी और खुद अपनी निगाहमें भी गिर जाऊंगा। पर मैं आपको अपना भाई या इंसान समझकर अपनी मर्जीसे सलाम करूं तो यह मेरी नम्रता और सज्जनताका सबूत होगा और खुदाके दरबारमें भी यह बात मेरी नेकीके खातेमें लिखी जायगी। इसी दलीलसे मैं कौमसे उंगलियोंकी निशानी देनेकी सलाह देता हूं।"

"हमने सुना है कि आपने कौमके साथ दगा की है और १५ हजार पौंड लेकर उसे जनरल स्मट्सके हाथ बेच दिया है। हम कभी दसों उंगलियोंकी निशानी देनेवाले नहीं और किसीको देने देंगे भी नहीं। मैं खुदाकी कसम खाकर कहता हूं

कि जो आदमी एशियाटिक दफ्तरमें जानेमें अगुआई करेगा उसे जानसे मार डालूंगा।"

"पठान भाइयोंकी भावना मैं समझ सकता हूं। मुझे विश्वास है कि मैंने घूस खाकर कौमको बेच दिया है इसपर कोई भी विश्वास नहीं करेगा। यह बात मैंने पहले ही समझा दी है कि जिन लोगोंने उंगलियोंकी निशानी न देनेकी कसम खाई है उन्हें कोई निशानी देनेके लिए मजबूर नहीं कर सकता और जो कोई पठान या दूसरे भाई उंगलियोंके निशान दिये बिना परवाना लेना चाहें उन्हें परवाना दिलानेमें मैं पूरी-पूरी मदद करूंगा। मैं आपको इतमीनान दिलाता हूं कि बिना उंगलियोंकी निशानी दिये वे ऐच्छिक परवाना ले सकेंगे।

"मुझे यह बात कबूल करनी होगी कि मार डालनेकी धमकी मुझे पसंद नहीं आती। मैं यह भी मानता हूं कि किसीको मार डालनेकी कसम खुदाके नामपर नहीं खाई जा सकती। इसलिए मैं यही माने लेता हूं कि क्रोधके आवेशमें आकर ही इन भाईने मार डालनेकी कसम खाई है, पर इस कसमपर अमल करना हो या न करना हो, समझौता करनेमें मुख्य आदमी होनेकी हैसियतसे और कौमके सेवकके रूपमें मेरा स्पष्ट कर्तव्य है कि उंगलियोंकी निशानी देनेमें मैं ही अगुआ बनूं। और मैं तो ईश्वरसे प्रार्थना करूंगा कि वह मुझको ही इसका श्रेय दे। मरना तो एक दिन सभीको है। रोग या इस तरहके दूसरे कारणसे मरनेके बजाय मैं अपने किसी भाईके हाथसे मरूं तो इसमें मुझे तनिक भी दुःख नहीं होगा। और अगर उस वक्त भी मैं तनिक भी क्रोध या मारनेवालेके प्रति द्वेष न करूं तो मैं जानता हूं कि मेरा तो भविष्य बनेगा ही और मारनेवाला भी पीछे तो समझ ही जायगा कि मैं सर्वथा निर्दोष था।"

ऊपरके सवाल क्यों किये गये, यह बता देना जरूरी है। जिन लोगोंने खूनी कानूनके आगे सिर झुका दिया था उनके

प्रति यद्यपि कोई बैर-भाव नहीं रखा जाता था, फिर भी उस कार्यके विषयमें तो खुले और कड़े शब्दोंमें बहुत-कुछ कहा और 'इंडियन ओपीनियन'में लिखा गया था। इससे कानूनको मान लेनेवालोंका जीवन अप्रिय अवश्य हो गया था। उन्होंने कभी सोचा ही न था कि कौमका बड़ा भाग अपने निश्चयपर अटल रहेगा और इतना जोर दिखायेगा कि समझौता होनेकी नौबत आ जाय। पर जब १५० से ऊपर सत्याग्रही जेलमें पहुंच गये और समझौतेकी बातचीत चलने लगी तब कानूनकी शरण जानेवालोंको और भी नागवार लगा और कुछ ऐसे भी निकले जो चाहते थे कि समझौता न हो और हो जाय तो उसको तुड़वा देना भी चाहते थे।

ट्रांसवालमें रहनेवाले पठानोंकी संख्या बहुत थोड़ी थी। मेरा ख्याल है कि कुल मिलाकर ५० से अधिक नहीं होंगे। उनमें बहुतेरे बोअर-युद्धके समय आये हुए सिपाही थे। जैसे युद्ध-कालमें आये हुए बहुतसे गोरे दक्षिण अफ्रीकामें आबाद हो गये, वैसे ही लड़ाईके सिलसिलेमें आये हुए पठान और दूसरे हिंदुस्तानी भी बस गये थे। उनमेंसे कुछ मेरे मवक्किल भी थे और दूसरे तौरपर भी उनके साथ मेरा खासा परिचय हो गया था। वे स्वभावसे बड़े भोले होते हैं। शूरवीर तो होते ही हैं। मारना और मरना उनकी निगाहमें बहुत मामूली बातें हैं। उनको किसी पर गुस्सा आये तो उसको पकड़कर पीटते अथवा उनकी भाषामें कहना चाहें तो उसकी पीठ गरम करते हैं और कभी-कभी जानसे भी मार डालते हैं। इसमें वे नितांत निष्पक्ष होते हैं। सगा भाई हो तो उसके साथ भी यही बर्ताव करेंगे। पठानोंकी तादाद यहां इतनी कम है, फिर भी उनमें आपसमें तकरार होनेपर मार-पीटकी नौबत आ ही जाती है। ऐसे झगड़ोंमें मुझे अकसर बीच-बचाव करना पड़ता। इसमें भी जब विश्वासघातकी बात हो तब तो वे

अपना गुस्सा रोक ही नहीं सकते। न्याय पानेके लिए उनके पास सबसे बढ़िया कानून मारपीट ही है।

पठानोंने इस लड़ाईमें पूरा हिस्सा लिया था। उनमेंसे एक आदमीने भी खूनी कानूनके सामने घुटने नहीं टेके थे। उनको बहकाना आसान है। उंगलियोंकी निशानी देनेके बारेमें गलतफहमी होना समझमें आ सकनेवाली बात है और इसको लेकर उनको भड़काना तनिक भी कठिन नहीं था। घूस न खाई होती तो उंगलियोंकी निशानी देनेकी बात मैं क्यों कहता, इतना कहना पठानोंको भ्रममें डालनेके लिए काफी था।

इसके सिवा ट्रांसवालमें एक और पक्ष भी था। यह था उन लोगोंका जो बिना परवाना लिये छिपे तौरपर ट्रांसवालमें आये थे या जो दूसरे हिंदुस्तानियोंको गुप्तरीतिसे बिना परवाना लिये या जाली परवानोंके जरिये ट्रांसवालमें प्रविष्ट कराया करते थे। इस पक्षका स्वार्थ समझौता न होनेमें ही था। जबतक लड़ाई चल रही हो तबतक किसीको परवाना दिखाना होता ही नहीं। इसलिए ये लोग निर्भय होकर अपना रोजगार चलाते रहते। लड़ाई चलती रहनेके दरमियान ये लोग जेल जानेसे आसानीसे बच सकते थे। अतः लड़ाई लंबे अरसेतक चले तो यह पक्ष इसे अपने लिए अच्छा ही मानता। इस प्रकार ये लोग भी पठानोंको समझौतेके खिलाफ भड़का सकते थे। अब पाठक समझ सकते हैं कि पठान यकायक क्यों उत्तेजित हो गये थे।

पर इस मध्यरात्रिके उद्गारोंका असर सभाके ऊपर कुछ भी नहीं हुआ। मैंने सभाका मत मांगा था। सभापति और दूसरे नेता दृढ़ थे। इस संवादके बाद सभापतिने भाषण दिया, जिसमें समझौतेका स्वरूप समझाया और उसको मंजूर कर लेनेकी आवश्यकता बताई। अनन्तर उन्होंने सभाका मत लिया। दो-चार पठान जो उस वक्त वहां मौजूद

थे उनके सिवा और सबने समझौतेको स्वीकार किया और मैं रातके दो या तीन बजे घर पहुंचा। सोना तो कहांसे मिलता, क्योंकि मुझे तड़के ही उठकर दूसरोंको छुड़ानेके लिए जेल जाना था। ७ बजे मैं जेलपर पहुंच गया। सुपरिंटेंडेंटको टेलीफोनसे हुक्म मिल गया था और वह मेरी राह देख रहे थे। एक घंटेके अंदर सभी सत्याग्रही कैदी छोड़ दिये गये। अध्यक्ष और दूसरे भारतीय उन्हें लेनेके लिए आये थे। जेलसे हमारा जुलूस पैदल सभा-स्थानको गया। वहां सभा हुई। यह दिन और दूसरे दो-चार दिन यों ही दावतों आदिमें तथा लोगोंको समझानेमें लग गये।

ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये त्यों-त्यों एक ओर तो लोग समझौतेका अर्थ अधिकाधिक समझने लगे और दूसरी ओर गलतफहमी भी बढ़ने लगी। उत्तेजनाके कारण तो ऊपर हम देख ही चुके हैं। उनके अतिरिक्त जनरल स्मट्सको लिखे हुए पत्रमें भी भ्रमका सबल कारण था। इसलिए जो अनेक प्रकारकी दलीलें पेश की जा रही थीं उनका जवाब देनेमें मुझे जो तकलीफ हुई वह उन कष्टोंसे कहीं अधिक थी जो लड़ाई चलती रहनेके दिनोंमें मुझे उठाने पड़े थे। लड़ाईके दिनोंमें जिसे हम अपना दुश्मन मानते हों उसके साथ व्यवहार करनेमें कठिनाई पड़ती है; पर मेरा अनुभव यह है कि इन कठिनाइयोंको हम आसानीसे दूर कर सकते हैं। उस वक्त आपसके झगड़े, अविश्वास आदि होते ही नहीं या बहुत कम होते हैं। पर युद्ध समाप्त होनेके बाद आपसके विरोध आदि जो सामने आई हुई आपत्तिको देखकर दबे रहते हैं, बाहर आ जाते हैं और लड़ाईका अंत समझौतेसे हुआ हो तो उसमें दोष निकालनेका काम सदा सहल होता है। इससे बहुतेरे उसे उठा लेते हैं और जहां व्यवस्था राष्ट्रीय या लोकतंत्रीय हो वहां छोटे-बड़े सबको जवाब देना और उनका समा-

धान करना पड़ता है। यह ठीक ही है। जितना अनुभव आदमी ऐसे समय, यानी दोस्तोंके दरमियान होनेवाले झगड़े या गलतफहमीके समय प्राप्त कर सकता है उतना विरोधीके सामने लड़ते हुए नहीं प्राप्त किया जा सकता। विरोधीके साथ की जानेवाली लड़ाईमें एक तरहका नशा रहता है और इससे उसमें उल्लास होता है। पर जब मित्रोंके बीच गलतफहमी या विरोध उत्पन्न हो जाता है तब वह असाधारण घटना माना जाता है और सदा दुःखद ही होता है। फिर भी आदमीकी परख तो ऐसे ही वक्त होती है। मेरा तो यह अपवाद-रहित अनुभव है और मुझे जान पड़ता है कि ऐसे ही समयमें मैं अपनी सारी आंतरिक सम्पत्ति प्राप्त कर सका हूं? युद्धका शुद्धस्वरूप जो लोग लड़ते-लड़ते नहीं समझ सके थे वे समझौतेकी बातचीतके दरमियान और उसके बाद उसे पूरी तरह समझ गये। सच्चा विरोध तो पठानोंसे आगे नहीं बढ़ा।

यों करते-कराते दो-तीन महीनेमें एशियाटिक दफ्तर अपनी इच्छासे लिया जानेवाला नया परवाना निकालनेको तैयार हो गया। परवानेका रूप बिलकुल बदल गया था। उसे बनानेमें सत्याग्रही मंडलके साथ मशविरा कर लिया गया था।

१९०८ की १० वीं फरवरीको सवेरे हम कुछ आदमी परवाने लेनेके लिए जानेको तैयार हुए। लोगोंको खूब समझा दिया गया था कि परवाने लेनेका काम कौमको झटपट कर डालना है। यह भी तै कर लिया गया था कि पहले दिन नेतागण ही सबसे पहले परवाने लें। इसमें उद्देश्य यह था कि लोगोंकी हिचक दूर हो जाय, एशियाटिक दफ्तरके अफसर-अहलकार अपना काम सौजन्यके साथ करते हैं या नहीं, इसको देख लें और कामकी और तरह पर निगरानी भी रखें।

मेरा दफ्तर ही सत्याग्रह-मंडलका भी दफ्तर था। वहां पहुंचा तो दफ्तरकी दीवारके बाहर मीर आलम और उसके साथियोंको खड़ा पाया। मीर आलम मेरा पुराना मवक्किल था और अपने सभी कामोंमें मेरी सलाह लिया करता था। बहुतसे पठान ट्रांसवालमें घास या नारियलके रेशेके गद्दे बनानेका काम करते हैं। इसमें वे अच्छा नफा करते हैं। ये गद्दे वे मजदूरोंके जरिये बनवाते और पीछे अच्छे नफेपर बेचते हैं। मीर आलम भी यही काम करता था। वह छः फुटसे अधिक ऊंचा होगा। लंबे-चौड़े कद और दुहरे बदनका था। आज पहली ही बार मैंने मीर आलमको दफ्तरके भीतरके बजाय बाहर खड़ा देखा और हमारी आंखें मिलनेपर भी उसने सलामके लिए हाथ नहीं उठाया तो यह भी पहली ही बार हुआ। पर मैंने सलाम किया तो उसने भी जवाब दिया। अपने अभ्यासके अनुसार मैंने पूछा, "कैसे हो?" मुझे ऐसा खयाल है कि उसने जवाबमें "अच्छा हूं" कहा। पर आज उसका चेहरा रोजकी तरह हंसता हुआ नहीं था। मैंने उसकी आंखोंमें क्रोधकी झलक देख ली और अपने मनमें इसे नोट कर लिया। यह भी सोचा कि आज कुछ होनेवाला है। मैं दफ्तरके अंदर गया। अध्यक्ष ईसप मियां और दूसरे मित्र भी आ पहुंचे और हम एशियाटिक दफ्तरकी ओर रवाना हुए। मीर आलम और उसके साथी भी साथ हो लिये।

एशियाटिक आफिसके लिए लिया हुआ मकान फॉन ब्रांडिस स्क्वायरमें था और मेरे दफ्तरसे एक मीलके अंदर ही होगा। वहां पहुंचनेके लिए आम सड़कोंसे होकर जाना था। फॉन ब्रांडिस स्ट्रीटसे जाते हुए हम मेसर्स आर्नाट एंड गिब्सनकी कोठीसे आगे पहुंचे थे, जहांसे एशियाटिक दफ्तरका तीन मिनिटसे अधिकका रास्ता न था कि मीर आलम

मेरी बगलमें आ गया और पूछा, "कहां जाते हो ?" मैंने जवाब दिया—"मैं दस उंगलियोंकी निशानी देकर रजिस्ट्रीका सार्टी-फिकेट लेना चाहता हूं। अगर तुम भी चलो तो तुम्हें दसों उंगलियोंकी निशानी देनेकी जरूरत नहीं है। केवल दोनों अंगूठोंकी निशानी दिलाकर मैं पहले तुम्हें सार्टीफिकेट दिला दूंगा, फिर अपनी उंगलियोंकी छाप देकर अपना सार्टीफिकेट निकलवाऊंगा।" मैं यह कहही रहा था कि इतनेमें मेरी खोप-ड़ीपर लाठी गिरी और मैं 'हे राम' कहते हुए बेहोश होकर मुंहके बल गिरा। इसके बाद जो कुछ हुआ उसकी मुझे खबर नहीं। पर मीर आलम और उसके साथियोंने और लाठियां मारीं और लातें भी जड़ीं। उनमेंसे कुछको ईसप मियां और थंबी नायडूने अपने ऊपर ले लिया। इससे वे भी थोड़ी मार खा गये। इतनेमें शोर मचा। आते-जाते गोरे इकट्ठा हो गये। मीर आलम और उसके साथी भागे; पर गोरोंने उन्हें पकड़ लिया । इस बीच पुलिस भी आ पहुंची और वे पुलिसके हवाले कर दिये गये।

बगलमें ही एक यूरोपियन मि० गिब्सनका दफ्तर था। लोग मुझे वहां उठा ले गये। थोड़ी देरमें मुझे होश आया तो मैंने रेवरेंड डोकको अपने ऊपर झुका हुआ पाया। उन्होंने मुझसे पूछा—"कैसे हो ?" मैंने हंसकर जवाब दिया—"मैं तो अच्छा हूं, पर मेरे दांत और पसलियां दुख रही हैं।" मैंने पूछा—"मीर आलम कहां है ?" उन्होंने जवाब दिया—"वह तो पकड़ लिया गया है और उसके साथ दूसरे लोग भी।" मैंने कहा—"उन्हें छूटना चाहिए ।" मि० डोकने जवाब दिया—"यह सब तो होता रहेगा । यहां तो तुम एक पराये दफ्तरमें पड़े हो। तुम्हारा होंट फट गया है। पुलिस तुम्हें अस्पताल ले जानेको तैयार है। पर तुम मेरे यहां चलो तो मिसेज डोक और मैं जितनी तुम्हारी सेवा हमसे

हो सकती है करेंगे।" मैंने कहा--"मुझे तो अपने ही यहां ले चलिये। पुलिस जो सहायता करना चाहती है उसके लिए उसको धन्यवाद दीजिए, पर उन लोगोंसे कह दीजिये कि मैं आपके यहां जाना पसंद करता हूं।"

इतनेमें एशियाटिक आफिसर (रजिस्ट्रार आव एशियाटिक्स) मि० चमनी भी आ पहुंचे। एक गाड़ीमें लिटाकर मुझे इस भले पादरीके मकानपर ले गये, जो स्मिट स्ट्रीटमें था। डाक्टर बुलाया गया। इस बीच मैंने मि० चमनीसे कहा--"मेरी आशा तो यह थी कि आपके दफ्तरमें आकर और दसों उंगलियोंकी निशानी देकर पहला परवाना अपने नाम निकलवाऊंगा। यह ईश्वर को मंजूर नहीं था। पर अब मेरी प्रार्थना है कि आप अभी जाकर कागज ले आएं और मेरी रजिस्ट्री कर लें। मैं आशा करता हूं कि आप मुझसे पहले और किसीकी रजिस्ट्री नहीं करेंगे। उन्होंने जवाब दिया--"ऐसी क्या उतावली है? अभी-अभी डाक्टर आते हैं। आप आराम करें। पीछे सब होता रहेगा। दूसरोंको परवाने दूंगा तो भी आपका नाम पहला रहेगा।" मैंने कहा--"ऐसे नहीं हो सकता। मेरी भी प्रतिज्ञा है कि मैं जीवित रहा और ईश्वरको मंजूर हुआ तो सबसे पहले खुद मैं ही परवाना लूंगा। इसीसे मेरा आग्रह है कि आप कागज ले आएं।" इसपर वह कागज लाने गये।

मेरा दूसरा काम था एटर्नी जनरल अर्थात् बड़े सरकारी वकीलको इस आशयका तार भेजना--"मीरआलम और उसके साथियोंने मेरे ऊपर जो हमला किया उसके लिए मैं उन्हें दोषी नहीं मानता। जो हो, उनपर फौजदारी मुकदमा चले यह मैं नहीं चाहता। मुझे आशा है कि मेरी खातिर आप उन्हें छोड़ देंगे।" इस तारके जवाबमें मीर आलम और उसके साथी छोड़ दिये गये।

पर जोहान्सबर्गके गोरोंने एटर्नी जनरलको इस तरहका कड़ा पत्र लिखा—"अपराधियोंको सजा मिलनेके बारेमें गांधीके विचार कुछ भी हों, वह इस देशमें नहीं चल सकते। उनपर जो मार पड़ी है उसके विषयमें वह भले ही कुछ न करें, पर अपराधियोंने उन्हें घरके कोनेमें नहीं मारा, सरेआम बीच रास्तेमें मारा है। यह सार्वजनिक अपराध माना जायगा। कितने ही अंग्रेज भी इस अपराधकी शहादत दे सकते हैं। अपराधियोंको पकड़ना ही होगा।" इस आन्दोलनके कारण सरकारी वकीलने मीर आलम और उसके एक साथीको फिर गिरफ्तार कराया और उन्हें तीन-तीन महीनेकी कड़ी कैदकी सजा मिली। हां, मैं गवाहकी हैसियतसे तलब नहीं किया गया।

अब हम फिर बीमारके कमरेकी ओर निगाह फेरें। मि० चमनी कागजात लेने गये, इतनेमें डाक्टर थ्वेट्स आ पहुंचे। उन्होंने मुझे देखा। मेरा ऊपरका होट फट गया था। उसके और गालके जख्ममें भी टांका लगाया। पसलियों आदिको देखकर उनमें लगानेके लिए दवा लिखी और जबतक टांका न खुले तबतक बोलनेको मना किया। खानेमें भी पतली चीजोंको छोड़कर और कुछ खानेको मना किया। उन्होंने यह निदान किया कि मुझे कहीं भी बहुत गहरी चोट नहीं आई है। हफ्तेके अंदर अपना मामूली काम-काज करने लायक हो जाऊंगा। हां, एक-दो महीने इसका ध्यान रखना होगा कि शरीरपर अधिक श्रम न पड़े। यह कहकर वह विदा हुए। यों मेरा बोलना बंद हुआ, पर मेरा हाथ तो चल ही सकता था। मैंने कौमके लिए अध्यक्षकी मारफत एक छोटा गुजराती संदेश लिखकर प्रकाशित करनेके लिए दे दिया। वह इस प्रकार है :

"मेरी तबीयत अच्छी है। मिस्टर और मिसेज डोक

मेरे लिए जान दे रहे हैं। मैं थोड़े ही दिनोंमें अपनी ड्यूटीपर फिर हाजिर हो जाऊंगा। जिन्होंने मुझे मारा है उनपर मुझे गुस्सा नहीं है। उन्होंने नासमझीवश यह काम किया। उनपर कोई मुकदमा चलानेकी जरूरत नहीं। दूसरे लोग शांत रहेंगे तो इस घटनासे भी हमें लाभ ही होगा।

"हिंदू भाई अपने मनमें तनिक भी रोष न रखें। मैं चाहता हूं कि इस घटनासे हिंदू-मुसलमानके बीच कटुता पैदा न होकर मिठास उत्पन्न हो, ईश्वरसे ऐसी प्रार्थना करता हूं।

"मुझपर मार पड़ी और उससे ज्यादा पड़े तो भी मैं तो एक ही सलाह दूंगा। और वह यह कि आमतौरसे सभी दस उंगलियोंकी निशानी दे दें। जिनके लिए सच्ची धार्मिक अड़चन हो उन्हें सरकार छूट देगी। इसमें ही कौमका और गरीबोंका भला है और इसीसे उनकी रक्षा होगी।

"अगर हम सच्चे सत्याग्रही होंगे तो मार या भविष्यमें किये जानेवाले विश्वासघातके डरसे तनिक भी नहीं डरेंगे।

"जो लोग दसों उंगलियोंकी निशानीकी बातको लेकर अड़े हुए हैं उन्हें मैं अज्ञानी समझता हूं।

"मैं परमात्मासे प्रार्थना करता हूं कि कौमका भला करे, उसे सही रास्तेपर लगाये और हिंदू-मुसलमानोंको मेरे रक्तके एक करे।"

मि० चमनी आये। बड़ी मुश्किलसे मैंने उंगलियोंकी निशानी दे दी। मैंने देखा कि इस वक्त उनकी आंखें गीली हो रही थीं। इनके खिलाफ तो मुझे कड़े लेख भी लिखने पड़े थे। पर अवसर आनेपर मनुष्यका हृदय कितना कोमल हो जाता है, इसका चित्र मेरी आंखोंके सामने खड़ा हो गया।

पाठक यह अनुमान तो कर ही लेंगे कि यह सारी विधि पूरी होनेमें कुछ मिनटसे अधिक न लगे होंगे। मि० डोक

और उनकी भली पत्नी इसके लिए चिंतित हो रहे थे कि मैं बिलकुल शांत और स्वस्थ हो जाऊं। घायल होनेके बाद भी मुझे मानसिक श्रम करते देख उन्हें दुःख हो रहा था। उन्हें डर था कि शायद मेरी तबियतपर इसका बुरा असर पड़े। इसलिए इशारा करके और दूसरी युक्तियोंसे मेरी खाटके पाससे सबको हटा ले गये और मुझे लिखने या कोई भी काम करनेसे मना कर दिया। मैंने प्रार्थना की और उसे लिखकर जताया कि मैं बिलकुल शांत होकर सो जाऊं, इसके पहले और इसके लिए उनकी बेटी आलिव, जो उस वक्त निरी बालिका थी, मेरा प्रिय अंग्रेजी भजन "लीड काइंडली लाइट" (प्रेमल ज्योति) मुझे सुना दे। मि० डोकको मेरी यह प्रार्थना बहुत रुची। अपने मधुर हास्यसे उन्होंने मुझे इसकी सूचना दी और आलिवको इशारेसे बुलाकर आज्ञा की कि दरवाजेके बाहर खड़ी रहकर धीमे स्वरसे उक्त भजन गाये। ये पंक्तियां लिखते समय यह सारा दृश्य मेरी आंखोंके सामने फिर रहा है और आलिवका दिव्य स्वर आज भी मेरे कानोंमें गूंज रहा है।

इस प्रकरणमें मैं ऐसी बहुतसी बातें लिख गया हूं जिन्हें मैं इस प्रकरणके लिए अप्रस्तुत मानता हूं और पाठक भी मानेंगे। फिर भी उनमें एक संस्मरण और बढ़ाये बिना मैं इस प्रकरणको पूरा नहीं कर सकता। इस समयके सभी संस्मरण मेरे लिये इतने पवित्र हैं कि उन्हें मैं छोड़ नहीं सकता। डोक कुटुंब-की सेवाका वर्णन मैं किस तरह कर सकता हूं ?

जोसफ डोक बैपटिस्ट संप्रदायके पादरी थे। उनकी उम्र उस वक्त ४६ बरस की थी। दक्षिण अफ्रीका आनेके पहले न्यूजीलैंडमें थे। इस हमलेसे कोई छः महीने पहलेकी बात है। वह मेरे दफ्तरमें आये और अपने नामका कार्ड मेरे पास भेजा। उसमें नामके साथ रेवरेंड विशेषण लगा था। इससे

मैंने यह गलत अनुमान कर लिया कि जैसे कितने पादरी मुझे ईसाई बनानेके इरादेसे या लड़ाई बंद करनेके लिए समझाने आते हैं, वैसे ही ये भी आये होंगे या बुजुर्ग बनकर लड़ाईमें हमदर्दी दिखाने आये होंगे। पर मि० डोक अंदर आये और हममें बात-चीत होते दो-चार मिनटसे अधिक न हुए होंगे कि मैंने अपनी भूल देख ली और दिल-ही-दिलमें उनसे क्षमा मांगी। उस दिनसे हम गहरे दोस्त हो गये। अखबारों-में लड़ाईके जो समाचार छपते थे उन सबसे उन्होंने अपनी जान-कारी प्रकट की। उन्होंने कहा—"इस लड़ाईमें आप मुझे मित्र ही मानियेगा। मुझसे जो कुछ सेवा बन पड़े उसे मैं अपना धर्म समझकर करना चाहता हूं। ईसाके जीवनका चिंतन करके जो कुछ मैंने सीखा है वह यही है कि दुखियोंका दुख बटाना चाहिए। यों हमारा परिचय हुआ और दिन-दिन हमारा स्नेह-संबंध बढ़ता ही गया।

डोकका नाम इस इतिहासमें इसके बाद अनेक प्रसंगोंमें मिलेगा, पर डोक-कुटुंबने मेरी जो सेवा की उसका वर्णन करते हुए इतना परिचय पाठकोंको दे देना जरूरी था। रात और दिन कोई-न-कोई तो मेरे पास मौजूद रहता ही। जितने दिन मैं वहां रहा उतने दिन उनका घर धर्मशाला बन गया था। हिंदुस्तानियोंमें फेरी करनेवाले भी थे। उनके कपड़े मजदूरों जैसे होते, मैले भी होते, जूतोंपर सेर भर धूल होती। फिर उनकी गठरी या टोकरी भी साथ होती। इन लोगोंसे लगाकर अध्यक्ष जैसों या सभी श्रेणियोंके हिंदुस्तानियोंका मि० डोकके घर मेला लग रहा था। सब मेरा हाल पूछने और जब डाक्टरकी अनुमति मिल गई तब मुझसे मिलनेके लिए आते। मि० डोक सबको समान आदर-भावसे अपने दीवानखानेमें बैठाते और जबतक मेरा रहना डोक-परिवारके साथ हुआ तबतक

मेरी सेवा-शुश्रूषा और मुझे देखने आनेवाले सैकड़ों लोगोंके आदर-सत्कारमें उनका सारा वक्त जाता। रातमें भी दो-तीन बार आकर चुपचाप मेरे कमरेमें झांक जाते। उनके घरमें मैं कभी यह सोच ही नहीं सका कि यह मेरा घर नहीं है और मेरा प्रिय-से-प्रिय आत्मीय भी होता तो इससे अधिक मेरी सेवा करता।

पाठक यह भी न सोचें कि हिंदुस्तानी कौमकी लड़ाईकी इतनी खुले तौरपर तरफदारी करने या मुझे अपने घरमें आश्रय देनेके कारण मि० डोकको कुछ नुकसान नहीं उठाना पड़ा। अपने पंथके गोरोंके लिए वह एक गिरजाघर चलाते थे। उनकी आजीविका इन पंथवालोंसे ही चलती थी। इन लोगोंमें सभी उदार हृदयके होते हों, सो बात तो है नहीं। हिंदुस्तानियोंके लिए गोरोंमें जो आम नफरत है वह इनमें भी थी ही। डोकने इस बातकी परवा ही नहीं की। हमारे परिचयके प्रारंभमें ही मैंने इस नाजुक विषयकी उनके साथ चर्चा की। उनका जवाब लिखने लायक है। उन्होंने कहा—"मेरे प्यारे दोस्त, ईसाके धर्मको तुम कैसा मानते हो? जो आदमी अपने धर्मकी खातिर सूलीपर चढ़ा और जिसका प्रेम जगत्के जितना ही विशाल था, उसका मैं अनुयायी हूं। जिन गोरोंके द्वारा मेरे त्यागका तुमको भय है अगर मैं चाहता हूँ कि उनके सामने ईसाके अनुयायीकी हैसियतमें खड़े होकर तनिक भी शोभा पाऊं तो इस युद्धमें मुझे खुले तौरपर योग देना ही चाहिए और यह करते हुए मुझे मेरा मंडल छोड़ दे तो मुझे इसमें रत्तीभर भी दुःख नहीं मानना चाहिए। मेरी रोजी उनसे मिलती है यह सही है; पर तुम्हें यह तो नहीं ही मानना चाहिए कि मैं आजीविकाकी खातिर उनके साथ संबंध रखता हूं, या वे मेरी रोजी देनेवाले हैं। मेरी रोजी तो खुदा देता है। वे तो निमित्त मात्र हैं। उनके साथ संबंध रखनेकी मेरी यह

बिना कहे मानी हुई शर्त है कि मेरी धार्मिक स्वतंत्रतामें उनमेंसे कोई दखल नहीं देगा। इसलिए मेरे बारेमें तो तुम बेफिक्र रहो। मैं कुछ हिंदुस्तानियोंपर मेहरबानी करनेके लिए इस लड़ाईमें शामिल नहीं हुआ हूं। मेरा तो यह धर्म है और यह समझकर ही इसमें भाग दे रहा हूं। पर सच यह है कि अपने डीन (चर्चके मुखिया) के साथ मैंने इस बारेमें सफाई कर ली है। उन्हें मैंने विनय-पूर्वक जता दिया है कि अगर हिंदुस्तानी कौमके साथ मेरा संबंध आपको न रुचता हो तो आप मुझे खुशीसे विदा दे सकते हैं और दूसरा पादरी नियुक्त कर सकते हैं। पर उन्होंने मुझे इस विषयमें बिलकुल निश्चित कर दिया है, मुझे बढ़ावा भी दिया है। फिर तुम यह भी न समझो कि सभी यूरोपियन तुम लोगोंको एकसी नफरतकी निगाहसे देखते हैं। बहुतोंकी परोक्ष रीतिसे तुम्हारे साथ कितनी हमदर्दी है, इसका अंदाजा तुम्हें नहीं हो सकता; पर मुझे इसका पता होना चाहिए, यह तो तुम मानोगे ही।''

इतनी स्पष्ट बातचीत हो जानेके बाद मैंने इस विषयको फिर कभी छेड़ा ही नहीं और पीछे जब मि० डोक अपना धर्मकार्य करते-करते देवलोक सिधारे, हमारी लड़ाई उस वक्त चल ही रही थी, तब उनके पंथवालों—बप्टिस्ट लोगों—ने गिरजेमें सभा की और उसमें स्व० काछलिया और दूसरे हिंदुस्तानियों तथा मुझको भी बुलाया था। उसमें मुझसे बोलनेका अनुरोध किया गया था।

मेरे अच्छी तरह चलने-फिरने लायक होनेमें कोई दस दिन लगे होंगे। ऐसी दशा हो जानेपर मैंने इस स्नेही कुटुंबसे विदा ली। हम दोनोंके लिए यह वियोग बहुत दुखदाई हो गया था।

: २३ :

गोरे सहायक

इस लड़ाईमें इतने अधिक और प्रतिष्ठित यूरोपियनोंने हिंदुस्तानी कौमकी ओरसे आगे बढ़कर हिस्सा लिया कि इस स्थानपर उनका एक साथ परिचय करा देना अनुचित नहीं समझा जायगा। इससे आगे चलकर जब जगह-जगह उनके नाम आयंगे तो उस वक्त पाठकोंको वे अपरिचित नहीं लगेंगे और लड़ाईके चलते वर्णनमें उनका परिचय देनेके लिए मुझको रुकना भी नहीं पड़ेगा। जिस क्रमसे मैं उनके नाम दे रहा हूं उस क्रमको पाठक उनकी प्रतिष्ठा या सहायताके मूल्यका क्रम न मानें। उसको कुछ तो उनसे परिचय होनेके कारण और कुछ लड़ाईके जिस-जिस उपविभागमें उनकी मदद मिली उसके क्रमसे रखा हुआ समझना होगा।

इनमें पहला नाम अल्बर्ट वेस्टका आता है। भारतीय जनताके साथ उनका संबंध तो लड़ाईके पहले ही जुड़ गया। मेरा उनका वास्ता तो और भी पहलेका था। मैंने जब जोहान्सबर्गमें दफ्तर खोला तब मेरा कुटुंब मेरे साथ नहीं था। पाठकोंको याद होगा कि दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंका तार पाकर १९०३ ई० में मैं यकायक रवाना हो गया था और वह भी एक बरसके अंदर लौट आनेके इरादेसे। जोहान्सबर्गमें एक निरामिष भोजन-गृह था। उसमें मैं नियमसे दोपहर और शामको खाना खाने जाया करता था। वहां वेस्ट भी आते और वहीं हमारी जान-पहचान हुई। वह एक और यूरोपियनके साझेमें छापाखाना चलाते थे।

१९०४में जोहान्सबर्गके हिंदुस्तानियोंमें भयानक प्लेग फैला। मैं पीड़ितोंकी सेवामें लग गया और उक्त भोजन-

गृहमें मेरा जाना अनियमित हो गया। जब जाता भी तब मेरी छूत दूसरोंको लगनेका डर न रहे इस ख्यालसे और भोजन करनेवालोंके आनेके पहले ही वहां हो आता। जब दो दिन लगातार मुझे नहीं देखा तब वेस्ट घबराये। उन्होंने अखबारोंमें देखा कि मैं प्लेग पीड़ितोंकी सेवामें लगा हूं। तीसरे दिन सवेरे ६ बजे मैं हाथ-मुंह धो रहा था कि वेस्टने मेरे कमरेका दरवाजा खटखटाया। मैंने दरवाजा खोला तो वेस्टका हंसता चेहरा दिखाई दिया।

वह तुरंत ही प्रसन्न होकर बोल उठे—"तुम्हें देखकर इतमीनान हुआ। तुम्हें भोजन-गृहमें न देखा तो मैं घबराया। मुझसे तुम्हारी कोई मदद हो सकती हो तो जरूर कहना।"

मैंने हंसकर जवाब दिया—"रोगियोंकी सेवा ?"

"क्यों नहीं ? मैं जरूर तैयार हूं।"

इस विनोदके बीच मैंने अपनी बात सोच ली। मैंने कहा—"आपसे मुझे दूसरे उत्तरकी आशा ही नहीं थी। पर इस काममें तो मेरे बहुतसे मददगार हैं। आपसे तो मैं इससे अधिक कठिन काम लेना चाहता हूं। मदनजीत यहीं हैं। 'इंडियन ओपीनियन' के प्रेसको कोई देखने-सम्हालनेवाला नहीं। मदनजीतको तो मैंने प्लेगके काममें लगा लिया है। आप डर्बन जायं और उस कामको सम्हालें तो यह सच्ची सहायता होगी। इसमें कोई ललचानेवाली चीज तो है ही नहीं। मैं तो आपको एक बहुत छोटी रकम ही नजर कर सकता हूं—१० पौंड प्रति मास और जो प्रेसमें नफा हो तो उसमें आधा आपका होगा।"

"यह काम है तो जरा अटपटा। मुझे अपने साझीदारसे इजाजत लेनी होगी। कुछ उगाही भी वसूल करना है। पर कोई चिंता नहीं। आज शामतककी मुहलत मुझे दे सकते हैं?"

"हां, छः बजे हम पार्कमें मिलें।"

"मैं जरूर पहुंचूंगा।"

इस निश्चयके अनुसार हम मिले। वेस्टने अपने साझीदारकी अनुमति भी प्राप्त कर ली। उगाहीकी वसूली मुझे सौंप दी और अगले दिन शामकी ट्रेनसे रवाना हो गये। एक महीनेके अंदर उनकी रिपोर्ट मिली—"इस छापेखानेमें नफा तो है ही नहीं, घाटा बहुत है। उगाही बहुत पड़ी है; पर हिसाब ठीक-ठिकानेसे नहीं रखा गया है। ग्राहकोंके पूरे नाम नहीं लिखे हैं, ठिकाना नहीं लिखा है। दूसरी अव्यवस्था भी बहुत है। यह सब मैं शिकायतके तौरपर नहीं लिख रहा हूं। मैं यहां नफेके लिए नहीं आया हूं। इसलिए यह ऊपर लिया हुआ काम छोड़नेका नहीं, इसे पक्का समझिये। पर यह नोटिस मैं अभीसे दिये देता हूं कि आपको लंबे अरसेतक घाटा तो भरते ही जाना होगा।"

मदनजीत जोहान्सबर्ग आये थे ग्राहक बनाने और छापेखानेके प्रबंधके बारेमें मुझसे बातचीत करने। मैं हर महीने प्रेसका थोड़ा-बहुत घाटा पूरा किया ही करता था। इससे यह जान लेना चाहता था कि इस गड्ढेमें और कितना पैसा झोंकना होगा। पाठकोंको मैं बता चुका हूं कि मदनजीतको शुरूके दिनोंमें भी छापेखानेके कामका बिलकुल अनुभव नहीं था। इसलिए यह तो मैं शुरूसे ही सोचा करता था कि छापेखानेका काम जाननेवाले किसी आदमीको उनके साथ कर सकूं तो अच्छा हो। इस बीच प्लेग फैला और मदनजीत ऐसे कामोंमें तो बहुत कुशल और निर्भय थे। इसलिए उन्हें रोक लिया। इससे वेस्ट जब हमारी सहायता करनेको तैयार हो गये तो मैंने इस अनपेक्षित प्रस्तावको सहर्ष स्वीकार कर लिया और उन्हें यह समझा दिया कि उन्हें केवल प्लेगके दिनोंके लिए नहीं, बल्कि सदाके लिए जाना होगा। इसीसे उनकी उपर्युक्त प्रकारकी रिपोर्ट मिली।

पाठक जानते हैं कि अखबार और छापाखाना अंतमें फिनिक्स गये। वहां वेस्टको माहवार १० पौंडके बदले ३ ही पौंड दिये जाने लगे। इन सारे परिवर्तनोंमें उनकी पूरी सम्मति थी। मैंने एक दिन भी उनको इसकी चिंता करते नहीं देखा कि उनकी आजीविका कैसे चलेगी। उन्होंने धर्मशास्त्र नहीं पढ़ा था, फिर भी मैं उन्हें अत्यन्त धार्मिक मनुष्यके रूपमें जानता हूं। वह अतिशय स्वतंत्र स्वभावके मनुष्य थे। जिस चीजको जैसी मानते थे वैसी ही कहते थे। कालेको कृष्णवर्ण न कहकर काला ही कहते। उनकी रहन-सहन अत्यन्त सादी थी। मुझसे परिचय होनेके समय ब्रह्मचारी थे और मैं जानता हूं कि वह ब्रह्मचर्यका पालन करते थे। कुछ बरस बाद वह मां-बापके दर्शन करने विलायत गये और वहांसे ब्याह करके लौटे। मेरी सलाहसे अपनी स्त्री, सास और कुंवारी बहनको साथ लाये। ये सभी फिनिक्समें निहायत सादगीसे और हर तरह हिंदुस्तानियोंसे घुल-मिलकर रहते।

कुमारी एडा वेस्ट (या 'देवी बहन'—हम उन्हें इसी नामसे पुकारते थे) इस वक्त ३५ बरसकी रही होंगी, पर अब भी कुमारी थीं और बहुत ही पवित्र जीवन बिताती थीं। फिनिक्समें रहनेवाले बच्चोंको रखना, उन्हें अंग्रेजी पढ़ाना, सार्वजनिक रसोईमें खाना पकाना, घर साफ करना, हिसाब-किताब रखना, कंपोज करना और छापेखानेके दूसरे काम करना—इन सारे कामोंमें उन्होंने कभी आना-कानी नहीं की। इस वक्त वे लोग फिनिक्समें नहीं हैं तो इसका कारण इतना ही है कि उनका छोटा-सा खर्च भी मेरे हिंदुस्तान लौट आनेके बाद छापेखानेके उठाये नहीं उठ सका। वेस्टकी सासकी उम्र ८० के ऊपर होगी। वह सिलाईका काम बहुत अच्छा जानती हैं। अतः इस काममें यह वृद्धा



फिनिक्स-आश्रम-वासी

भी पूरी सहायता करतीं। फिनिक्समें उनको सब 'दादी' कहते और मानते। मिसेज वेस्टके बारेमें तो कुछ कहनेकी जरूरत ही नहीं। जब फिनिक्स आश्रमके बहुतसे लोग जेल चले गये तब वेस्ट-कुटुंबने मगनलाल गांधीके साथ मिलकर फिनिक्सका काम-काज सम्हाला। अखबार और छापेखानेके बहुतसे काम वेस्ट करते। मेरी और दूसरोंकी अनुपस्थितिमें डर्बनसे गोखलेके पास भेजे जानेवाले तार वही भेजते। अंतमें जब वेस्ट भी पकड़ लिये गये (यद्यपि वह तुरंत छोड़ दिये गये) तब गोखले घबराये और ऐंड्रूज तथा पियर्सनको भेजा।

दूसरे हैं मि० रिच। इनके बारेमें लिख चुका हूं। ये भी लड़ाईके पहले ही मेरे दफ्तरमें दाखिल हो गये थे। मेरे पीछे मेरा काम सम्हाल सकनेकी आशासे वह बैरिस्टरी पास करने विलायत गये, वहांकी कमेटी (साउथ अफ्रिकन ब्रिटिश इंडियन कमेटी) के कामकी सारी जिम्मेदारी उन्हींपर थी।

तीसरे हैं मि० पोलक। वेस्टकी तरह उनसे जान-पहचान भी अनायास भोजन-गृहमें हुई। वह भी क्षणभरमें 'ट्रांसवाल क्रिटिक'के उपसंपादककी जगह छोड़कर 'इंडियन ओपीनियन' में आये। उन्होंने लड़ाईके सिलसिलेमें इंगलैंड और पूरे हिंदुस्तानमें भ्रमण किया, यह तो सभी जानते हैं। रिच विलायत गये तो मैंने उन्हें फिनिक्ससे अपने दफ्तरमें बुला लिया। वहां आर्टिकिल्स दिये और फिर खुद भी वकील (एटर्नी) हो गये। पीछे ब्याह भी किया। मिसेज पोलकको भी हिंदुस्तान जानता है। इन बहनने लड़ाईके काममें अपने पतिका पूरा-पूरा हाथ बटाया। उसमें विघ्न कभी नहीं डाला। इस वक्त भी ये दंपती असहयोगकी लड़ाईमें हमारे सहयोगी न होते हुए भी हिंदुस्तानकी यथाशक्ति सेवा कर रहे हैं।

इनके बाद हर्मन केलेनबेकका नंबर आता है। इनका परिचय

भी लड़ाईके पहले ही हुआ । ये जातिके जर्मन हैं और अंग्रेज-जर्मनोंकी लड़ाई न छिड़ गई होती तो आज हिंदुस्तानमें होते । इनका हृदय विशाल है । इनके भोलेपनकी हद नहीं । इनकी भावनाएं अति तीव्र हैं । इनका धंधा शिल्पीका है । ऐसा एक भी काम नहीं जिसे करनेमें इन्होंने कभी आनाकानी की हो । जब मैंने जोहान्सबर्गकी अपनी गृहस्थी तोड़ दी तब हम दोनों साथ ही रहते थे । अतः मेरा खर्च वही उठाते । घर तो इनका अपना ही था । खानेके खर्चमें मैं अपना हिस्सा देनेको कहता तो नाराज होते और यह कहकर चुप कर देते कि मुझको फिजूल खर्चीसे बचानेवाले तो तुम्हीं हो । उनके इस कथनमें सचाई थी; पर यूरोपियनोंके साथ अपने निजी संबंधोंके वर्णनका यह स्थान नहीं । गोखले जब जोहान्सबर्ग आये तब भारतीय जनताने उन्हें केलनबेकके बंगलेमें ही उतारा । यह स्थान गोखलेको बहुत पसंद आया । गोखलेको विदा करनेके लिए वह मेरे साथ जंजीबारतक गये । पोलकके साथ वह भी पकड़े गये । जेल गये और अंतमें जब दक्षिण अफ्रीकासे विदा होकर और इंगलैंडमें गोखलेसे मिलकर मैं हिंदुस्तान लौट रहा था तब केलनबेक मेरे साथ थे और लड़ाईके कारण ही उन्हें हिंदुस्तान आनेकी इजाजत नहीं मिली और सब जर्मनोंके साथ वह भी इंगलैंडमें नजरबंद रखे गये थे । युद्ध समाप्त होनेपर वह जोहान्सबर्गको वापस गये और अपना धंधा फिर शुरू किया । जोहान्सबर्गमें जब सत्याग्रही कैदियोंके कुटुंबोंका एक साथ रखनेका विचार हुआ तब केलनबेकने अपना ११०० बीघेका खेत भारतीय जनताको बिना किसी लगानके सौंप दिया । उसका विवरण पाठक आगे पढ़ेंगे ।

अब एक पवित्र बालिकाका परिचय दूं । गोखलेने जो उसे प्रमाणपत्र दिया उसे पाठकोंके सामने रखे बिना मुझसे

नहीं रहा जाता। इस बालिकाका नाम है मिस सोंजा श्लेजीन। गोखलेकी आदमियोंको पहचाननेकी शक्ति अद्भुत थी। डेलागोआ बेसे जंजीबारतक हमें बातें करनेको सुंदर और शांति-भरा अवसर मिल गया था। दक्षिण अफ्रीकाके हिंदुस्तानी और गोरे नेताओंका भी उन्हें अच्छा परिचय हो गया था। इन सभी मुख्य पात्रोंके चरित्रका उन्होंने सूक्ष्म विश्लेषण कर दिया और मुझे अच्छी तरह याद है कि मिस श्लेजीनको उन्होंने भारतीय और गोरे सबमें प्रथम स्थान दिया था। "इसके जैसा निर्मल अंतःकरण और काममें एकाग्रता, दृढ़ता मैंने बहुत ही थोड़े लोगोंमें पाई है और भारतीयोंके संग्राममें, किसी भी लाभकी आशाके बिना इतना सर्वार्पण देखकर मैं तो दंग रह गया। फिर इन सारे गुणोंके साथ उसकी होशियारी और चुस्तीने तो तुम्हारी इस लड़ाईमें उसे एक अमूल्य सेविका बना दिया है। मेरे कहनेकी जरूरत तो नहीं, फिर भी कह देता हूं कि उसको तुम अवश्य अपनाना।"

एक स्काच कुमारिका मेरे यहां शार्टहैंड और टाइपका काम करती थी। उसकी वफादारी और नीतिमत्ता सीमारहित थी। इस जिंदगीमें मुझे कड़वे अनुभव तो बहुतेरे हुए हैं, पर सुंदर चरित्र वाले इतने अधिक यूरोपियनों और भारतीयोंसे मेरा सम्पर्क हुआ है कि मैं इसको सदा अपना सौभाग्य ही मानता आया हूं। इस स्काच कुमारिका मिस डिक.के विवाहका अवसर आया तो मुझसे उसका वियोग हुआ। तब मि० केलनबेक मिस श्लेजीनको लाये और मुझसे कहा—"इस लड़कीको इसकी मांने मुझे सौंपा है। यह चतुर है, ईमानदार है, पर इसमें नटखटपन और स्वतंत्रता बहुत अधिक है। शायद कुछ उद्धत भी कही जाय। तुमसे चल सके तो इसे रखो। मैं इसे तनख्वाहकी खातिर तुम्हारे पास नहीं रखता।" मैं तो अच्छे स्टेनो-टाइपिस्टको

२० पौंड माहवार देनेको तैयार था। मिस श्लेजीनकी योग्यताका मुझे पता नहीं था। मि० केलनबेकने कहा—"फिलहाल तो इसे ६ पौंड प्रति मास देना।" मुझे तो यह मंजूर होना ही चाहिए था।

मिस श्लेजीनके नटखटपनका अनुभव तो मुझे तुरंत ही हुआ; पर एक महीनेके अंदर ही उसने मुझे अपने बसमें कर लिया। रात और दिन चाहे जिस वक्त आप उसे काम दे सकते थे। उसके लिये न हो सकनेवाला या कठिन तो कुछ था ही नहीं। इस वक्त वह १६ बरसकी थी। मवक्किलों और सत्याग्रहियोंका मन भी उसने अपनी सरलता और सेवाकी तत्परतासे हर लिया। दफ़्तर और आन्दोलनकी नीतिकी यह कुमारिका चौकीदार और रखवाली करनेवाली हो गई। किसी भी कामके नीतियुक्त होनेके विषयमें उसको तनिक भी शंका हो जाय तो पूरी आजादीके साथ मुझसे बहस करती और जबतक मैं उस वस्तुके नीतियुक्त होनेका उसे इतमीनान न करा देता तबतक उसको संतोष नहीं होता था।

जब लगभग सभी नेता पकड़ लिये गये और अकेले सेठ काछलिया ही बाहर रह गये तब इस बालिकाने लाखों रुपयेका हिसाब रखा और भिन्न-भिन्न प्रकृतिके मनुष्योंसे काम लिया। सेठ काछलिया भी उसका सहारा, उसकी सलाह लेते। हम सबके जेल चले जानेके बाद 'इंडियन ओपीनियन'की कमान मि० डोकने सम्हाली। पर यह धवलकेश अनुभवी बुजुर्ग भी 'इंडियन ओपीनियन' के लिए लिखे हुए लेखोंको मिस श्लेजीनसे पास कराता। मुझसे उन्होंने कहा—"मिस श्लेजीन न होती तो नहीं जानता कि किस तरह अपने कामसे मैं अपने आपको भी संतोष दे पाता। उसकी सहायता और सुझावोंका मूल्य मैं आंक ही नहीं सकता। अक्सर उसके सुझाये हुए सुधारोंको ठीक मानकर मैंने स्वीकार किया है।"

पठान, पटेल, गिरमिटिया हर वर्ग और हर उम्रके भारतीय उसे घेरे रहते, उसकी सलाह लेते और जैसा वह कहती वैसा करते।

दक्षिण अफ्रीकामें गोरे आमतौरसे रेलमें हिंदुस्तानियोंके साथ एक ही डब्बेमें नहीं बैठते। ट्रांसवालमें तो बैठनेको मना भी करते हैं। सत्याग्रहियोंका नियम तो तीसरे दरजेमें ही यात्रा करनेका था। यह होते हुए भी मिस श्लेजीन जान-बूझकर हिंदुस्तानियोंके ही डब्बेमें बैठती और रोकटोक करनेवाले गार्डोंके साथ लड़ भी पड़ती। मिस श्लेजीनको खुद भी गिरफ्तार होनेका हौसला था और मुझे डर था कि किसी दिन वह पकड़ न ली जाय; पर उसकी शक्ति, युद्धके विषयमें उसका पूरा ज्ञान और सत्याग्रहियोंके हृदयपर उसने जो साम्राज्य स्थापित कर लिया था, ट्रांसवाल सरकारको इन तीनों बातोंका पता होते हुए भी मिस श्लेजीनको गिरफ्तार न करनेकी अपनी नीति और अपनी भलमनसीका उसने त्याग नहीं किया।

मिस श्लेजीनने अपनी ६ पौंड मासिककी वृत्तिको बढ़ानेकी न कभी मांग की और न कभी चाही। उसकी कितनी ही जरूरतोंका जब मुझे पता लगा तब मैंने उसको १० पौंड देना शुरू किया। इसे भी उसने बड़ी हिचकिचाइटसे स्वीकार किया। इससे अधिक लेनेसे तो उसने साफ इन्कार कर दिया—"मेरी जरूरत इससे ज्यादा है ही नहीं। फिर भी मैं अधिक लूं तो जिस निष्ठासे आपके पास आई हूं वह झूठी ठहरेगी।" इस जवाबसे उसने मुझे चुप कर दिया। पाठक शायद यह जानना चाहते हों कि मिस श्लेजीनकी पढ़ाई क्या थी। केप यूनीवर्सिटीकी इंटरमीडियेट परीक्षा उसने पास की थी और शार्टहैंड इत्यादिमें अव्वल दरजेका प्रमाणपत्र प्राप्त किया था। लड़ाईके कामसे छुट्टी पानेके बाद वह उसी यूनीवर्सिटीकी ग्रेजुएट हुई और इस वक्त ट्रांसवालके किसी सरकारी बालिका विद्यालयमें प्रधानाध्यापिका है।

हर्बट किचन एक शुद्ध हृदयके और बिजलीका काम जाननेवाले अंग्रेज थे। बोअर-युद्धमें उन्होंने हमारे साथ काम किया था। थोड़े दिनोंतक वह 'इंडियन ओपीनियन' के संपादक भी रहे। उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन किया।

ऊपर जिन लोगोंके नाम गिनाये गये हैं वे तो ऐसे लोग हैं जिनसे मेरा निजी और निकटका संबंध रहा। उनकी गिनती ट्रांसवालके अग्रगी यूरोपियनोंमें नहीं की जा सकती। फिर भी कह सकता हूं कि उनसे हमें मदद भरपूर मिली। प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे मि० हास्किनका स्थान पहला है। वह दक्षिण अफ्रीकाके एसोसियेशन आव चेंबर्स आव कामर्सके भूतपूर्व अध्यक्ष और ट्रांसवालकी धारा सभाके सदस्य थे। उनका परिचय पहले करा चुका हूं। उनकी अध्यक्षतामें सत्याग्रह-संग्राममें सहायक गोरोंका स्थायी मंडल भी स्थापित किया गया था। इस मंडलने उससे जितनी हो सकी उतनी हमारी मदद की थी। लड़ाईका सच्चा रंग जमनेके बाद स्थानीय सरकारके साथ बातचीतका व्यवहार कैसे रह सकता? वह इसलिए नहीं कि हमने असहयोगका सिद्धान्त स्वीकार किया था, बल्कि सरकार ही अपने कानून तोड़नेवालोंके साथ बातचीतकी रस्म रखना पसंद नहीं करती थी। इसलिए इस वक्त गोरोंकी यह कमेटी सरकार और सत्याग्रहियोंको जोड़नेवाली कड़ी बन रही थी।

अलबर्ट कार्टराइटका परिचय भी पहले करा चुका हूं। एक और भले पादरी थे जिनका हमारे साथ डोंक जैसा ही संबंध रहा और जिन्होंने हमारी बहुत मदद की। उनका नाम है रेवरेंड चार्ल्स फिलिप। ये ट्रांसवालमें अरसेतक 'कांग्रिगेशनल मिनिस्टर' थे। उनकी भली पत्नी भी हमारी सहायता करतीं। एक तीसरे प्रसिद्ध पादरी थे रेवरेंड डयूडनी

ड्रयू, जिन्होंने पादरीका काम छोड़कर पत्रका संपादकत्व स्वीकार किया था। वह ब्लोम फोंटीनसे प्रकाशित होनेवाले 'फ्रेंड' नामक दैनिक पत्रके संपादक थे। उन्होंने गोरोंकी अवगणना और बिरोध मोल लेकर भी अपने पत्रमें हिंदुस्तानियोंकी हिमायत की थी। दक्षिण अफ्रीकाके प्रसिद्ध वक्ताओंमें उनकी गिनती होती थी।

'प्रिटोरिया न्यूज' के संपादक मि० वेर स्टेंट भी इसी तरह स्वतंत्रतापूर्वक सहायता करनेवालोंमें से थे। एक बार प्रिटोरियाके टाउनहालमें गोरोंने वहांके मेयरके सभापतित्वमें विराट सभाका आयोजन किया था। उसका उद्देश्य एशियावासियोंको कोसना और ख़ूनी कानूनको सराहना था। वेर स्टेंटने अकेले ही इस सभामें इसके विरोधमें आवाज उठाई। सभापतिने उन्हें बैठ जानेको कहा, पर उन्होंने ऐसा करनेसे साफ इन्कार कर दिया। गोरोंने उनके शरीरको हाथ लगानेकी भी धमकी दी, पर यह पुरुष सिंहके समान गर्जता हुआ उस सभामें अडिग रहा। अंतमें प्रस्ताव पास किये बिना ही सभा भंग कर देनी पड़ी!

मैं ऐसे दूसरे गोरोंके नाम भी गिना सकता हूं जो किसी भी संस्थामें सम्मिलित नहीं हुए, मगर हमारी मदद करनेका एक भी अवसर नहीं चूके। पर अधिक न लिखकर केवल तीन बहनोंका परिचय देकर ही इस प्रकरणको पूरा कर देना चाहता हूं। उनमेंसे एक हैं मिस हॉबहाउस। वह लार्ड हॉबहाउसकी बेटी थीं। यह बहन बोअर-युद्धमें लार्ड मिल्नरका विरोध करके भी दक्षिण अफ्रीका पहुंची थीं। जब लार्ड किचनरने दुनियाभरमें ख्यात या कहिए कि निंदित अपना 'कॉन्सेंट्रेशन कैम्प'* ट्रांसवाल और फ्री स्टेटमें कायम

*लड़नेवाले बोअरोंकी स्त्रियोंको इकट्ठा करके कैदमें रखनेकी छावनी।

किया उस वक्त यह वीर महिला बोअर स्त्रियोंमें अकेली फिरती और उन्हें दृढ़ रहनेको समझाती और बढ़ावा देती। वह मानती थी कि बोअर-युद्धके विषयमें अंग्रेजोंकी राजनीति सोलह आने अन्यायकी है। इसलिए स्व० स्टेडकी तरह वह उनकी हार मनाती और ईश्वरसे इसके लिए प्रार्थना करती। बोअरोंकी इतनी बड़ी सेवा करनेके बाद जब उसे मालूम हुआ कि जिस अन्यायके विरुद्ध बोअरोंने तलवार उठाई थी वही अन्याय वह अज्ञानवश भारतीयोंके साथ करनेको तैयार है तब उससे सहन न हो सका। बोअर जनता उसके प्रति बहुत सम्मान और प्रेम रखती थी। जनरल बोथाके साथ उसका अति निकटका संबंध था। उन्हींके यहां वह ठहरा करती थी। खूनी कानूनको रद करानेके लिए बोअर लोगोंसे कहनेमें उसने कुछ उठा नहीं रखा था।

दूसरी बहन थीं ऑलिव श्राइनर। इनके बारेमें मैं पांचवें प्रकरणमें लिख चुका हूं। ये दक्षिण अफ्रीकाके प्रख्यात श्राइनर परिवारमें जन्मी हुई विदुषी महिला थीं। श्राइनर नाम इतना प्रसिद्ध है कि जब उनका ब्याह हुआ तब उनके पतिको यही नाम ग्रहण करना पड़ा जिसमें श्राइनर-परिवारके साथ उनका संबंध दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंमें लुप्त न हो जाय। यह उनका कुछ मिथ्या स्वाभिमान न था। मैं मानता हूं कि उनके साथ मेरा अच्छा परिचय था। इस बहनकी सादगी और नम्रता भी वैसे ही उनका आभूषण थी जैसे उनकी विद्वत्ता। उनके हबशी नौकरों और खुद उनके बीच कोई अंतर है, यह उन्होंने कभी नहीं माना। अंग्रेजी भाषा जहां-जहां बोली जाती है वहां-वहां उनकी 'ड्रीम्स' नामक पुस्तक आदरके साथ पढ़ी जाती है। यह है तो गद्य, पर काव्यकी पंक्तिमें रखी जाती है। उन्होंने और भी बहुतसी चीजें लिखी हैं। लेखनीपर इतना अधिकार होते हुए भी वह अपने

हाथ खाना पकाते, घरकी सफाई करते, बरतन मांजते शर्माती नहीं थीं, न उससे परहेज करती थीं। वह मानती थीं कि यह उपयोगी शरीर-श्रम उनकी लेखन-शक्तिको मंद करनेके बदल उसे उत्तेजित करता है और भाषा तथा विचारोंको एक प्रकारका आभिजात्य और गाभीर्य प्रदान करता है। यह बहन भी दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंपर जो कुछ असर डाल सकती थीं उस सबका उपयोग भारतीय पक्षका समर्थन करनेमें किया था।

तीसरी बहन थीं मिस माल्टीनो । यह भी दक्षिण अफ्रीकाके पुराने घरानेकी वयोवृद्ध महिला थीं। इन्होंने भी भारतीयोंकी अपनी शक्तिभर सहायता की।

पाठक पूछ सकते हैं कि इन सारे यूरोपियनोंकी सहायताका फल क्या रहा? इसका जवाब मैं यह दूंगा कि फल बतानेके लिए यह प्रकरण नहीं लिखा गया है। उनमेंसे कुछका काम ही, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, उसके फलका साक्षी रूप है? पर इन हितेच्छु गोरोंकी सारी सहायता-सहानुभूतिका नतीजा क्या निकला, यह सवाल पैदा हो सकता है। यह लड़ाई ही ऐसी थी कि उसका फल उसमें ही समाया हुआ था। यह लड़ाई थी स्वावलंबन, आत्म-बलि और भगवानपर भरोसा रखनेकी।

गोरे सहायकोंके नाम गिना जानेका एक हेतु तो यह है कि दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमें उनसे मिली हुई सहायताका उल्लेख न हो तो वह इस इतिहासकी कमी मानी जायगी। मैंने सभी गोरे सहायकोंके नाम नहीं दिये हैं। पर जितने दिये हैं उतनेसे सहायक मात्रके प्रति हम अपनी कृतज्ञता इस प्रकरणमें प्रकट कर देते हैं। दूसरा कारण है इस सिद्धान्तमें सत्याग्रही रूपसे अपनी श्रद्धा प्रकट करना कि यद्यपि कर्मविशेषका परिणाम हम स्पष्ट रीतिसे नहीं देख सकते हों, फिर भी शुद्ध चित्तसे किये हुए कर्मका फल शुभ ही होता

है, फिर वह दृश्य हो या अदृश्य। इसका तीसरा सबल कारण है यह दिखाना कि सदुद्योग ऐसी अनेक प्रकारकी शुद्ध और निस्स्वार्थ सहायताएं अपनी ओर अनायास खींच लेते हैं। इस प्रकरणमें यह बात अबतक समझा नहीं दी गई हो तो मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि सत्याग्रहकी लड़ाईमें सत्यके पालनको ही अगर हम प्रयास मानें तो इसे छोड़कर और कोई भी प्रयास इन यूरोपीय सज्जनोंकी सहायता पानेके लिए नहीं किया गया। युद्धके अंतर्निहित बलसे ही वे आकृष्ट हुए थे।

: २४ :

और भीतरी कठिनाइयां

२१ वें प्रकरणमें हमें कुछ भीतरी कठिनाइयोंका अंदाजा हो गया है। मुझपर हमला होनेके समय मेरे बाल-बच्चे फिनिक्समें रहते थे। हमलेकी खबरसे उनका उद्विग्न होना स्वाभाविक था; पर मुझे देखनेके लिए पैसा खर्च करके फिनिक्ससे जोहान्सबर्ग दौड़े आएं, यह तो मुमकिन नहीं था। इसलिए अच्छा हो जानेपर मुझीको जाना था। नेटाल और ट्रांसवालके बीच मेरा आना-जाना, कामके सिलसिलेमें, हुआ ही करता था। समझौतेके बारेमें नेटालमें भी खूब भ्रम फैल रहा था, इससे मैं अनजान नहीं था। मेरे और दूसरोंके पास जो चिट्ठियां आती थीं उनसे मुझे इसका पता था और 'इंडियन ओपीनियन'को जो गहरे कटाक्ष करनेवाले पत्र मिले थे उनका बंडल तो मेरे ही पास था। यद्यपि सत्याग्रह अबतक ट्रांसवालके भारतीयोंको ही करना था तो भी नेटालके भारतीयोंकी सम्मति और सहानुभूति तो प्राप्त करनी

ही थी। ट्रांसवालके भारतीय ट्रांसवालके निमित्तसे सारे दक्षिण अफ्रीकाकी लड़ाई लड़ रहे थे। इससे नेटालमें पैदा हुई गलतफहमी दूर करनेके लिए भी मेरा डर्बन जाना जरूरी था। अतः मौका मिलते ही मैं वहां गया।

डर्बनके हिंदुस्तानियोंकी आम सभा की गई। कुछ मित्रोंने मुझे चेता दिया था कि इस सभामें तुमपर हमला होनेवाला है। इसलिए या तो तुम सभामें जाओ ही नहीं या अपने बचावका कुछ उपाय कर लो। दो में से एक भी बात मुझसे हो सकनेवाली नहीं थी। नौकरको मालिक बुलाये और वह डरसे न जाये तो उसका सेवक धर्म गया और मालिककी सजासे डरे तो वह सेवा कैसी? जनताकी सेवा सेवाकी खातिर करना खांडेकी धारपर चलना है। लोकसेवक स्तुति लेनेको तैयार हो जाता है तो निंदासे कैसे भाग सकता है? अतः मैं तो नियत समयपर सभामें पहुंच ही गया। समझौता कैसे हुआ, यह समझाया। जो सवाल किये गये उनके जवाब भी दिये।

यह सभा रातके कोई आठ बजे हुई थी। काम लगभग पूरा हो चला था कि इतनेमें एक पठान अपनी लाठी लेकर मंचपर चढ़ आया। इसी वक्त बत्तियां भी बुझ गईं। मैं स्थिति समझ गया। सभापति सेठ दाऊद मुहम्मद अपनी मेजपर चढ़ गये और लोगोंको समझाने लगे। मेरा बचाव करनेवालोंने मुझे घेर लिया। मैंने अपने बचावका कोई उपाय नहीं किया था। पर मैंने पीछे देखा कि जिन्हें हमलेका डर था वे तो सब तरहसे तैयार होकर आये थे। उनमेंसे एक तो अपनी जेबमें तमंचा रखकर आये थे और उसका खाली फैर भी किया। इस बीच पारसी रुस्तमजी, जिन्होंने हमलेकी तैयारी देख ली थी, विद्युत वेगसे दौड़कर थानेपर पहुंचे और पुलिस सुपरिंटेंडेंट अलेक्जेंडरको खबर दी। उन्होंने पुलिसका

एक दस्ता भेज दिया और पुलिस गड़बड़में रास्ता करके मुझे अपने बीचमें कर पारसी रुस्तमजीके यहां ले गई।

दूसरे दिन सवेरे पारसी रुस्तमजीने डर्बनके पठानोंको इकट्ठा करके कहा कि आप लोगोंको गांधीजीसे जो कुछ शिकायतें हों उन्हें उनके सामने रखें। मैं उनसे मिला। उन्हें शांत करनेकी कोशिश की, पर मैं नहीं समझता कि मैं उन्हें शान्त कर सका। वहमकी दवा दलील देने या समझाने-से नहीं हो सकती। उनके मनमें यह बात जम गई थी कि मैंने कौमको धोखा दिया है और जबतक यह मैल उनके दिमागसे न निकल जाय, मेरा समझाना बेकार था।

मैं उसी दिन फिनिक्स पहुंचा। जिन मित्रोंने पिछली रात मेरी रक्षा की थी उन्होंने मुझे अकेले भेजनेसे साफ इन्कार कर दिया और मुझे सुना दिया कि हम भी चलकर फिनिक्समें डेरा डालेंगे। मैंने कहा--"आप लोग मेरी 'ना' को अन-सुनी करके आना चाहेंगे तो मैं आपको रोक नहीं सकता; पर वहां तो जंगल है और वहां बसनेवाले हम लोग आपको भोजन भी न दें तो आप क्या करेंगे?" उनमेंसे एकने जवाब दिया--"हमें यह डर दिखानेकी जरूरत नहीं। अपना प्रबंध हम खुद कर लेंगे। पर जबतक हम सिपाहीगिरी करते होंगे तबतक आपका भंडार लूटनेसे हमें कौन रोकने वाला है?"

इस प्रकारका विनोद करते हुए हम फिनिक्स पहुंचे। इस रक्षकदलका नेता जैक मुडली नामका व्यक्ति था, जो हिंदुस्तानियोंमें काफी मशहूर था। उसका जन्म नेटालमें तामिल मां-बापके घर हुआ था। उसने घूंसेबाजी (बाक्सिंग) की खास तौरसे तालीम हासिल की थी और वह और उसके साथी भी मानते थे कि घूंसेबाजीमें दक्षिण अफ्रीकामें गोरा या काला कोई भी जैक मुडलीका मुकाबला नहीं कर सकता।

दक्षिण अफ्रीकामें जब बारिश न हो रही हो तब मैं बिलकुल

बाहर खुलेमें सोता। अनेक वर्षोंसे मेरी यह आदत थी। इसमें कोई फेरफार करनेको मैं इस वक्त तैयार नहीं था। इससे स्वनिर्मित रक्षकदलने रातमें मेरी खाटके पास पहरा देनेका निश्चय किया। गोकि फिनिक्समें मैंने इस दलसे मजाक किया था और उसे आनेसे रोकनेकी भी कोशिश की थी, फिर भी मुझे अपनी इतनी कमजोरी कबूल करनी होगी कि जब उन लोगोंने पहरा देना शुरू किया तो मैंने कुछ अधिक निर्भयता अनुभव की और मनमें यह भी सोचा कि अगर ये लोग न आये होते तो क्या मैं इतना ही निर्भय होकर सो सकता? मुझे यह भी जान पड़ता है कि किसी आवाजसे मैं अवश्य चौंक उठता था।

मैं मानता हूं कि ईश्वरपर मेरी अविचल श्रद्धा है। मेरी बुद्धि बरसोंसे इस बातको भी स्वीकार करती आ रही है कि मृत्यु जीवनमें एक बड़ा परिवर्तन मात्र है और चाहे जब आये, सदा स्वागत करने योग्य है। दिलमेंसे मौतके और दूसरे डरोंको निकाल देनेका मैंने ज्ञानपूर्वक महाप्रयत्न किया है। फिर भी अपने जीवनमें ऐसे अवसर याद कर सकता हूं जब मृत्युसे मिलनेका विचार करते हुए मैं वैसा उल्लसित नहीं हो सका जैसा अरसेसे बिछुड़े हुए मित्रसे मिलनेकी बात सोचनेपर हम हो जाया करते हैं। इस प्रकार सबल होनेका महाप्रयत्न करते हुए भी मनुष्य अक्सर निर्बल बना रहता है और बुद्धिसे गृहीत ज्ञान अनुभवका अवसर आनेपर बहुत काम नहीं आता। फिर जब उसको बाहरका सहारा मिलता है और वह उसको स्वीकार कर लेता है तब तो वह अपना अन्तर्बल अधिकांशमें खो देता है। सत्याग्रहीको इस प्रकारके भयोंसे सदा बचते रहना चाहिए।

फिनिक्समें मैंने एक ही काम किया। गलतफहमी दूर करनेके लिए मैंने खूब लिखना शुरू किया। संपादक

और शंकाशील वाचक वर्गके बीच एक कल्पित संवाद लिख डाला। जो-जो शंकाएं और आक्षेप मैंने सुन रखे थे उन सबपर जितनी तफसीलके साथ मुझसे हो सका विचार किया। मैं मानता हूं कि इसका फल अच्छा ही हुआ। यह तो प्रकट हो गया कि उन लोगोंके दिलमें गलतफहमी जड़ न जमा सकी, जिनको अगर वह सचमुच हुई होती या बनी रहती तो दुःखद परिणाम होता। समझौतेको मानना न मानना केवल ट्रांसवालके हिंदुस्तानियोंका काम था। अतः उनके कामोंसे उनकी और नेता तथा सेवकके रूपमें मेरी भी परीक्षा होनेवाली थी। बहुत ही थोड़े हिंदुस्तानी रहे होंगे जिन्होंने अपनी इच्छासे परवाना नहीं ले लिया हो। इतने अधिक लोग परवाना लेने जाते थे कि परवाना देनेवाले अहलकारोंको दम मारनेकी फुरसत भी नहीं मिलती थी। भारतीय जनताको समझौतेकी शर्तोंमेंसे जिनका पालन करना था उनका पालन उसने बड़ी शीघ्रतासे कर दिया। सरकारको भी यह बात कबूल करनी पड़ी। मैंने यह भी देखा कि गलतफहमियोंने यद्यपि उग्र रूप ग्रहण कर लिया था, फिर भी उनका क्षेत्र बहुत ही संकुचित था। कुछ पठानोंने जब कानून अपने हाथमें ले लिया और बल-प्रयोगका रास्ता पकड़ा तब भारी खलबली मच गई, पर इस खलबलीका विश्लेषण करने बैठिये तो मालूम हो जायगा कि उसकी कोई बुनियाद नहीं होती और अकसर तो वह केवल क्षणिक होती है। पर यह होते हुए भी उसका जोर आज भी दुनियामें कायम है, क्योंकि खून-खराबीसे हम कांप उठते हैं। पर हम धीरजके साथ विचार करने बैठें तो तुरंत मालूम हो जाय कि कांपनेका कुछ भी कारण नहीं। मान लीजिये कि मीर आलम और उसके साथियोंके प्रहारसे मेरा शरीर जखमी होनेके बदले नष्ट हो गया होता और साथ ही यह भी मान लीजिये कि कौम

बुद्धिपूर्वक अनुद्विग्न और शांत रही होती, मीर आलम अपनी बुद्धि-का अनुसरण करते हुए दूसरा कुछ कर ही नहीं सकता था, यह समझ-कर उसने उसके प्रति मित्रभाव और क्षमाभाव रखा होता तो इससे कौमकी कोई हानि नहीं हुई होती, बल्कि अतिशय लाभ ही हुआ होता। कारण यह है कि कौममें तो उस दशामें गलतफहमी-का अभाव होता और वह दूने जोशसे अपनी प्रतिज्ञापर अटल रहती और अपने कर्तव्यका पालन करती। मुझे तो विशुद्ध लाभ होता, क्योंकि सत्याग्रही इससे अधिक मंगल-परिणामकी तो कल्पना ही नहीं कर सकता कि अपने सत्यका आग्रह रखते हुए, सत्याग्रहके प्रसंगमें ही, वह अनायास मृत्यु प्राप्त करे।

ऊपर दी हुई दलीलें सत्याग्रहकी जैसी लड़ाईपर ही लागू हो सकती हैं, क्योंकि उसमें वैर-भावके लिए स्थान ही नहीं। आत्मशक्ति या स्वावलंबन ही एकमात्र साधन होता है। उसमें एकको दूसरेका मुंह ताकते बैठे रहना नहीं होता। उसमें कोई नेता नहीं होता, इसलिए कोई सेवक भी नहीं, अथवा सभी नेता और सभी सेवक होते हैं। इसलिए प्रौढ़-से-प्रौढ़ पुरुषकी मृत्यु भी युद्धको शिथिल नहीं करती, बल्कि उसका वेग और बढ़ा देती है।

यह सत्याग्रहका शुद्ध और मूल स्वरूप है। अनुभवमें हमें इसके दर्शन नहीं होते, क्योंकि सभी वैर त्याग दें यह नहीं होता। सब सत्याग्रहका रहस्य समझते हों यह भी अनुभवमें देखनेमें नहीं आता। थोड़ोंको देखकर बहुसंख्यक उनका मूढ़ अनुकरण करते हैं। फिर सामुदायिक और सामाजिक सत्याग्रहीका ट्रांसवालका प्रयोग तो टाल्स्टायके कथनानुसार पहला ही माना जायगा। मैं खुद शुद्ध सत्याग्रहका ऐति-हासिक उदाहरण नहीं जानता था। मेरा इतिहास-ज्ञान नगण्य है। इसलिए इस विषयमें मैं कोई पक्की राय कायम नहीं कर सकता। पर सच पूछिये तो ऐसे ऐतिहासिक उदाहरणोंसे

हमारा कोई संबंध नहीं। सत्याग्रहके मूलतत्त्वको आप स्वीकार कर लें तो आप देखेंगे कि जो फल मैंने बताये हैं वे उसमें पहले हीसे मौजूद हैं। यह दलील देकर हम इस अमूल्य वस्तुको त्याग नहीं सकते कि इसका आचरण करना कठिन या अशक्य है। शस्त्रबलके दूसरे प्रयत्न तो हजारों बरससे होते ही आ रहे हैं। उसके कड़वे फल तो हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। भविष्यमें उससे मीठे फल उपजनेकी आशा थोड़ी ही रखी जा सकती है। अंधकारमेंसे अगर उजाला उत्पन्न किया जा सकता हो तो वैर-भावसे प्रेम-भाव भी प्रकट किया जा सकता है।

दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह

द्वितीय खण्ड

प्रस्तावना

पाठक जानते हैं कि दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास उपवासादि कारणोंसे मैं जारी न रख सका था। उसे अब इस अंक[1]से फिर शुरू करता हूं। मुझे उम्मीद है कि अब मैं उसे निर्विघ्न पूरा कर सकूंगा।

इस इतिहासकी स्मृतियोंपरसे मैं देखता हूं कि हमारी आजकी स्थितिमें एक भी चीज ऐसी नहीं है जिसका अनुभव, छोटे पैमानेपर, दक्षिण अफ्रीकामें मुझे न हुआ हो। आरंभमें यही उत्साह, यही एका, यही आग्रह; मध्यमें यही नैराश्य, यही अरुचि, आपसमें झगड़ा और द्वेषादि; ऐसा होते हुए भी मुट्ठीभर लोगोंमें अविचल श्रद्धा, दृढ़ता, त्याग, सहिष्णुता, वैसे ही अनेक प्रकारकी सोची-अनसोची कठिनाइयां। हिंदुस्तानकी लड़ाईका अंतिम काल अभी बाकी है। इस आखिरी मंजिलकी मैं तो जो स्थिति दक्षिण अफ्रीकामें अनुभव कर चुका हूं उसकी ही आशा यहां भी रखता हूं। दक्षिण अफ्रीकाकी लड़ाईका अंतिम काल पाठक अभी आगे देखेंगे। उसमें कैसे बिना मांगी मदद हमारे पास चली आई, लोगोंमें कैसे अनायास उत्साह उपजा और अंतमें हिंदुस्तानी कौमकी संपूर्ण विजय किस प्रकार हुई, यह सब पाठक देखेंगे।

---

[1]यह इतिहास 'नवजीवन' में धारावाहिक रूपसे प्रकाशित हुआ था।——अनु०

इस प्रकार मेरा दृढ़ विश्वास है कि जैसा दक्षिण अफ्रीकामें हुआ वैसा ही यहां भी होगा। कारण यह कि तपश्चर्यापर, सत्यपर, अहिंसापर मेरी अविचल श्रद्धा है। मैं इस बातको अक्षरशः सत्य मानता हूं कि सत्यका पालन करनेवालेके सामने संपूर्ण जगत्‌की समृद्धि रहती है और वह ईश्वरका साक्षात्कार करता है। अहिंसाके सान्निध्यमें वैरभाव टिक नहीं सकता, इस वचनको भी मैं अक्षरशः सत्य मानता हूं। कष्ट सहन करनेवालोंके लिए कुछ भी अशक्य नहीं होता, इस सूत्रका मैं उपासक हूं। इन तीनों वस्तुओंका मेल मैं कितने ही सेवकोंमें पाता हूं। उनकी साधना कभी निष्फल नहीं होती, मेरा यह निरपवाद अनुभव है।

पर कोई कह सकता है कि दक्षिण अफ्रीकामें पूरी जीत होनेका अर्थ तो इतना ही है कि हिंदुस्तानी जैसे थे वैसे ही बने रहे। ऐसा कहनेवाला अज्ञानी कहलायेगा। दक्षिण अफ्रीकामें लड़ाई न लड़ी गई होती तो आज दक्षिण अफ्रीकासे ही नहीं; बल्कि सारे अंग्रेजी उपनिवेशोंसे हिंदुस्तानियोंके कदम उठ गये होते और किसीने उनकी खोज-खबर भी न ली होती। पर यह उत्तर यथेष्ट या संतोषजनक नहीं माना जायगा। यह दलील भी दी जा सकती है कि सत्याग्रह न किया गया होता और समझाने-बुझानेसे जितना काम हो सकता था उतना काम लेकर हम बैठ गये होते तो आज जो स्थिति है वह नहीं होती। यह दलील यद्यपि सचाईसे खाली है, फिर भी जहां केवल दलीलों और अटकलोंसे ही काम लिया जाता हो वहां किसकी दलीलें और किसके अनुमान अच्छे हैं, यह कौन कह सकता है? अटकलें लगानेका हक सभीको है। जिसका जवाब नहीं दिया जा सकता, जिसका खंडन नहीं किया जा सकता, वैसी बात तो यह है कि जो वस्तु जिस शस्त्रके द्वारा प्राप्त की जाती है, उसकी रक्षा उसी हथियारसे हो सकती है।

'काबे अर्जुन लुंटियो वही धनुष वही वाग'[१]

जिस अर्जुनने शिवजीको हराया, कौरवोंका मद उतारा, वही अर्जुन जब कृष्णरूपी सारथिसे रहित हुए तब एक दस्यु दलको अपने गांडीव धनुषसे न हरा सके ! यही स्थिति दक्षिण अफ्रीकाके हिंदुस्तानियोंकी है। अभी तो वे लड़ ही रहे हैं। पर जिस सत्याग्रहके द्वारा उन्होंने लड़ाई जीती थी उस हथियारको वे खो बैठे हों तो अंतमें वे जीती हुई बाजी हार जायंगे। सत्याग्रह उनका सारथि था और वही सारथि उनकी सहायता करनेमें समर्थ है।

नवजीवन
५ जुलाई १९२५ } —मोहनदास करमचंद गांधी

---

[१] अनर्जुके हाथोंमें वहीं धनुष और वही वाण था; पर डाकुओंने उन्हें लूट लिया।

दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह

द्वितीय खण्ड

: १ :

जनरल स्मट्सका विश्वासघात (?)

पाठकोंने भीतरी कठिनाइयां तो कुछ-कुछ देख लीं। उनके वर्णनमें अधिकांशतः मुझे आत्मकथा ही देनी पड़ी। यह अनिवार्य था, क्योंकि सत्याग्रहसे संबंध रखनेवाली मेरी कठिनाइयां सत्याग्रहियोंकी भी कठिनाइयां हो गईं। अब हम बाहरी कठिनाइयोंकी कथा फिरसे उठाते हैं।

इस प्रकरणका शीर्षक लिखते हुए मुझे शर्म आती है और यह प्रकरण लिखते हुए भी। इसलिए कि इसमें मनुष्य-स्वभावकी वक्रताका वर्णन किया गया है। जनरल स्मट्स १९०८ में भी दक्षिण अफ्रीकामें तो योग्यतम नेता माने जाते थे, आज दुनियामें नहीं तो ब्रिटिश साम्राज्यमें तो वह ऊंचे दरजेके कार्यकुशल पुरुष गिने जाते हैं। उनकी शक्ति बहुत बड़ी है, इस विषयमें मेरे मनमें तनिक भी शंका नहीं। वह जैसे कुशल वकील हैं वैसे ही कुशल सेनापति हैं और राज-काज चलानेमें भी वैसे ही कुशल हैं। दक्षिण अफ्रीकामें दूसरे कितने ही राजनीतिज्ञ आये और गये, पर १९०७से आजतक वहाँके राजकाजकी बागडोर यह पुरुष अपने हाथमें रखे हुए है और आज भी दक्षिण अफ्रीकामें एक भी आदमी ऐसा नहीं है जो उनके मुकाबलेमें खड़ा रह सके। ये पंक्तियां

लिखते समय मुझे दक्षिण अफ्रीका छोड़े ९ बरस हो चुके हैं। मैं नहीं जानता कि आज दक्षिण अफ्रीका उन्हें किस विशेषणसे याद करता है! जनरल स्मट्सका घरका (क्रिश्चियन) नाम जॉन है और दक्षिण अफ्रीकाके लोग उन्हें 'स्लिम जेनी' कहकर पुकारते हैं। 'स्लिम'का अर्थ यहां है 'जो सरक जाय' 'जो पकड़में न आये।' हिंदीमें उससे मिलते-जुलते अर्थका धूर्त या मीठा विशेषण व्यवहार करें तो विपरीत अर्थमें चालाक शब्द काममें ला सकते हैं। अनेक अंग्रेज मित्रोंने मुझसे कहा था—जनरल स्मट्ससे होशियार रहना। यह बड़ा काइयां है। बात कहकर पलटते उसे तनिक भी देर नहीं लगती। अपने शब्दोंका अर्थ वही जान सकता है। अकसर वह इस तरह बोलता है कि दोनों पक्ष उसके शब्दोंका वही अर्थ कर सकते हैं जो उन्हें प्रिय होता है। फिर जब मौका आता है तब वह दोनों पक्षके अर्थको किनारे रखकर अपना तीसरा ही अर्थ दिखाता है, उसको अमलमें लाता है और उसके समर्थनमें ऐसी चतुराईभरी दलीलें देता है कि दोनों पक्ष क्षणभर तो यह मानने लगते हैं कि भूल हम हीसे हुई होनी चाहिए। जनरल स्मट्स जो अर्थ कर रहे हैं वही सही अर्थ है। ऐसे ही एक विषयका वर्णन मुझे इस प्रकरणमें करना है। वह घटना जिस समय घटित हुई उसी वक्त वह विश्वासघात मानी और कही गई। आज भी भारतीय समाजकी दृष्टिसे उसको मैं विश्वासघात मानता हूं। फिर भी इस शब्दके सामने मैंने जो प्रश्नचिह्न रखा है उसका कारण यह है कि उनका काम वास्तवमें शायद इरादेके साथ किया हुआ विश्वासघात न हो। जहां घातका इरादा न हो वहां विश्वासका भंग कैसे माना जा सकता है? १९१३-१४ में मुझे जनरल स्मट्स-का जो अनुभव हुआ, उसे मैंने उस वक्त कड़वा नहीं माना था और आज जब उसपर कुछ अधिक तटस्थ दृष्टिसे

विचार करता हूं तब भी उसे कड़वा नहीं मान सकता। इसलिए यह सर्वथा संभव है कि १९०८ में भारतीयोंके साथ उन्होंने जो व्यवहार किया वह ज्ञानपूर्वक किया हुआ विश्वास-भंग न हो।

इतनी प्रस्तावना मैंने इसलिए दी है कि जनरल स्मट्सके साथ न्याय कर सकूं और उनके नामके साथ विश्वासघात शब्दका जो मैंने व्यवहार किया है उसका, और जो कुछ इस प्रकरणमें मुझे कहना है उसका भी बचाव हो सके। पिछले प्रकरणमें हम देख चुके कि भारतीयोंने ऐच्छिक परवाने इस रीतिसे निकलवा लिये जिससे ट्रांसवालकी सरकारको संतोष हो जाय। अब खूनी कानूनको रद करना उक्त सरकारका फर्ज था। वह यह कर देती तो सत्याग्रहकी लड़ाई बंद हो जाती। इसका अर्थ यह नहीं है कि ट्रांसवालमें हिंदुस्तानियोंके खिलाफ जितने कानून बने थे वे सभी रद हो जायं या हिंदुस्तानियोंके सारे दुःख दूर हो जायं। उन्हें दूर करनेके लिए तो जैसे पहले वैध आंदोलन किया जाता था वैसे करना ही था। सत्याग्रह तो खूनी कानूनरूपी नये डरावने बादलको हटाने भरके लिए था। उस कानूनको स्वीकार करनेमें कौमकी जिल्लत होती थी और पहले ट्रांसवाल और अंतमें सारे दक्षिण अफ्रीकामें उसकी हस्ती ही मिट जाती थी। पर खूनी कानून रद करनेके बजाय जनरल स्मट्सने नया ही कदम उठाया। उन्होंने जो बिल प्रकाशित किया उसके जरिये खूनी कानूनको बहाल रखा और अपनी मर्जीसे लिए हुए परवानेको कानूनके अनुकूल माना। पर बिलके अंदर एक दफा ऐसी रख दी जिससे जिसने परवाना ले लिया हो उसपर खूनी कानून लागू न हो। इसके मानी यह होते थे कि एक ही उद्देश्यवाले दो कानून साथ-साथ चलते रहें और नये आनेवाले या बादमें परवाना लेने-वाले हिंदुस्तानी भी खूनी कानून द्वारा शासित हों।

यह बिल पढ़कर मैं तो दिग्मूढ़ हो गया। कौमको मैं क्या जवाब दूंगा ? जिन पठान भाइयोंने पिछली मध्यरात्रिकी सभामें मुझपर कठोर आक्षेप किये थे उनको कैसी बढ़िया खूराक मिली ? पर मुझे यह बता देना चाहिए कि सत्याग्रहपर मेरा विश्वास इस धक्केसे ढीला न होकर और दृढ़ हो गया। अपनी कमेटीकी बैठक बुलाई और उसे स्थिति समझाई। कुछने मुझे ताना भी मारा——"हम तो आपसे कहते आ रहे हैं कि आप बहुत भोले हैं। जो कुछ भी कोई कह दे उसे सच मान लेते हैं। आप अपने निजी कामोंमें ही भोलापन बरतते तब तो अधिक हानि न थी; पर कौमी कामोंमें जो आप यह सरलताका व्यवहार करते हैं उससे कौमको नुकसान उठाना पड़ता है। अब पहलेका-सा जोश फिर जगना हमें तो बहुत कठिन दिखाई देता है। अपनी कौमको क्या आप नहीं जानते ? वह तो सोडावाटरकी बोतल है। क्षणभरके लिए उफान आता है, उसका उपयोग कर लेना होता है। यह उफान ठंडा हुआ और सब गया।" इस शब्द-बाणमें विष न था। ऐसी बातें मैं दूसरे मौकोंपर भी सुन चुका था। मैंने हँसकर जवाब दिया——"जिसे आप मेरा भोलापन कहते हैं वह तो ऐसी चीज है जो मेरे स्वभावका एक अंग हो गया है। यह भोलापन नहीं, विश्वास है और विश्वास रखना तो मेरा और आपका सबका धर्म है। फिर भी यदि आप इसे दोष मानते हों, पर अगर मेरी सेवासे कुछ लाभ होता हो तो मेरी खोट-खामीसे होनेवाली हानि भी आपको सह्य होनी चाहिए। आपकी तरह मैं यह भी नहीं मानता कि कौमका जोश सोडा-वाटरके उफान-जैसा है। कौममें मैं और आप भी हैं। मेरे जोशको अगर आप यह विशेषण दें तो मैं इसको अवश्य अपना अपमान मानूंगा। और मुझे विश्वास है कि आप अपनेको तो अपवादरूप ही मानते होंगे और वैसा न मानते हों

और अपने पैमानेसे कौमको नापते हों तो आप कौमका अपमान करते हैं। ऐसे महान् संग्रामोंमें ज्वार-भाटा तो आया ही करता है। आपने कितनी ही सफाई कर ली हो, पर विपक्षी विश्वासघात करना ही चाहे तो उसे कौन रोक सकता है ? इस मंडलमें ऐसे कितने ही लोग हैं जो मेरे पास प्रामिसरी नोट नालिश करनेके लिए लाते हैं। दस्तखत करके अपना हाथ कटा देनेसे अधिक सावधानी और क्या हो सकती है ? फिर भी ऐसे लोगोंपर भी अदालतमें नालिश दायर करनी पड़ती है। वे अनेक प्रकारके बचाव पेश करते हैं, डिगरियां होती हैं। कुर्कियां निकलती हैं। ऐसी अयोग्य घटनाओंके लिए कौन-सी सावधानी रखी जा सकती है, जिससे उनकी आवृत्ति न हो ? अतः मेरी सलाह तो यही है कि जो उलझन हमारे सामने आ गई है उसे धीरजके साथ सुलझाएं। हमें फिर लड़ना ही पड़े तो हम क्या कर सकते हैं, यानी दूसरे क्या करेंगे, इसको सोचे बिना हरएक सत्याग्रही खुद क्या करेगा या कर सकता है—इसीका विचार करना है। मुझे तो ऐसा लगता है कि हम इतने लोग सच्चे रहें तो दूसरे भी वैसे ही रहेंगे, या उनमें कोई कमजोरी आ गई हो तो हमारी मिसाल लेकर वे उसको दूर कर सकेंगे।"

मेरा खयाल है कि जिन लोगोंने फिर लड़ाई चल सकनेके बारेमें नेक इरादेसे तानेके रूपमें शंका प्रकट की थी वे समझ गये। इस अवसरपर सेठ काछलिया दिन-दिन अपना जौहर दिखा रहे थे। सभी विषयोंमें कम-से-कम बोलकर अपना निश्चय बता देते और फिर उसपर अटल रहते। मुझे एक भी ऐसा अवसर याद नहीं आता जब उन्होंने कमजोरी दिखाई हो या अंतिम परिणामके विषयमें शंका ही प्रकट की हो। ऐसा मौका भी आया जब ईसप मियां तूफानी समुद्रमें कौमकी नैयाकी पतवार पकड़े रहनेको तैयार न थे।

उस वक्त सबने एकमतसे कर्णधारके रूपमें काछलियाका स्वागत किया और तबसे अंतिम घड़ीतक उन्होंने पतवार हाथसे न छोड़ी। जो कष्ट-कठिनाइयां बिरले ही सहन कर सकते हैं उन्हें उन्होंने निश्चित और निर्भय होकर सहन किया। लड़ाई आगे बढ़ी तो एक ऐसा अवसर आया जब कितनोंके लिए जेलमें जाकर बैठ जाना आसान काम था, आराम था, पर बाहर रहकर सब बातोंको बारीकीसे देखना, उनका प्रबंध करना, बहुतोंको समझाना, यह सब कहीं अधिक कठिन था।

ऐसा अवसर भी आया कि सेठ काछलियाके पावनेदारोंने उन्हें अपने शिकंजेमें कस लिया।

बहुतसे भारतीय व्यापारियोंका रोजगार गोरे व्यापारियोंकी कोठियोंपर अवलंबित था। वे लाखों रुपयेका माल बिना किसी जमानतके हिंदुस्तानी व्यापारियोंके हाथ उधार बेच देते थे। भारतीय व्यापारियोंका इतना विश्वास संपादन कर लेना भारतीय व्यापारकी सामान्य प्रामाणिकताका एक सुंदर प्रमाण है। सेठ काछलियापर भी बहुत-सी गोरी कोठियोंका पावना था। सरकारकी ओरसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीतिसे उकसाये जाकर इन व्यापारियोंने काछलियाको लिखा कि हमारा पावना तुरंत चुका दो। उन्होंने काछलियाको बुलाकर भी यह कहा कि आप इस लड़ाईसे अलग हो जायं तो हमें अपने पैसेकी कोई जल्दी नहीं; पर आप उससे अलग न होंगे तो हमें डर है कि सरकार आपको किसी भी क्षण गिरफ्तार करा सकती है। उस दशामें हमारे पैसेका क्या होगा? इसलिए आप इस लड़ाईसे अलग हो ही न सकते हों तो हमारा पावना आपको तुरंत चुका देना चाहिए।" इस वीर पुरुषने इसका यह जवाब दिया—"लड़ाईमें शामिल होना मेरी अपनी बात है, मेरे व्यापारके साथ उसका कोई लगाव नहीं। इस लड़ाईमें मेरा धर्म,

कौमका मान और मेरा अपना आत्मसम्मान भी समाया हुआ है। आपने मुझे उधार माल दिया, इसके लिए आपका अहसान मानता हूं, पर इसको या अपने व्यापारको मैं सर्वोपरि नहीं मान सकता। आपके पैसे मेरे लिए सोनेकी मुहरें हैं। जबतक मैं जीवित हूं तबतक अपने आपको बेचकर भी आपका पैसा भर सकता हूं। पर मान लीजिए कि मेरा कुछ हो गया तो भी मेरी उगाही और मेरे मालको अपने हाथमें ही समझिए। आजतक आपने मेरा विश्वास किया है और मैं चाहता हूं कि अब भी आप विश्वास करें।" यद्यपि यह दलील सोलहो आने सही थी और काछलियाकी दृढ़ता गोरे व्यापारियोंके लिए विश्वासका एक अतिरिक्त कारण थी, फिर भी इस वक्त उनपर उसका असर नहीं हो सकता था। हम सोते हुएको जगा सकते हैं; पर जो जागते हुए सोनेका ढोंग करता हो उसको नहीं जगा सकते। गोरे व्यापारियोंके विषयमें भी यही हुआ। उन्हें तो सेठ काछलियाको दबाना था। उनके पैसेको कोई खतरा न था।

मेरे दफ्तरमें लेनदारोंकी बैठक हुई। उनको मैंने स्पष्ट शब्दोंमें बता दिया कि काछलियापर जो दबाव आप लोग डाल रहे हैं उसमें व्यापार-नीति नहीं, राजनैतिक चाल है, व्यापारियोंको वैसा करना शोभा नहीं देता। इससे वे उलटे और चिढ़ गये। सेठ काछलियाके माल और उनकी उगाहीका जो लेखा मेरे पास था वह मैंने उन्हें दिखाया और इससे यह सिद्ध किया कि उनका पावना पाई-पाई वसूल हो सकता है। इसके सिवा वे यह व्यापार दूसरेके हाथ बेच देना पसंद करें तो काछलिया यह सारा माल और पावना खरीदारके हवाले कर देनेको तैयार हैं। यह न करें तो जो माल दुकानमें मौजूद है उसको असल दामपर ले लें और इसमें उन्हें कुछ घाटा लगे तो उसके एवजमें जो

पावना वे पसंद करें वह ले लें। पाठक समझ सकते हैं कि यह प्रस्ताव स्वीकार करनेमें गोरे व्यापारियोंको कुछ खोना न पड़ता और मैं अपने अनेक मवक्किलोंके लिए संकटकालमें पावनेदारोंके साथ ऐसा बंदोबस्त कर सका था, पर व्यापारी इस मौकेपर न्याय करना नहीं चाहते थे। वे तो काछलिया-को झुकाना चाहते थे। काछलिया नहीं झुके और दिवालिया कर्जदार करार दे दिये गये, गो कि उनका पावना देनेसे बहुत ज्यादा निकला।

यह दिवालियापन उनके लिए कलंकरूप नहीं, बल्कि उनका भूषण था। कौममें उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी और उनकी दृढ़ता और बहादुरीके लिए सबने उनको मुबारकबादी दी। पर इस प्रकारकी वीरता अलौकिक है। सामान्य मनुष्य इसको समझ ही नहीं सकता। दिवाला किस तरह दिवाला न रहकर, बेइज्जती न रहकर, आदर और मान माना जा सकता है, इसकी वह कल्पना भी नहीं कर सकता। काछलियाको यही वस्तु स्वाभाविक लगी। बहुतेरे व्यापारियोंने दिवालेके डरसे ही खूनी कानूनके सामने सिर झुकाया था। काछलिया चाहते तो दिवालियेपनसे बच सकते थे। लड़ाईसे अलग होकर बचनेका उपाय तो था ही, पर इस समय मैं कुछ और ही कहना चाहता हूं। बहुतसे भारतीय उनके मित्र थे। वे ऐसे संकटके समय उन्हें पैसा उधार दे सकते थे। पर ऐसा प्रबंध करके वह अपना व्यापार बचाते तो उनकी वीरता लज्जित होती। जेल जानेका जो खतरा उनके लिए था वह तो सभी सत्याग्रहियोंके लिए था। इसलिए किसी सत्याग्रहीसे पैसे लेकर गोरोंका ऋण चुकाना उनको कदापि शोभा न देता। पर जैसे सत्याग्रही व्यापारी उनके मित्र थे वैसे ही जिन्होंने खूनी कानूनके सामने घुटने टेक दिये थे वे भी मित्र थे। उनकी मदद मिल सकती थी, यह मैं जानता

हूं। मेरी स्मृतिके अनुसार एक-दो मित्रोंने उनसे इसके लिए कहलाया भी; पर उनकी मदद लेना तो यह मान लेने जैसा होता कि खूनी कानूनके सामने सिर झुका देना बुद्धिमानी है। अतः हम दोनोंने निश्चय किया कि उनकी मदद हमें हरगिज न लेनी चाहिए। इसके सिवा हम दोनोंने यह भी सोचा कि अगर काछलिया अपने आपको दिवालिया करार दिया जाने दें तो उनका दिवाला दूसरोंके लिए ढालका काम देगा। कारण कि अगर सौमें नहीं तो ९० फीसदी दिवालोंमें पावनेदारको कुछ-न-कुछ नुकसान उठाना ही पड़ता है। अतः उसे अगर रुपयेमें आठ आने मिल जाएं तो वह प्रसन्न होता है और बारह आने मिल जाएं तब तो वह मान लेता है कि हमारा पूरा पावना वसूल हो गया। दक्षिण अफ्रीकाके बड़े व्यापारी आमतौरसे ६। फीसदी नहीं, बल्कि २५ फीसदी नफा लिया करते हैं। अतः उन्हें रुपयेमें बारह आने मिल जाएं तो वे इसे घाटेका रोजगार नहीं मानते। पर दिवालेमें पूरा-पूरा पावना तो शायद ही मिलता है। इसलिए कोई भी पावनेदार कर्जदारको दिवालिया बनवाना नहीं चाहता।

अतः काछलियाके दिवालेसे गोरे व्यापारियोंका दूसरोंको धमकाना तो बंद हो ही जाना चाहिए था। हुआ भी यही। गोरोंका मतलब यह था कि काछलियाको दबाकर युद्धसे अलग करा दें और वह ऐसा न करें तो अपना सौ फीसदी पावना उनसे वसूल करें। दोमेंसे एक भी उद्देश्य सिद्ध न हुआ, उलटा प्रतिकूल परिणाम हुआ। प्रतिष्ठित भारतीय व्यापारीके दिवालियेपनका स्वागत करनेका यह पहला उदाहरण देखकर गोरे व्यापारी हतबुद्धि हो गये और सदाके लिए शांत हो गये। एक सालके अंदर सेठ काछलियाके मालसे गोरोंका पावना पूरा-पूरा, शत-प्रतिशत वसूल हो गया। दिवालेमें

पावनेदारोंको सौ फीसदी मिलनेकी मेरी जानकारीमें तो दक्षिण अफ्रीकामें यह पहली ही मिसाल थी। इससे, लड़ाई जब चल रही थी उसी वक्त काछलियाका मान गोरे व्यापारियोंमें अतिशय बढ़ गया और वही व्यापारी लड़ाईके जारी रहते हुए उनको जितना माल चाहिए उतना उधार देनेको तैयार हो गये। पर काछलियाका बल तो दिन-दिन बढ़ता ही जाता था। युद्धका रहस्य भी वह समझ गये। लड़ाई कितनी लंबी होगी यह पीछेसे तो कोई कह ही न सकता था। इसलिए दिवालिया ठहराये जानेके बाद हमने तै कर लिया था कि जबतक लड़ाई चल रही है तबतक वह लंबे व्यापारमें पड़ें ही नहीं। एक गरीब आदमी जितनेमें अपना खर्च चला सकता है उतना कमा लेने भर कारबार रखकर बाकी व्यापार लड़ाईके दरमियान बंद रखनेका उन्होंने निश्चय किया। इससे गोरे उन्हें जो सुभीता दे रहे थे उसका लाभ उन्होंने नहीं उठाया। पाठक इतना तो समझ ही लेंगे कि काछलिया सेठके जीवनकी जिन घटनाओंका वर्णन मैंने ऊपर किया है वे सारी इस प्रकरणमें वर्णित कमेटीकी बैठकके बाद ही नहीं घटित हुईं। पर इस वर्णनको एक ही साथ देना ठीक समझकर यहां मैंने उन्हें दे दिया है। तिथिक्रमकी दृष्टिसे देखें तो दूसरी लड़ाई शुरू होनेके (१० सितंबर १९०८) के कुछ दिन बाद काछलिया अध्यक्ष हुए और इसके कोई पांच महीने बाद दिवालिया करार दिये गए।

अब हम कमेटीकी बैठकके नतीजेपर विचार करें। इस बैठकके बाद मैंने जनरल स्मट्सको पत्रमें लिखा कि आपका नया बिल समझौतेका भंग है। समझौतेके एक हफ्तेके अंदर उन्होंने जो भाषण दिया था उसकी ओर भी मैंने अपने पत्रमें ध्यान खींचा। उस भाषणमें उन्होंने ये शब्द कहे थे—"ये लोग (एशियावासी) एशियाटिक कानून रद

कर देनेके लिए मुझसे कहते हैं। मैंने उनसे कह दिया है कि जबतक सभी एशियावासी ऐच्छिक परवाना नहीं ले लेते तबतक कानून रद नहीं किया जा सकता।" अधिकारी लोग ऐसी बातोंका जवाब नहीं दिया करते जो उन्हें उलझनमें फँसा दें। देते भी हैं तो वह गोल-मटोल होता है। जनरल स्मट्स तो इस कलाके आचार्य थे। आप चाहे जितना लिखें, चाहे जितना बोलें, जब उनकी जवाब देनेकी इच्छा न होगी तब उनके मुंहसे आप कोई उत्तर नहीं निकलवा सकते। अपनेको मिले हुए पत्रोंका उत्तर देना ही चाहिए, यह सामान्य शिष्टाचार उनके लिए बंधनकारक नहीं था। अतः अपने पत्रोंके उत्तरसे मैं कुछ भी संतोष न प्राप्त कर सका।

अपने मध्यस्थ अलबर्ट कार्टराइटसे मैं मिला। वह सुनकर स्तब्ध हो गये और कहा—"सचमुच मैं इस आदमीको समझ नहीं सकता। एशियाटिक कानून रद कर देनेकी बात मुझे अच्छी तरह याद है। मुझसे जो हो सकेगा करूंगा, पर तुम जानते हो कि यह आदमी जब एक निश्चय कर लेता है तब उसपर किसीकी कुछ चलती नहीं। अखबारोंके लेखोंको तो वह कुछ गिनता ही नहीं। इसलिए मुझे पूरा डर है कि मेरी मदद तुम लोगोंके कुछ काम न आ सकेगी।" मि० हास्किन आदिसे भी मिला। उन्होंने जनरल स्मट्सको पत्र लिखा। उन्हें भी बहुत ही असंतोषकारक उत्तर मिला। 'विश्वासघात' शीर्षक देकर मैंने 'इंडियन ओपीनियन' में कई लेख भी लिखे; पर जनरल स्मट्स उनकी परवा क्यों करने लगे? तत्त्ववेत्ता अथवा निष्ठुर मनुष्यके लिए चाहे जैसे कड़वे विशेषण व्यवहार करो उसपर कोई असर नहीं होनेका। वह अपने सोचे हुए काम करनेमें तन-मनसे लगा रहता है। जनरल स्मट्सके विषयमें दोमेंसे

किस विशेषणका व्यवहार हो सकता है, यह मैं नहीं जानता। मुझे यह तो स्वीकार करना ही होगा कि उनकी वृत्तिमें एक प्रकारकी दार्शनिकता है। जिस वक्त उनके साथ मेरा पत्र-व्यवहार हो रहा था और अखबारोंमें मेरे लेख निकल रहे थे उस वक्त तो मुझे याद है कि मैंने उन्हें निष्ठुर ही माना था। पर यह युद्धका अभी पहला भाग, उसका दूसरा ही बरस, था और हमारी लड़ाई तो आठ बरस चली। इस बीच मैं उनसे कितनी ही बार मिला। हमारी पीछेकी बात-चीतसे मुझे अकसर ऐसा लगता कि जनरल स्मट्सके काइयांपनके बारेमें जो आम खयाल दक्षिण अफ्रीकामें है उसमें परिवर्तन होना चाहिए। दो बातें तो मुझे साफ दिखाई दीं : अपनी राजनीतिके विषयमें उन्होंने कुछ सिद्धांत स्थिर कर रखे हैं और वे नितान्त अनीतिमय तो नहीं ही हैं, पर इसके साथ-साथ मैंने यह भी देखा कि उनके राजनीतिशास्त्रमें चालाकी और मौका पड़नेपर सत्याभासके लिए भी स्थान है।[1]

: २ :

युद्धकी पुनरावृत्ति

एक ओर जनरल स्मट्ससे समझौतेकी शर्तोंका पालन करनेके लिए विनती की जा रही थी तो दूसरी ओर कौमको फिरसे जगानेका उद्योग उत्साहपूर्वक चल रहा था। अनुभव यह हुआ कि हर जगह लड़ाई फिर शुरू करने और जेल जानेको लोग तैयार थे। हर जगह सभाएं की जाने लगीं, जिनमें

---

[1] ये पंक्तियां छपते समय हमें यह मालूम हो गया है कि जनरल स्मट्सकी सरदारीका भी अंत हो सकता है।—मो० क० गांधी

सरकारके साथ हमारा जो पत्र-व्यवहार चल रहा था वह समझाया जाता। 'इंडियन ओपीनियन' में तो हर हफ्तेका रोजनामचा दिया ही जाता था। इससे कौमको स्थितिकी पूरी जानकारी रहती। सबको समझा दिया गया कि हमारा अपनी खुशीसे परवाने लेना निष्फल सिद्ध होनेवाला है और खूनी कानून किसी तरह रद न हुआ तो हमें अपने परवाने जला डालने होंगे। इससे स्थानीय सरकारको यह मालूम हो जायगा कि हिंदुस्तानी अडिग हैं, निर्भय हैं और जेल जानेको भी तैयार हैं। इस दृष्टिसे हर जगह परवाने भी इकट्ठा किये जा रहे थे।

जिस बिलके बारेमें हम पिछले प्रकरणमें पढ़ चुके हैं सरकारकी ओरसे उसको पास करानेकी तैयारी होने लगी। ट्रांसवालकी धारा सभाका अधिवेशन आरंभ हुआ। भारतीयोंने उसमें आवेदनपत्र भेजा; पर इसका भी नतीजा कुछ न निकला। अंतमें सत्याग्रहियोंका 'अल्टिमेटम' सरकारके पास भेजा गया। 'अल्टिमेटम' के मानी होते हैं 'निश्चयपत्र' या धमकीका पत्र जो लड़ाईके इरादेसे ही भेजा जाता है। इस शब्दका व्यवहार कौमकी ओरसे नहीं किया गया, बल्कि उसके निश्चयकी सूचना देनेवाला जो पत्र सरकारको भेजा गया उसको जनरल स्मट्सने धारा सभामें यही नाम दिया और साथ-साथ यह भी कहा कि जो लोग ऐसी धमकी इस सरकारको दे रहे हैं उनको उसके बलका पता नहीं है। मुझे खेद इतना ही है कि कुछ आंदोलनकारी (एजिटेटर) गरीब हिंदुस्तानियोंको उकसा रहे हैं और गरीब लोगोंमें उनका जोर हुआ तो वे बरबाद हो जायंगे। अखबारोंके संवाददाताओंने इस प्रसंगका वर्णन करते हुए लिखा था कि धारा सभाके बहुसंख्यक सदस्य अल्टिमेटमकी बात सुनकर आग-बबूला हो गये। उनकी आंखें सुर्ख हो गईं और उन्होंने

जनरल स्मट्सके पेश किये हुए बिलको एकमतसे तथा उत्साहपूर्वक पास कर दिया।

उपर्युक्त अल्टिमेटममें इतनी ही बात थी—"जो समझौता हिंदुस्तानी कौम और जनरल स्मट्सके बीच हुआ था उसकी स्पष्ट शर्त यह है कि हिंदुस्तानी अपनी इच्छासे परवाने ले लें तो उनको बाक़ायदा मान लेनेके लिए एक बिल विधान-सभामें पेश किया जायगा और एशियाटिक कानून रद कर दिया जायगा। यह तो प्रसिद्ध बात है कि हिंदुस्तानी कौमने इस रीतिसे ऐच्छिक परवाने ले लिए जिससे सरकारी अधिकारियोंको संतोष हो जाय। इसलिए अब एशियाटिक कानून रद हो ही जाना चाहिए। कौमने इस बारेमें जनरल स्मट्सको बहुत लिखा। न्याय पानेके लिए जो दूसरे कानूनी उपाय किये जा सकते थे वे सब भी किये गये; पर अबतक उसका सारा प्रयत्न निष्फल हुआ है। मसविदा विधान-सभामें पास होने ही जा रहा है। ऐसे वक्त कौममें फैली हुई बेचैनी और उसकी तीव्र भावना सरकारको बता देना नेताओंका फर्ज है। और हमें खेदके साथ कहना पड़ता है कि अगर समझौतेकी शर्तोंके अनुसार एशियाटिक कानून रद न कर दिया गया और ऐसा करनेके निश्चयकी सूचना कौमको अमुक अवधिके अंदर न मिल गई तो उसने जो परवाने इकट्ठा किये हैं वे जला डाले जायंगे और ऐसा करनेसे जो मुसीबतें उसपर आयेंगी उनको वह विनय और दृढ़ताके साथ सहन कर लेगी।"

इस पत्रको 'अल्टिमेटम' माननेका एक कारण तो यह था कि उसमें जवाब देनेके लिए एक अवधि रख दी गई थी। दूसरा कारण था गोरोंका यह आम खयाल कि हिंदुस्तानी एक जंगली कौम है। अगर हिंदुस्तानियोंको वे अपने-जैसा समझते होते तो इस चिट्ठीको विनय-पत्र मानते और उसपर ध्यान देते; पर गोरोंकी यह जंगलीपनकी धारणा ही हिंदुस्तानियोंके

ऊपरके जैसा पत्र लिखनेका पर्याप्त कारण था। कौमके सामने दो स्थितियां थीं : एक तो यह कि जंगलीपनका आरोप स्वीकार कर दबी पड़ी रहे। दूसरी यह कि उक्त आरोपसे इन्कार करनेके अमली कदम उठाये। ऐसे कदमोंमें यह पत्र पहला था। इस पत्रके पीछे उसपर अमल करनेका दृढ़ निश्चय न होता तो यह पत्र उद्धत समझा जाता और हिंदुस्तानी विचाररहित और उजड्ड कौम हैं, यह साबित होता।

पाठकोंके मनमें शायद यह शंका पैदा हो कि जंगली होनेसे इन्कार करनेका कदम तो १९०६में, जब सत्याग्रहकी प्रतिज्ञा की गई उसी वक्त उठाया जा चुका था और यदि यह सही हो तो इस पत्रमें ऐसी कौन-सी नई बात थी जिससे मैं उसको महत्त्व देता हूं और यह मानता हूं कि उसके लिखे जानेके वक्तसे कौमने जंगलीपनके आरोपको अस्वीकार करना आरंभ किया? एक दृष्टिसे यह दलील सही मानी जा सकती है, पर विशेष विचारसे मालूम होगा कि अस्वीकारका सच्चा आरंभ निश्चय-पत्रसे ही हुआ। पाठकोंको याद रखना चाहिए कि सत्याग्रहकी प्रतिज्ञाका संयोग अनायास बना। उसके बादकी जेल आदि तो उसका अनिवार्य परिणाम ही था। उसमें कौमकी प्रतिष्ठा बढ़ी, पर अनजानमें। यह पत्र लिखे जानेके समय तो पूरा ज्ञान और प्रतिष्ठाका दावा करनेका पूरा इरादा था। खूनी कानूनको रद करनेका उद्देश्य तो था ही, जैसे पहले वैसे अब। पर उसके साथ भाषाकी शैली, काम करनेके ढंगके चुनाव आदिमें फर्क था। गुलाम मालिकको सलाम करे और एक मित्र दूसरे मित्रको करे तो दोनों सलाम तो हैं ही, पर दोनोंमें इतना बड़ा अंतर है कि उससे तटस्थ प्रेक्षक तुरंत जान जायगा कि एक गुलाम और दूसरा दोस्त है।

अल्टिमेटम भेजते समय हम लोगोंमें यह चर्चा भी हुई थी कि अवधि नियत करके जवाब मंगाना क्या अविनय न माना

जायगा ? क्या इसीसे यह नहीं हो सकता कि सरकार हमारी मांग मंजूर करनेवाली हो तो भी न करे ? कौमका निश्चय परोक्ष रीतिसे सरकारपर प्रकट कर देना क्या काफी न होगा ? इन सब बातोंपर विचार कर लेनेके बाद हम सबने एकमतसे निश्चय किया कि हम जिसको सही और मुनासिब समझें वही करें । अविनयी कहे जानेका इलजाम सिरपर आये तो उसे कबूल कर लें । सरकार जो देनेवाली हो वह झूठा रोष दिखाकर न दे तो यह जोखिम भी उठा लें । अगर हम मनुष्यरूपमें अपने आपको दूसरोंसे किसी तरह हेठा न मानते हों और यह भी मानते हों कि चाहे जितना दुःख चाहे जितने दिनतक उठाना पड़े उसे सह लेनेकी शक्ति हममें है, तो जो सही और सीधा रास्ता हो वही हमें स्वीकार करना चाहिए ।

अब शायद पाठक यह समझ सकें कि इस वक्त जो कदम उठाया गया उसमें कुछ नवीनता और विशेषता थी । उसकी प्रतिध्वनि विधान-सभामें और बाहरके यूरोपीय मंडलोंमें भी हुई । कुछने हिंदुस्तानियोंकी हिम्मतकी सराहना की और कितने ही उनपर अति क्रुद्ध हुए । उन्होंने यह भी कहा कि हिंदुस्तानियोंको इस गुस्ताखीकी पूरी सजा मिलनी चाहिए । उभयपक्षने अपने व्यवहारसे हिंदुस्तानियोंके कदमका नयापन स्वीकार किया । सत्याग्रह जब आरंभ हुआ उस वक्त सच पूछिए तो वह नया कदम था । फिर भी उससे जो हलचल मची थी उसकी बनिस्बत इस पत्रसे बहुत अधिक हलचल मची । इसका एक कारण तो स्पष्ट ही है । सत्याग्रह आरंभ होनेके समय कौमकी शक्तिका अंदाजा किसीको न हुआ था । अतः उस वक्त ऐसा पत्र या उसकी भाषा हमें शोभा न देती । अब कौमकी थोड़ी-बहुत परीक्षा हो चुकी थी । सबने देख लिया था कि सामाजिक कठिनाइयोंका सामना करनेमें जो कष्ट सिरपर आयें उन्हें सह लेनेकी शक्ति उसमें है । अतः

निश्चयपत्रकी भाषा स्वाभाविक रीतिसे उद्भूत हुई और तनिक भी अशोभनीय न लगी।

: ३ :

ऐच्छिक परवानोंकी होली

'अल्टिमेटम' या निश्चयपत्रकी अवधि उसी दिनकी रखी गई थी जिस दिन दूसरा एशियाटिक कानून विधान-सभामें पास होनेवाला था। अवधि बीतनेके एक-दो घंटे बाद परवानोंको जलानेकी सार्वजनिक क्रिया करनेके लिए सभा बुलाई गई थी। सत्याग्रह-कमेटीने सोचा था कि शायद अनसोची रीतिसे सरकारका अनुकूल उत्तर मिल जाय तो भी सभा व्यर्थ न जाय। उस दशामें सरकारका अनुकूल निश्चय उसके जरिये लोगोंपर प्रकट किया जा सकता था।

कमेटीका खयाल तो यह था कि इस निश्चयपत्रका सरकार कोई जवाब ही नहीं देगी। हम सभी पहलेहीसे सभा-स्थानपर पहुंच गये थे। इसका प्रबंध भी कर रखा गया था कि सरकारका तारसे भी कोई जवाब आये तो वह सभामें तुरंत मिल जाय। सभाका समय चार बजेका रखा गया था। नियमानुसार वह मस्जिदके मैदानमें १६ अगस्त १९०८ को की गई थी।

सारा मैदान हिंदुस्तानियोंसे ठसाठस भर गया था। दक्षिण अफ्रीकामें हबशी अपना खाना पकानेके लिए लोहेकी बनी चार पायोंवाली छोटी या बड़ी कढ़ाई काममें लाते हैं। परवाने जलानेके लिए ऐसी ही एक कढ़ाई जो बड़ी-से-बड़ी मिल सकी, एक हिंदुस्तानी व्यापारीकी दुकानसे मंगा रखी गई थी। यह कढ़ाई एक कोनेमें चबूतरेके ऊपर रखी गई थी।

सभाका काम शुरू करनेका समय हुआ कि इतनेमें एक स्वयंसेवक बाइसिकिलपर आ पहुंचा। उसके हाथमें तार था। यह तार सरकारका जवाब था। उसमें हिंदुस्तानी कौमके निश्चयपर खेद प्रकट किया गया था और यह भी जता दिया गया था कि सरकारके लिए अपना निश्चय बदल सकना मुमकिन नहीं। यह तार सभाको पढ़कर सुना दिया गया। सभाने उसका स्वागत किया। सरकार निश्चयपत्रकी मांगें मंजूर कर लेती तो कौमको परवानोंकी होली जलानेका शुभ कार्य करनेका जो अवसर मिला था वह हाथसे निकल जाता! यह हर्ष योग्य माना जाय कि अयोग्य, इसका निश्चय करना बहुत कठिन है। जिस-जिसने जवाबका तालियोंसे स्वागत किया उनका हेतु समझे बिना योग्यता-अयोग्यताका निर्णय नहीं हो सकता। पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह हर्ष सभाके उत्साहका सुंदर लक्षण था। सभाको अपनी शक्तिका कुछ अंदाजा मिल गया था।

सभा आरंभ हुई। सभापतिने सभाको सावधान किया। सारी स्थिति समझाई। सभाने अवसरके अनुरूप प्रस्ताव स्वीकार किये। जो भिन्न-भिन्न स्थितियां हमारे सामने अभी आई थीं मैंने उन्हें स्पष्ट रीतिसे समझा दिया और कहा—"जिन लोगोंने अपने परवाने जलानेके लिए दिये हैं उनमेंसे कोई अपना परवाना वापस लेना चाहता हो तो ले सकता है। परवाने जला देनेसे ही कोई अपराध नहीं होता और जिन्हें जेल जानेका हौसला हो उनका हौसला इतनेहीसे पूरा नहीं होनेका। परवाने जलाकर तो हम महज अपना यह निश्चय प्रकट करते हैं कि हमें खूनी कानूनके आगे सिर नहीं झुकाना है और परवाना दिखानेभरकी शक्ति भी अपने पास नहीं रखना चाहते। पर जो आदमी परवाना जलानेकी क्रियामें आज शामिल हों वह अगले ही दिन जाकर नया परवाना निकलवा

लें तो कोई उनका हाथ पकड़नेवाला नहीं। जिसका ऐसा कुकर्म करनेका इरादा हो या जिसे परीक्षाके समय अपनी शक्तिके विषयमें शंका हो उसके लिए अब भी वक्त है कि अपना परवाना वापस ले ले और वह ले सकता है। इस वक्त अपना परवाना लौटा लेनेवालेके लिए लज्जाका कोई कारण नहीं। मैं तो इसको एक तरहकी हिम्मत ही मानूंगा। पर पीछेसे परवानेकी नकल लेनेमें शर्म और जिल्लत है और कौमकी हानि है। इसके सिवा कौमको यह भी समझ रखना चाहिए कि यह लड़ाई लंबी हो सकती है। हमें यह भी मालूम है कि हमारे कुछ साथी निश्चयसे गिर गये हैं। अतः स्पष्ट है कि कौमकी गाड़ी खींचनेवाले जो बाकी रह गये हैं उन्हें उतना जोर और लगाना होगा। मेरी सलाह है कि इन सारी बातों-को सोच-समझकर ही आप आनेका साहस करें।"

मेरे भाषणके बीचमें ही ये आवाजें तो आ ही रही थीं--"हमें परवाने वापस नहीं लेने हैं, उनकी होली जलाइये।" अंतमें मैंने कहा कि किसीको प्रस्तावका विरोध करना हो तो वह खड़ा हो जाय। पर कोई खड़ा न हुआ। इस सभामें मीर आलम भी हाजिर था। उसने जाहिर किया कि मुझको मारकर उसने भूल की और अपना असल परवाना जलानेके लिए दिया। ऐच्छिक परवाना तो उसने लिया ही नहीं था। मैंने मीर आलमका हाथ पकड़ा और हर्षसे दबाया। मैंने फिर उसे जताया कि मेरे मनमें तुम्हारे प्रति कभी कोई रोष नहीं था। मीर आलमके इस कामसे सभाके हर्षका ठिकाना न रहा।

कमेटीके पास दो हजारसे ऊपर परवाने जलानेके लिए आ चुके थे। उनकी गठरी उपर्युक्त कढ़ाईमें झोंककर ऊपरसे मिट्टीका तेल उंडेल दिया गया और ईसप मियांने उसे दियासलाई लगा दी। सारी सभा खड़ी हो गई और यह होली जबतक जलती रही तबतक तालियोंसे मैदानको गुंजा रखा। कुछ

लोगोंने अपने परवाने अभीतक अपने पास ही रख छोड़े थे। वे मंचपर उनकी वर्षा करने लगे। कढ़ाईमें उनकी भी आहुति कर दी गई। होली जलनेसे पहले तक वे क्यों नहीं दिये गए, यह पूछनेपर किसीने जवाब दिया कि हमारा ख्याल था कि होली जलते समय देनेमें अधिक शोभा है और दूसरोंपर उसका असर भी अधिक होगा। दूसरे कितनोंने सरल भावसे स्वीकार किया कि हमारी हिम्मत न होती थी और अंतिम क्षणतक यह भी सोचते थे कि शायद परवाने न जलाये जायं। पर यह होली देखकर हमसे रहा न गया। जो गति सबकी होगी वह हमारी भी हो जायगी। इस लड़ाईमें ऐसी सरल हृदयताके अनुभव हमें अनेक हुए।

लंदनके 'डेली मेल' अखबारके जोहान्सबर्गके संवाददाताने उक्त पत्रको इस सभाका विवरण भेजा। उसमें परवानोंकी होली जलानेकी तुलना उस घटनाके साथ की गई जब अमरीकाके अंग्रेजोंने विलायतसे भेजी चायकी पेटियोंको बोस्टन-बंदरगाहमें जलसमाधि दे दी और इंग्लैंडके अधीन न रहनेके निश्चयकी घोषणा की। दक्षिण अफ्रीकामें १३००० हिंदुस्तानियोंके असहाय समुदायका ट्रांसवालके बलवान राज्यसे सामना था। उधर अमरीकामें वहांके हर बातमें कुशल लाखों गोरे ब्रिटिश साम्राज्यके बलका सामना कर रहे थे। इन दोनों स्थितियोंकी तुलना करके देखनेपर 'डेलीमेल' के संवाददाताने भारतीयोंके विषयमें अतिशयोक्ति की, ऐसा नहीं जान पड़ता। हिंदुस्तानी कौमका हथियार अपने सत्यपर विश्वास और भगवानके भरोसेके सिवा और कुछ न था। इसमें संदेह नहीं कि श्रद्धालुके लिए यह शस्त्र सर्वोपरि है। पर जन-समाजमें अभी यह दृष्टि नहीं आई थी और जबतक वह नहीं आती तबतक निहत्थे १३ हजार हिंदुस्तानी हर हथियारसे लैस अमरीकाके गोरोंके सामने तुच्छ ही गिने जाएंगे; पर

ईश्वर तो निर्बलका ही बल है। इसलिए दुनिया इनको तुच्छ समझे, यह ठीक ही है।

: ४ :

कौमपर नया सवाल उठानेका आरोप

विधानसभाकी जिस बैठकमें एशियाटिक कानून (दूसरा) पास हुआ उसीमें जनरल स्मट्सने एक और बिल भी पेश किया। उसका नाम था 'इमिग्रंट्स रिस्ट्रिक्शन ऐक्ट', यानी नई बस्तीपर रोक लगानेवाला कानून। यह कानून सबपर लागू होता था; पर उसका मुख्य उद्देश्य नये आनेवाले हिंदुस्तानियोंको रोकना था। इस कानूनको गढ़नेमें नेटालके वैसे ही कानूनका अनुकरण किया गया था। पर इसमें एक दफा यह थी कि जिनपर एशियाटिक कानून लागू होता है वे भी प्रतिबद्ध बस्तीकी व्याख्यामें आ जाएं। अर्थात् परोक्ष रीतिसे उस कानूनमें ऐसी युक्ति की गई थी कि एक भी नया हिंदुस्तानी ट्रांसवालमें दाखिल न हो सके। इससे लोहा लेना तो कौमके लिए जरूरी था ही, पर उसको सत्याग्रहमें शामिल करें या नहीं, यह सवाल सामने खड़ा हो गया। सत्याग्रह कब और किस विषयमें करें, इस बारेमें कौम किसीके साथ बंधी हुई नहीं थी। उसकी सीमा कौमके विवेक और शक्तिमें थी। बात-बातमें कोई सत्याग्रह करे तो वह दुराग्रह होगा। वैसे ही अपनी शक्तिकी नाप-तौल किये बिना कोई इस शस्त्रका उपयोग करे और पीछे हार खाय तो इसमें भी वह खुद तो कलंकित होता ही है, इस अविवेकसे इस बेजोड़ हथियारको भी दूषित करता है।

कमेटीने देखा कि हिंदुस्तानी कौमका सत्याग्रह खूनी

कानूनके ही खिलाफ है। वह रद हो जाय तो बस्तीसंबंधी कानून (इमिग्रंट्स रिस्ट्रिक्शन ऐक्ट) में छिपा हुआ जहर, जो ऊपर बताया गया है, अपने आप नष्ट हो जायगा। फिर भी अगर यह सोचकर कि खूनी कानून रद हो गया तो बस्तीवाले कानूनके लिए अलगसे चर्चा या आंदोलनकी आवश्यकता न होगी। कौमें चुप बैठी रहें तो यह समझा जायगा कि हिंदुस्तानियोंकी नई बस्तीपर लगाये गये सारे प्रतिबंधोंको उसने स्वीकार कर लिया। इसलिए उस कानूनका तो विरोध करना ही होगा। विचार केवल इस बातका करना है कि इस संघर्षको सत्याग्रहमें शामिल करें या नहीं। कौमने सोचा कि सत्याग्रहके दौरानमें ही उसपर कोई नया हमला हो तो इस हमलेको भी सत्याग्रहमें शामिल कर लेना उसका फर्ज होगा। अशक्तिवश वैसा न किया जा सके तो यह जुदी बात है। नेताओंने देखा कि शक्तिके अभाव या न्यूनताका बहाना बनाकर हम इस जहरीली दफाकी घूंटको पी नहीं सकते, इसलिए उसको भी सत्याग्रहका विषय बना ही लेना चाहिए।

अतः इस विषयमें स्थानीय सरकारके साथ लिखा-पढ़ी आरंभ हुई। इससे कानूनमें कोई हेर-फेर तो नहीं हुआ; पर जनरल स्मट्सको उसमें कौमको, सच पूछिये तो मुझको, बदनाम करनेका एक नया औजार मिल गया। वह जानते थे कि जितने गोरे जाहिरा हमारी मदद करते हैं उनसे कहीं अधिककी हमदर्दी निजी तौरपर हमारे साथ है और वह हमदर्दी नष्ट की जा सकती हो तो उसकी फिकर की जाय। उनका यह सोचना स्वाभाविक ही था। इसलिए उन्होंने मुझपर नया सवाल उठानेका इलजाम लगाया और अपने साथ बातचीतमें तथा लिखकर भी हमारे अंग्रेज सहायकोंको बताया—"गांधीको जितना मैं पहचानता हूं उतना आप लोग नहीं पहचानते। आप उसे एक इंच दें तो वह एक हाथ मांगेगा।

यह सब मैं जानता हूं। इसीलिए एशियाटिक कानूनको रद नहीं कर रहा हूं। जब उसने सत्याग्रह आरंभ किया था तब नई बस्तीकी तो कोई बात ही नहीं थी। ट्रांसवालकी रक्षाके लिए हम नये हिंदुस्तानियोंका आना रोकनेका कानून बना रहे हैं तो यह उसमें भी अपना सत्याग्रह चलाना चाहता है। ऐसी चालाकी (कनिंग) कबतक बर्दाश्त की जा सकती है? उसे जो करना हो करे, भले ही एक-एक हिंदुस्तानी बरबाद हो जाय, मैं एशियाटिक कानूनको रद करनेवाला नहीं और ट्रांसवाल सरकारने हिंदुस्तानियोंके विषयमें जो नीति ग्रहण की है उसका भी त्याग नहीं किया जायगा। इस न्यायसंगत नीतिका समर्थन करना हर यूरोपियनका फर्ज है।"

तनिक-सा विचार करनेसे ही यह देखा जा सकता है कि उपर्युक्त दलील सोलहो आने गैरवाजिब और नीतिविरुद्ध थी। नई बस्ती रोकनेके कानूनका जब जन्म ही नहीं हुआ था उस वक्त मैं या कौम उसका विरोध कैसे कर सकती थी? जनरल स्मट्सने मेरी चालाकीके अनुभवकी बात कही है, पर इसकी एक भी मिसाल वह पेश नहीं कर सके और मैं खुद तो जानता हूं कि दक्षिण अफ्रीकामें मैं इतने बरस रहा उसमें कभी चालाकी बरतनेकी बात मुझे याद ही नहीं आती; बल्कि इस मौकेपर तो मुझे आगे बढ़कर यह कहनेमें भी हिचक नहीं होती कि अपनी सारी जिंदगीमें मैंने चालाकीसे कभी काम लिया ही नहीं। मैं मानता हूं कि चालाकीसे काम लेना नीति-विरुद्ध है। इतना ही नहीं, मैं तो उसे युक्तिविरुद्ध भी मानता हूं। इसलिए व्यवहार-दृष्टिसे भी उसका उपयोग मैंने सदा नापसंद किया है। अपने बचावमें इतना लिखनेकी भी जरूरत मैं नहीं समझता। जिस पाठकवर्गके लिए मैं यह लिख रहा हूं उसके सामने अपने मुंहसे अपनी सफाई देते मुझे शर्म मालूम होती है। मैं चालाकीसे रहित हूं इसका अनुभव अगर उन्हें

अबतक न हुआ हो तो अपनी सफाईसे मैं इस विषयको सिद्ध कर ही नहीं सकता । ऊपरके वाक्य लिखनेका हेतु इतना ही है कि सत्याग्रहकी लड़ाई कैसे संकटके बीच लड़ी जा रही थी इसकी कल्पना पाठकोंको हो जाय और वे समझ लें कि कौम नीतिकी पगडंडीसे बाल बराबर भी हट जाती तो लड़ाई कैसे खतरेमें पड़ जाती । बाजीगर जब बीस फुट ऊंचे खंभेसे लटकाई गई रस्सीपर चलता है तो उसे जैसी एकाग्र दृष्टि रखकर चलना पड़ता है——तनिक भी निगाह चूके तो दाहिने गिरे या बायें, उसके लिए मौत रखी ही होती है——सत्याग्रहीको उससे भी अधिक एकाग्र दृष्टि रखकर चलना होता है। आठ बरसके लंबे कालमें मैंने यह बात सीख ली थी। जिन मित्रोंके सामने जनरल स्मट्सने उक्त आरोप लगाया था वे मुझे अच्छी तरह पहचानते थे। अतः उनपर जनरल स्मट्स जो चाहते थे उसका उलटा ही असर हुआ। उन्होंने मेरा या युद्धका त्याग नहीं किया, बल्कि हमारी सहायता करनेमें अधिक उत्साह दिखाने लगे और कौमने पीछे देख लिया कि हमने नई बस्तीके कानूनको सत्याग्रहमें शामिल न कर लिया होता तो हम भारी मुसीबतमें पड़ जाते ।

मेरे अनुभवने मुझे सिखाया है कि जिसे मैं वृद्धिका नियम कहता हूं वह हरएक शुद्ध युद्धपर घटित होता है। पर सत्याग्रहके विषयमें तो मैं इस वस्तुको सिद्धांतरूपमें मानता हूं। जैसे गंगानदी ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती हैं त्यों-त्यों अनेक नदियां आकर उसमें मिलती जाती हैं और मुहानेपर तो उसका पाट इतना चौड़ा हो जाता है कि दायें-बायें किसी ओर किनारा दिखाई नहीं देता और नावमें बैठे हुए यात्रीको विस्तारमें उसमें और समुद्रमें कोई फर्क नहीं दिखाई देता। उसी तरह सत्याग्रहकी लड़ाई ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती है त्यों-त्यों उससे उत्पन्न होनेवाले परिणाममें वृद्धि होती जाती है । मैं मानता

हूं कि सत्याग्रहका यह परिणाम अनिवार्य है। उसका कारण उसके मूल तत्त्वमें ही विद्यमान है। कारण कि सत्याग्रहमें कम-से-कम ही अधिक-से-अधिक है। कम-से-कममें कुछ घटाना तो हो ही नहीं सकता, इसलिए इससे पीछे हटा ही नहीं जा सकता और स्वाभाविक क्रिया वृद्धिकी ही हो सकती है। दूसरी लड़ाइयां शुद्ध हों तो भी मांगमें कमीकी गुंजाइश शुरूसे ही रखी जाती है। इससे वृद्धिका नियम उनपर निरपवाद-रूपसे घटित हो सकता है। इस विषयमें मैंने शंका प्रकट की। पर जब कम-से-कम अधिक-से-अधिक ही हो तब वृद्धिका नियम कैसे घटित होता है, यह बात मुझे समझानी होगी। जैसे गंगा वृद्धिकी खोजमें अपनी गति छोड़ती नहीं, वैसे ही सत्याग्रही भी अपनी तलवारकी धार-सरीखा रास्ता नहीं छोड़ता। पर जैसे गंगाकी धारा ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है त्यों-त्यों दूसरी नदियां अपने आप आकर उसमें मिलती जाती हैं, वही बात सत्याग्रही गंगाकी भी है।

बस्तीका कानून सत्याग्रहके विषयमें शामिल कर लिया गया तो यह देखकर सत्याग्रहका सिद्धांत न जाननेवाले हिंदुस्तानियोंने आग्रह किया कि ट्रांसवालके भारतीय विरोधी सभी कानून उनमें ले लिये जाएं। दूसरे कितने लोगोंने कहा कि जबतक लड़ाई चल रही है, नेटाल, केप कालोनी, आरेंज फ्री स्टेट इन सबको निमंत्रित करके दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंके विरोधी हरएक कानूनके विरुद्ध सत्याग्रह छेड़ दिया जाय। इन दोनों बातोंमें सिद्धांत भंग था। मैंने साफ बता दिया कि जो स्थिति सत्याग्रह आरंभ होनेके समय हमने नहीं ग्रहण की थी वह अब मौका देखकर ग्रहण कर लें तो यह ईमानदारीके खिलाफ होगा। हमारी शक्ति कितनी ही क्यों न हो, यह सत्याग्रह जिन मांगोंके लिए किया गया है उन मांगोंके पूरी हो जानेपर वह समाप्त होना ही चाहिए। मेरा

दृढ़ विश्वास है कि इस सिद्धांतपर हम दृढ़ न रहते तो जीतके बदले हमारी हार हुई होती। इतना ही नहीं, जो हमदर्दी हम पा सके वह भी गंवा बैठते। इसके विपरीत जब सत्याग्रह चल रहा हो उस वक्त प्रतिपक्षी खुद नई अड़चनें पैदा करता है तो वे अपने आप सत्याग्रहमें शामिल हो जाती हैं। सत्याग्रही जब अपनी दिशामें चला जा रहा हो उस वक्त जो चीजें उसके रास्तेमें आकर मिलती जाएं उनकी उपेक्षा वह अपने सत्याग्रहका त्याग किये बिना कर ही नहीं सकता। और प्रतिपक्षी तो सत्याग्रही होता ही नहीं। सत्याग्रहके विरुद्ध सत्याग्रह करना असंभव है। इसलिए न्यूनतम और अधिकतमका बंधन उसको होता ही नहीं। वह कोई नई बात खड़ी करके सत्याग्रहीको डराना चाहे तो डरा सकता है; पर सत्याग्रही तो भयसे मुक्त हो चुका होता है। इसलिए प्रतिपक्षी नई आपत्तियां खड़ी करे तो उनके सामने भी वह अपना मंत्रोच्चार करता है और यह विश्वास रखता है कि उसकी राहमें आनेवाली सभी बाधाओंके सामने यह मंत्रोच्चार अवश्य फलदायी होगा। इसीसे सत्याग्रह ज्यों-ज्यों लंबा होता है, यानी प्रतिपक्षी उसे ज्यों-ज्यों लंबा करता है, त्यों-त्यों उसकी अपनी दृष्टिसे तो वह गांठकी पूंजी ही गंवाता है और सत्याग्रहीका अधिकाधिक लाभ होता है। इस नियमकी चरितार्थताके दूसरे दृष्टांत हमें इस युद्धके इतिहासमें मिलेंगे।

: ५ :

सोराबजी शापुरजी अडाजनिया

जब नई बस्तीका सवाल--इमिग्रेशन ऐक्ट भी लड़ाईके विषयोंमें शामिल कर लिया गया तब सत्याग्रहियोंके लिए इस अधिकारकी परीक्षा कर लेना भी जरूरी हो गया। कमेटीने

तय किया था कि चाहे जिस भारतीयके जरिये यह परीक्षा नहीं कराई जायगी। खयाल यह था कि ऐसे आदमीको ट्रांसवालमें दाखिल कराके जेल-महलमें बैठा दें जो नई बस्तीके कानूनकी उन दूसरी शर्तोंको पूरा करता हो जिनसे हमारा कुछ भी विरोध नहीं है। इससे हमें यह साबित करना था कि सत्याग्रह मर्यादा-धर्म है। इस कानूनमें एक दफा इस आशयकी थी कि नये आनेवालेको यूरोपकी किसी एक भाषाका ज्ञान होना ही चाहिए। इसलिए कमेटीने अंग्रेजी जाननेवाले ऐसे हिंदुस्तानीको दाखिल करानेकी बात सोची थी जो ट्रांसवालमें पहले रह चुका हो। कितने ही हिंदुस्तानी नौजवानोंने इस परीक्षाके लिए अपने आपको पेश किया। पर उनमेंसे सोराबजी शापुरजी अडाजनियाका नाम बतौर कसौटीके स्वीकार किया गया।

नामसे ही पाठक समझ लेंगे कि सोराबजी पारसी थे। सारे दक्षिण अफ्रीकामें पारसियोंकी संख्या सौ से ऊपर नहीं होगी। पारसियोंके बारेमें जो मत मैंने हिंदुस्तानमें प्रकट किया है, दक्षिण अफ्रीकामें भी मेरा वही मत था। सारी दुनियामें कुल मिलाकर एक लाखसे अधिक पारसी न होंगे। इतनी छोटी-सी जाति अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा कर रही है। अपने धर्मपर दृढ़तासे आरूढ़ है और दानशीलतामें दुनियाकी कोई भी कौम उसकी बराबरी नहीं कर सकती। इतनी ही बात इस जातिकी उत्तमताका प्रमाणपत्र है। उनमें भी सोराबजी तो काम पड़नेपर रत्न निकले। जब वह लड़ाईमें शामिल हुए उस वक्त मैं उनको कुछ यों ही मामूली-सा जानता था। लड़ाईमें शामिल होनेके विषयमें उन्होंने जो पत्र लिखे थे उन्होंने मुझपर अच्छा असर डाला था। मैं जैसे पारसियोंके गुणोंका पुजारी हूं वैसे ही जातिरूपमें उनमें जो अनेक खामियां हैं उनसे भी अनजान नहीं था और न हूं। इसलिए सच्ची परीक्षाका अवसर आनेपर

सोराबजी टिक सकेंगे या नहीं, इस विषयमें मेरे मनमें शंका थी। पर विपक्षी इसके विरुद्ध बात कहता हो तो अपने शक-शुबहेपर अमल न करना मेरा नियम था। इसलिए मैंने तो कमेटीसे यही सिफारिश की कि सोराबजीने अपने पत्रोंमें जो दृढ़ता दिखाई है उसको पक्की मान लें। और अंतमें तो सोराबजी प्रथम श्रेणीके सत्याग्रही सिद्ध हुए। जिन सत्याग्रहियोंने लंबी-से-लंबी कैदें भुगतीं उनमें वह भी थे। इतना ही नहीं, उन्होंने इस युद्धका इतना गहरा ज्ञान प्राप्त कर लिया था कि वह जो कुछ कहें उस सबको ध्यानसे सुनना पड़ता। उनकी सलाहमें सदा दृढ़ता, विवेक, उदारता, शांति आदिकी झलक रहती। राय कायम करनेमें वह जल्दबाजी न करते और जो कायम कर ली उसे बदलते भी नहीं। उनमें जितना पारसीपन था——और वह भरपूर था——उतना ही हिंदुस्तानीपन भी था। संकुचित जाति-अभिमानकी तो उनमें कभी गंध भी नहीं मिली। युद्ध समाप्त होनेके बाद डाक्टर मेहताने अच्छे सत्याग्रहियोंमेंसे किसीको विलायत भेजकर बैरिस्टर बनवानेके लिये छात्रवृत्ति दी थी। इसका चुनाव मुझीको करना था। दो-तीन योग्य भारतीय थे, पर सारी मित्रमंडलीकी रायमें कोई दूसरा आदमी नहीं था जो विचारकी प्रौढ़ता और समझदारीमें सोराबजीकी बराबरी कर सके। अतः वही चुने गये। ऐसे एक हिंदुस्तानीको विलायत भेजनेमें उद्देश्य यह था कि वह वापस आकर मेरी जगह ले और कौमकी सेवा करे। कौमका आशीर्वाद और सम्मान लेकर सोराबजी विलायत गये और बैरिस्टर बने। गोखलेसे उनका संपर्क तो दक्षिण अफ्रीकामें ही हो गया था। विलायतमें वह अधिक निकटका हो गया। उनका मन सोराबजीने हर लिया। उन्होंने सोराबजीसे यह आग्रह भी किया कि हिंदुस्तान लौटने-पर भारत सेवक समिति (सरवेंटस् आव इंडिया सोसायटी) में शामिल हो जाओ। विद्यार्थीवर्गमें सोराबजी अतिशय प्रिय

हो गये थे । वह हरएक दुःख-दर्दमें शरीक होते । विलायतके ठाट-बाट और विलासिताका उनके मनपर तनिक भी असर न हुआ । जब वह विलायत गये, उनकी उम्र ३० से ऊपर थी । उनका अंग्रेजीका अभ्यास ऊंचे दरजेका नहीं था। व्याकरण आदि भूलभाल गये थे; पर मनुष्यके अध्यवसायके सामने ऐसी कठिनाइयां टिक नहीं सकतीं। सोराबजीने शुद्ध विद्यार्थी-जीवन बिताया और परीक्षाओंमें पास होते गये । मेरे जमानेकी बैरिस्टरीकी परीक्षा आजकी तुलनामें आसान थी । अब तो बैरिस्टर बननेवालेको तबसे बहुत अधिक पढ़ना पड़ता है; पर सोराबजीने हार न मानी। विलायतमें जब 'ऐम्बुलेंस कोर' (युद्धमें सेवा-कार्य करनेवाला दस्ता) बना तो जो लोग इसमें अगुआ बने उनमें वह भी थे और अंततक उसमें बने रहे । इस दस्तेको भी सत्याग्रह करना पड़ा था । सदस्योंमेंसे बहुतेरे गिर गये । जिनके पांव अचल रहे उनमें सोराबजी सबसे आगे थे । यहां यह भी बता दूं कि इस दस्तेके सत्याग्रहमें भी हमें जय ही मिली थी ।

विलायतसे बैरिस्टरी पास कर लेनेके बाद सोराबजी जोहान्सबर्ग लौटे । वहां उन्होंने सेवा और वकालत दोनों साथ-साथ शुरू कर दीं । दक्षिण अफ्रीकासे मुझे जो चिट्ठियां मिलीं उनमें सभी सोराबजीकी तारीफ करते थे—"वह पहले जैसे सीधे-सादे थे वैसे ही अब भी हैं । आडंबर नामको नहीं । छोटे-बड़े सबके साथ हिले-मिले रहते हैं।" पर ईश्वर जैसा दयालु दिखाई देता है वैसा ही निर्दय भी लगता है। सोराबजीको तीव्रक्षय (गैलपिंग थाइसिस) हुआ और कुछ महीनेमें वह कौमका नया प्रेम संपादन करके और उसे रोती छोड़कर चल बसे ! इस तरह ईश्वरने थोड़े ही समयके बीच कौमसे दो पुरुषरत्न छीन लिये । काछलिया और सोराबजी ! चुनाव करना हो तो मैं इन दोनोंमेंसे किसे प्रथम पद दे सकता हूं ?

मैं इनमें चुनाव कर ही नहीं सकता। दोनों अपने-अपने क्षेत्रमें बेजोड़ थे। जैसे काछलिया जितने शुद्ध मुसलमान थे उतने ही शुद्ध भारतीय थे, वैसे ही सोराबजी भी जितने सच्चे पारसी थे उतने ही सच्चे हिंदुस्तानी थे।

यही सोराबजी सरकारको पहलेसे नोटिस देकर आजमाइशके लिए ट्रांसवालमें दाखिल हुए। सरकार इस कदमके लिए बिलकुल तैयार न थी। इससे सोराबजीके साथ क्या कार्रवाई की जाय इसका तुरंत निश्चय न कर सकी। सोराबजीने खुले तौरपर सरहद लांघी और ट्रांसवालमें दाखिल हुए। सरहदपर परवानोंकी जांच करनेवाला अफसर उन्हें जानता था। सोराबजीने उससे कहा, "मैं ट्रांसवालमें जान-बूझकर अपने अधिकारकी परीक्षाके लिए प्रवेश कर रहा हूं। तुम्हें मेरी अंग्रेजीकी परीक्षा लेनी हो तो लो और गिरफ्तार करना हो तो कर लो।" अधिकारीने जवाब दिया—"मुझे मालूम है कि आप अंग्रेजी जानते हैं, इसलिए यह परीक्षा मुझे लेनेकी जरूरत ही नहीं। आपको गिरफ्तार करनेका मुझे हुक्म नहीं। इसलिए आप खुशीसे जाएं। जहां जायंगे वहां सरकारको आपको गिरफ्तार करना होगा तो करेगी।"

इस प्रकार अनसोची रीतिसे सोराबजी जोहान्सबर्ग तक पहुंच गये। हम सबने उनका हर्षके साथ स्वागत किया। किसीको यह आशा नहीं थी कि सरकार ट्रांसवालके सरहदी स्टेशन वोक्सरेस्टसे उनको एक कदम भी आगे न बढ़ने देगी। अकसर ऐसा होता है कि जब हम अपना कदम सोच-समझकर और निर्भय होकर तुरंत उठाते हैं तो सरकार उसका सामना करनेको तैयार नहीं होती। हरएक सरकारका यह स्वभाव माना जा सकता है। सामान्य आंदोलनोंमें सरकारका कोई भी अधिकारी अपने महकमेको इतना अपना नहीं लेता कि हर मामलेमें पहलेसे विचार स्थिर और व्यवस्थित कर

रक्खे और तदनुसार तैयारी भी। फिर अधिकारीका एक ही काम नहीं होता, बल्कि अनेक काम होते हैं जिनमें उसका ध्यान बट जाता है। इसके सिवा अधिकारीको अधिकारका मद होता है जिससे वह बेफिक्र रहता है और मान लेता है कि कैसा ही आंदोलन हो उसका उपाय कर लेना सत्ताधीश के बाएं हाथका खेल है। इसके विपरीत आंदोलन करनेवाला अपना ध्येय जानता हो, उसके साधनको जानता हो और अपनी योजनाके बारेमें उसका मन पक्का हो तो वह तो पूरी तरह तैयार होता है और उसे एक ही कामका विचार रात-दिन करना होता है। इसलिए अगर वह सही कदम पक्के तौरपर उठा सके तो वह सरकारसे सदा आगे ही रहता है। बहुतसे आंदोलन जो विफल हो जाते हैं उसका कारण सरकारकी असामान्य शक्ति नहीं, बल्कि संचालकोंके ये ऊपर बताये हुए गुणोंका अभाव होता है।

सारांश, सरकारकी गफलतके कारण या जान-बूझकर की हुई वैसी योजनाके कारण सोराबजी जोहान्सबर्गतक पहुंच सके और उनके जैसे मामलेमें अधिकारीका क्या कर्तव्य है, इसकी कल्पना स्थानीय अधिकारीको न थी और न इस विषयमें बड़े अफसरका आदेश मिला था। सोराबजीके इस तरह आनेसे कौमके उत्साहमें बहुत वृद्धि हुई। कुछ नौजवानोंको तो ऐसा जान पड़ा कि सरकार हार गई और जल्दी ही समझौता कर लेगी। वैसा कुछ नहीं था, यह उन्होंने तुरंत ही देख लिया; बल्कि उन्होंने यह भी देखा कि समझौता होनेके पहले शायद बहुतेरे युवकोंको आत्मबलि देनी होगी।

सोराबजीने अपने जोहान्सबर्ग आनेकी सूचना वहांके पुलिस-सुपरिंटेंडेंटको दी और उसके साथ यह भी लिखा कि नई बस्तीके कानूनके अनुसार मैं अपने आपको ट्रांसवालमें रहनेका हकदार मानता हूं, इसलिए कि मुझे अंग्रेजी भाषाका

सामान्य ज्ञान है और स्थानीय अधिकारी इसकी परीक्षा लेना चाहें तो देनेको तैयार हूं। इस पत्रका उन्हें कोई जवाब न मिला था। कुछ दिन बाद उसका जवाब समनके रूपमें मिला।

अदालतमें मुकदमा चला। १९०८ की ८ वीं जुलाईको उसकी सुनवाई हुई। अदालतका कमरा भारतीय दर्शकोंसे भर गया था। मुकदमा शुरू होनेके पहले अदालतके अहातेमें उपस्थित भारतीयोंको इकट्ठा करके तात्कालिक सभा की गई। सोराबजीने उसमें जोशीला भाषण दिया। उसमें यह प्रतिज्ञा की कि जबतक हमारी विजय न हो तबतक जितनी बार जेल जाना पड़े उतनी बार जानेको तैयार रहूंगा और चाहे जो संकट आये उसे सहन करूंगा। यह अरसा इतना लंबा था कि इस बीच मैंने सोराबजीको अच्छी तरह पहचान लिया था और समझ गया था कि वह अवश्य सच्चे रत्न निकलेंगे। मुकदमा पेश हुआ। मैं वकीलकी हैसियतसे खड़ा हुआ। समनमें कई दोष थे। उन दोषोंके कारण मैंने सोराबजीके विरुद्ध निकाले हुए समनको रद कर देनेकी मांग की। सरकारी वकीलने जवाबमें दलील पेश की; पर अदालतने अगले दिन मेरी दलीलको मान कर समन रद कर दिया और सोराबजीको रिहा कर दिया। कौम खुशीसे पागल हो गई और कह सकते हैं कि उसके पागल हो जानेका कारण भी था। दूसरा समन निकाल कर फौरन ही सोराबजी पर पुनः मुकदमा चलानेकी हिम्मत तो सरकारको किस तरह हो सकती थी? और हुआ भी यही। इसलिए सोराबजी सार्वजनिक कामोंमें लग गये।

पर यह छुटकारा सदाके लिए नहीं था। सोराबजीको तुरंत चेतावनी मिली कि १० जुलाईको फिर अदालतमें हाजिर हों। उस दिन मजिस्ट्रेटने उन्हें सात दिनके अंदर ट्रांसवाल छोड़ देनेका हुक्म दिया। अदालतका हुक्म तामील हो जानेके बाद सोराबजीने पुलिस-सुपरिंटेंडेंट मि० वरनोंनको सूचना दी कि

मेरा ट्रांसवालसे चले जानेका इरादा नहीं है। इसपर २० जुलाईको वह फिर अदालतके सामने लाये गये और मजिस्ट्रेटकी आज्ञा न माननेके जुर्ममें उन्हें एक महीनेकी कड़ी कैदकी सजा दी गई।

पर स्थानीय हिंदुस्तानियोंको सरकार गिरफ्तार ही नहीं करती थी। उसने देखा कि गिरफ्तारियां जितनी ज्यादा होंगी हिंदुस्तानियोंका जोश उतना ही बढ़ता जायगा। फिर किसी मुकदमेमें किसी-न-किसी कानूनी बारीकीके कारण भारतीय अभियुक्त छूट जाता था तो इससे भी जोश बढ़ता। सरकारको जो कानून बनाने थे वे सब पास कर चुकी थी। बहुतसे हिंदुस्तानियोंने अपने परवाने जला जरूर डाले थे; पर उन्होंने परवाने लेकर ट्रांसवालमें रहनेका अपना हक तो साबित कर ही दिया था। अतः उन्हें जेल भेजनेके लिए ही उनपर मुकदमा चलानेमें सरकारको कोई फायदा नहीं दिखाई दिया और उसने यह भी सोचा कि वह खामोश रहेगी तो आंदोलन करनेवाले आंदोलनका कोई दरवाजा खुला न रहनेके कारण अपने आप शांत हो जायंगे। पर सरकारका यह हिसाब गलत था। कौमने उसकी चुप्पी तोड़नेके लिए ऐसा नया कदम उठाया कि वह टूटकर ही रही और सोराबजी पर फिर मुकदमा चलाना पड़ा।

: ६ :

सेठ दाऊद मुहम्मद आदिका लड़ाईमें शामिल होना

कौमने जब देखा कि सरकार खुद कुछ न करके उसको थका देना चाहती है तब दूसरा कदम उठाना उसके लिए जरूरी हो गया। सत्याग्रहीमें जबतक कष्ट सहन करनेकी शक्ति हो

तबतक वह थकता ही नहीं। इसलिए कौम सरकारकी धारणाको गलत साबित कर देनेमें समर्थ थी।

नेटालमें अनेक ऐसे हिंदुस्तानी बसते थे जिन्हें ट्रांसवालमें बसनेका पुराना हक था। उन्हें व्यापारके लिए ट्रांसवालमें दाखिल होनेकी आवश्यकता नहीं थी। पर कौम मानती थी कि उन्हें यहां आनेका हक है। फिर वे थोड़ी बहुत अंग्रेजी तो जानते ही थे। इसके सिवा सोराबजी जितनी शिक्षा पाये हुए भारतीयोंके प्रवेशसे तो सत्याग्रहके नियमका किसी तरह भंग होता ही नहीं था। अतः हमने दो तरहके हिंदुस्तानियोंको दाखिल करनेका निश्चय किया : एक तो वे जो पहले ट्रांसवालमें रह चुके थे, दूसरे वे जिन्होंने खास तौरसे अंग्रेजी पढ़ी हो, यानी जो शिक्षित कहे जाते हों।

इनमें सेठ दाऊद मुहम्मद और पारसी रुस्तमजी ये दो बड़े व्यापारियोंमेंसे थे और सुरेन्द्रराय मढ़े, प्रागजी खंडूभाई देसाई, हरिलाल गांधी, रतनशी सोढा आदि शिक्षित जनोंमेंसे थे।

सेठ दाऊद मुहम्मदका परिचय पाठकोंको करा दूं। ये नेटाल इंडियन कांग्रेसके अध्यक्ष थे और उन भारतीय व्यापारियोंमेंसे थे जो सबसे पहले दक्षिण अफ्रीकामें पहुंचे थे। वह सूरतके सुन्नी जमातके बोहरा थे। दक्षिण अफ्रीकामें मुझे ऐसे थोड़े ही हिंदुस्तानी मिले जो चतुराईमें उनकी बराबरी कर सकें। उनकी समझनेकी शक्ति बहुत अच्छी थी। अक्षरज्ञान थोड़ा ही था, पर अभ्याससे अंग्रेजी और डच अच्छी बोल लेते थे। यूरोपियन व्यापारियोंके साथ अपना काम मजेसे चला लेते थे। उनकी दानशीलता विख्यात थी। उनके यहां नित्य कोई ५० मेहमानोंका खाना तो होता ही था, कौमी चन्दोंमें उनका नाम मुखियाओंमें होता। उनके एक बेटा था जो अमूल्य रत्न था। वह चारित्र्यमें बापसे बहुत बढ़ा-चढ़ा था। उसका हृदय स्फटिक मणिके समान था। इस बेटेके चारित्र्य-वेगको दाऊद सेठने कभी रोका

नहीं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि वह अपने पुत्रको पूजते थे। वह चाहते थे कि उनका एक भी दोष हुसेनमें न हो। उन्होंने उसे विलायत भेजकर अच्छी शिक्षा दिलाई थी; पर सेठ दाऊद इस रत्नको भरी जवानीमें खो बैठे। क्षय रोगने हुसेनको पकड़ा और उसका प्राण हर लिया। यह घाव कभी भरा नहीं। हुसेनके साथ हिंदुस्तानी कौमकी बड़ी-बड़ी आशाएं भी डूब गईं। हुसेनके लिए हिंदू-मुसलमान दाईं-बाईं आंखें थे। उसका सत्य तेजस्वी था। आज दाऊद सेठ भी इस लोकमें नहीं हैं। काल कब किसीको छोड़ता है?

पारसी रुस्तमजीका परिचय मैं करा चुका हूं। शिक्षित भारतीयोंमेंसे अधिकांशको पाठक जानते हैं। यह प्रकरण मैं बिना कोई पुस्तकादि अपने सामने रखे लिख रहा हूं। इस कारण कुछ नाम छूट गये होंगे। वे भाई मुझे इसके लिए माफ करेंगे। ये प्रकरण नाम अमर करनेके लिए नहीं लिखे जा रहे हैं; बल्कि सत्याग्रहका रहस्य समझाने और यह बतानेके लिए लिखे जा रहे हैं कि उसकी विजय कैसे हुई। उसमें कैसे-कैसे विघ्न आये और वे किस तरह दूर किये जा सके। जहां-जहां नामों और उन नामोंको धारण करनेवालोंकी चर्चा भी है वहां भी उद्देश्य यही है कि पाठक जान लें कि दक्षिण अफ्रीकामें अपढ़ कहलाने-वालोंने कैसा पराक्रम किया। हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि कैसे साथ मिल सके और कैसे व्यापारियों, शिक्षितवर्ग आदिने अपने कर्तव्यका पालन किया। जहां गुणीका परिचय दिया है वहां उसका नहीं, उसके गुणका स्तवन किया है।

इस प्रकार जब दाऊद सेठ अपनी सत्याग्रही सेना लेकर ट्रांस-वालकी सरहदपर पहुंचे तब सरकार उनका सामना करनेको तैयार थी। वह इतने बड़े दलको ट्रांसवालमें प्रवेश करने देती तो उसकी हँसी होती, इसलिए उन्हें गिरफ्तार करनेसे ही छुट-कारा था। वे पकड़ लिये गये। मुकदमा चला। १८ अगस्त १९०८को

मजिस्ट्रेटने उन्हें सात दिनके अंदर ट्रांसवालकी सरहदसे बाहर हो जानेका हुक्म दिया। उन्होंने आज्ञाका उल्लंघन किया और २८ अगस्तको प्रिटोरियामें फिर गिरफ्तार किये गये और बिना मुकदमा चलाये ही देशसे निकाल दिये गये। ३१ तारीखको वे फिर ट्रांसवालकी सीमामें दाखिल हुए और अंतमें ८ सितंबरको वोक्सरस्टमें उन्हें ५० पौंडके जुर्माने या तीन महीनेकी कड़ी कैदकी सजा सुनाई गई। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि उन्होंने खुशीसे जेल जाना पसंद किया।

कौमका जोश बढ़ा। ट्रांसवालके भारतीय नेटालसे उनकी मददको आये हुए अपने भाइयोंको छुड़ा न सके तो जेलमें उनका साथ तो उन्हें देना ही चाहिए। इस विचारसे ट्रांसवालके भारतीय भी जेलकी राह ढूंढने लगे। उनकी गिरफ्तारीके कितने ही रास्ते थे। ट्रांसवालमें बसनेवाला हिंदुस्तानी परवाना न दिखाये तो उसे व्यापारका परवाना न मिलेगा और परवानेके बिना व्यापार करे तो अपराधी माना जाता। नेटालसे ट्रांसवालकी सरहदमें दाखिल होना हो तो भी परवाना दिखाना जरूरी था। न दिखानेवाला गिरफ्तार कर लिया जाता। परवाने तो जला डाले गये थे, इसलिए रास्ता साफ था। दोनों रास्ते पकड़े गये। कुछ लोग बिना परवाना दिखाये फेरी करने लगे और कुछ ट्रांसवालकी सरहदमें दाखिल होते समय परवाना न दिखाकर गिरफ्तार होने लगे।

अब युद्धका रंग जमा। सबकी परीक्षा होने लगी, नेटालसे और भारतीय आये। जोहान्सबर्गमें भी धर-पकड़ शुरू हुई। स्थिति यह हो गई कि जो चाहे वह गिरफ्तार हो सकता था। जेलखाने भरे जाने लगे। नेटालसे आये हुए आक्रमणकारियोंको तीन-तीन महीनेकी सजा मिली, ट्रांसवालके फेरीवालोंको चार दिनसे लगाकर तीन महीनेतककी।

जो लोग इस तरह गिरफ्तार हुए उनमें हमारे इमाम

साहब इमाम अब्दुलकादिर बावजीर भी थे। वह फेरी करके गिरफ्तार हुए थे। उनकी सजाकी शुरुआत चार दिनकी कड़ी कैदसे हुई। उनका शरीर इतना नाजुक था कि लोग उनके जेल आनेकी बात सुनकर हँसते थे। कुछ लोग आकर मुझसे कहते कि भाई, इमाम साहबको न लो तो अच्छा है। वह कौमको लज्जित करेंगे। मैंने इस चेतावनीको अनसुनी किया। इमाम साहबकी शक्तिकी नाप-तौल करनेवाला मैं कौन होता था? इमाम साहब कभी नंगे पांव न चलते, शौकीन थे, मलायी स्त्रीसे ब्याह किया था, घर सजा हुआ रखते और घोड़े-गाड़ीके बिना कहीं नहीं जाते थे। यह सब सच था, पर उनके मनको कौन जान सकता था? चार दिनकी सजा भुगत कर रिहा होनेके बाद इमाम साहब फिर जेल गये। वहां आदर्श कैदीके रूपमें रहे, कहीं मशक्कत करके भोजन करते और जिसे नित्य नयी चीजें खानेकी आदत थी वह मकईके आटेकी लपसी खाकर खुदाका शुक्र बजा लाता। इन कष्टोंसे उन्होंने हिम्मत नहीं हारी; बल्कि सादगी अख्तियार की। कैदीकी हैसियतसे उन्होंने पत्थर तोड़े, झाड़ लगाई, कैदियोंकी पांतमें खड़े रहे। अंतमें फिनिक्समें पहुंचकर पानी भरने और अक्षर जोड़ने (कंपोज करने)का काम भी किया। फिनिक्स-आश्रममें रहनेवालेके लिए अक्षर जोड़नेकी कला सीख लेना जरूरी था। इमाम साहबने इस कार्यको यथाशक्ति सीख लिया था। ये इमाम साहब इन दिनों हिंदुस्तानमें अपना भाग अर्पण कर रहे हैं।

पर ऐसे तो बहुतेरे इस जेलमें शुद्ध हो गये।

जोसफ रॉयपेन बैरिस्टर, कैम्ब्रिजके ग्रेजुएट, नेटालमें गिरमिटिए मा-बापके घर जन्मे थे, पर साहब लोग बन गये थे। वह तो घरमें भी बूटके बिना एक कदम भी नहीं चलते थे। इमाम साहबके लिए वजू करते समय पैर धोना जरूरी था। नमाज नंगे

पांव करनी चाहिए थी। बेचारे रॉयपेनको तो इतना भी नहीं करना था। उन्होंने बैरिस्टरीसे छुट्टी लेकर साग-तरकारीकी टोकरी बगलमें दबाई और फेरी करके गिरफ्तार हो गये। उन्होंने भी जेल भुगती। रॉयपेनने मुझसे पूछा—"पर मुझे तीसरे दरजेमें सफर करना चाहिए ?" मैंने जवाब दिया—"अगर आप पहले या दूसरे दरजेमें सफर करेंगे तो मैं किसको तीसरे दरजेमें बैठाऊंगा ? जेलमें आपको बैरिस्टरके रूपमें कौन पहचानेगा ?" जोसफ रॉयपेनके लिए यह जवाब काफी था। वह भी जेलमें चले गये।

सोलह बरसके नौजवान तो कितने ही जेलमें पहुंचे थे। मोहनलाल मानजी घेलानी तो चौदह ही बरसका था। जेलमें अधिकारियोंने हमें सतानेमें कुछ उठा नहीं रखा। पाखाने साफ कराये। हिंदुस्तानी कैदियोंने उन्हें हँसते-हँसते साफ किया। पत्थर तुड़वाये और अल्ला या रामका नाम लेकर सत्याग्रहियोंने उन्हें तोड़ा। तालाब खुदवाये, पथरीली जमीन खुदवाई। उनकी हथेलियोंमें छाले पड़ गये, कोई-कोई असह्य कष्टसे मूर्छित भी हो गये; पर किसीने हिम्मत नहीं हारी।

कोई यह न समझे कि जेलमें आपसमें झगड़े या ईर्ष्या-द्वेष नहीं होता था। ज्यादा जोरकी तकरार तो खानेको लेकर होती है; पर हम उससे भी उबर गये।

मैं भी दूसरी बार गिरफ्तार हुआ। वोक्सरस्टके जेलखानेमें एक वक्त हम लगभग ७५ हिंदुस्तानी कैदी इकट्ठे हो गये थे। अपनी रसोई हमने अपने हाथमें ले ली। झगड़ेका बचाव मेरे ही हाथों हो सकता था, इससे मैं ही रसोइया बना। मेरे साथी प्रेमके वश मेरे हाथकी बनी कच्ची-पक्की, बिना गुड़-शक्करकी पतली लपसी पी लेते थे।

सरकारने सोचा कि मुझे और कैदियोंसे अलग कर दें

तो मैं भी जरा आंच खा जाऊं और दूसरे कैदी भी ढीले हो जाएं; पर इसका उसे कोई बढ़िया मौका नहीं मिला।

मुझे प्रिटोरियाकी जेलमें ले गये। यहां मैं तनहाई-वाली कोठरीमें रखा गया, जिसमें केवल खतरनाक कैदी रखे जाते हैं। सिर्फ दो बार कसरत करानेके लिए बाहर निकाला जाता। वोक्सरस्टमें हमें घी दिया जाता था, यहां वह भी नदारद। इस जेलके गौण कष्टोंके वर्णनमें मैं नहीं उलझना चाहता। जिसको उसकी जिज्ञासा हो वह 'दक्षिण अफ्रीकाके जेलके मेरे अनुभव' पुस्तक पढ़ ले।

इतनेपर भी हिंदुस्तानियोंने हार नहीं मानी। सरकार सोच-विचारमें पड़ी। जेलमें कितने हिंदुस्तानियोंको भरे? इससे उलटा खर्च बढ़ता था। अब वह क्या करे?

: ७ :

देशनिकाला

ख़ूनी कानूनमें तीन तरहकी सजाएं रखी गई थीं: जुर्माना, कैद और देशनिकाला। अदालतको तीनों सजाएं एक साथ देनेका अधिकार था और यह अधिकार छोटे-छोटे मजिस्ट्रेटों-को भी दे दिया गया था। पहले तो देशनिकालेके मानी थे अपराधीको ट्रांसवालकी हदसे बाहर नेटाल, फ्री स्टेट या डेलागोआ बे (पुर्तगाली पूर्वी अफ्रीका) की हदमें ले जाकर छोड़ देना। उदाहरणार्थ नेटालकी तरफसे आये हुए भारतीयोंको वोक्सरस्ट स्टेशनकी हदसे बाहर ले जाकर छोड़ देते थे। इस तरहके देशनिकालेमें थोड़ी-सी तकलीफके सिवा और कोई नुकसान न था। यह दंड तो केवल खिलवाड़ था। हिंदुस्तानियोंमें इससे उलटा और ज्यादा जोश आता था।

अतः स्थानीय सरकारको हिंदुस्तानियोंको हैरान करनेकी नई तरकीब सोचनी पड़ी। जेलोंमें जगह रह नहीं गई थी। सरकारने सोचा कि हिंदुस्तानियोंको अगर हिंदुस्तानतक पहुंचा सके तो वे जरूर डरकर हमारी शरण आयंगे। इसमें कुछ सचाई जरूर थी। इस प्रकार एक बड़े जत्थेको सरकारने हिंदुस्तान भेजा। इन निर्वासितोंको बहुत कष्ट सहने पड़े। खाने-पीनेको भी जो सरकार दे वही मिलता, यानी भारी कष्ट था। सब डेकमें ही भेजे गए, फिर इस तरह निर्वासित होनेवालोंके पास अपनी जमीन होती, दूसरी मिल्कियत होती। अपना धंधा-रोजगार होता, अपने आश्रित बाल-बच्चे होते, कुछके सिरपर कर्ज भी होता। शक्ति होते यह सब गंवाने, दिवालिया बननेको तैयार होनेवाले लोग अधिक नहीं हो सकते थे।

यह सब होते हुए भी बहुतसे भारतीय अपने निश्चयपर अटल रहे। बहुतेरे ढीले भी पड़ गये; पर उन्होंने इतना ही किया कि अपने आपको जान-बूझकर गिरफ्तार नहीं कराया। उनमेंसे अधिकांशने इतनी कमजोरी नहीं दिखाई कि जलाए हुए परवानोंको फिरसे निकलवा लें; पर कुछने डरकर फिरसे परवाने ले लिए।

फिर भी जो लोग दृढ़ रहे उनकी संख्या नगण्य नहीं थी। उनकी बहादुरीकी हद न थी। मेरा विश्वास है कि उनमें कितने ही ऐसे थे जो हँसते-हँसते फांसीके तख्तेपर चढ़ जाते। माल-जायदादकी चिंता तो उन्होंने छोड़ ही दी थी; पर जो हिंदुस्तान भेज दिये गये उनमें बहुतेरे गरीब और सीधे-सादे आदमी थे। वे केवल विश्वासके बलपर ही लड़ाईमें शामिल हुए थे। उनपर इतना जुल्म होना असह्य लगा। उनकी मदद भी कैसे की जाय, यह समझना कठिन था। पैसा तो अपने पास थोड़ा ही था। ऐसी लड़ाईमें पैसेकी मदद देने

जायं तो लड़ाई ही हार जायं। उसमें लालची आदमी न घुस आएं, इस डरसे पैसेका लालच एक भी आदमीको नहीं दिया जाता था। हां, सहानुभूतिकी सहायता देना हमारा धर्म था।

अनुभवसे मैंने देखा है कि सहानुभूति, मीठी निगाह और मीठे बोल जो काम कर सकते हैं वह पैसेसे नहीं हो सकता। पैसेका लोभी भी अगर उसको हमदर्दी न मिले तो अंतमें वह उसे त्याग देता है। इसके विपरीत जो प्रेमसे वश हुआ है वह अनेक संकट सह लेनेके लिए तैयार रहता है।

अतः हमने निश्चय किया कि इन निर्वासित भाइयोंके लिए हमदर्दी जो कुछ कर सकती है वह किया जाय। उन्हें आश्वासन दिया कि हिंदुस्तानमें आप लोगोंके लिए यथोचित प्रबंध किया जायगा। पाठकोंको जान लेना चाहिए कि इन लोगोंमेंसे बहुतेरे तो गिरमिट-मुक्त थे। हिंदुस्तानमें उनका कोई सगा-संबंधी न मिलता। कुछ तो दक्षिण अफ्रीकामें ही जन्मे भी थे। सबके लिए हिंदुस्तान परदेश-सा तो हो ही गया था। ऐसे निराधार जनोंको समुद्रके किनारे उतारकर भटकनेको छोड़ देना तो क्रूरता ही मानी जायगी। इसलिए उन्हें इतमीनान दिलाया गया कि हिंदुस्तानमें उनके लिए सब आवश्यक प्रबंध कर दिया जायगा।

यह सब करते हुए भी जबतक उनके साथ कोई मददगार न हो तबतक उनको शांति नहीं मिल सकती थी। देशनिकाला पानेवालोंका यह पहला ही जत्था था। स्टीमर छूटनेके कुछ ही घंटे बाकी रह गये थे। चुनावके लिए वक्त न था। साथियोंमेंसे भाई पी० के० नायडूपर मेरी नजर गई। मैंने पूछा—"इन गरीब भाइयोंको पहुंचाने हिंदुस्तान जा सकते हो?"

"क्यों नहीं?"

"पर स्टीमर तो छूटने ही वाला है।"

"छूटने दीजिए।"

"पर तुम्हारे कपड़े-लत्तेका क्या होगा? खानेका क्या होगा?"

"कपड़े जो पहने हूं वही काफी होंगे। खाना स्टीमरसे मिल जायगा।"

मेरे हर्ष और आश्चर्यकी सीमा न रही। यह बातचीत पारसी रुस्तमजीके मकानपर हुई थी। वहीं उनके लिए कुछ कपड़े-कंबल आदि मांग-मूंगकर उन्हें रवाना किया।

"देखना, रास्तेमें इन भाइयोंकी पूरी सम्हाल रखना। उन्हें सुलाकर सोना। मैं मद्रासमें श्रीनटेसन्‌को तार दे रहा हूं। वह जो कहें सो करना।"

"मैं अपने आपको सच्चा सिपाही साबित करनेकी कोशिश करूंगा।" यह कहकर नायडू रवाना हो गए। मैंने सोच लिया कि जहां ऐसे वीर पुरुष हों वहां हार हो ही नहीं सकती। भाई नायडूका जन्म दक्षिण अफ्रीकामें ही हुआ था। हिंदुस्तानके उन्हें कभी दर्शन ही नहीं हुए थे। मैंने श्रीनटेसन्‌के नाम सिफारिशी चिट्ठी दी थी। उन्हें तार भी दे दिया।

यह कहना अत्युक्ति न होगा कि हिंदुस्तानमें इस वक्त प्रवासी भारतीयोंके कष्टका अध्ययन करनेवाले, उनकी सहायता करनेवाले और उनके बारेमें नियमित तथा ज्ञानपूर्वक लिखनेवाले अकेले श्रीनटेसन् ही थे। उनके साथ मेरा पत्रव्यवहार नियमित रूपसे हुआ करता था। ये निर्वासित भाई जब मद्रास पहुंचे तो श्रीनटेसन्‌ने उनकी पूरी मदद की। भाई नायडूके जैसे समझदार आदमीके साथ रहनेसे उन्हें भी समुचित सहायता मिली। उन्होंने नगरवासियोंसे चंदा किया और निर्वासितोंको यह मालूम नहीं होने दिया कि हम देशनिकालेका दंड पाकर यहां आये हैं।

ट्रांसवाल सरकारका यह काम जितना क्रूरता-भरा था

उतना ही गैरकानूनी भी था। वह खुद भी इसको जानती थी। आमतौरसे लोगोंको इस बातकी जानकारी नहीं रहती कि सरकारें अकसर जान-बूझकर अपने कानून तोड़ा करती हैं। कठिनाईमें पड़नेपर नया कानून बनानेका समय रहता नहीं, इसलिए कानूनको तोड़कर मनमानी कर लेती हैं और पीछे या तो नये कानून बना लेती हैं या ऐसी स्थिति पैदा करती हैं कि जिससे जनता इस बातको भूल जाय कि सरकारने कानून तोड़ा है।

सरकारके इस गैरकानूनी कामके खिलाफ हिंदुस्तानियोंने जबर्दस्त आंदोलन चलाया। हिंदुस्तानमें भी शोर मचाया और ट्रांसवाल सरकारके लिए इस तरह गरीब हिंदुस्तानियोंको देशनिकाला देना कठिन हो गया। हिंदुस्तानियोंको जो कानूनी कार्रवाइयां करनी चाहिए थीं वे सब उन्होंने कीं। अपीलें कीं और उनमें भी उनकी जीत हुई। अंतमें निर्वासितोंको ठेठ हिंदुस्तान भेजनेकी प्रथा बंद हुई।

पर इसका असर सत्याग्रही सेनापर पड़े बिना न रहा। अब उसमें सच्चे योद्धा ही रह गये। 'सरकार कहीं पकड़कर हिंदुस्तान न भेज दे' इस भयका त्याग सब नहीं कर सके।

कौमका उत्साह भंग करनेके लिए सरकारने यही एक काम नहीं किया। पिछले प्रकरणमें मैं बता चुका हूं कि सत्याग्रही कैदियोंको दुःख देनेमें उसने जरा भी कसर नहीं रखी। उनसे पत्थर तुड़वाने तकके काम कराये जाते। इतनेसे भी आगे सरकार बढ़ गई। पहले सभी कैदी साथ रखे जाते थे। अब उन्हें अलग-अलग रखनेकी नीति ग्रहण की गई और हर जेलमें उन्हें खूब तकलीफ दी गई। ट्रांसवालका जाड़ा बहुत सख्त होता है। ठंड इतनी अधिक होती है कि सबेरे काम करते हुए हाथ अकड़ जाते हैं। इससे कैदियोंके लिए जाड़ेके दिन बहुत कठिन हो गये। ऐसी दशामें कुछ कैदी एक छोटीसी

जेलमें रखे गये जहां कोई उनसे मिलने भी नहीं जा सकता। इस जत्थेमें स्वामी नागप्पा नामका एक १८ बरसका नौजवान सत्याग्रही था। वह जेलके नियमोंका पालन करता और जो काम उसे सौंपा जाता पूरा करता। सबेरे, पौ फटते ही, उसे सड़कपर मिट्टी कूटनेके लिए ले जाते थे। इससे उसे फेफड़ेके शोथ (डबल निमोनिया) का कठिन रोग हो गया और अंतमें ७ जुलाई १९०९ को उसने अपने प्रिय प्राणोंकी बलि दे दी। नागप्पाके साथियोंका कहना है कि अंतिम क्षणतक वह लड़ाई-की ही बात सोचता, करता रहा। जेल जानेका उसे कभी पछतावा न हुआ। देशकी खातिर मिली हुई मौतको उसने इस तरह गले लगाया जैसे कोई मित्रसे मिलता है। हमारे पैमानेसे नापा जाय तो नागप्पाको निरक्षर कहना होगा। अंग्रेजी, जुलू आदि भाषाएं वह अभ्याससे बोल लेता था। अंग्रेजी टूटी-फूटी शायद लिख भी लेता हो; पर उसे विद्वानोंकी पंक्तिमें तो नहीं ही बिठा सकते थे। फिर भी नागप्पाके धीरज, उसकी शक्ति, उसकी देशभक्ति, आमरणान्त बनी रहनेवाली उसकी दृढ़ताका विचार करें तो क्या उसके विषयमें और कुछ चाहने लायक रह जायगा? बड़े विद्वानोंके न मिलनेपर भी ट्रांसवालकी लड़ाई चल सकी; पर नागप्पा-जैसे सिपाही न मिले होते तो क्या वह चल सकती थी?

जैसे नागप्पाकी मृत्यु जेलके कष्टोंसे हुई, वैसे ही नारा-यण स्वामीकी देशनिकालेसे हुई (१६ अक्तूबर १९१०)। देशनिकालेकी तकलीफें उसकी मौत साबित हुईं। पर इन घटनाओंसे कौमने हिम्मत न हारी। हाँ, कमजोर दिलवाले मैदानसे खिसक गये। पर वे भी अपनी शक्तिभर कुर्बानी तो कर ही चुके थे। कमजोर जानकर हमें उनकी अवगणना नहीं करनी चाहिए। हममें यह रिवाज हो गया है कि आगे बढ़ जानेवाले पीछे छूटनेवालोंका तिरस्कार करते और अपनेको

बड़ा वीर मानते हैं। हकीकत अकसर इसकी उलटी होती है। जिसकी शक्ति पचास रुपये देनेकी हो वह पच्चीस देकर बैठ जाय और पांच देनेकी शक्ति रखनेवाला पूरे पांच हाजिर कर दे तो हम यही मानेंगे कि पांच देनेवालेने अधिक दिया। फिर भी पच्चीस देनेवाला पांच देनेवालेके सामने अकसर इतराता है। पर हम जानते हैं कि उसके इतरानेका कोई भी कारण नहीं। वैसे ही अपनी निर्बलताके कारण आगे न जा सकनेवाला अगर अपनी सारी शक्ति खर्च कर चुका हो और शक्ति चुरा रखनेवाला उस नाप-तौलमें उससे अधिक शक्ति लगा रहा हो तो भी पहला उससे अधिक योग्य है। इसलिए जो लोग युद्धके अधिक कठोर होनेपर बैठे रहे उन्होंने भी देशकी सेवा तो की ही। अब वह वक्त आया जब अधिक सहन-शक्ति और अधिक हिम्मतकी आवश्यकता थी। इसमें भी ट्रांसवालके भारतीय पीछे न रहे। युद्ध जारी रखनेके लिए जितनेकी जरूरत थी उतने तो रहे ही।

इस तरह हिंदुस्तानियोंकी दिन-दिन अधिक कठिन परीक्षा होने लगी। ज्यों-ज्यों वे अधिक बल प्रकट करते त्यों-त्यों सरकार भी और ज्यादा ताकत काममें लाती। खतरनाक कैदियोंके लिए या जिन्हें खास तौरसे सीधा करना होता है उनके लिए हर देशमें कुछ खास कैदखाने रखे जाते हैं। ट्रांसवालमें भी ऐसा ही था। ऐसे एक जेलखानेका नाम 'डायकलुफ' था। वहांका दारोगा भी सख्त, वहांकी मशक्कत भी सख्त। फिर भी उसको भी पूरा कर देनेवाले कैदी मिल गये। वे मशक्कत करनेको तैयार थे, पर अपमान सहनेको तैयार नहीं थे। दारोगाने उनका अपमान किया, इसलिए उन्होंने उपवास आरंभ किया। शर्त यह थी—"जबतक तुम इस दारोगाको नहीं हटाते या हमारी जेल नहीं बदलते तबतक हम अन्न ग्रहण नहीं करेंगे।" यह उपवास शुद्ध था। उपवास

करनेवाले ऐसे आदमी नहीं थे जो छिपे तौरपर कुछ खा-पी लेते हों। पाठकोंको जान लेना चाहिए कि ऐसे मामलेमें यहां हिंदुस्तानमें जो आंदोलन हो सकता है ट्रांसवालमें उसके लिए अधिक अवकाश नहीं था। वहांके जेल-नियम भी अधिक कड़े थे। ऐसे समयमें भी कैदियोंको देखने जानेका वहां रिवाज नहीं था। सत्याग्रही जब जेलमें पहुंच गया तब आमतौरसे उसे अपनी फिक्र खुद करनी पड़ती। यह लड़ाई गरीबोंकी थी और गरीबोंके तरीकेसे चलाई जा रही थी। अतः ऐसी प्रतिज्ञा-की जोखिम बहुत बड़ी थी, फिर भी ये सत्याग्रही दृढ़ रहे। उस वक्तका उनका कार्य आजकी तुलनामें अधिक स्तुत्य गिना जायगा; क्योंकि उस समय अनशनकी आदत लोगोंको नहीं पड़ी थी। पर वे सत्याग्रही अडिग रहे और उनकी जीत हुई। सात दिन के उपवासके बाद उन्हें दूसरी जेलमें भेजनेका हुक्म आ गया।

: ८ :

फिर शिष्ट-मंडल

इस प्रकार सत्याग्रहियोंको जेलमें ठूंसने और देशनिकाला देनेका चक्र चल रहा था। इसमें ज्वारभाटा आता रहता। दोनों पक्ष कुछ ढीले भी हो रहे थे। सरकारने देखा कि जेलोंको भरने-से पक्के सत्याग्रही हारनेवाले नहीं। देशनिकालेसे उसकी बदनामी होती थी। मामले अदालतमें पहुंचते तो उनमें उसकी हार भी होती थी। हिंदुस्तानी भी जोरदार मुकाबले-के लिए तैयार नहीं थे। न इतने सत्याग्रही अब रह ही गये थे। कुछ थक गये थे, कुछने बिलकुल हिम्मत हार दी थी और अपने निश्चयपर अटल रहनेवालोंको मूर्ख समझते थे।

पर ये मूर्ख अपने आपको बुद्धिमान मानकर भगवान् और अपनी लड़ाई तथा उसके साधनोंकी सचाईपर पूरा भरोसा रखे हुए बैठे थे। वे मानते थे कि अंतमें तो सत्यकी ही जय होती है।

दक्षिण अफ्रीकाकी राजनीति तो एक क्षणके लिए भी स्थिर नहीं होती थी। बोअर और अंग्रेज दोनों चाहते थे कि दक्षिण अफ्रीकाके सब उपनिवेशोंको इकट्ठा करके और अधिक स्वतंत्रता प्राप्त करें। जनरल हर्टजोग चाहते थे कि ब्रिटेनसे बिलकुल नाता टूट जाय। दूसरे लोग उससे नामका संबंध बनाए रखना पसंद करते थे। अंग्रेज संबंधका पूर्ण विच्छेद तो सहन न कर सकते थे। जो कुछ मिलना था वह ब्रिटिश पार्लमेंटके जरिये ही मिल सकता था, इसलिए बोअरों और अंग्रेजोंने यह तै किया कि दक्षिण अफ्रीकाकी ओरसे एक शिष्ट-मंडल विलायत जाय और उसका मामला ब्रिटिश मंत्रि-मंडलके सामने रखे।

भारतीयोंने देखा कि चारों उपनिवेश एक हो गये, उनका 'यूनियन' (संघ) बन गया तो हमारी जैसी दशा है उससे भी बुरी हो जायगी। सभी उपनिवेश सदा हिंदुस्तानियोंको अधिक-से-अधिक दबाये रखना चाहते थे। यह तो स्पष्ट ही था कि ये सब भारतके द्वेषी आपसमें और ज्यादा मिल गये तो हिंदुस्तानी और ज्यादा दबाये जायंगे। गो हिंदुस्तानियोंकी आवाज नक्कारखानेमें तूतीकी आवाज-जैसी ही थी, फिर भी हमें एक भी कोशिशसे बाज न रहना चाहिए, यह सोचकर भारतीयोंका एक शिष्ट-मंडल फिर विलायत भेजनेका निश्चय हुआ। इस बार पोरबंदरके मेमन सेठ हाजी हबीब शिष्ट-मंडलमें मेरे साथी चुने गये। इनका ट्रांसवालका कारबार बहुत पुराने जमानेसे था। अनुभव विस्तृत था। अंग्रेजी पढ़ी नहीं थी, फिर भी अंग्रेजी, डच, जूलू आदि भाषाएं आसानीसे समझ लेते थे। इनकी सहानुभूति सत्याग्रहियों की ओर थी;

पर पूरे सत्याग्रही नहीं कहे जा सकते थे। हम दोनों केपटाउन से जिस जहाज (केनिलवर्थ कासिल) पर रवाना हुए। उसपर दक्षिण अफ्रीकाके मशहूर बुजुर्ग मेरीमेन भी थे। वह यूनियन बनवानेके लिए जा रहे थे। जनरल स्मट्स आदि तो पहलेसे पहुंचे हुए थे। नेटालकी तरफसे भी एक अलग भारतीय शिष्ट-मंडल इस वक्त विलायत गया था। यह सत्याग्रहके सिलसिलेमें नहीं, बल्कि नेटालमें हिंदुस्तानियोंको जो विशेष कष्ट और कठिनाइयां थीं उनकी बात कहने गया था।

इस वक्त लार्ड क्रू उपनिवेश मंत्री थे और लार्ड मॉरले भारत मंत्री। खूब बातचीत हुई। हम बहुतोंसे मिले। जितने पत्रों-के संपादकों और साधारण या उमरावोंकी सभाके सदस्योंसे हम मिल सकते थे उनमेंसे एकसे भी मिले बिना नहीं रहे। लार्ड एम्प्टहिलके बारेमें कह सकता हूं कि उन्होंने हमारी बेहद मदद की। वह मि० मेरीमेन, जनरल बोथा आदिसे मिला करते थे और अंतमें जनरल बोथाका एक संदेसा भी लाये। उन्होंने कहा––"जनरल बोथा आपकी भावनाको समझते हैं। आपकी छोटी मांगें मंजूर कर लेनेको तैयार हैं; पर एशियाटिक कानून रद करने और दक्षिण अफ्रीकामें नये आदमियोंके आनेके संबंधके कानूनमें अदल-बदल करनेको तैयार नहीं हैं। आप चाहते हैं कि कानूनमें जो काले-गोरे-का भेद किया गया है वह दूर कर दिया जाय। उनको इससे इन्कार है। भेद रखना उनके लिए सिद्धांतरूप है और शायद वह सोचते हैं कि मैं इस भेदको दूर कर भी दूं तो दक्षिण अफ्रीकाके गोरे इस बातको कभी सहन नहीं करेंगे। जनरल स्मट्सकी राय भी जनरल बोथाकी जैसी ही है। दोनों कहते हैं कि यह हमारा अंतिम निर्णय और अंतिम प्रस्ताव है। आप इससे अधिक मांगेंगे तो आप दुखी होंगे और आपकी कौम भी दुःखी होगी। अतः आप जो निर्णय करें सोच-समझकर करें।

जनरल बोथाने मुझसे कहा है कि आपसे यह कह दूं और आपकी जिम्मेदारीका खयाल आपको करा दूं।"

यह संदेसा सुनानेके बाद लार्ड एम्प्टहिलने कहा—"देखिये, आपकी सारी व्यावहारिक मांगें तो जनरल बोथा मंजूर कर ही रहे हैं और इस दुनियामें हमें कहीं लेना और कहीं देना तो पड़ता ही है। हम जो चाहते हैं वह सब तो हमें मिल नहीं सकता। इसलिए आपको मेरी अपनी सलाह यही है कि आप इस प्रस्ताव-को स्वीकार कर लें। आपको सिद्धांतके लिए लड़ना हो तो आगे चलकर लड़ सकते हैं। आप दोनों इस बातपर विचार कर लें और फिर जो मुनासिब हो वह जवाब दें।"

यह सुनकर मैंने सेठ हाजी हबीबकी ओर देखा। उन्होंने कहा—"मेरी तरफसे कहिये कि मैं समझौता-पक्षकी ओरसे कहता हूं कि मैं जनरल बोथाका प्रस्ताव स्वीकार करता हूं। वह इतना दे देंगे तो तत्काल हम संतोष कर लेंगे और सिद्धांत-के लिए पीछे लड़ लेंगे। अब कौमका और बरबाद होना मुझे पसंद नहीं। जिस पक्षकी ओरसे मैं बोल रहा हूं उसकी संख्या अधिक है और उसके पास पैसा भी अधिक है।" मैंने इन वाक्योंके अक्षर-अक्षरका उलथा कर दिया और फिर अपने सत्याग्रही पक्षकी ओरसे कहा—"आपने जो कष्ट किया उसके लिए हम दोनों आपके अहसानमंद हैं। मेरे साथीने जो बात कही है वह ठीक है। वह उस पक्षकी ओरसे बोले हैं जो संख्या और पैसा दोनोंमें अधिक बलवान है। जिनकी ओरसे मैं बोल रहा हूं वे पैसेमें उनसे गरीब और संख्यामें थोड़े हैं। पर वे सिरपर कफन बांधे हुए हैं। उनकी लड़ाई व्यवहार और सिद्धांत दोनोंके खातिर है। अगर दोमेंसे एकको छोड़ना ही पड़े तो वे व्यवहारको जाने देंगे और सिद्धांतके लिए लड़ेंगे। जनरल बोथाकी शक्तिका हमें अंदाजा है, पर अपनी प्रतिज्ञाको हम उससे ज्यादा वजनदार मानते हैं, इसलिए उसका पालन

करनेमें हम मर-मिटनेको तैयार हैं। हम धीरज रखेंगे। हमारा विश्वास है कि हम अपने निश्चयपर अटल रहे तो जिस ईश्वरके नामपर हमने प्रतिज्ञा की है वह उसे पूरी करेगा।

"आपकी स्थिति मैं पूरी तरह समझता हूं। आपने हमारे लिए बहुत किया है। अब आप हम मुट्ठीभर सत्याग्रहियोंका और साथ न दे सकें तो हमें उससे भ्रम न होगा और इससे हम आपके उपकारोंको भूलेंगे नहीं। हमें आशा है कि आप भी हमें आपकी सलाह कबूल न कर सकनेके लिए माफ कर देंगे। जनरल बोथाको हम दोनोंकी बातें सुखसे सुनाइएगा और कहिएगा कि हम जो थोड़ेसे सत्याग्रही हैं वे अपनी प्रतिज्ञाका अवश्य पालन करनेवाले और यह आशा रखनेवाले हैं कि हमारी दुःख-सहनकी शक्ति अंतमें उनके हृदयको भेदेगी और वे एशियाटिक कानूनको रद कर देंगे।"

लार्ड एम्प्टहिलने उत्तर दिया, "आप यह न समझिएगा कि मैं आपको छोड़ दूंगा। मुझे भी अपनी भलमनसीकी रक्षा तो करनी ही है। अंग्रेज जिस कामको एक बार हाथमें लेता है उसको यकायक छोड़ता नहीं। आपकी लड़ाई न्यायसंगत है। आप शुद्ध साधनोंसे लड़ते हैं। मैं आपको कैसे छोड़ सकता हूं? पर मेरी स्थिति आप समझ सकते हैं। कष्ट तो आपको ही सहने होंगे। इसलिए समझौता हो सकता हो तो उसे स्वीकार करनेकी सलाह देना मेरा धर्म है। पर आप जिन्हें कष्ट सहन करना है, अपनी टेकके लिए चाहे जितना कष्ट सहनेको तैयार हैं तो मैं आपको कैसे रोक सकता हूं? मैं तो आपको बधाई ही दूंगा। अतः आपकी कमेटीका अध्यक्ष तो बना ही रहूंगा और मुझसे जो मदद बन पड़ेगी वह भी जरूर करता रहूंगा; पर आपको इतना ध्यानमें रखना होगा कि मैं उमराव सभाका एक छोटा सदस्य समझा

जाता हूं। मेरा वजन ज्यादा नहीं है। फिर भी जो कुछ है वह आपके लिए काम आता ही रहेगा, इस विषयमें आप निश्शंक रहें।"

ये प्रोत्साहनके वचन सुनकर हम दोनोंको प्रसन्नता हुई। इस प्रसंगकी एक मधुर वस्तुकी ओर शायद पाठकोंने ध्यान न दिया हो। सेठ हाजी हबीब और मुझमें, जैसा कि ऊपर बता चुका हूं, मतभेद था, फिर भी हममें परस्पर इतना प्रेम और विश्वास था कि सेठ हाजी हबीबको अपना विरोधी वक्तव्य मेरे ही जरिये कहलानेमें हिचक न हुई। वह इतना विश्वास रख सकते थे कि उनका प्रश्न मैं लार्ड एम्प्टहिलके सामने ठीक तौरसे उपस्थित कर दूंगा।

यहां पाठकोंसे एक अप्रस्तुत बात भी कह दूं। विलायतमें रहनेके दिनोंमें बहुतसे भारतीय अराजकतावादियोंके साथ मेरी बातचीत हुई। उन सबकी दलीलोंका खंडन करके और दक्षिण अफ्रीकाके वैसे विचारवाले लोगोंका समाधान करनेके प्रयत्नसे 'हिंदस्वराज' की उत्पत्ति हुई। उसके मुख्य तत्त्वोंकी मैंने लार्ड एम्प्टहिलके साथ भी चर्चा की थी। उसमें उद्देश्य यही था कि वह जरा भी यह न सोच सकें कि मैंने अपने विचारको दबाकर उनके नाम और उनकी सहायताका दक्षिण अफ्रीकाके कामके लिए दुरुपयोग किया। उनके साथ हुई मेरी बहस और बातचीत मुझे सदा याद रही है। उनके घरमें बीमारी होते हुए भी वह मुझसे मिले थे और यद्यपि 'हिंद-स्वराज'में प्रकट किये हुए मेरे विचारोंसे वह सहमत नहीं हुए, फिर भी दक्षिण अफ्रीकाकी लड़ाईमें उन्होंने अपना हिस्सा आखिरतक पूरा अदा किया और हमारा मधुर संबंध अंततक बना रहा।

: ९ :

टाल्स्टाय फार्म—१

इस बार विलायतसे जो शिष्टमंडल लौटा वह अच्छी खबर नहीं लाया। लोग लार्ड एम्प्टहिलके साथ हुई बातचीतका नतीजा क्या निकालेंगे इसकी चिंता मुझे अधिक नहीं थी। मेरे साथ अंततक कौन खड़ा होगा यह मैं जानता था। सत्याग्रहके विषयमें मेरे विचार अब अधिक परिपक्व हो गये थे। उसकी व्यापकता और उसकी अलौकिकताको अब मैं अधिक समझ सका था। इसलिए मैं शांत था। 'हिंद-स्वराज' को मैंने विलायतसे लौटते हुए जहाजपर ही लिख डाला। उसका उद्देश्य केवल सत्याग्रहकी भव्यता दिखाना था। यह पुस्तक मेरी श्रद्धाका मानदंड है। इससे लड़नेवालोंकी संख्याका मेरे सामने सवाल ही नहीं था।

पर मुझे पैसेकी चिंता रहती थी। लंबे अरसेतक लड़ाई चलानी हो और पासमें पैसा न हो, यह दुःख भारी हो गया। पैसेके बिना लड़ाई चलाई जा सकती ह, पैसा अकसर सत्यकी लड़ाईको दूषित कर देता है; प्रभु सत्याग्रहीको, मुमुक्षुको, आवश्यकतासे अधिक साधन कभी देता ही नहीं, इस बातको जितना स्पष्ट आज समझता हूं उतना उस वक्त नहीं समझता था। पर मैं आस्तिक हूं। प्रभुने उस वक्त भी मेरा साथ दिया। मेरा संकट काटा। एक ओर मुझे दक्षिण अफ्रीकाके तटपर उतरते ही कौमको कामकी विफलताका समाचार देना था तो दूसरी ओर प्रभुने मुझे पैसोंके कष्टसे मुक्त कर दिया। केपटाउनमें उतरते ही मुझे विलायतसे तार मिला कि सर रतनजी जमशेदजी ताताने सत्याग्रह कोषमें २५ हजार रुपया दिया है। इतना रुपया उस वक्त हमारे लिए काफी था। हमारा काम चल निकला।

पर इस धनसे या बड़ी-से-बड़ी धनराशिसे सत्याग्रहकी आत्मशुद्धिकी—आत्मबलकी—लड़ाई नहीं चल सकती। इस संग्रामके लिए चारित्र्यकी पूंजी होनी चाहिए। मालिकके बिना महल जैसे खंडहर-सरीखा लगता है वैसे ही चारित्र्यहीन मनुष्य और उसकी सम्पत्तिको समझना चाहिए। सत्याग्रहियोंने देखा कि लड़ाई कितने दिन चलेगी इसका अंदाजा किसीसे नहीं लगाया जा सकता। कहां जनरल बोथा और जनरल स्मट्सकी एक इंच भी न हटनेकी प्रतिज्ञा और कहां सत्याग्रहियोंकी मरते दमतक जूझनेकी प्रतिज्ञा! हाथी और चींटीकी लड़ाई थी। हाथीके एक पांवके नीचे अगणित चींटियोंका भुरता बन सकता है। सत्याग्रही अपने सत्याग्रहकी अवधिको हदसे घेर नहीं सकता। एक बरस लगे या अनेक, उसके लिए सब बराबर हैं। उसके लिए तो लड़ना ही जय है। लड़नेके मानी थे जेल जाना, देशनिकाला होना। इसके बीच बाल-बच्चोंका क्या हो? निरंतर जेल जानेवालेको नौकरी तो कोई देगा ही नहीं। जेल-से छूटनेपर खुद क्या खायं, बाल-बच्चोंको क्या खिलायें? कहां रहें? भाड़ा कौन दे? आजीविकाके बिना सत्याग्रही भी उद्विग्न होता है। भूखों मरकर और अपनोंको भूखों मारकर भी लड़ाई लड़ते रहनेवाले दुनियामें अधिक नहीं हो सकते।

अबतक जेल जानेवालोंके कुनबोंका भरण-पोषण उनको हर महीने पैसा देकर किया जाता था। हरएकको उसकी आवश्यकता-के अनुसार दिया जाता था। चींटीको कण और हाथीको मन। सबको बराबर तो दे ही नहीं सकते थे। पांच बच्चेवाले सत्याग्रही और ब्रह्मचारीको जिसके आगे-पीछे कोई हो ही नहीं, एक पांतमें नहीं बिठा सकते। केवल ब्रह्मचारियोंको ही भरती करें, यह भी नहीं हो सकता था। तब किस दर या पैमानेसे पैसा दिया जाय? आम तौरसे तो हरएक कुटुंबसे पूछा जाता कि कम-से-कम कितने रुपयेमें उसका गुजर हो जायगा और जो

रकम वह बताता उसपर विश्वास रखकर उसीके अनुसार उसका खर्च दिया जाता। इसमें छल-कपटके लिए बहुत अवकाश था। कपटियोंने इसका कुछ लाभ भी लिया। दूसरे सच्चे लोग भी, किसी खास ढंगसे रहनेके आदी होनेसे उसके योग्य सहायताकी आशा रखते थे। मैंने देखा कि इस ढंगसे लंबे अरसेतक लड़ाई चलाना अशक्य है। लायकके साथ अन्याय होने और नालायकके अपने पाखंडमें सफल हो जानेका डर रहता है। यह मुश्किल एक ही तरह हल हो सकती थी कि सारे कुटुंबोंको एक जगह रखें और सब साथ रहकर काम करें। इसमें किसीके साथ अन्याय होनेका डर न रहता। ठगोंके लिए बिलकुल गुंजाइश नहीं रहती, यह भी कह सकते हैं। जनताके पैसेकी बचत होती और सत्याग्रही कुटुंबोंको नये और सादे जीवनकी तथा बहुतोंके साथ मिलकर रहनेकी शिक्षा मिलती, अनेक प्रांतों और अनेक धर्मोंके भारतीयोंके साथ रहनेका मौका मिलता।

पर ऐसी जगह कहां मिले? शहरमें रहने जायं तो बकरीको निकालते हुए ऊंटोंको घुसा लेनेका डर था। महीनेके खर्चके बराबर शायद मकानभाड़ा ही देना पड़े और सत्याग्रही कुटुंबोंको शहरमें सादगीसे रहनेमें भी कठिनाई होती। फिर शहरमें इतना लंबा-चौड़ा स्थान भी न मिल सकता जहां बहुतसे परिवार घर बैठे कोई उपयोगी धंधा कर सकें। अतः यह स्पष्ट था कि हमें ऐसा स्थान पसंद करना चाहिए जो शहरसे न बहुत दूर हो और न बहुत नजदीक। फिनिक्स तो था ही, 'इंडियन ओपीनियन' वहां छपता था। थोड़ी खेती भी होती थी, बहुतसे सुभीते मौजूद थे। पर फिनिक्स जोहान्सबर्गसे ३०० मीलके फासलेपर और रेलसे तीस घंटेका रास्ता था। इतनी दूर कुटुंबोंको लाना, ले जाना टेढ़ा और महँगा काम था। फिर सत्याग्रही कुटुंब अपना घर-बार छोड़कर इतनी दूर जानेको तैयार नहीं हो सकते थे।

होते भी तो उन्हें और सत्याग्रही बंदियोंको जेलसे छूटनेपर इतनी दूर भेजना अशक्य-सा लगा।

अतः स्थान तो ट्रांसवालमें ही और वह भी जोहान्सबर्गके पास ही होना चाहिए था। मि० केलनबेकका परिचय पाठकोंको करा चुका हूं। उन्होंने ११०० एकड़ जमीन खरीदी और सत्याग्रहियोंको बिना किसी भाड़े-लगानके उसको काममें लानेका अधिकार दे दिया (३० मई १९१०)। इस जमीनमें बहुतसे, एक हजारके लगभग, फलवाले पेड़ थे और पहाड़ीकी तलहटीमें पांच-सात आदमियोंके रहने लायक एक छोटा-सा मकान था। पानीके लिए एक झरना और दो कुएं थे। रेलवे स्टेशन लॉले करीब एक मीलपर था और जोहान्सबर्ग २१ मील। इस जमीनपर ही मकान बनवाने और सत्याग्रही कुटुंबोंको बसानेका निश्चय किया गया।

: १० :

टाल्स्टाय फार्म—२

यह जमीन ११०० एकड़ थी और उसके ऊंचे हिस्सेपर एक छोटी-सी पहाड़ी थी, जिसकी तलहटीमें एक छोटा-सा मकान था। उसमें एक हजारके लगभग फल वाले पेड़ थे। उनमें नारंगी, एप्रिकॉट, प्लम इफरातसे फलते, इतने कि मौसिममें सत्याग्रही भरपेट खायें तो भी बच रहें। पानीका एक नन्हा-सा झरना था। उससे पानी मिल जाता। जहां रहना था उस जगहसे वह कोई ५०० गज दूर होगा। इसलिए पानी कांवरपर भरकर लानेकी मेहनत तो थी ही।

इस स्थानमें हमारा यह आग्रह था कि घरका कोई काम नौकरसे न लिया जाय और खेती-बारी और घर बनानेका काम

भी जितना अपने हाथों हो सकता है किया जाय। इसलिए पाखाना साफ करनेसे लगाकर खाना पकानेतकका सारा काम हमें अपने हाथों ही करना था। कुटुंबोंका रखना था, पर हमने शुरूसे ही तै कर लिया था कि स्त्रियां और पुरुष अलग-अलग रखे जायं। इसलिए दोनोंके लिए अलग-अलग मकान और थोड़े फासलेपर बनानेका निश्चय हुआ। १० स्त्रियों और ६० पुरुषोंके रहने लायक मकान तुरंत बना लेनेका निश्चय किया गया। एक मकान मि० केलनबेकके रहनेके लिए बनाना था और उसके साथ-साथ एक पाठशालाके लिए भी। इनके सिवा बढ़ईके काम, मोचीके काम इत्यादिके लिए एक कारखाना भी तैयार करना था।

जो लोग इस स्थानमें रहनेके लिए आनेवाले थे वे गुजरात, मद्रास, आंध्र और उत्तरी हिंदुस्तानके थे। धर्मके विचारसे वे हिंदू, मुसलमान, पारसी और ईसाई थे। कुल ४०के लगभग युवक, दो-तीन बूढ़े, पांच स्त्रियां और २०से ३० तक बच्चे थे, जिनमें पांच लड़कियां थीं।

स्त्रियोंमें जो ईसाई थीं उन्हें और दूसरोंको भी मांसाहारकी आदत थी। मि० केलनबेककी और मेरी भी राय थी कि इस स्थानमें मांसाहारका प्रवेश न हो तो अच्छा है। पर जिन्हें उसके विषयमें धर्म-नीतिकी तनिक भी अड़चन न हो, जो संकटके समय इस स्थानमें आ रहे थे और जिन्हें जन्मसे इस चीजकी आदत हो उनसे थोड़े दिनोंके लिए भी उसे छोड़नेको कैसे कहा जा सकता? न कहा जाय तो खर्च कितना होगा? फिर जिन्हें गोमांसकी आदत हो उन्हें क्या गोमांस दिया जाय? कितने रसोईघर चलाये जायं? मेरा धर्म इस विषयमें क्या था? इन कुटुंबोंको पैसा देनेका निमित्त बनकर भी तो मैं मांसाहार और गोमांसाहारमें सहायक होता ही था। अगर यह नियम कर लूं कि मांसाहार करनेवालेको मदद न मिलेगी तो

सत्याग्रहकी लड़ाई मुझे केवल निरामिषभोजियोंके जरिये ही लड़नी होगी। यह भी कैसे हो सकेगा? लड़ाई तो भारतीय-मात्रकी थी। अपना धर्म मैं स्पष्ट देख सका। ईसाई या मुसलमान भाई गोमांस ही मांगें तो मुझे उनको वह देना ही होगा। मैं उन्हें इस स्थानमें आनेकी मनाही नहीं कर सकता।

पर प्रेमका बेली ईश्वर है ही। मैंने तो सरल भावसे ईसाई बहनोंके सामने अपना संकट रखा। मुसलमान भाइयोंने तो मुझे केवल निरामिष रसोई चलानेकी इजाजत पहले ही दे दी थी, केवल ईसाई बहनोंकी बात मुझे समझनी थी। उनके पति या पुत्र तो जेलमें थे। उनकी सम्मति मुझे प्राप्त थी, उनके साथ ऐसे मौके अनेक बार आ चुके थे। केवल बहनोंके साथ ऐसे निकट संबंधका यह पहला ही अवसर था। मैंने उनसे मकानकी अड़चन, पैसेकी अड़चन और अपनी भावनाकी बात कही, साथ ही यह इतमीनान भी दिला दिया कि वे मांगेंगी तो मैं गोमांस भी हाजिर कर दूंगा। बहनोंनें प्रेमभावसे मांस न मांगना मंजूर किया। रसोईका काम उनके हाथमें सौंपा गया। उनकी मददके लिए हममेंसे एक-दो पुरुष भी दे दिये गये। उनमें मैं तो था ही। मेरी मौजूदगी छोटे-मोटे झगड़े-टंटोंको दूर रख सकती थी। रसोई जितनी सादी हो सकती है रखनेका निश्चय हुआ। खानेका समय निश्चित हुआ। रसोई एक ही रखी गई। सबको एक ही पांतमें भोजन करना था, सबको अपने-अपने बरतन धो-मांजकर साफ रखने थे। शामिल बरतन सब लोग बारी-बारीसे मांजें यह तै हुआ। मुझे यह बता देना चाहिए कि टाल्स्टाय फार्म लंबे अरसेतक चला, पर बहनों या भाइयोंने कभी मांसाहारकी मांग नहीं की। शराब, तंबाकू आदि तो वर्जित थे ही।

मैं लिख चुका हूं कि मकान बनानेका काम भी जितना अपने हाथों हो सके उतना करनेका हमारा आग्रह था। स्थापति

(Architect) तो मि० केलनबेक थे ही। वह एक यूरोपियन राज ले आये। एक गुजराती बढ़ई नारायणदास दमानियाने, अपनी सहायता बिना पैसेके प्रदान की। और दूसरे बढ़ई भी थोड़े पैसेमें बुला दिये। केवल शारीरिक श्रमका काम हमने अपने हाथों किया। हममेंसे जिनके अंग लचीले थे उन्होंने तो कमाल कर दिया। बढ़ईका आधा काम तो बिहारी नामके सत्याग्रहीने उठा लिया। सफाईका काम, शहर जाना और वहांसे सामान लाना आदि सिंह समान थंबी नायडूने अपने जिम्मे ले लिया।

इस टुकड़ीमें एक थे भाई प्रागजी खंडूभाई देसाई। उन्होंने अपनी जिंदगीमें कभी सर्दी-गर्मी नहीं सही थी। यहां तो कड़ाकेकी ठंड, कड़ी गर्मी और गहरी बरसात सब सहनी थी। इस स्थानमें हमारे निवासका श्रीगणेश तो खेमोंमें हुआ। जबतक मकान बने तबतक उन्हींमें सोना पड़ा। मकान दो महीनेमें बने होंगे। मकान सफेद लोहेकी चादरोंके थे, इससे उनके बनानेमें ज्यादा वक्त न लगता। हमें लकड़ी भी जिस-जिस नापकी दरकार थी तैयार मिल जाती थी। हमको बस इतना ही करना रहता कि नापकर उसके टुकड़े कर लें। खिड़की, दरवाजे भी थोड़े ही बनाने थे, इसीसे इतने कम समयमें इतने अधिक मकान बना लिये गये। पर इन कामोंमें भाई प्रागजीकी पूरी मशक्कत हो गई। जेलकी तुलनामें फार्मका काम निश्चय ही कड़ा था। एक दिन तो थकावट और गर्मीसे वह बेहोश हो गये; पर वह झट हार माननेवाले आदमी नहीं थे। उन्होंने अपने शरीरको यहां पूरी तरह कस लिया और अंतमें तो इतनी शक्ति प्राप्त कर ली थी कि मशक्कतमें सबके साथ जुट सकें।

ऐसे ही दूसरे भाई थे जोसफ रॉयपन। वह तो बैरिस्टर थे, पर उन्हें बैरिस्टरीका गर्व न था। बहुत कड़ी मेहनत उनसे



टाल्स्टाय फार्मके कुछ निवासी (गांधीजीके साथ)

न हो सकती थी, ट्रेनसे बोझा उतारना और बैलगाड़ीपर उसे लादना उनके लिए कठिन था, पर अपनी शक्तिभर उन्होंने इसे भी किया।

टाल्स्टाय फार्ममें निर्बल सबल हो गये और मेहनत सबके लिए शक्तिवर्द्धक साबित हुई।

सबको किसी-न-किसी कामसे जोहान्सबर्ग जाना पड़ता। बच्चोंको सैरके लिए जानेकी इच्छा होती, मुझको भी कामवश जाना होता। हमने निश्चय किया कि सार्वजनिक आश्रमके कामसे जाना हो तभी रेलसे जानेकी इजाजत मिले और तीसरे दरजेको छोड़कर और किसीमें जाना तो हो ही नहीं सकता था। जिसे सैरके लिए जाना हो वह पैदल चलकर जाय और अपना नाश्ता बांधकर साथ ले जाय। कोई शहरमें खानेको खर्च न करे। इतने कड़े नियम न रखे होते तो जो पैसा बचानेके लिए हमने वनवास स्वीकार किया वह रेलभाड़े और बाजारके रास्तेमें उड़ जाता। घरका नाश्ता भी सादा ही होता। घरके पिसे और बिना छने आटेकी रोटी, मूंगफलीका घर बनाया हुआ मक्खन और नारंगीके छिलकेका मुरब्बा। आटा पीसनेके लिए हाथसे चलानेकी लोहेकी बनी चक्की ली थी। मूंगफलीको भूनकर पीस लेनेसे मक्खन तैयार हो जाता था। उसका दाम दूधके मक्खनकी अपेक्षा चार गुना सस्ता पड़ता। नारंगी तो फार्ममें ही इफरातसे होती थी। फार्ममें गायका दूध तो शायद ही कभी लिया जाता। हम डिब्बेका दूध काममें लाते।

अब फिर सफरकी चर्चापर आएं। जिसे जोहान्सबर्ग जानेका शौक होता वह हफ्तेमें एक या दो बार पैदल जाता और उसी दिन लौट आता। पहले बता चुका हूं कि वह २१ मीलका रास्ता था। पैदल जाने-आनेके इस एक नियमसे ही सैकड़ों रुपये बच गये और पैदल जानेवालोंको बहुत

लाभ भी हुआ। कितनोंको पैदल चलनेकी नई आदत पड़ गई। नियम यह था कि इस तरह जानेवाले दो बजे रातको उठें और २॥ बजे रवाना हो जायं। सब छः से सात घंटेके अंदर जोहान्सबर्ग पहुंच सकते थे। कम-से-कम समय लेनेवाले ४ घंटे १८ मिनटमें पहुंचते।

पाठक यह न मानें कि ये नियम आश्रमवासियोंपर भाररूप थे। सभी उनका प्रेमपूर्वक पालन करते थे। बलात्कारसे तो मैं एक भी आदमीको वहां न रख सकता। युवक सफरमें हो या आश्रममें, सारा काम हँसते-हँसते और किलकते हुए करते। शारीरिक श्रमके समय तो उन्हें ऊधम मचानेसे रोकना कठिन होता। उनसे उतना ही काम लेनेका नियम रखा गया था जितना उन्हें खुश रखते हुए लिया जा सके। इससे काम कम हुआ, यह मुझे नहीं जान पड़ा।

पाखानेकी कथा समझ लेनी चाहिए। इतने आदमी इकट्ठे रहते थे, फिर भी किसीको कहीं कूड़ा, मैला या जूठन पड़ी दिखाई नहीं देती थी। एक गढ़ा खोद रखा गया था, सारा कूड़ा उसीमें डालकर ऊपरसे मिट्टी डाल दी जाती। पानी कोई रास्तेमें न गिराने पाता। सब बरतनोंमें इकट्ठा किया जाता और पेड़ोंको सींचनेमें खर्च किया जाता। जूठन और साग-तरकारीके छिलकों आदिकी खाद बनती। पाखानेके लिए रहनेके मकानके पास एक चौरस गढ़ा डेढ़ फुट गहरा खोद रखा था। उसीमें सारा पाखाना डाल दिया जाता और ऊपरसे खोदी हुई मिट्टीको भी डालकर पाट दिया जाता। इससे जरा भी दुर्गंध न आती। मक्खियां भी वहां नहीं भिनभिनाती थीं और किसीको इसका खयाल भी न आता कि यहां पाखाना पाटा गया है। साथ ही फार्मको अमूल्य खाद मिलती थी। हम मैलेका सदुपयोग करें तो लाखों रुपयेकी खाद बचाएं और अनेक रोगोंसे भी बचें। पाखानेके बारेमें अपनी

बुरी आदतके कारण हम पवित्र नदीके किनारेको भ्रष्ट करते हैं, मक्खियोंकी उत्पत्ति करते हैं और नहा-धोकर साफ-सुथरे होनेके बाद, जो मक्खियां हमारी बेहूदी लापरवाहीसे खुले हुए विष्टापर बैठ चुकी हैं उन्हें अपने शरीरका स्पर्श करने देते हैं। एक छोटी-सी कुदाली हमें बहुत-सी गंदगीसे बचा सकती है। चलनेके रास्तेपर मैला फेंकना, थूकना, नाक साफ करना ईश्वर और मनुष्य दोनोंके प्रति पाप है। इसमें दयाका अभाव है। जंगलमें रहनेवाला भी अगर अपने मैलेको मिट्टीमें दबा नहीं देता तो वह दंडके योग्य है।

हमारा काम था सत्याग्रही कुटुंबोंको उद्योगी बनाये रखना, पैसा बचाना और अंतमें स्वावलंबी बनना। हम यह कर सकें तो चाहे जितने अरसेतक लड़ सकते थे। जूतोंका तो खर्च था ही। बंद जूते (शू) से गर्म आब-हवामें तो नुकसान ही होता है। सारा पसीना पैर चूस लेता है और नाजुक हो जाता है। मोजेकी जरूरत तो हमारी जैसी आबहवामें होती ही नहीं। पर कांटे-रोड़े आदिसे बचनेके लिए कुछ बचावकी आवश्यकता हम मानते थे। इसलिए हमने कंटकरक्षक अर्थात् चप्पल बनानेका काम सीख लेनेका निश्चय किया। दक्षिण अफ्रीकामें पाइनटाउनके पास मेरियनहिलमें रोमनकैथेलिक पादरियोंका ट्रेपिस्ट नामका मठ है। वहां ऐसे उद्योग चलते हैं। ये पादरी जर्मन हैं। उनके एक मठमें जाकर मि० केलनबेक चप्पल बनाना सीख आये। उन्होंने मुझे सिखाया और मैंने दूसरे साथियोंको। यों अनेक युवक चप्पल बनाना सीख गये और हम मित्रमंडलीमें उसे बेचने भी लगे। मुझे यह कहनेकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिए कि मेरे कितने ही 'चेले' इस हुनरमें मुझसे सहज ही आगे निकल गये। दूसरा धंधा हमने बढ़ईका दाखिल किया। हम एक गांव-सा बसा रहे थे। वहां हमें चौकीसे लगाकर बक्स-संदूकतक अनेक

छोटी-बड़ी चीजोंकी आवश्यकता थी। वे सब चीजें हम अपने हाथ ही बनाते। जिन परोपकारी मिस्त्रियोंकी बात ऊपर कह चुका हूं उन्होंने तो कई महीनेतक हमें मदद दी। इस विभागकी अध्यक्षता मि० केलनबेकने स्वयं स्वीकार की थी। उनकी कुशलता और सावधानताका अनुभव हमें प्रतिक्षण होता था।

युवकों और बालक-बालिकाओंके लिए एक पाठशाला तो चाहिए ही थी। यह काम सबसे कठिन जान पड़ा और अंततक पूर्णताको नहीं पहुंचा। शिक्षणका भार मुख्यत: मि० केलनबेक और मुझपर था। पाठशाला दोपहरसे ही चलाई जा सकती थी। उस वक्त हम दोनों सवेरेकी मशक्कतसे खूब थके होते। पढ़नेवालोंका भी यही हाल होता। अत: अकसर वे और हम भी ऊंघने लगते। हम आंखोंपर पानीके छींटे देते, बच्चोंके साथ हँस-खेलकर उनकी और अपनी ऊंघ भगाते; पर अकसर यह कोशिश बेकार जाती। शरीर जो आराम मांगता है वह लेकर ही छोड़ता है। यह तो एक और सबसे छोटा विघ्न था, क्योंकि नींदमें झोंके खाते हुए भी कक्षाएं तो चलती ही थीं। पर तामिल, तेलगू और गुजराती तीन भाषाएं बोलनेवालोंको क्या सिखाया जाय और कैसे? मातृभाषाके द्वारा शिक्षा देनेका लोभ तो मुझे था ही। तामिल थोड़ी-बहुत जानता था, पर तेलगू तो एक अक्षर भी न आती थी। ऐसी स्थितिमें एक शिक्षक क्या करे? युवकोंमेंसे कुछका शिक्षकरूपमें उपयोग किया। यह प्रयोग सफल हुआ, यह नहीं कहा जा सकता। भाई प्रागजीका उपयोग तो होता ही था। युवकोंमेंसे कुछ बड़े नटखट और आलसी थे। किताबके साथ हमेशा लड़ाई करते थे। ऐसे विद्यार्थियोंको आगे बढ़ानेकी शिक्षक क्या आशा कर सकते थे? फिर हमारा काम अनियमित था। जरूरी होनेपर मुझे जोहान्सबर्ग जाना ही पड़ता। यही बात मि० केलनबेककी थी।

दूसरी कठिनाई धार्मिक शिक्षाकी थी। मुसलमानोंको कुरान पढ़ानेका लोभ तो मुझे था ही। पारसियोंको अवेस्ता पढ़ानेकी इच्छा होती। एक खोजाका लड़का था। उसके पास अपने पंथकी एक छोटी-सी पोथी थी। उसके बापने वह पोथी पढ़ानेका भार मुझपर डाल दिया था। मैंने इस्लाम और पारसी धर्मकी पुस्तकें इकट्ठी कीं। हिंदू-धर्मके जो मुझे मूलतत्त्व जान पड़े उन्हें मैंने लिख डाला—अपने ही बच्चोंके लिए या फार्मके बच्चोंके लिए, यह बात अब याद नहीं रही। यह चीज मेरे पास होती तो अपनी प्रगति या गतिकी नाप करनेके लिए मैं उसे यहां दे देता; पर ये चीजें तो कितनी ही अपनी जिंदगीमें मैंने फेंक दीं या जला डालीं। इन वस्तुओंके संग्रहकी आवश्यकता मुझे ज्यों-ज्यों कम जान पड़ती गई और ज्यों-ज्यों मेरा काम बढ़ता गया त्यों-त्यों मैं इन चीजोंका नाश करता गया। मुझे इसका पछतावा भी नहीं। इन वस्तुओंका संग्रह मेरे लिए एक बोझ और बड़े खर्चकी चीज हो जाता। उनके रक्षणके साधन मुझे जुटाने पड़ते और मेरी अपरिग्रही आत्माको यह असह्य होता।

पर यह शिक्षणका प्रयोग व्यर्थ नहीं गया। बालकोंमें कभी असहिष्णुता नहीं आई। एक दूसरेके धर्म और रीति-रिवाजके प्रति उन्होंने उदार-भाव रखना सीखा। सगे भाइयों-की तरह हिल-मिलकर रहना सीखा। एक-दूसरेकी सेवा करना सीखा। सभ्यता सीखी। उद्यमी बने और आज भी उन बालकोंमेंसे, जिनके कार्योंकी थोड़ी-बहुत खबर मुझको है उसपरसे मैं जानता हूं कि टाल्स्टाय फार्ममें उन्होंने जो कुछ सीखा वह व्यर्थ नहीं गया। अधूरा सही, पर यह विचारमय और धार्मिक प्रयोग था और टाल्स्टाय फार्मके जो संस्मरण अत्यन्त मधुर हैं उनमें यह शिक्षणके प्रयोगका स्मरण तनिक भी कम मधुर नहीं है।

पर इन मधुर स्मृतियोंके लिए एक पूरे प्रकरणकी आवश्यकता है।

: ११ :

टाल्स्टाय फार्म—३

इस प्रकरणमें टाल्स्टाय फार्मके बहुतसे संस्मरणोंका संग्रह होगा। अतः ये स्मरण असंबद्ध लगेंगे। पाठक इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे।

पढ़ानेके लिए जैसा वर्ग मुझे मिला था वैसा शायद ही किसी शिक्षकके हिस्से पड़ा हो। सात बरसके बालक-बालिकाओंसे लगाकर२० बरसतकके जवान और १२-१३ बरसतककी लड़कियां इस वर्गमें थीं। कुछ लड़के ऐसे थे जिन्हें जंगली कह सकते हैं। वे खूब ऊधम मचाते।

ऐसे जमातको क्या पढ़ाऊं? सबके स्वभावके अनुकूल कैसे होऊं? फिर सबके साथ किस भाषामें बातचीत करूं? तामिल और तेलगूभाषी बच्चे या तो अपनी मातृभाषा समझते थे या अंग्रेजी। थोड़ी डच भी जानते थे। मुझे तो अंग्रेजीसे ही काम लेना होता। मैंने वर्गके दो विभाग कर दिये—गुजराती भाषी बच्चोंसे गुजरातीमें बोलता, बाकी सबसे अंग्रेजीमें। शिक्षणकी योजना यह थी कि उसका मुख्य भाग होता तो कोई रोचक वार्ता कहना या पढ़कर सुनाना। बच्चोंको साथ मिलकर बैठना और मित्रभाव, सेवाभाव सिखाना, यही उद्देश्य मैंने सामने रखा था। इतिहास-भूगोलका थोड़ा सामान्य ज्ञान करा देता और थोड़ा लिखना सिखा देता। कुछको अंकगणित भी सिखाता। इस तरह गाड़ी चला

लेता। प्रार्थनामें गानेके लिए कुछ भजन सिखाता। उसमें शामिल होनेके लिए तामिल बालकोंको भी ललचाता।

लड़के-लड़कियां आजादीसे साथ उठते-बैठते। टाल्स्टाय फार्ममें मेरा यह सहशिक्षाका प्रयोग अधिक-से-अधिक निर्भय था। जो आजादी मैंने बालक-बालिकाओंको वहां दी या सिखाई थी वह आजादी देने या सिखानेकी मेरी हिम्मत भी आज नहीं होती। मुझे अकसर ऐसा लगा है कि मेरा मन उन दिनों आजकी अपेक्षा अधिक निर्दोष था। इसका कारण मेरा अज्ञान हो सकता है। इसके बाद कई बार मुझे धोखा हुआ है, कड़वे अनुभव हुए हैं। जिन्हें मैं नितांत निर्दोष समझता था वे सदोष सिद्ध हुए हैं। अपने आप भी गहराईमें पैठनेपर मैंने विकार पाये हैं। इससे मन कातर बन गया है।

मुझे अपने इस प्रयोगपर पछतावा नहीं। मेरी आत्मा गवाही देती है कि इस प्रयोगसे कुछ भी हानि नहीं हुई; पर दूधका जला छाछको भी फूंक-फूंककर पिया करता है। यही बात मेरे बारेमें समझनी चाहिए।

मनुष्य श्रद्धा या हिम्मत दूसरेसे चुरा नहीं सकता। 'संशयात्मा विनश्यति'। टाल्स्टाय फार्ममें मेरी हिम्मत और श्रद्धा पराकाष्ठाको पहुंची हुई थी। यह श्रद्धा और हिम्मत फिर देनेके लिए मैं प्रभुसे प्रार्थना किया करता हूं। पर वह सुने तब न! उसके सामने तो मुझ-जैसे अगणित भिखारी होते हैं। भरोसा इतना ही है कि जैसे उससे याचना करनेवाले असंख्य हैं वैसे उसके कान भी असंख्य हैं। इसलिए उसपर मेरी श्रद्धा पूरी है। यह भी जानता हूं कि जब मैं इसका अधिकारी हो जाऊंगा तब मेरी अर्ज जरूर सुनेगा।

यह था मेरा प्रयोग। मैं तो बदमाश समझे जानेवाले लड़कों और निर्दोष सयानी लड़कियोंको साथ नहानेको भेजता।

लड़के-लड़कियोंको मर्यादाधर्मके विषयमें खूब समझा दिया था। मेरे सत्याग्रहसे वे सभी परिचित थे। मैं उन्हें मांके जितना ही प्यार करता था इसे मैं तो जानता ही था, पर वे भी इसे मानते थे। पाठकोंको पानीके झरनेकी बात याद होगी। वह रसोईसे कुछ दूरपर था। वहां बालक-बालिकाओंका संगम होने देना और फिर यह आशा रखना कि वे निर्दोष निष्पाप बने रहेंगे? मेरी आंखें तो उन लड़कियोंके पीछे वैसे ही फिरा करती थीं जैसे मांकी आंखें बेटीके पीछे फिरा करती हैं। स्नानका समय नियत था। उसके लिए सब लड़कियां और सब लड़के साथ जाते। संघमें जो एक प्रकारकी सुरक्षितता होती है वह यहां थी। उन्हें कहीं एकांत तो मिलता ही नहीं। आमतौरसे मैं भी उसी वक्त वहां पहुंच जाता।

हम सभी एक खुले बरामदेमें सोते थे। लड़के-लड़कियां मेरे आस-पास सोते। दो बिस्तरोंके बीच मुश्किलसे तीन फुटका अंतर होता। बिस्तरोंके क्रममें अवश्य थोड़ी सावधानी रखी जाती; पर सदोष मनके लिए यह सावधानी क्या कर सकती थी? अब मैं देखता हूं कि इन लड़के-लड़कियोंके बारेमें प्रभुने ही लाज रखी। मैंने इस विश्वाससे यह प्रयत्न किया कि लड़के-लड़कियां इस तरह निर्दोष रीतिसे मिल-जुल सकते हैं। उनके मां-बापने मुझपर बेहद विश्वास रखकर यह प्रयोग करने दिया।

एक दिन इन लड़कियोंने ही या किसी लड़केने मुझे खबर दी कि एक युवकने दो लड़कियोंके साथ मजाक किया है। मैं कांप उठा। मैंने जांच की। बात सच थी। युवकोंको समझाया; पर इतना काफी नहीं था। दोनों लड़कियोंके शरीरपर कोई ऐसा चिह्न चाहता था जिससे हरएक युवक यह समझ सके और जान ले कि इन बालाओंपर कुदृष्टि डाली ही नहीं जा सकती। लड़कियां भी समझ लें कि हमारी पवित्रतापर

कोई हाथ डाल सकता ही नहीं। सीताके शरीरको विकारी रावण स्पर्शतक न कर सका। राम तो दूर थे। ऐसा कौन-सा चिह्न इन लड़कियोंको दूं, जिससे वे अपने आपको सुरक्षित समझें और दूसरे भी उन्हें देखकर निर्विकार रहें? रातभर जागा। सवेरे लड़कियोंसे बिनती की। उन्हें चौंकाये बिना समझाकर सलाह दी कि वे अपने सुंदर केश कतर देनेकी इजाजत मुझे दे दें। फार्मपर हम एक दूसरेकी दाढ़ी बनाया और बाल कतर दिया करते थे। इससे कतरनी मेरे पास थी। पहले तो उन लड़कियोंने नहीं समझा। बड़ी स्त्रियोंको मैंने अपनी बात समझा दी थी। उन्हें मेरी सलाह सहन तो नहीं हुई, पर वे मेरा हेतु समझ सकी थीं। उनकी मदद मुझे मिली। दोनों लड़कियां भव्य थीं। आह! आज उनमेंसे एक चल बसी है। वह तेजस्विनी थी! दूसरी जीवित है और अपनी गृहस्थी चला रही है। अंतमें वे दोनों समझ गईं। उसी क्षण उस हाथने जो आज यह प्रसंग लिख रहा है, उन बालिकाओंके केशपर कतरनी चला दी। पीछे दरजेमें इस कार्यका विश्लेषण करके सबको समझा दिया। परिणाम सुंदर रहा। फिर मैंने मजाककी बात नहीं सुनी। इन लड़कियोंने कुछ खोया तो नहीं ही। कितना पाया यह तो भगवान ही जानते होंगे। मैं आशा रखता हूं कि युवक इस घटनाको याद करते और अपनी दृष्टिको शुद्ध रखते होंगे।

ऐसे प्रयोग अनुकरणके लिए नहीं लिखे जाते। कोई शिक्षक उनका अनुकरण करे तो वह भारी जोखिम अपने सिरपर लेगा। इस प्रयोगका उल्लेख स्थितिविशेषमें मनुष्य किस हदतक जा सकता है यह दिखाने और सत्याग्रहकी लड़ाईकी विशुद्धता बतानेके लिए किया गया है। इस विशुद्धतामें ही उसकी विजयकी जड़ थी। इस प्रयोगके लिए शिक्षकको मां-बाप दोनों बनना होता है और हर कष्ट-हानिके लिए

तैयार होकर ही ऐसे प्रयोग किये जा सकते हैं। उनके पीछे कठिन तपश्चर्याका बल होना चाहिए।

इस कार्यका असर फार्मवासियोंकी सारी रहन-सहनपर पड़े बिना न रहा। कम-से-कम खर्चमें गुजर करना हमारा उद्देश्य था, इसलिए पहनावेमें भी हेर-फेर किया। दक्षिण अफ्रीकाके शहरोंमें आमतौरसे हमारे पुरुषवर्गका पहनावा यूरोपियन ढंगका ही होता है। सत्याग्रहियोंका भी था। फार्मपर उतने कपड़ोंकी जरूरत नहीं थी। हम सभी मजदूर बन गये थे। इससे पहनावा रखा मजदूरोंका, पर यूरोपीय ढंगका—यानी मजदूरोंके पहननेका पतलून और उसी तरहकी कमीज। इस पहनावेमें जेलका अनुकरण था। मोटे आसमानी रंगके कपड़ेका सस्ता पतलून और कमीज मिलती, वही सब पहनते। स्त्रियोंमें अधिकांश सिलाईका काम सुंदर रीतिसे कर सकती थीं। उन्होंने सिलाईका सारा काम अपने ऊपर ले लिया।

भोजनमें चावल, दाल, तरकारी, रोटी और कभी-कभी खीर होना सामान्य नियम था। ये सारी चीजें एक ही बरतनमें परसी जातीं। बरतनमें थालीके बदले जेलकी जैसी तसली रखी गई थी और लकड़ीके चमचे अपने हाथसे बना लिए गये थे। खाना तीन वक्त दिया जाता। सवेरे छः बजे रोटी और गेहूंका कहवा (काफी), ग्यारह बजे दाल-भात और तरकारी और शामके ५॥ बजे गेहूंकी लपसी और दूध या रोटी और गेहूंका कहवा। रातके ९ बजे सबको सो जाना होता। शामके भोजनके बाद सात या साढ़े सात बजे प्रार्थना होती। प्रार्थनामें भजन गाये जाते और कभी रामायणसे तो कभी इसलामके धर्मग्रंथोंमेंसे कुछ पढ़ा जाता। भजन अंग्रेजी, हिंदी और गुजरातीमें होते। कभी तीनोंके भजन गाये जाते तो कभी एकहीसे।

फार्ममें बहुतेरे एकादशी व्रत करते। वहां भाई पी. के. कोतवाल पहुंच गये थे जिन्हें उपवास आदिका अच्छा ज्ञान

और अनुभव था। उनको देखकर बहुतोंने चातुर्मास किया। इसी बीच रोजा भी आ गया। हममें कुछ मुसलमान नौजवान थे। उन्हें रोजा रखनेको प्रोत्साहन देना हमें अपना धर्म जान पड़ा। उसके लिए सरगही (सहरी) और रातके भोजनका प्रबंध कर दिया। उनके लिए रातमें खीर आदि भी बनती। मांसाहार तो होता ही नहीं था। किसीने इसकी मांग भी नहीं की। उनके धर्मभावका सम्मान करनेके लिए हम भी एक ही जून शामको भोजन करते। हमारा सामान्य नियम सूर्यास्तसे पहले भोजन कर लेनेका था। मुसलमान लड़के थोड़े ही थे, इसलिए अंतर इतना ही होता कि दूसरे सूर्यास्तसे पहले खा-पीकर तैयार हो जाते। मुसलमान नवयुवकोंने भी रोजा रखनेमें इतनी भलमनसी बरती कि किसीको ज्यादा तकलीफ न होने दी। पर इस तरह गैर मुस्लिम लड़कोंके आहार-संयममें उनका साथ देनेका असर सबके ऊपर अच्छा ही हुआ। हिंदू-मुसलमानके लड़कोंके बीच मजहबको लेकर एक बार भी झगड़ा हुआ हो या भेद उत्पन्न हुआ हो इसकी याद मुझे नहीं है। इसका उलटा मैं जानता हूं कि सब अपने-अपने धर्मपर दृढ़ रहते हुए भी एक दूसरेके प्रति पूरा आदर रखते और एक दूसरेको स्वधर्माचरणमें सहायता देते।

हम शहरसे इतनी दूर रहते थे फिर भी बीमारियोंके लिए दवा-दारूका जो साधारण प्रबंध रखा जाता है वैसा कुछ भी नहीं रखा गया था। उन दिनों लड़के-लड़कियोंकी निर्दोषताके विषयमें मुझे जो श्रद्धा थी वही श्रद्धा बीमारीमें केवल प्राकृतिक उपचार करनेके विषयमें भी थी। मैं सोचता था कि पहले तो सादे जीवनमें बीमारी होगी ही क्यों और हो भी गई तो हम उसका उपाय कर लेंगे। मेरी आरोग्यविषयक पुस्तक मेरे प्रयोगों और मेरी उस संयमकी श्रद्धाकी नोटबुक है। मुझे यह अभिमान था कि मैं तो बीमार हो ही नहीं सकता।

यह मानता था कि केवल पानी, मिट्टी या उपवासके प्रयोग या भोजनके अदल-बदलसे सब प्रकारके रोग दूर किये जा सकते हैं। फार्ममें एक भी बीमारीके मौकेपर डाक्टरका उपयोग नहीं किया गया। उत्तर भारतका रहनेवाला एक सत्तर बरसका बूढ़ा था। उसको दमे और खांसीकी शिकायत थी। वह भी महज खूराकके अदल-बदल और पानीके प्रयोगसे चंगा हो गया। पर ऐसे प्रयत्न करनेकी हिम्मत अब मैं खो बैठा हूं और खुद दो बार बीमार पड़नेके बाद यह मानने लगा हूं कि मैंने इसका अधिकार भी खो दिया।

फार्म जब चल रहा था उसी बीच स्व० गोखले दक्षिण अफ्रीका आये थे। उनकी यात्राके वर्णनके लिए तो अलग प्रकरणकी जरूरत है। पर उसका एक कड़वा-मीठा संस्मरण यहां लिखे देता हूं। हमारा जीवन कैसा था यह तो पाठकोंने जान ही लिया। फार्ममें खाट-जैसी कोई चीज नहीं थी; पर गोखलेजीके लिए एक मांग लाये। कोई ऐसा कमरा नहीं था जहां उनको पूरा एकांत मिले। बैठनेके लिए पाठशालाकी बेंचें भर थीं। ऐसी स्थितिमें भी नाजुक तबियत-वाले गोखलेजीको फार्मपर लाये बिना हमसे कैसे रहा जाता? वैसे वह भी उसे देखे बिना कैसे रह सकते थे? मेरा खयाल था कि उनका शरीर एक रातकी तकलीफ बर्दाश्त कर लेगा और वह स्टेशनसे फार्मतक डेढ़ मील पैदल भी आ सकते हैं। मैंने उनसे पूछ लिया था और अपनी सरलतावश उन्होंने बिना सोचे-समझे मुझपर विश्वास रखकर सारी व्यवस्था स्वीकार कर ली थी। संयोगवश उसी दिन वर्षा भी हो गई। यकायक मेरे किये प्रबंधमें कोई हेरफेर नहीं हो सकता था। इस अज्ञानभरे प्रेमके कारण उस दिन मैंने गोखलेजीको जो कष्ट दिया वह मुझे कभी नहीं भूला। इतना बड़ा परिवर्तन उनकी प्रकृति सहन नहीं कर सकती थी। उन्हें ठंड लग गई।

भोजनके लिए उन्हें रसोईमें नहीं ले जा सकते थे। मि० केलनबेकके कमरेमें उन्हें उतारा था। वहां खाना ले जानेमें ठंडा तो हो ही जाता। उनके लिए मैं खास शोरवा बनाता। भाई कोतवाल खास चपातियां बनाते। पर वे गरम कैसे रखे जायं? ज्यों-त्यों करके निबटाया। गोखलेने मुझे एक शब्द भी नहीं कहा; पर उनके चेहरेसे मैं समझ गया और अपनी मूर्खता भी समझ गया। जब उन्हें मालूम हुआ कि हम सभी जमीनपर सोते हैं तब उनके लिए जो खाट लाई गई थी उसे हटा दिया और अपना बिस्तर भी फर्शपर ही लगा लिया। यह रात मैंने पश्चात्ताप करते बिताई। गोखलेकी एक आदत थी जिसे मैं बुरी आदत कहता। वह नौकरकी ही सेवा स्वीकार करते। ऐसी यात्राओंमें नौकरको साथ न रखते। मैंने और मि० केलनबेकने उनसे बहुत विनती की कि हमें पांव दबाने दीजिए; पर वह टस-से-मस न हुए। हमें अपना शरीर स्पर्शतक न करने दिया। उलटे आधी खीझ और आधी हँसीमें कहा—"जान पड़ता है कि आप सब लोगोंने यही समझ लिया है कि कष्ट भोगनेके लिए अकेले आप ही लोग जन्मे हो और हम-जैसे लोग इसीलिए पैदा हुए हैं कि तुम्हें कष्ट दें। अपनी अतिकी सजा आज तुम पूरी-पूरी भोग लो। मैं तुम्हें अपना शरीर छूनेतक नहीं दूंगा। तुम सब लोग निबटनेके लिए दूर जाओगे और मेरे लिए कमोड रखोगे! ऐसा क्यों? चाहे जितनी तकलीफ उठानी पड़े, मैं भोग लूंगा; पर तुम्हारा गर्व चूर करूंगा।" यह वचन हमारे लिए वज्रसमान थे। मैं और मि० केलनबेक खिन्न हुए; पर इतना ढाढस था कि उनके चेहरेपर हास्य था। अर्जुनने कृष्णको अनजानेमें बहुत कष्ट दिया होगा, पर कृष्णने क्या उसे याद रखा? गोखलेने हमारा सेवाका भाव ही याद रखा, सेवा तो करने ही नहीं दी। मोंबासासे उन्होंने मुझे जो प्रेमभरा पत्र लिखा वह मेरे हृदयपर अंकित हो गया है। उन्होंने कष्ट सह लिये, पर जो

सेवा हम कर सकते थे वह अंततक न करने दी। भोजन आदि हमारे हाथसे न लेते तो करते क्या ?

अगले दिन सवेरे न उन्होंने खुद आराम लिया, न हमें लेने दिया। उनके सब भाषणोंको जिन्हें हम पुस्तकरूपमें छपाने जा रहे थे, सुधारा। उनकी आदत थी कि कुछ भी लिखना हो तो उसका मजमून इधर-से-उधर टहलते हुए सोचते। उन्हें एक छोटा-सा पत्र लिखना था। मैंने सोचा कि उसे तो वह तुरंत लिख डालेंगे; पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। मैंने टीका की तो मुझे यह व्याख्यान सुनना पड़ा--"मेरा जीवन तुम क्या जानो ? मैं छोटी-से-छोटी बात भी उतावलीमें नहीं करता। उसको सोचता हूं। उसके मध्यबिंदुको सोचता हूं; फिर विषयके अनुरूप भाषाका विचार करता हूं और तब लिखता हूं। सब ऐसा करें तो कितना वक्त बच जाय ? और समाज भी आज जो अधकचरे विचार उसे मिले रहे हैं उनके भारसे बच जाय।"

जैसे गोखलेके आगमनके वर्णनके बिना टाल्स्टाय फार्मके संस्मरण अधूरे माने जायंगे वैसे ही मि० केलनबेककी रहन-सहनके विषयमें भी यही बात कही जा सकती है। इस निर्मल पुरुषका परिचय मैं पहले करा चुका हूं। मि० केलनबेकका टाल्स्टाय फार्ममें, हम लोगोंके बीचमें हम-जैसे ही होकर रहना यही अचरजकी बात थी। गोखले सामान्य बातोंसे आकृष्ट होनेवाले आदमी नहीं थे; पर केलनबेकके जीवनके महान परिवर्तनसे वह भी अतिशय आकृष्ट हुए थे। केलनबेकने कभी दुनियाकी सर्दी-गर्मी न सही थी, एक भी तकलीफ या अड़चन न उठाई थी। असंयम उनका धर्म हो गया था। संसारके सुख भोगनेमें उन्होंने कोई कसर नहीं रखी थी। पैसेसे जो चीज मिल सकती थी अपने सुखके लिए उसे प्राप्त करनेमें उन्होंने कभी आगा-पीछा न किया था।

ऐसे आदमीका टाल्स्टाय फार्ममें रहना, सोना-बैठना,

खाना-पीना और फार्मवासियोंके साथ घुल-मिल जाना ऐसी-वैसी बात नहीं थी। हम लोगोंको यह देखकर आनंदजनक आश्चर्य हुआ। कुछ गोरोंने मि० केलनबेकको मूर्ख या पागल समझ लिया। दूसरे कितनोंके दिलमें उनकी त्यागशक्तिको देखकर उनके लिए इज्जत बढ़ी। केलनबेकने अपने त्यागको कभी दुःखरूप न माना। जितना आनंद उन्होंने सुखोंके भोगमें पाया था उससे अधिक उनके त्यागमें पाया। सारी जिंदगीके सुखका वर्णन करते हुए वह तल्लीन हो जाते और क्षणभरके लिए तो सुननेवालेको भी वह सुख भोगनेकी इच्छा हो जाती। छोटे-बड़े सबके साथ वह इतने प्रेमसे हिल-मिल जाते कि उनका अल्प वियोग भी सबको खले बिना न रहता। उन्हें फलवाले पेड़ोंका बड़ा शौक था। इससे मालीका काम उन्होंने अपने ही लिए रख छोड़ा था। रोज सवेरे बच्चों और बड़ोंसे भी सींचने-संवारनेका काम कराते। वह इतने हँसमुख और स्वभावके इतने आनन्दमय थे कि मशक्कत पूरी कराते, फिर भी उनके साथ काम करना सबको रुचता। जब-कभी रातके दो बजे उठकर टाल्स्टाय फार्मसे जोहान्सबर्गसे जाने वाले निकलते तो मि० केलनबेक इस टोलीमें जरूर होते।

इनके साथ धार्मिक संवाद सदा हुआ करता था। मेरे पास अहिंसा, सत्य इत्यादि कामोंको छोड़कर दूसरी बात हो ही क्या सकती थी? सर्पादिक मारनेमें भी पाप है, मेरी इस बातसे जैसे मेरे अनेक दूसरे यूरोपियन मित्र पहले चौंके थे वैसे ही मि० केलन-बेकको भी धक्का लगा; पर पीछे तात्त्विक दृष्टिसे उन्होंने यह सिद्धांत स्वीकार कर लिया। हमारे संबंधके आरंभमें ही उन्होंने यह बात मान ली थी कि बुद्धि जिस वस्तुको स्वीकार कर ले उसका आचरण करना उचित और धर्म है। इसीसे वह अपने जीवनमें इतने महत्त्वके परिवर्तन एक क्षणमें बिना किसी हिचक-के कर सके थे। अब अगर सर्पादिका मारना अनुचित है तो

मि० केलनबेकको इच्छा हुई कि उनकी मित्रता संपादन करें। पहले तो उन्होंने ऐसी पुस्तकें इकट्ठी कीं जिनसे भिन्न-भिन्न जातिके सर्पोंकी पहचान हो सके। उनमें उन्होंने देखा कि सभी सांप जहरीले नहीं होते। कुछ तो खेतोंकी फसलकी रक्षा करनेवाले होते हैं। हम सबने सांपोंको पहचानना सीख लिया और अंतमें एक विशाल अजगरको, जो फार्ममें ही मिल गया था, पाल लिया। उसको सदा अपने ही हाथसे खाना देते। मैंने नरमीसे उनके साथ यह दलील की—"यद्यपि आपका भाव शुद्ध है फिर भी अजगर तो उसको पहचाननेसे रहा, क्योंकि आपकी प्रीतिके साथ भय मिला हुआ है। उसको खुला रखकर उसके साथ खेलनेकी हिम्मत तो न आपकी है, न मेरी और ऐसी हिम्मत ही वह चीज है जिसे हम अपने अंदर पैदा करना चाहते हैं। इसलिए इस सर्पको पालनेमें मैं सद्भाव तो देखता हूं; पर उसमें अहिंसा नहीं देखता। हमारा व्यवहार तो ऐसा होना चाहिए कि अजगर उसे पहचान सके। प्राणिमात्र भय और प्रीतिको पहचानते हैं, यह तो हमारा रोजका अनुभव है। फिर इस सांपको आप जहरीला तो मानते ही नहीं। इसके तौर-तरीके, इसकी आदतें आदि जाननेके लिए ही उसे कैद कर रखा है। यह एक प्रकारकी विलासिता हुई। मित्रतामें इसके लिए भी स्थान नहीं है।"

मि० केलनबेकको यह दलील जंची; पर उस अजगरको तुरंत छोड़ देनेकी उनकी इच्छा नहीं हुई। मैंने किसी तरहका दबाव नहीं डाला। सर्पके व्यवहारमें मैं भी रस लेने लगा था और बच्चोंको तो उसमें अतिशय आनंद मिल रहा था, उसको तंग करनेकी सभीको मनाही थी; पर इस कैदीने अपना रास्ता खुद निकाल लिया। पिंजड़ेका दरवाजा खुला रह गया हो या उसी ने युक्तिसे खोल लिया हो, चाहे जो कारण हो, दो-चार दिनके अंदर ही एक दिन सबेरे मि० केलनबेक अपने कैदी मित्रसे

मिलने गये तो देखते हैं कि उसका पिंजड़ा खाली है। वह खुश हुए, मैं भी हुआ; पर इस प्रयोगके फलस्वरूप सर्प हमारी बात-चीतका स्थायी विषय हो गया था।

मि० केलनबेक एक गरीब जर्मनको फार्मपर लाये थे। वह गरीब तो था ही, अपंग भी था। उसका कूबड़ इतना निकल आया था कि लकड़ीके सहारेके बिना चल ही नहीं सकता। उसकी हिम्मतकी हद नहीं थी। शिक्षित होनेसे सूक्ष्म बातोंमें बहुत रस लेता था। फार्ममें वह भी हिंदुस्तानियों-जैसा ही होकर सबके साथ हिल-मिलकर रहता था। उसने निर्भय होकर सांपोंके साथ खेलना शुरू किया। छोटे सांपोंको तो हाथमें पकड़कर ले आता और हथेलीपर रखकर खिलाता भी। फार्म लंबे अरसेतक चलता तो इस जर्मनके, जिसका नाम ऑलब्रेस्ट था, प्रयोगका फल क्या होता, यह तो ईश्वर ही जाने।

इन प्रयोगोंके फलस्वरूप यद्यपि हमारे मनमें सांपोंका डर घट गया था; पर कोई यह न समझ ले कि फार्ममें कोई सांपसे डरता ही नहीं था या सर्पादिको मारनेकी सभीको मनाही थी। अमुक वस्तुमें हिंसा है या पाप है, यह मान लेना एक बात है और तदनुसार आचरण करनेकी शक्ति होना दूसरी बात है। जिसके मनमें सांपका डर बना हो और जो स्वयं प्राण त्याग करनेको तैयार न हो वह संकटमें पड़नेपर सांपको छोड़नेवाला नहीं। फार्ममें ऐसी एक घटना हुई थी जो मुझे याद है। पाठकोंने यह तो समझ ही लिया होगा कि वहां सांपोंका उपद्रव काफी था। हम जब इस फार्ममें गये तब वहां आदमियोंकी बस्ती बिलकुल ही नहीं थी और कुछ अरसेसे योंही निर्जन पड़ा था। एक दिन मि० केलनबेकके ही कमरेमें सांप दिखाई दिया और ऐसी जगह जहांसे उसे भगाना या पकड़ लेना नामुम-किन-सा था। फार्मके एक विद्यार्थीने उसको देखा। उसने

मुझे बुलाया और पूछा कि अब क्या करना चाहिए। उसने उसे मारनेकी इजाजत मांगी। इस अनुमतिके बिना वह सांपको मार सकता था; पर आम तौरसे विद्यार्थी या दूसरे लोग भी मुझसे पूछे बिना ऐसे काम नहीं करते थे। मारनेकी इजाजत दे देना मुझे अपना धर्म दिखाई दिया और मैंने इजाजत दे दी। यह बात लिखते समय भी मुझे ऐसा नहीं जान पड़ता कि यह इजाजत देनेमें मैंने कोई गलती की। सांपको हाथसे पकड़ लेने या फार्मवासियोंको और किसी तरह भयमुक्त कर देनेकी मुझमें शक्ति न थी और आज भी उसे उत्पन्न नहीं कर सकता हूं।

फार्ममें सत्याग्रहियोंका ज्वारभाटा आया करता था, यह बात तो पाठक आसानीसे समझ सकते हैं। कोई सत्याग्रही जेल जानेवाला होता तो कोई-न-कोई उससे छूटकर आया होता। छूटकर आनेवालोंमें दो ऐसे आये जिन्हें मजिस्ट्रेटने ज़ाती मुचलकेपर छोड़ा था और जिन्हें सजा सुननेके लिए अगले दिन अदालतमें हाजिर होना था। वे बैठे बातें कर रहे थे। इतनेमें उनके लिए जो आखिरी ट्रेन थी उसका वक्त हो गया और वे उसे पा सकेंगे या नहीं, यह संदिग्ध हो गया। दोनों जवान थे और अच्छे कसरती थे। वे और हममेंसे भी कुछ लोग जो उन्हें विदा करने जानेवाले थे, दौड़े। रास्तेमें ही मैंने ट्रेनके आनेकी सीटी सुनी। ट्रेन छूटनेकी सीटी हुई तब हम स्टेशनकी बाहरी हदतक पहुंच पाये थे। वे दोनों भाई तो अधिकाधिक तेज दौड़ते जा रहे थे। मैं पीछे छूट गया। ट्रेन चल दी। दोनों युवकों को दौड़ते देख स्टेशनमास्टरने चलती ट्रेन रोक दी और उनको बैठा लिया। मैंने स्टेशन पहुंचकर स्टेशनमास्टरके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। इस घटनाका वर्णन करनेमें मैंने दो बातें जतायी हैं : एक तो यह कि सत्याग्रहियोंको जेल जाने और प्रतिज्ञा का पालन करनेकी कितनी उत्सुकता होती थी। दूसरी

यह कि स्थानीय कर्मचारियोंके साथ उन्होंने कैसा मधुर संबंध जोड़ लिया था। ये युवक उस ट्रेनको न पकड़ सके होते तो अगले दिन अदालतमें हाजिर न हो पाते। उनका कोई दूसरा जामिन नहीं था। न उनसे रुपये-पैसेकी ही जमानत ली गई थी। वे महज अपनी भलमनसीके विश्वासपर छोड़े गये थे। सत्याग्रहियोंकी साख इतनी हो गई थी कि उनके खुद जेल जानेसे आतुर होनेके कारण मजिस्ट्रेट उनसे जमानत लेनेकी जरूरत नहीं समझते थे। इस कारण इन युवक सत्याग्रहियोंको ट्रेन छूट जानेके डरसे भारी खेद हुआ था। अतः वे वायुवेगसे दौड़े। सत्याग्रहके आरंभमें अधिकारियोंकी ओरसे सत्याग्रहियोंको कुछ कष्ट दिये गये थे, यह बात कही जा सकती है। यह भी कह सकते हैं कि कहीं-कहीं जेलके अफसर-अहलकार बहुत ज्यादा सख्त थे; पर लड़ाई ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती गई हमने कुल मिलाकर देखा कि अहलकार पहलेसे कम कड़वे हो गये और कुछ तो मीठे भी हो गये और जहां उनके साथ लंबा साबका पड़ा वहां इस स्टेशनमास्टरकी तरह हमारी मदद भी करने लगे। कोई पाठक इससे यह न सोचें कि सत्याग्रहियोंने अहलकारोंको किसी तरह घूस देकर उनसे सुभीते प्राप्त किये। ऐसे अयोग्य सुभीते प्राप्त करनेकी बात उन्होंने कभी सोची ही नहीं; पर सभ्यताके सुभीते लेनेका हौसला किसको न होगा? और वैसे सुभीते सत्याग्रहियोंको कितनी ही जगह मिल सकते थे। स्टेशनमास्टर प्रतिकूल हो तो नियमोंकी सीमामें रहते हुए भी मुसाफिरको कितनी ही तरहसे हैरान कर सकता है। ऐसी हैरानियोंके खिलाफ आप कोई शिकायत---फरियाद भी नहीं कर सकते। और वह अनुकूल हो तो कायदेके अंदर रहकर भी आपको बहुतसे सुभीते दे सकता है। ऐसी सब सहूलियतें हम फार्मके पासके स्टेशन लॉलेके स्टेशनमास्टरसे पा सके थे और इसका कारण था सत्याग्रहियोंका सौजन्य, उनका धैर्य और कष्ट-सहन करनेकी उनकी शक्ति।

एक अप्रस्तुत प्रसंगकी चर्चा यहां कर देना संभवतः अनुचित न माना जायगा। मुझे भोजनके सुधार और प्रयोग धार्मिक, आर्थिक और आरोग्यकी दृष्टिसे करनेका शौक लगभग ३५ बरससे रहा है। यह शौक आज भी मंद नहीं पड़ा है। मेरे प्रयोगोंका असर मेरे आसपासवालोंपर तो पड़ता ही है। इन प्रयोगोंके साथ दवाकी मदद लिये बिना प्राकृतिक–जैसे पानी और मिट्टीके––उपचारोंसे रोग मिटानेके प्रयोग भी मैं करता था। जब वकालत करता था उन दिनों मवक्किलोंके साथ मेरा संबंध कौटुंबिक-जैसा हो जाता। इससे वे मुझे अपने सुख-दुःखमें साथी बनाते। कुछ आरोग्यविषयक मेरे प्रयोगोंसे परिचित हो जानेके बाद उस विषयमें मेरी सहायता लेते। ऐसी सहायता लेनेवाले कभी-कभी टल्स्टाय फार्मपर भी चढ़ आते। यों आनेवालोंमें लुटावन नामका एक बूढ़ा था जो उत्तर भारतका रहनेवाला था और पहले गिरमिटमें दक्षिण अफ्रीका आया था। उसकी उम्र ७०के पार होगी। उसे पुराने दमे और खांसीकी बीमारी थी। वैद्योंके चूर्ण और डाक्टरोंके मिक्सचर काफी आजमा चुका था। उन दिनों अपने उपचारोंके विषयोंमें मेरे विश्वासकी भी कोई सीमा नहीं थी। मैंने कहा कि तुम मेरी सभी शर्तोंका पालन करो और फार्ममें रहो तो मैं तुमपर अपने प्रयोगोंकी परीक्षा कर सकता हूं। यह तो कैसे कह सकता हूं कि मैंने उसका इलाज करना कबूल किया। लुटावनने मेरी शर्तें मंजूर कर लीं। उसको तंबाकू पीनेका भारी व्यसन था। उससे जो शर्तें कबूल कराई गई थीं उनमें एक तंबाकू छोड़ देनेकी भी थी। लुटावनको मैंने एक दिनका उपवास कराया। रोज १२ बजे धूपमें कूने बाथ देना शुरू किया। उस वक्त मौसम ऐसा था कि धूपमें बैठा जा सके। भोजनमें थोड़ा भात, थोड़ा जैतूनका तेल, शहद और शहदके साथ कभी खीर और मीठी नारंगी और कभी अंगूर

और भुने गेहूंका कहवा देता । नमक-मसाला बिलकुल बंद था । जिस मकानमें मैं सोता, उसीमें भीतरके हिस्सेमें लुटावनका भी बिस्तर लगता था । बिस्तरमें सबको दो कंबल मिलते थे--एक बिछानेके लिए दूसरा ओढ़नेके लिए । और एक काठका तकिया होता था । एक अठवारा बीता । लुटावनके शरीरमें तेज आया । दमा घटा, खांसी भी घटी । पर रातमें दमा और खांसी दोनों उठते । मेरा शक तंबाकूपर गया । मैंने उससे पूछा । लुटावनने कहा--"मैं नहीं पीता ।" एक-दो दिन और गये । फिर भी फर्क न पड़ा तो मैंने छिपे तौरपर लुटावनपर निगाह रखनेका निश्चय किया । सभी जमीनपर सोते थे । सर्पादिका भय तो था ही, इसलिए मि० केलनबेकने मुझे बिजलीकी चोरबत्ती (टार्च) दे रखी थी और खुद भी एक रखते थे । इस बत्तीको मैं पास रखकर सोता । एक रात मैंने तै किया कि बिस्तरपर पड़ा-पड़ा जागता रहूंगा । दरवाजेके बाहर बरामदेमें मेरा बिस्तर था और दरवाजेके भीतर बगलमें ही लुटावनका लगा था । आधी रातको लुटावनको खांसी आई । उसने दियासलाई जलाई और बीड़ी पीना शुरू किया । मैं धीरेसे जाकर उसके बिस्तरके पास खड़ा हो गया और बत्तीका बटन दबा दिया । लुटावन घबराया, सब समझ गया । बीड़ी बुझा दी और मेरे पांव पकड़ लिए । "मैंने भारी कसूर किया । अब मैं कभी तंबाकू न पीऊंगा । आपको मैंने धोखा दिया । मुझको आप माफ करें ।" यह कहते-कहते लुटावनका गला भर आया । मैंने उसको तसल्ली दी और कहा कि बीड़ी न पीनेमें तुम्हारा हित है । मेरे हिसाबसे खांसी अबतक चली जानी चाहिए थी । वह नहीं गई, इसलिए मुझे शक हुआ । लुटावनकी बीड़ी गई और उसके साथ दो या तीन दिनमें खांसी और दमा ढीले पड़े, और एक महीनेमें दोनों

चले गये। लुटावनमें खूब तेज-शक्ति-उत्साह आ गया और उसने हमसे विदा मांगी।

स्टेशनमास्टरका बेटा, जो दो सालका रहा होगा, टाइफाइड ज्वरसे पीड़ित हुआ। उन्हें मेरे उपचारोंका पता था ही। मुझसे सलाह ली। उस बच्चेको दो दिन तो मैंने कुछ भी खानेको नहीं दिया। तीसरे दिनसे आधा केला, खूब मसला हुआ और उसमें एक चम्मच जैतूनका तेल और दो-चार बूंद नीबूका रस डालकर देने लगा। इसके सिवा और सब खुराक बंद। रातमें उसके पेटपर मिट्टीकी पट्टी बांधता। यह बच्चा भी चंगा हो गया। हो सकता है कि डाक्टरका निदान गलत रहा हो और उसका बुखार टाइफाइड (मियादी) न रहा हो।

ऐसे बहुतेरे प्रयोग मैंने फार्ममें किये। उनमेंसे एकमें भी विफल होनेकी बात मुझे याद नहीं है; पर आज वही उपचार करनेकी मेरी हिम्मत नहीं होती। टाइफाइडके रोगीको जैतूनका तेल और केला देते तो मुझे कंपकंपी होने लगेगी। १९१८ में हिंदुस्तानमें मुझे आंवकी बीमारी हुई और उसीका इलाज मेरे किये न हो सका और मुझे आजतक इसका पता नहीं कि जो उपचार दक्षिण अफ्रीकामें सफल होते थे वही उपचार हिंदुस्तानमें उसी अंशमें सफल नहीं होते इसका कारण मेरे आत्मविश्वासका घट जाना है या यहकि यहांकी जलवायु उन उपचारोंके पूरी तरह अनुकूल नहीं? मैं इतना जानता हूं कि इन घरेलू इलाजों और टाल्स्टाय फार्ममें रखी गई सादी जिंदगीसे कौमके कुछ नहीं तो भी दो-तीन लाख रुपये बच गये। रहनेवालोंमें कौटुंबिक भावना उत्पन्न हुई। सत्याग्रहियोंको शुद्ध आश्रय-स्थान मिला। बेईमानी और मक्कारीके लिए अवकाश न रहा; मूंग और कंकड़ी अलग-अलग हो गईं।

ऊपरकी घटनाओंमें वर्णित आहारके प्रयोग आरोग्यकी दृष्टिसे किये गये; पर इस फार्मके अंदर ही मैंने अपने ऊपर एक अतिशय महत्त्वका प्रयोग किया, जो शुद्ध आध्यात्मिक दृष्टिसे था।

निरामिषभोजीकी हैसियतसे हमें दूध लेनेका अधिकार है या नहीं, इस विषयपर मैंने खूब विचार किया था, खूब पढ़ा भी था; पर फार्ममें रहनेके दिनोंमें कोई पुस्तक या अखबार मेरे हाथमें पड़ा जिसमें मैंने देखा कि कलकत्तेमें गाय-भैंसोंका दूध निचोड़कर निकाल लिया जाता है। उस लेखमें फूंकेकी निर्दयताभरी और भयानक क्रियाका भी वर्णन था। एक बार मि० केलनबेकके साथ दूध लेनेकी आवश्यकताके बारेमें बात-चीत हो रही थी। उस सिलसिलेमें मैंने इस क्रियाकी बात भी कही। दूधके त्यागके दूसरे अनेक आध्यात्मिक लाभ भी मैंने बताये और कहा कि दूध छोड़ा जा सकता हो तो अच्छा है। मि० केलनबेक अत्यन्त साहसी थे, इसलिए दुग्ध-त्यागके प्रयोगके लिए तुरंत तैयार हो गये। उन्हें मेरी बात बहुत पसंद आई। उसी दिन हम दोनोंने दूध त्याग दिया और अंतमें हम केवल सूखे और ताजे फलोंपर रहने लगे। आगपर पकाई हुई हर तरहकी खुराक त्याग दी। इस प्रयोगका अंत क्या हुआ, इसका इतिहास देनेका यह स्थान नहीं है। पर इतना तो कह ही दूं कि मैं केवल फल खाकर पांच बरस रहा। इससे न मैंने कोई कमजोरी अनुभव की और न मुझे किसी प्रकारकी व्याधि हुई। इस कालमें मुझमें शारीरिक काम करनेकी पूरी शक्ति थी, यहांतक कि एक दिनमें मैं पैदल ५५ मीलकी यात्रा कर सकता था। दिनभरमें ४० मीलकी मंजिल कर लेना तो मामूली बात थी। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस प्रयोगके आध्यात्मिक परिणाम बड़े सुंदर हुए। इस प्रयोगको अंशतः त्याग देना पड़ा, इसका दुःख

मुझे सदा रहा है और मैं राजनैतिक काम-काजके झमेले-में जिस हदतक उलझ गया हूं उससे छुटकारा पा सकूं तो इस उम्रमें और शरीरके लिए जोखिम लेकर भी इसके आध्यात्मिक फलके परीक्षणके लिए फिरसे यह प्रयोग कर देखूं। डाक्टरों-वैद्योंमें आध्यात्मिक दृष्टिका अभाव होना भी हमारे मार्गमें विघ्नकारक हो गया है।

पर अब इन मधुर और महत्त्वके संस्मरणोंकी समाप्ति करनी होगी। ऐसे कठिन प्रयोग आत्मशुद्धिके संग्रामके अंदर ही किये जा सकते हैं। आखिरी लड़ाईके लिए टाल्स्टाय फार्म आध्यात्मिक शुद्धि और तपश्चर्याका स्थान सिद्ध हुआ। इसमें मुझे पूरा संदेह है कि ऐसा स्थान न मिला होता या प्राप्त किया गया होता तो आठ बरसतक हमारी लड़ाई चल सकी होती या नहीं, हमें अधिक पैसा मिल सका होता या नहीं और अंतमें जो हजारों आदमी लड़ाईमें शामिल हुए वे शामिल होते या नहीं। टाल्स्टाय फार्मका ढोल पीटनेका नियम हमने नहीं रखा था। फिर भी जो वस्तु दयाकी पात्र नहीं थी उसने लोगोंके दयाभाव, सहानुभूतिको जाग्रत किया। उन्होंने देखा कि हम खुद जो बात करनेको तैयार नहीं हैं और जिसे कष्ट-रूप मानते हैं, फार्मवासी उस बातको कर रहे हैं। उनका यह विश्वास, १९१३ में जो फिरसे बड़े पैमानेपर लड़ाई शुरू हुई, उसके लिए बड़ी पूंजीरूप हो गया। इस पूंजीके मुआविजेका हिसाब नहीं हो सकता। मुआवजा कब मिलता है, यह भी कोई नहीं कह सकता। पर मिलता है इस विषयमें मुझे तो तनिक भी शंका नहीं और मेरा कहना है कि किसीको भी शंका नहीं करनी चाहिए।

: १२ :

गोखलेकी यात्रा—१

इस तरह टाल्स्टाय फार्ममें सत्याग्रही अपनी जिंदगी बिता रहे थे और जो कुछ उनके नसीबमें लिखा था उसके लिए तैयार हो रहे थे। युद्ध कब समाप्त होगा इसका न उन्हें पता था, न चिंता थी। उनकी प्रतिज्ञा एक ही थी : खूनी कानूनके सामने सिर न झुकायंगे और ऐसा करते हुए जो कष्ट सिरपर आयंगे उन्हें सह लेंगे। सिपाहीके लिए लड़ना ही जीत है; क्योंकि इसमें ही वह सुख मानता है और चूंकि लड़ना अपने हाथमें होता है इसलिए वह मानता है कि हार-जीत या सुख-दुःख खुद मुझपर ही अवलंबित है। या यों कह सकते हैं कि पराजय-जैसी चीज उसके शब्दकोषमें होती ही नहीं। गीताके शब्दोंमें कहें तो उसके लिए सुख-दुःख, हार-जीत समान हैं।

इक्के-दुक्के सत्याग्रही जेल जाया करते थे। जब इसका मौका न हो तब फार्मके बाहरी कामोंको देखकर कोई यह नहीं सोच सकता था कि इसमें सत्याग्रही रहते होंगे और वे लड़ाईकी तैयारी कर रहे होंगे। फिर भी कोई नास्तिक वहां आ जाता तो वह मित्र होता तो हमपर तरस खाता और आलोचक होता तो हमारी निंदा करता। कहता—"आलस सवार हो गया है। इसीसे जंगलमें पड़े-पड़े रोटियां खा रहे हैं। जेलसे हार गये हैं, इसलिए सुंदर फलोद्यानमें बसकर नियमित जीवन बिता और शहरके झंझटोंसे दूर रहकर सुख भोग रहे हैं।" ऐसे आलोचकको कैसे समझाया जाय कि सत्याग्रही अयोग्य रीतिसे नीतिको भंग करके जेल जा ही नहीं सकता ? उसे कौन समझाये कि सत्याग्रहीकी शांतिमें, उसके संयममें

ही लड़ाईकी तैयारी होती है ? उससे कौन कहे कि सत्याग्रही मनुष्यकी सहायताका खयालतक दिलसे निकाल देता है, केवल भगवानका भरोसा रखता है। परिणाम यह हुआ कि जिन्हें किसीने न सोचा था ऐसे संयोग आ उपस्थित हुए या भगवानने भेज दिये। ऐसी सहायता भी मिली जिसकी आशा हम नहीं रखते थे। हमारी परीक्षा भी अचानक, जब वह हमारी कल्पनासे कोसों दूर थी, आ पहुंची और अंतमें ऐसी बाह्य विजय भी मिली, जिसको दुनिया समझ सके।

मैं अरसेसे गोखले और दूसरे नेताओंसे प्रार्थना करता आ रहा था कि दक्षिण अफ्रीका आकर भारतीयोंकी स्थितिको देखें। पर कोई आयेंगे या नहीं इस विषयमें मुझे पूरा संदेह था। मि० रिच किसी भी नेताको भेजनेकी कोशिश कर रहे थे; पर जब लड़ाई बिलकुल ही मंद पड़ गई हो वैसे वक्तमें आनेकी हिम्मत कौन करता ? १९११ में गोखले विलायतमें थे। उन्होंने दक्षिण अफ्रीकाके संग्रामका अध्ययन तो किया ही था। बड़ी कौंसिलमें बहस भी की थी और गिरमिटियोंका नेटाल भेजना बंद कर देनेका प्रस्ताव भी पेश किया था (२५ फरवरी १९१०), जो पास हुआ। उनके साथ मेरा पत्र-व्यवहार बराबर चल ही रहा था। भारतमंत्रीके साथ वह मशविरा भी कर रहे थे और उन्हें यह जता दिया गया था कि वह दक्षिण अफ्रीका जाकर पूरे मसलेको समझना चाहते हैं। भारतमंत्रीने उनके इरादेको पसंद किया था। गोखलेने मुझे छः हफ्तेके दौरेकी योजना बनानेको लिख भेजा और दक्षिण अफ्रीकासे विदा होनेकी आखिरी तारीख भी लिख दी। हमारे हर्षका तो पार ही न रहा। किसी भी भारतीय नेताने अबतक दक्षिण अफ्रीकाकी यात्रा नहीं की थी। दक्षिण अफ्रीकाकी बात तो क्या, हिंदुस्तानके बाहरके एक भी देश या उपनिवेशमें प्रवासी

भारतियोंकी हालत समझनेके उद्देश्यसे कोई नहीं गया था। इससे हम सभी गोखले-जैसे महान् नेताके आगमनके महत्त्वको समझ सके और निश्चय किया कि उनका ऐसा स्वागत-सम्मान किया जाय जैसा कभी किसी बादशाहका भी न हुआ हो। दक्षिण अफ्रीकाके मुख्य-मुख्य नगरोंमें उनको ले जानेकी बात भी तै की गई। सत्याग्रही और दूसरे हिंदुस्तानी स्वागतकी तैयारीमें खुशीसे शरीक हुए। इस स्वागतमें शामिल होनेके लिए गोरोंको भी निमंत्रण दिया गया और लगभग सभी जगह वे उसमें सम्मिलित हुए। हमने यह भी तै किया कि जहां-जहां सार्वजनिक सभा की जाय वहां-वहां उस नगरका मेयर स्वीकार करे तो आमतौरसे उसीको सभापतिके आसनपर बिठाया जाय और जहां-जहां मिल सके वहां-वहां टाउनहालमें ही सभा की जाय। रेलवे विभागकी इजाजत लेकर रास्तेके बड़े-बड़े स्टेशनोंको सजानेका भार भी अपने ऊपर लिया और अधिकांश स्टेशनोंके सजानेकी इजाजत भी हासिल कर ली। आमतौरसे ऐसी इजाजत नहीं दी जाती। स्वागतकी हमारी जबर्दस्त तैयारीका असर अधिकारियोंपर हुआ और उसमें जितनी हमदर्दी वह दिखा सके उतनी दिखाई। मिसालके लिए जोहान्सबर्गमें वहांके स्टेशनको सजानेमें ही हमें कोई १५ दिन लग गये होंगे; क्योंकि वहां हमने एक सुंदर चित्रित तोरण बनाया था, जिसका नकशा मि० केलनबेकने तैयार किया था।

दक्षिण अफ्रीका कैसा देश है इसका अंदाजा गोखलेको विलायतमें ही हो गया था। भारतमंत्रीने दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारको गोखलेके रुतबे, साम्राज्यमें उनके स्थान इत्यादिकी सूचना दे दी थी; पर स्टीमर कंपनीसे टिकट ले रखने या अच्छा केबिन (कमरा) रिजर्व करा रखनेकी बात किसीको कैसे सूझ सकती? गोखलेकी तबीयत नाजुक तो रहती ही थी।

अतः उन्हें जहाजपर अच्छा केबिन चाहिए था। एकान्त भी जरूरी था। स्टीमर कंपनीके यहांसे दो टूक जवाब मिला कि ऐसा केबिन हमारे यहां है ही नहीं। मुझे ठीक याद नहीं कि गोखलेने खुद या उनके किसी मित्रने इंडिया आफिस (भारतमंत्रीके दफ्तर) को इसकी खबर दी। कंपनीके डाइरेक्टरको इंडिया आफिसकी ओरसे पत्र लिखा गया और जहां कोई था ही नहीं वहां गोखलेके लिए अच्छे-से-अच्छा केबिन हाजिर हो गया। इस प्रारंभिक कड़वाहटका फल मीठा रहा। स्टीमरके कप्तानको भी गोखलेका सुंदर स्वागत करनेकी हिदायत कर दी गई। इससे गोखलेके इस सफरके दिन आनंद और शांतिमें बीते। वह जितने गंभीर थे उतने ही आनंदी और विनोदी भी थे। जहाजपर होनेवाले खेलों आदिमें वह अच्छी तरह शामिल होते और इससे जहाजके यात्रियोंमें खूब लोकप्रिय हो गये थे। यूनियन सरकारने गोखलेसे उसके मेहमान होने और रेलवेका सरकारी सेलून स्वीकार करनेका अनुरोध किया था। मुझसे मशविरा कर लेनेके बाद सेलून और प्रिटोरियामें सरकारका आतिथ्य स्वीकार कर लेनेका निश्चय किया।

गोखले केप टाउन बंदरगाहमें जहाजसे उतरनेवाले थे। १९१२ की २२ वीं अक्तूबरको वह जहाजसे उतरे। उनका स्वास्थ्य जितना मैं सोचता था उससे कहीं ज्यादा नाजुक था। वह एक खास खूराक ही ले सकते थे। अधिक श्रम भी सहन नहीं हो सकता था। जो कार्यक्रम मैंने बनाया था वह उनसे नहीं चल सकता था। जितना अदल-बदल हो सकता था उतना किया। वह बदला ही न जा सके तो स्वास्थ्यकी जोखिम उठाकर भी वह सारा कार्यक्रम कायम रखनेको तैयार हो गये। उनसे पूछे बिना कठिन कार्यक्रम बना डालनेमें मैंने जो मूर्खता की उसका मुझे बहुत पछतावा हुआ। कुछ

रद्दोबदल तो मैंने किया, पर अधिकांश कार्यक्रम तो ज्यों-का-त्यों कायम रखना ही पड़ा। गोखलेको अधिक एकान्त मिलना आवश्यक था, यह मैं नहीं समझ सका था। ऐसा एकान्त दिलानेमें मुझे अधिक-से-अधिक कठिनाई पड़ी। पर सत्यके खातिर मुझे नम्रतापूर्वक इतना तो कहना ही होगा कि रोगियों और बड़ोंकी सेवा करनेका मुझे अभ्यास और शौक था, इससे अपनी मूर्खता जान लेनेके बाद मैं प्रबंधमें इतना सुधार कर सका कि उन्हें यथेष्ट एकान्त और शांति मिल सके। सारे दौरेमें उनके मंत्रीका काम मैंने ही किया। स्वयं-सेवक ऐसे थे कि उन्हें अंधेरी रातमें भी जाकर जवाब ला दें। अतः सेवकोंके प्रमादसे उन्हें कभी कोई कठिनाई हुई हो, इसकी मुझे याद नहीं। मि० केलनबेक भी इन स्वयंसेवकोंमें थे।

केप टाउनमें अच्छी-से-अच्छी सभा होनी चाहिए, यह तो स्पष्ट ही था। श्राइनर-कुटुंबके बारेमें मैं प्रथम खंडमें लिख चुका हूं। उसके मुखिया सिनेटर डब्ल्यू० पी० श्राइनरसे इस सभाका सभापतित्व स्वीकार करनेकी प्रार्थना की और उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। विशाल सभा हुई। हिंदुस्तानी और यूरोपियन बड़ी संख्यामें उपस्थित हुए। मि० श्राइनरने मधुर शब्दोंमें गोखलेका स्वागत किया और दक्षिण अफ्रीकाके हिंदुस्तानियोंके साथ अपनी हमदर्दी जाहिर की। गोखलेका भाषण छोटा, परिपक्व विचारोंसे भरा हुआ, दृढ़ पर विनययुक्त था। उससे भारतीय प्रसन्न हुए और गोरोंका मन गोखलेने हर लिया। अतः यह कह सकते हैं कि गोखलेने जिस दिन दक्षिण अफ्रीकाकी धरतीपर कदम रखा उसी दिन वहांकी पचरंगी जनताके हृदयोंमें प्रवेश कर गये।

केप टाउनसे जोहान्सबर्ग जाना था। रेलका दो दिनका सफर था। युद्धका कुरुक्षेत्र ट्रांसवाल था। केप टाउनसे आते हुए ट्रांसवालका पहला बड़ा सरहदी स्टेशन क्लर्कस्-

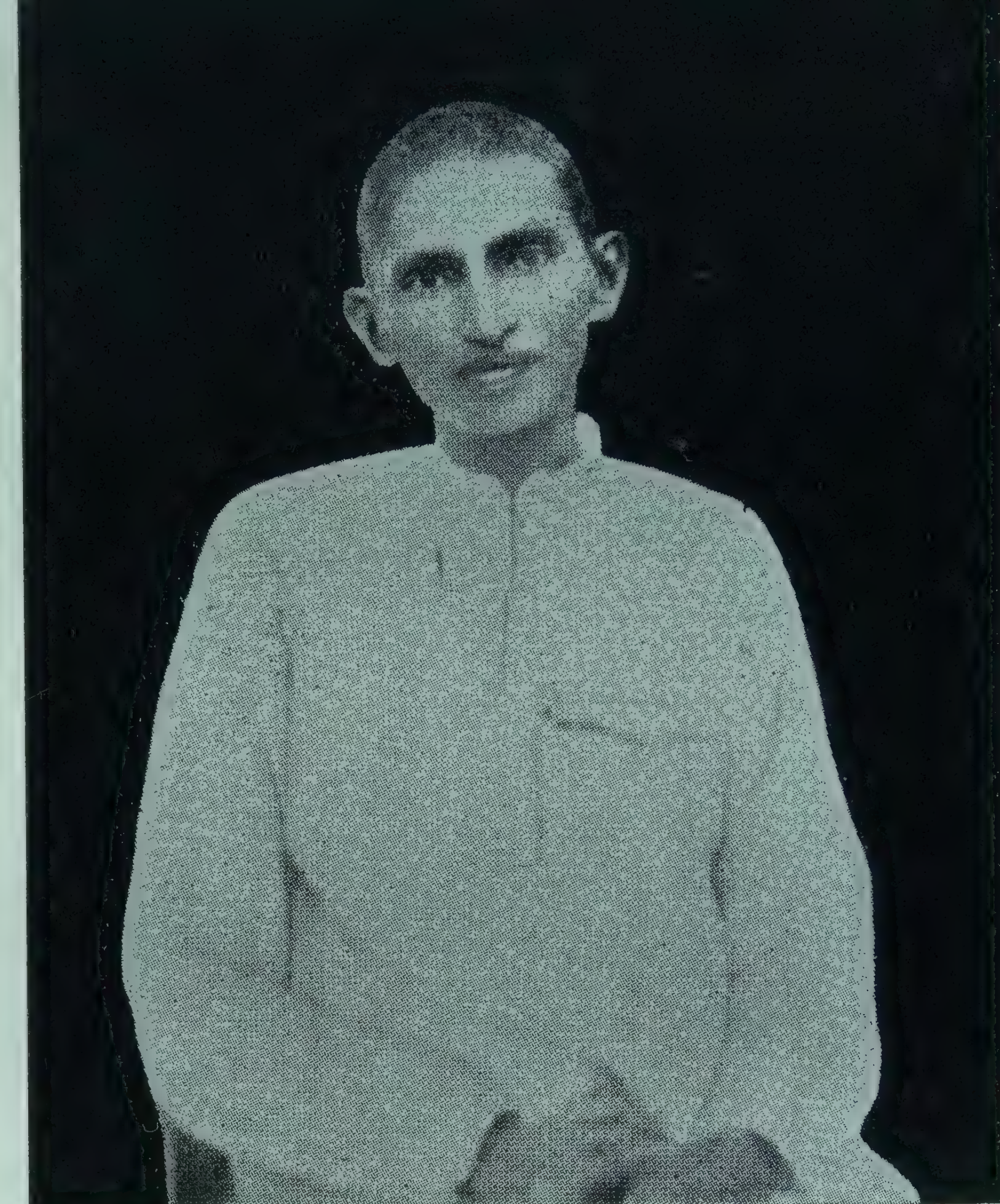
डार्प पड़ता। वहां हिंदुस्तानियोंकी आबादी भी खासी थी। इससे वहां और जोहान्स्बर्ग पहुंचनेसे पहले रास्तेमें पड़नेवाले ऐसे ही दो और नगरोंमें भी गोखलेको रोकने और सभामें उपस्थित होनेका कार्यक्रम बनाया गया था। इससे क्लर्कस्‌डॉर्पसे स्पेशल ट्रेनकी व्यवस्था कराई गई। तीनों जगह उन नगरोंके मेयरोंने सभापतिका आसन ग्रहण किया। कहीं भी एक घंटेसे अधिक समय नहीं दिया गया। जोहान्स्बर्ग ट्रेन ठीक वक्तपर पहुंची, एक मिनटका भी फर्क नहीं पड़ा। स्टेशनपर बढ़िया कालीन आदि बिछाये गये थे। एक मंच भी बनाया गया था। जोहान्स्बर्गके मेयर मि० एलिस और दूसरे यूरोपियन उपस्थित थे। मि० एलिसने अपनी मोटर इसके लिये पेश की कि गोखले जबतक जोहान्स्बर्गमें रहें तबतक उनकी सवारीमें रहे। गोखलेको मानपत्र स्टेशनपर ही भेंट किया गया। मानपत्र तो उन्हें हर जगह ही मिलता। जोहान्स्बर्गका मानपत्र वहींकी खानसे निकले हुए सोनेकी हृदयाकार तख्तीपर खुदा हुआ था जो दक्षिण अफ्रीकाकी बढ़िया लकड़ी (रोडेशियाकी टीक) पर जड़ी हुई थी। इस लकड़ीपर ताजमहल और हिंदुस्तानके कुछ दृश्योंके चित्र बड़ी खूबसूरतीसे खोदे गये थे। गोखलेका सबके साथ परिचय कराना, मानपत्र पढ़ना, उसका जवाब देना, दूसरे मानपत्र स्वीकार करना, ये सारे काम २० मिनटके अंदर ही निबटा दिये गये। मानपत्र इतना छोटा था कि उसे पढ़नेमें पांच मिनटसे अधिक नहीं लगे होंगे। गोखलेके उत्तरने भी इससे ज्यादा वक्त नहीं लिया होगा। स्वयंसेवकोंका प्रबंध इतना सुंदर था कि पूर्व निश्चित लोगोंसे अधिक एक भी आदमी प्लेटफार्मपर नहीं आने पाया। शोरगुल बिलकुल नहीं था। बाहर जबर्दस्त भीड़ थी, फिर भी किसीके आने-जानेमें तनिक भी अड़चन नहीं हुई।

गोखलेको ठहरानेका प्रबंध मि० केलनबेकके एक सुंदर बंगलेमें किया गया था जो जोहान्स्बर्गसे पांच मीलके फासलेपर अवस्थित एक पहाड़ीकी चोटीपर बना हुआ था। वहांका दृश्य इतना सुंदर था, शांति इतनी आनंददायक थी और बंगलेकी बनावट सादी होते हुए भी इतनी कलामय थी कि गोखलेको यह स्थान बहुत ही पसंद आया। सब लोगोंसे मिलनेका प्रबंध शहरमें किया गया था। इसके लिए एक खास दफ्तर किरायेपर लिया गया था। उसमें तीन कमरे थे : एक खास कमरा गोखलेके आराम करनेके लिए, दूसरा मुलाकातके लिए और तीसरा मिलनेको आनेवालोंके बैठनेके लिए। नगरके कुछ विशेष व्यक्तियोंसे निजी मुलाकातके लिए भी हम गोखलेको ले गये थे। प्रमुख यूरोपियनोंने भी अपनी एक निजी सभा की थी जिसमें उनके दृष्टिबिंदुको गोखले पूरी तरह समझ लें। इसके सिवा जोहान्स्बर्गमें उनके सम्मानमें एक बड़ा भोज भी दिया गया जिसमें ४०० आदमियोंको निमंत्रण दिया गया था। इनमें १५० के लगभग यूरोपियन होंगे। भारतीयोंका प्रवेश टिकटसे रखा गया था जिसकी कीमत एक गिनी रखी गई थी। इससे इस दावतका खर्च निकल आया। भोजन शुद्ध निरामिष और मद्यपान-रहित ही था। रसोई भी सारी स्वयंसेवकोंने ही बनाई थी। इस सुंदर आयोजनका चित्र यहां प्रस्तुत कर सकना कठिन है। दक्षिण अफ्रीकामें हमारे भारतीय भाई हिंदू-मुसलमान छुआ-छूत नहीं जानते। हां, निरामिषभोजी भारतीय अपने निरा-मिषाहारकी रक्षा करते हैं। हिंदुस्तानियोंमें कितने ही ईसाई भी थे। वे बहुत करके गिरमिटिया मां-बापकी संतान हैं। उनमें-से बहुतेरे होटलोंमें खाना पकाने और परसनेका धंधा करते हैं। इन भाइयोंकी मददसे ही इतने बड़े भोजका प्रबंध कर लेना शक्य हुआ। भोजनमें कोई पंद्रह प्रकारकी चीजें रही

होंगी। दक्षिण अफ्रीकाके यूरोपियनोंके लिए यह बिलकुल नया और अचरजभरा अनुभव था। इतने अधिक हिंदुस्तानियोंके साथ एक पांतमें भोजन करने बैठना, निरामिष भोजन और बिना शराबके काम चला लेना, तीनों अनुभव उनमेंसे बहुतोंके लिए नये थे। दो तो सभीके लिए नये थे।

इस सम्मेलनमें गोखलेने जो भाषण दिया वह दक्षिण अफ्रीकामें उनका सबसे बड़ा और सबसे अधिक महत्त्वका भाषण था। वह लगातार ४५ मिनट बोले। इस भाषणकी तैयारीमें उन्होंने हमारी पूरी हाजिरी ली थी। उन्होंने अपना यह जिंदगीभरका नियम बताया कि स्थानीय लोगोंके दृष्टिबिंदुकी अवगणना न हो और उसका जितना लिहाज किया जा सकता है उतना किया जाय, इसलिए मुझे यह बता देनेको कहा कि मैं अपनी दृष्टिसे उनसे क्या कहलवाना चाहता हूं। यह मुझे लिखकर देना था और इसके साथ यह शर्त थी कि अगर उनके एक वाक्य या विचारका भी वह उपयोग न करें तो मैं बुरा न मानूं। वह मजमून न ज्यादा लंबा हो न छोटा, फिर भी कोई जरूरी बात छूट न जाय। इन सारी शर्तोंका पालन करते हुए मुझे उनके लिए अपने नोट तैयार करने होते थे। यह तो कह ही दूं कि मेरी भाषाका तो उन्होंने बिलकुल ही उपयोग नहीं किया। अंग्रेजी भाषामें पारंगत गोखले मेरी भाषाका कहीं भी उपयोग करेंगे, यह आशा मैं रखता ही क्यों? मेरे विचारोंका उन्होंने उपयोग किया, यह भी मैं नहीं कह सकता। पर उन्होंने मेरे विचारोंकी उपयोगिता स्वीकार की। इससे मैंने मनको यह समझा लिया कि उन्होंने किसी तरह मेरे विचारोंका उपयोग कर लिया होगा। पर उनकी विचारश्रेणी ऐसी थी कि उन्होंने उसमें अपने विचारको कहीं स्थान दिया या नहीं, इसका पता आपको चल ही नहीं सकता था। गोखलेके सभी भाषणोंमें मैं उपस्थित था, पर मुझे एक भी ऐसा अक्षर याद नहीं आता





दक्षिण अफ्रीकामें

श्री० गोखले

गांधीजी

जब मैंने सोचा हो कि उन्होंने अमुक भाव प्रकट नहीं किया होता या अमुक विशेषणका व्यवहार न किया होता तो अच्छा होता। उनके विचारोंकी स्पष्टता, दृढ़ता, विनय इत्यादि उनके अतिशय परिश्रम और सत्यपरायणताका प्रसाद थी।

जोहान्स्बर्गमें केवल हिंदुस्तानियोंकी विराट् सभा भी होनी ही चाहिए थी। मेरा यह आग्रह पूर्वकालसे ही चला आ रहा है कि हम या तो अपनी मातृभाषामें बोलें या राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानीमें। इस आग्रहकी बदौलत दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंके साथ मेरा संबंध सरल और निकटका हो गया। इससे मैं सोचता था कि हिंदुस्तानियोंके साथ गोखले भी हिंदुस्तानीमें ही बोलें तो अच्छा है। इस विषयमें गोखलेके विचार मुझे मालूम थे। टूटी-फूटी हिंदीसे वह अपना काम चला ही नहीं सकते थे। इसलिए या तो मराठीमें बोलते या अंग्रेजीमें। मराठीमें बोलना उन्हें बनावटी-सा जान पड़ा और उसमें बोलें भी तो गुजराती और उत्तर भारतवाले श्रोताओंके लिए उसका हिंदुस्तानी उलथा तो करना ही होता। तो फिर अंग्रेजीमें ही क्यों न बोलें? सौभाग्यवश मेरे पास एक ऐसी दलील थी जिससे गोखले मराठीमें बोलना मंजूर कर लें। जोहान्स्बर्गमें कोंकणके बहुतसे मुसलमान बसते थे। थोड़े महाराष्ट्रीय हिंदू तो थे ही। इन सभीको गोखलेका मराठी भाषण सुननेकी बड़ी इच्छा थी और उन्होंने मुझसे कह रखा था कि गोखलेसे मराठीमें बोलनेकी प्रार्थना करूं। मैंने उनसे कहा—"आप मराठीमें बोलेंगे तो ये लोग बहुत खुश होंगे और आप जो बोलेंगे उसका हिंदुस्तानी तरजुमा मैं कर दूंगा।" वह खिलखिलाकर हँस पड़े और बोले--"तुम्हारा हिंदुस्तानीका ज्ञान तो मैं सब जानता हूं। यह हिंदुस्तानी तुमको मुबारक हो। पर तुम मराठीका उलथा हिंदुस्तानीमें करने चले हो। यह तो बताओ कि इतनी मराठी तुमने कहां सीखी?" मैंने

जवाब दिया--"जो बात आपने मेरी हिंदुस्तानीके बारेमें कही है वही मराठीकी भी समझिए। मराठीका एक अक्षर भी मैं बोल नहीं सकता। पर जिस विषयका मुझे ज्ञान है उस विषयपर आप मराठीमें जो कुछ कहेंगे उसका भावार्थ मैं जरूर समझ जाऊंगा। इतना तो आप देख लेंगे कि मैं लोगोंके सामने उसका अनर्थ कदापि न करूंगा। मैं आपको ऐसे उलथा करनेवाले दे सकता हूं जो मराठी अच्छी तरह समझते हैं, पर शायद आप इसको पसंद न करें। अतः मुझे निभा लीजिएगा और मराठीमें ही बोलिएगा। कोंकणी भाइयोंके जैसी मुझे भी आपका मराठी भाषण सुननेकी हवस है।"

"तुम अपनी टेक जरूर रखना। यहां तुम्हारे पाले पड़ा हूं, इसलिए छुटकारा थोड़े ही पा सकता हूं।" यों कहकर मुझे रिझाया और इसके बाद ऐसी सभाओंमें ठेठ जंजीबारतक मराठीमें ही बोले और मैं उनका विशेष रूपसे नियुक्त भाषांतरकार रहा। मैं नहीं जानता कि यह बात मैं उन्हें कहां तक समझा सका कि मुहावरेदार और व्याकरण-शुद्ध अंग्रेजीमें बोलनेकी अपेक्षा यथासंभव मातृभाषा, यहां तक कि टूटी-फूटी व्याकरण-रहित हिंदीमें ही बोलना मुनासिब है। पर इतना जानता हूं कि दक्षिण अफ्रीकामें वह महज मुझे खुश करनेकी खातिर मराठीमें बोले। मराठीमें कुछ भाषण देनेके बाद इसके फलसे उन्हें भी प्रसन्नता हुई, यह मैं देख सका। गोखलेने दक्षिण अफ्रीकामें अनेक अवसरोंपर अपने व्यवहारसे यह दिखा दिया कि जहां सिद्धांतका प्रश्न नहीं वहां अपने सेवकोंको प्रसन्न करना गुण है।

: १३ :

गोखलेकी यात्रा—२

जोहान्स्बर्गसे हमें प्रिटोरिया जाना था। प्रिटोरियामें गोखलेको यूनियन सरकारकी ओरसे निमंत्रण था। अतः ट्रांसवाल होटलमें उसने उनके लिए जो स्थान खाली रखवाया था वहीं उतरना था। यहां गोखलेको यूनियन सरकारके मंत्रिमंडलसे मिलना था, जिसमें जनरल बोथा और जनरल स्मट्स भी थे। जैसा कि ऊपर बता चुका हूं, उनका कार्यक्रम मैंने ऐसा बनाया था कि रोज करनेके कामोंकी सूचना मैं उन्हें सवेरे या वह पूछें तो अगली रातको दे दिया करता था। मंत्रिमंडलसे मिलनेका काम बड़ी जवाबदेहीका था। हम दोनोंने तै किया कि मैं उनके साथ न जाऊं, जानेकी इच्छा भी प्रकट न करूं। मेरी उपस्थिति-से मंत्रिमंडल और गोखलेके बीच कुछ-न-कुछ पर्दा पड़ जाता। मंत्रिगण जी-भरकर स्थानीय भारतीयोंकी और इच्छा हो तो मेरी भी जो गलतियां मानते हों उन्हें न बता सकते। वे कुछ कहना चाहते हों तो उसे भी खुले दिलसे न कह सकते, पर इससे गोखलेकी जिम्मेदारी दुगनी हो जाती थी। कोई तथ्यकी भूल हो जाय या वे कोई नया तथ्य सामने रखें और उसका जवाब गोखलेके पास न हो अथवा उन्हें हिंदुस्तानियोंकी ओरसे कोई स्वीकृति देनी हो तो उस दशामें क्या करना होगा, यह समस्या उपस्थित हो गई। पर गोखलेने तुरंत उसका हल निकाल लिया। मैं उनके लिए भारतीयोंकी स्थितिका अथसे इति तक खुलासा तैयार कर दूं। भारतीय कहांतक जानेको तैयार हैं, यह भी लिख दूं। उसके बाहरकी कोई भी बात सामने आये तो गोखले अपना अज्ञान स्वीकार कर लें। यह निश्चय करके वह निश्चिंत हो गये। अब करना इतना ही रहा कि मैं उस तरहका

खुलासा तैयार कर दूं और गोखले उसे पढ़ लें। पर वह उसे पढ़ लें इतना वक्त तो मैंने रखा ही नहीं था। कितना ही छोटा खुलासा लिखूं फिर भी चार उपनिवेशोंमें भारतीयोंकी स्थितिका इतिहास दस-बीस पन्ने लिखे बिना कैसे दे सकता था ! फिर उस खुलासेको पढ़नेके बाद उनके मनमें कुछ सवाल तो उठते ही। पर उनकी स्मरणशक्ति जितनी तीव्र थी वैसी ही श्रम करनेकी शक्ति अगाध थी। सारी रात जगे और पोलकको और मुझे जगाया। एक-एक बातकी पूरी जानकारी प्राप्त की और उन्होंने भी समझा या नहीं, इसकी जांच भी करा ली। अपने विचार मुझे सुनाते जाते। अंतमें उन्हें संतोष हुआ। मैं तो निर्भय था ही।

लगभग दो घंटे या इससे कुछ अधिक वह मंत्रिमंडलके पास बैठे और लौटकर मुझसे कहा–"तुम्हें एक बरसके अंदर हिंदुस्तान लौट आना है। सब बातोंका फैसला हो गया। खूनी कानून रद होगा। इमिग्रेशन कानूनसे वर्णभेद निकाल दिया जायगा। तीन पौंडका कर उठा दिया जायगा।" मैंने कहा, "मुझे इसमें पूरी शंका है। मंत्रिमंडलको जितना मैं जानता हूं उतना आप नहीं जानते। आपका आशावाद मुझे प्रिय है, क्योंकि मैं खुद भी आशावादी हूं; पर अनेक बार धोखा खा चुका हूं। इसलिए इस विषयमें आपकी जितनी आशा मैं नहीं रख सकता। पर मुझे कोई डर नहीं। आप मंत्रिमंडलसे वचन ले आये, इतना ही मेरे लिए काफी है। मेरा धर्म तो इतना ही है कि जब आवश्यक हो तब लड़ लूं और यह साबित कर दूं कि हमारी लड़ाई न्यायकी है। इसकी सिद्धिमें आपको मिला हुआ वचन हमारे लिए बहुत लाभजनक होगा और लड़ना पड़ा ही तो लड़नेमें उससे हमारा बल दूना हो जायगा। पर अधिक भारतीयोंके जेलमें गये बिना और एक सालके अंदर मैं हिंदुस्तान लौट सकता हूं, ऐसा मुझे नहीं दिखाई देता।"

यह सुनकर वह बोले–"मैं तुमसे जो कहता हूं उसमें फर्क पड़नेवाला नहीं । मुझे जनरल बोथाने वचन दिया है कि खूनी कानून रद कर दिया जायगा और तीन पौंडका कर उठा दिया जायगा । तुम्हें बारह महीनेके अंदर हिंदुस्तान लौटना ही होगा । मैं तुम्हारा एक भी बहाना सुननेवाला नहीं ।"

जोहान्स्बर्गका भाषण प्रिटोरियाकी यात्राके बाद हुआ था।

ट्रांसवालसे गोखले डर्बन, मेरित्सबर्ग आदि स्थानोंमें गये । वहां भी बहुतसे यूरोपियनोंसे मिले-जुले । किम्बरलीकी हीरेकी खान भी देखी । किम्बरली और डर्बनमें भी स्वागत-मंडलकी ओरसे जोहान्स्बर्गकी जैसी दावतें की गईं और उनमें भी बहुतसे यूरोपियन सम्मिलित हुए । यों भारतीय और यूरोपियन दोनोंके मन हर कर गोखलेने १९१२की १७वीं नवंबरको दक्षिण अफ्रीकाके समुद्र-तटसे प्रस्थान किया । उनकी इच्छासे मैं और मि० केलनबेक जंजीबारतक उन्हें पहुंचाने गये । स्टीमरपर उनके लिए ऐसे भोजनका प्रबंध कर दिया था जो उनकी प्रकृतिके अनुकूल हो । रास्तेमें डेलागोआ बे, इनहामबेन, जंजीबार आदि बंदरगाहोंपर भी उनका खूब सम्मान किया गया ।

स्टीमरपर हमारे बीच होनेवाली बातचीतका विषय केवल हिंदुस्तान या उसके प्रति हमारा धर्म ही होता । उनकी हर बातमें उनकी कोमल भावना, उनकी सत्यपरायणता और उनका स्वदेशाभिमान झलक उठता । मैंने देखा कि स्टीमरपर वह जो खेल खेलते उनमें भी खेलकी बनिस्बत हिंदुस्तानकी सेवाका भाव अधिक होता । उसमें भी संपूर्णता तो होनी ही चाहिए थी ।

स्टीमरपर हमें इतमीनानसे बातें करनेकी फुरसत तो रहती ही । इन वार्तालापोंमें उन्होंने मुझे हिंदुस्तानके लिए तैयार किया । भारतके हरएक नेताके चरित्रका विश्लेषण

करके दिखाया। उनका विश्लेषण इतना सही था कि उन नेताओंके विषयमें जो कुछ मैंने स्वयं अनुभव किया उसमें और गोखलेके आलेखनमें शायद ही कहीं फर्क पाया हो।

गोखलेकी दक्षिण अफ्रीकाकी यात्रामें उनके साथ मेरा जो संबंध रहा उसके कितने ही पवित्र संस्मरण ऐसे हैं जो यहां दिये जा सकते हैं; पर सत्याग्रहके इतिहासके साथ उनका संबंध नहीं है, इससे मुझे अनिच्छापूर्वक अपनी कलम रोकनी पड़ रही है। जंजीबारमें हुआ वियोग मेरे और मि० केलनबेक दोनोंके लिए अतिशय दुःखदायी था, पर यह सोचकर कि देहधारियोंके निकट-से-निकट संबंधका भी एक दिन अंत होता ही है हमने धैर्य धारण किया और दोनोंने यह आशा रखी कि गोखलेकी भविष्यवाणी सत्य होगी और हम दोनों एक बरसके अंदर हिंदुस्तान जा सकेंगे। पर यह अनहोनी बात निकली।

फिर भी गोखलेकी दक्षिण अफ्रीकाकी यात्राने हमें अधिक दृढ़ किया और कुछ दिन बाद जब युद्ध फिर अधिक तीव्ररूपमें आरंभ हुआ तब इस यात्राका मर्म और उसकी आवश्यकता हम अधिक समझ सके। गोखले दक्षिण अफ्रीका न गये होते और मंत्रिमंडलसे न मिले होते तो तीन पौंडके करको हम युद्धका विषय न बना सके होते। अगर खूनी कानून रद हो जानेपर सत्याग्रहकी लड़ाई बंद हो जाती तो तीन पौंडके करके लिए हमें नया सत्याग्रह करना पड़ता और उसे करनेमें अपार कष्ट सहन करना पड़ता। इतना ही नहीं, लोग तुरंत दूसरे सत्याग्रहके लिए तैयार होते या नहीं, इसमें भी शंका ही थी। इस करको रद कराना स्वतंत्र भारतीयोंका फ़र्ज़ था। इसके लिए अर्जियां भेजना आदि सब वैध उपाय किये जा चुके थे। १८९५से यह कर अदा किया जा रहा था। पर कैसा ही घोर कष्ट क्यों न हो, वह लंबे अरसेतक बना रहे तो लोग उसके आदी हो जाते हैं और उसके विरोध करनेका धर्म उन्हें समझाना कठिन हो जाता है,

दुनियाको उसकी घोरता समझाना भी उतना ही कठिन हो जाता है। गोखलेको मिले हुए वचनने सत्याग्रहियोंका रास्ता साफ कर दिया। या तो सरकार अपने वचनके अनुसार उक्त करको उठा दे, नहीं तो यह वचन-भंग ही लड़ाईका सबल कारण हो जाता। हुआ भी ऐसाही। सरकारने एक बरसके अंदर कर नहीं उठाया। इतना ही नहीं, साफ कह दिया कि वह हटाया नहीं जा सकता।

अतः गोखलेकी यात्रासे तीन पौंडके करको सत्याग्रहके जरिये हटवानेमें हमें मदद तो मिली ही, इस यात्रासे वह दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नके विशेषज्ञ मान लिये गये। दक्षिण अफ्रीकाके बारेमें अब उनके कथनका वजन भी बढ़ गया। साथ ही दक्षिण अफ्रीकामें बसनेवाले भारतीयोंके विषयमें निजी जानकारी हो जानेके कारण इस बातको अधिक समझने लगे कि हिंदुस्तानको उनके लिए क्या करना चाहिए और हिंदुस्तानको यह बात समझानेमें उनकी शक्ति तथा अधिकार बहुत बढ़ गया। हमारी लड़ाई जब फिर छिड़ी तो हिंदुस्तानसे पैसेकी वर्षा होने लगी और लार्ड हार्डिंजने सत्याग्रहियोंके साथ अपनी गहरी और ज्वलन्त सहानुभूति दरसाकर उन्हें प्रोत्साहन दिया। हिंदुस्तानसे मि० एंड्रूज और मि० पियर्सन दक्षिण अफ्रीका गये। गोखलेकी यात्राके बिना ये सभी बातें अशक्य होतीं।

वचन-भंग कैसे हुआ और उसके बाद क्या हुआ, यह नये प्रकरणका विषय है।

: १४ :

वचन-भंग

दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह-संग्राममें इतने सूक्ष्म विचार-

से काम लिया जा रहा था कि प्रचलित नीतिके विरुद्ध एक भी कदम नहीं उठाया जाता। इतना ही नहीं, बल्कि इस बातका भी ध्यान रखा जाता कि सरकारको अनुचित रीतिसे कष्ट न पहुंचाया जाय। मिसालके लिए, खूनी कानून केवल ट्रांसवालके हिंदुस्तानियोंपर लागू किया गया था। इससे सत्याग्रह-नीतिमें केवल ट्रांसवालके भारतीय ही दाखिल किये जाते थे। नेटाल, केप कोलोनी इत्यादिसे सत्याग्रहियोंको भरती करनेका कुछ भी प्रयत्न नहीं किया गया, बल्कि वहांसे आये हुए इसके प्रस्ताव भी लौटा दिये गये। लड़ाईकी मर्यादा भी इस कानूनको रद करानेतक ही थी। इस बातको न गोरे समझ सकते थे, न भारतीय। आरंभमें भारतीयोंकी ओरसे यह मांग हुआ करती थी कि अगर लड़ाई शुरू करनेके बाद खूनी कानूनके अतिरिक्त और कष्टोंको भी हम उसके उद्देश्योंमें शामिल कर सकते हों तो क्यों न कर लें? मैंने उन्हें धीरजके साथ समझाया कि इसमें सत्यका भंग होता है और जिस युद्धमें सत्यका ही आग्रह हो उसमें उसके भंगकी बात कैसे सोची जा सकती है? शुद्ध युद्धमें तो लड़ते-लड़ते लड़नेवालोंका बल बढ़ता हुआ दिखाई दे तो भी युद्ध आरंभ करते समय जो उद्देश्य नियत किये गये हों उनसे आगे जा ही नहीं सकते। दूसरी ओर लड़नेका बल अगर दिन-दिन छीजता दिखाई दे तो भी जिस हेतुके लिए लड़ाई छेड़ी गई हो उसका त्याग नहीं किया जा सकता। इन दोनों सिद्धांतोंपर दक्षिण अफ्रीकामें पूरी तरह अमल किया गया। युद्ध आरंभ करते समय जिस बलके भरोसे हमने युद्धका लक्ष्य नियत किया हमने देखा कि आगे चलकर वह बल झूठा निकला, फिर भी जो मुट्ठीभर सत्याग्रही बच रहे थे वे युद्धका त्याग नहीं कर सके। इस प्रकार लड़ना अपेक्षाकृत आसान होता है और बलमें वृद्धि होते हुए भी उद्देश्यमें

वृद्धि न करना उससे कहीं कठिन होता है। इसमें अधिक समय दरकार होता है। ऐसे प्रलोभन दक्षिण अफ्रीकामें अनेक बार हमारे सामने आये; पर मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि उसका लाभ हमने एक बार भी नहीं उठाया और इसीसे मैंने अकसर कहा है कि सत्याग्रहीके लिए एक ही निश्चय होता है। वह उसे न घटा सकता है, न बढ़ा सकता है। उसमें न क्षयका अवकाश होता है और न वृद्धिका। आदमी जो पैमाना अपने लिए तै करता है, दुनिया भी उसको उसी पैमानेसे नापती है। सरकारने जब जान लिया कि सत्याग्रही ऐसी सूक्ष्म नीति बरतनेका दावा करते हैं तब उसने उनके ही पैमानेसे उनको नापना शुरू कर दिया, हालांकि वह खुद उस नीतिके एक भी नियम-सिद्धांतसे अपने आपको बंधा नहीं मानती थी। उसने सत्याग्रहियोंपर दो-चार बार नीति-भंगका इलजाम लगाया। खूनी कानूनके बाद हिंदुस्तानियोंके खिलाफ कोई नया कानून गढ़ा जाय तो उसका समावेश सत्याग्रहके हेतुओंमें हो सकता है, इस बातको एक बच्चा भी समझ सकता है। फिर भी जब नये दाखिल होनेवाले हिंदुस्तानियोंपर नया प्रतिबंध लगाया गया और वह लड़ाईके हेतुओंमें शामिल कर लिया गया तब सरकारने उनपर युद्ध-हेतुओंमें नये विषयोंको शामिल करनेका इलजाम लगाया। यह आरोप सोलहो-आने अनुचित था। अगर नये आनेवाले हिंदुस्तानियोंपर ऐसी रुकावटें लगाई गईं जो पहले नहीं थीं तो उनको भी युद्धके हेतुओंमें शामिल करनेका हक हमें होना ही चाहिए था और हम देख चुके हैं कि सोराबजी वगैरह इसीलिए ट्रांसवालमें दाखिल हुए। सरकारको यह बात बर्दाश्त नहीं हो सकती थी। पर निष्पक्ष लोगोंको इस कदमका औचित्य समझानेमें मुझे तनिक भी कठिनाई नहीं हुई।

गोखलेकी रवानगीके बाद ऐसा मौका फिर आया।

गोखलेने तो सोचा था कि तीन पौंडका कर एक बरसके अंदर रद हो ही जायगा और उनके जानेके बाद यूनियन पार्लमिंटका जो अधिवेशन होगा उसमें उसे उठा देनेके कानून-का मसविदा पेश कर दिया जायगा। इसके बदले जनरल स्मट्सने यह प्रकट किया कि नेटालके यूरोपियन यह कर उठा देनेको तैयार नहीं हैं, इसलिए यूनियन सरकार उसे रद करनेका कानून पास करनेमें असमर्थ है। वस्तुतः ऐसी कोई बात नहीं थी। यूनियन पार्लामेंटमें चारों उपनिवेशोंके प्रति-निधि बैठते हैं। अकेले नेटालके सदस्योंकी उसमें कुछ नहीं चल सकती थी। फिर मंत्रिमंडलके पेश किये हुए बिलको पार्ला-मेंट नामंजूर करे वहांतक पहुंचाना जरूरी था। जनरल स्मट्सने इसमेंसे कुछ भी नहीं किया। इससे हमें इस क्रूर करको युद्धके कारणोंमें सम्मिलित कर लेनेका सुयोग सहज ही मिल गया। इसके लिए हमें दो कारण मिले: एक तो यह कि चलती लड़ाईके दरमियान सरकारकी ओरसे कोई वचन दिया जाय और फिर उस वचनका भंग किया जाय तो यह वचन-भंग चलते सत्याग्रहके कार्य-क्रममें दाखिल हो जाता है। दूसरा यह कि हिंदुस्तानके गोखले-सरीखे प्रतिनिधिको दिया हुआ वचन तोड़ा जाय तो यह उनका ही नहीं, सारे हिंदुस्तानका अपमान है और यह अपमान सहन नहीं किया जा सकता। केवल पहला ही कारण होता और सत्याग्रहियोंमें शक्ति न होती तो उक्त करको रद करनेके लिए सत्याग्रह करना वह छोड़ सकते थे। पर जब उससे हिंदुस्तानका अपमान हो रहा हो तब तो उसे सहन कर लेना संभव ही नहीं था। इसलिए तीन पौंडके करको युद्धके कार्य-क्रममें शामिल कर लेना सत्याग्रहियोंको फर्ज जान पड़ा और जब तीन पौंडके करको युद्धके हेतुओंमें स्थान मिल गया तब गिरमिटिया हिंदुस्तानियोंको भी सत्याग्रहमें सम्मिलित होनेका मौका मिल गया। पाठकोंको

यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि अबतक ये लोग लड़ाईसे बाहर ही रखे गये थे। अतः एक ओर तो लड़ाईका बोझ बढ़ा और दूसरी ओर लड़नेवालोंके भी बढ़नेका समय आया हुआ दिखाई दिया।

गिरमिटियोंसे अबतक सत्याग्रहकी शिक्षा देनेकी तो बात ही क्या, लड़ाईकी चर्चातक नहीं की गई थी। वे निरक्षर थे, इसलिए 'इंडियन ओपीनियन' या दूसरे अखबार कहांसे पढ़ सकते थे? फिर भी मैंने देखा कि ये गरीब लोग सत्याग्रहका निरीक्षण कर रहे थे और जो कुछ हो रहा था उसको समझ रहे थे। कुछको इस लड़ाईमें शामिल न हो सकनेका दुःख भी था। पर जब वचन-भंग हुआ और तीन पौंडका कर भी युद्धके हेतुओंमें शामिल किया गया तब उनमें-से कौन लड़ाईमें शामिल होगा, इसका मुझे कुछ भी पता नहीं था।

वचन-भंगकी बात मैंने गोखलेको लिखी। उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ। मैंने उन्हें लिखा कि आप निश्चिंत रहें, हम मरते दमतक लड़ेंगे और इस करको रद कराके रहेंगे। हां, एक बरसके अंदर जो मुझे हिंदुस्तान लौटना था वह टला और पीछे कब लौट सकूंगा यह कहना अशक्य हो गया। गोखले तो अंकशास्त्री थे। उन्होंने मुझसे पूछा कि तुम्हारे पास अधिक-से-अधिक और कम-से-कम कितने लड़नेवाले हो सकते हैं और उनके नाम मांगे। जहांतक मुझे याद है, मैंने अधिक-से-अधिक ६५ या ६६ और कम-से-कम १६ नाम भेजे थे। मैंने यह भी लिख दिया कि इतनी छोटी-सी तादादके लिए मैं हिंदुस्तानसे पैसेकी मददकी अपेक्षा नहीं रखूंगा। यह विनती भी की कि हमारे बारेमें आप निश्चिंत रहें और अपने शरीरको अधिक कष्ट न दें। मैं अखबारोंके जरिये और दूसरे तौरपर भी जान चुका था कि दक्षिण अफ्रीकासे बंबई वापस जानेपर गोखलेपर

कमजोरी दिखाने इत्यादिके आक्षेप किये गये थे। इससे मैं चाहता था कि हिंदुस्तानमें हमें पैसा भेजनेके लिए वह कुछ भी आंदोलन न करें। पर गोखलेसे मुझे यह कड़ा जवाब मिला—"जैसे तुम लोग दक्षिण अफ्रीकामें अपना फर्ज समझते हो वैसे हम भी कुछ अपना फर्ज समझते होंगे। हमें क्या करना उचित है, यह तुमको बतानेकी आवश्यकता नहीं है। मैं तो महज वहांकी स्थिति जानना चाहता था। हमारी ओरसे क्या होना चाहिए इस बारेमें सलाह नहीं मांगी थी।" इन शब्दोंका मर्म मैं समझ गया। इसके बादसे मैंने इस विषयमें एक शब्द भी नहीं कहा और न लिखा। उन्होंने इसी पत्रमें मुझे आश्वासन दिया और चेतावनी भी दी। उन्हें डर था कि जब सरकारने इस तरह वचन-भंग किया है तब लड़ाई बहुत लंबी होगी और ये मुट्ठीभर आदमी कबतक उससे लोहा ले सकेंगे। इधर हम लोगोंने अपनी तैयारियां शुरू कीं। इस बारकी लड़ाईमें शांतसे बैठना तो हो ही नहीं सकता था। हमने यह भी समझ लिया कि इस बार सजाएं लंबी होंगी। अतः टाल्स्टायफार्म बंद कर देनेका निश्चय किया गया। मर्दोंके जेलसे छूटनेके बाद कुछ कुटुंब अपने-अपने घर चले गये। जो लोग बाकी रह गये थे उनमें अधिकांश फिनिक्स आश्रमके थे। अतः निश्चय हुआ कि आगेसे सत्याग्रहियोंका केन्द्र फिनिक्स ही हो। तीन पौंड-के करकी लड़ाईके अंदर अगर गिरमिटिये शामिल हुए तो उनसे मिलना-जुलना नेटालमें अधिक सुभीतेसे हो सकता था। इस खयालसे भी फिनिक्सको केन्द्र बनाना तै हुआ।

लड़ाई शुरू करनेकी तैयारी चल ही रही थी कि इतनेमें एक नया विघ्न उपस्थित हो गया, जिससे स्त्रियोंको भी लड़ाईमें शामिल करनेका मौका मिला। कुछ वीर स्त्रियां उसमें शामिल होनेकी मांग पहले ही कर चुकी थीं और जब बिना परवाना दिखाये फेरी करके जेल जाना आरंभ हुआ तब फेरी करने-

वालोंकी स्त्रियोंने भी जेल जानेकी इच्छा प्रकट की थी। पर उस वक्त परदेशमें स्त्रीवर्गको जेल भेजना हम सबको अयोग्य जान पड़ा। उन्हें जेल भेजनेका कारण भी नहीं दिखाई दिया और उन्हें जेल ले जानेकी मेरी तो उस वक्त हिम्मत भी नहीं थी। इसके साथ-साथ यह भी दिखाई दिया कि जो कानून खास तौरसे मर्दोंपर ही लागू होता हो उसको रद करानेमें स्त्रियों-को रोकना मर्दोंके लिए जिल्लतकी बात होगी। पर इस वक्त एक ऐसी घटना हुई जिसमें स्त्रियोंका खास तौरसे अपमान होता था और हमें जान पड़ा कि इस अपमानको दूर करनेके लिए स्त्रियां भी बलिदान हो जाएं तो अनुचित न होगा।

: १५ :

ब्याह ब्याह नहीं रहा

मानों अदृश्य रहकर ईश्वर हिंदुस्तानियोंकी जीतका सामान तैयार कर रहा हो और दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंके अन्यायको अधिक स्पष्ट रीतिसे प्रकट कर देना चाहता हो, दक्षिण अफ्रीकामें एक ऐसी घटना हुई जिसकी संभावना किसीको भी नहीं थी। हिंदुस्तानसे बहुतेरे विवाहित लोग दक्षिण अफ्रीका गये थे और कुछने वहीं ब्याह किया था। हिंदुस्तानमें सामान्य ब्याहोंकी रजिस्टरी करानेका कानून तो है ही नहीं। धार्मिक क्रिया ही काफी समझी जाती है। दक्षिण अफ्रीकामें भी हिंदुस्तानियोंके लिए यही प्रथा होनी चाहिए थी। हिंदुस्तानी चालीस बरससे उस देशमें बस रहे थे। फिर भी हिंदुस्तानके भिन्न-भिन्न धर्मोंके अनुसार हुए ब्याह नाजायज नहीं समझे गये थे। पर इस वक्त एक मुकदमा ऐसा हुआ जिसमें केप सुप्रीमकोर्टके एक न्यायाधीशने यह फैसला

दिया कि दक्षिण अफ्रीकाके कानूनमें वही ब्याह जायज माना जायगा जो ईसाई धर्मकी रीतिसे संपन्न हुआ हो और जिसकी रजिस्टरी विवाहके अधिकारी (रजिस्ट्रार आव मेरिजेज़) के यहां करा ली गई हो। अर्थात् हिंदू, मुसलमान, पारसी इत्यादि धर्मोंकी विधिसे हुए ब्याह इस भयंकर निर्णयसे दक्षिण अफ्रीकामें रद हो गये और बहुत-सी विवाहिता भारतीय महिलाओंका दरजा दक्षिण अफ्रीकामें अपने पतिकी धर्म-पत्नीका न रहकर रखेलीका हो गया और उनकी संतानको बापकी कमाई पानेका हक भी नहीं रहा। यह स्थिति न स्त्रियों-को सहन हो सकती थी, न पुरुषोंको। दक्षिण अफ्रीकामें बसने-वाले हिंदुस्तानियोंमें भारी खलबली मची। मैंने अपने स्वभावके अनुसार सरकारसे पूछा कि सरकार न्यायाधीशके इस निर्णयको मान लेगी या कानूनका उन्होंने जो अर्थ किया है वह सही हो तो भी वह अनर्थ है यह समझकर नया कानून बनाकर हिंदू-मुसलमान इत्यादि धर्मोंकी विधिसे हुए ब्याहोंको जायज मान लेगी? सरकारका भाव इस वक्त ऐसा नहीं था कि वह हमारी बातकी परवा करती। इसलिए जवाब इन्कारी का मिला।

उक्त निर्णयके विरुद्ध अपील की जाय या नहीं, इसपर विचार करनेके लिए सत्याग्रह-मंडलकी बैठक हुई। अंतमें सभीने निश्चय किया कि ऐसे मामलेमें अपील हो ही नहीं सकती। अपील करनी ही हो तो सरकार करे या वह चाहे तो अपने वकील (एटर्नी जनरल) की मारफत खुले तौरपर हिंदुस्ता-नियोंका पक्ष ले, तभी हिंदुस्तानी अपील कर सकते हैं। इसके बिना अपील करना हिंदू-मुसलमान विवाहोंका नाजायज ठहरा दिया जाना सहन कर लेना-सा होगा। फिर अपील की गई और उसमें हमारी हार हुई तो सत्याग्रह करना ही होगा। अतः ऐसे अपमानके बारेमें अपील की ही नहीं जा सकती।

अब ऐसा वक्त आ गया जब शुभतिथि या मंगलमुहूर्तकी राह देखी जा ही नहीं सकती थी। स्त्रियोंका अपमान होनेके बाद धीरज कैसे रहता? थोड़े या बहुत जितने भी आदमी मिल जाएं उन्हींको लेकर तीव्र रूपमें सत्याग्रह आरंभ करनेका निश्चय किया गया। अब स्त्रियोंका लड़ाईमें शामिल होना रोका नहीं जा सकता था। इतना ही नहीं, हमने उन्हें लड़ाईमें शामिल होनेका निमंत्रण देनेका निश्चय किया। पहले तो जो बहनें टाल्स्टाय फार्ममें रह चुकी थीं उन्हींको निमंत्रण दिया गया। वे बहनें तो लड़ाईमें शामिल होनेको बेचैन हो रही थीं। मैंने उन्हें लड़ाईकी सभी जोखिमें बता दीं। खाने-पीने, कपड़े-लत्ते, सोने-बैठनेमें पाबंदियां होंगी, यह समझा दिया। यह चेतावनी दे दी कि जेलमें उन्हें सख्त मशक्कत करनी होगी। कपड़े धुलवाये जाएंगे। अमले अपमान करेंगे। पर ये बहनें एक भी बातसे नहीं डरीं। सभी बहादुर थीं। एकके तो कई महीनेका गर्भ था। कुछकी गोदमें बच्चे थे; पर उन्होंने भी शामिल होनेका आग्रह किया और उनमेंसे किसीको भी रोक सकना मेरे बसकी बात नहीं थी। ये सभी बहनें तामिल थीं। उनके नाम ये हैं—

१. श्रीमती थंबी नायडू; २. श्रीमती एन० पिल्ले; ३. श्रीमती के० मुरुगेसा पिल्ले; ४. श्रीमती ए० पी० नायडू; ५. श्रीमती पी० के० नायडू; ६. श्रीमती चिन्नस्वामी पिल्ले; ७. श्रीमती एन. एस. पिल्ले; ८. श्रीमती मुर्दलिगम्; ९. श्रीमती भवानी दयाल; १०. श्रीमती एम० पिल्ले; ११. श्रीमती एम० बी० पिल्ले।

इनमेंसे ६ बहनोंकी गोदमें बच्चे थे।

अपराध करके जेल जाना आसान है। निर्दोष होते हुए अपने आपको गिरफ्तार कराना कठिन है। अपराधी गिरफ्तार होना नहीं चाहता, इससे पुलिस उसके पीछे

लगी रहती है और उसे पकड़ती है। पर जो अपनी खुशीसे और निरपराध होते हुए जेल जाना चाहता है उसको पुलिस तभी पकड़ती है जब वह इसके लिए लाचार हो जाती है। इन बहनोंका पहला यत्न विफल हुआ। उन्होंने बिना परवानेके ट्रांसवालमें दाखिल होकर फेरी की, पर पुलिसने उन्हें गिरफ्तार करनेसे इन्कार किया। उन्होंने फ्रीनिखनसे ऑरेंजिया (आरेंज फ्री स्टेट) की सरहदमें बिना अनुमतिके प्रवेश किया। फिर भी किसीने उन्हें न पकड़ा। अब स्त्रियोंके सामने यह सवाल खड़ा हो गया कि वह किस तरह अपने आपको गिरफ्तार कराएं। ज्यादा मर्द गिरफ्तार होनेको तैयार नहीं थे और जो थे उनके लिए अपने आपको गिरफ्तार कराना आसान नहीं था।

हमने वह कदम उठानेका निश्चय किया जिसे आखिरके लिए सोच रखा था। यह कदम बड़ा प्रभावकारी सिद्ध हुआ। मैंने सोच रखा था कि युद्धके अंतिम पर्वमें फिनिक्सके अपने सभी साथियोंको होम दूंगा। यह मेरे लिए अंतिम त्याग था। फिनिक्समें रहनेवाले मेरे अंतरंग सहयोगी और संबंधी थे। खयाल यह था कि अखबार चलानेके लिए जितने आदमी चाहिए उतने आदमियों और सोलह बरससे नीचेके लड़के-लड़कियोंको छोड़कर बाकी सबको जेल-यात्राके लिए भेज दें। इससे अधिक त्याग करनेके साधन मेरे पास नहीं थे। गोखलेको लिखते हुए जिन सोलह आदमियोंका उल्लेख किया था वे इनमेंसे ही थे। इस मंडलीको सरहद लांघ कर ट्रांसवालमें बिना परवानेके प्रवेश करनेके अपराधके लिए गिरफ्तार कराना था। डर था कि अगर इस कदमकी बात पहले ही प्रकट कर दी गई तो सरकार उनको नहीं पकड़ेगी। इसलिए दो-चार मित्रोंको छोड़कर और किसीको मैंने यह बात नहीं बताई थी। सरहद लांघते समय पुलिस-अफसर सदा

नाम-धाम पूछा करता था। इस वक्त उसको नाम-पता न बताना भी हमारी योजनाके अंदर था। पुलिस-अफसरको नाम-धाम न बताना भी एक जुदा अपराध माना जाता था। डर था कि नाम-पता बतानेमें पुलिस यह जान गई कि वे मेरे सगे-संबंधियोंसे हैं तो वह उन्हें गिरफ्तार नहीं करेगी। इससे नाम व ठिकाना न बतानेकी बात सोची गई थी। इस कदमके साथ-साथ उन बहनोंको नेटालमें दाखिल होना था जो ट्रांसवालमें दाखिल होनेका विफल प्रयत्न कर रही थीं। जैसे नेटालसे परवानेके बिना ट्रांसवालमें दाखिल होना अपराध था वैसे ही ट्रांसवालसे नेटालमें बिना परवानेके दाखिल होना भी अपराध था। इसलिए हमने तै किया था कि पुलिस इन बहनोंको पकड़े तो ये अपने आपको नेटालमें गिरफ्तार करा दें और न पकड़े तो नेटालके कोयलेकी खानोंके केन्द्र न्यूकैसलमें जाकर वहांके गिरमिटिया मजदूरोंसे खानोंसे निकल आनेका अनुरोध करें। इन बहनोंकी मातृभाषा तामिल थी। थोड़ी बहुत हिंदुस्तानी भी आती ही थी। मजदूरवर्गका बड़ा भाग मद्रास इलाकेका और तामिल-तैलगू बोलनेवाला था। उत्तरी हिंदुस्तानवाले भी काफी थे। मजदूर इन बहनोंकी बात सुनकर काम छोड़ दें तो सरकार मजदूरोंके साथ-साथ उन्हें भी गिरफ्तार किये बिना नहीं रहती। इसीसे मजदूरोंमें और ज्यादा जोश पैदा होनेकी पूरी संभावना थी। इस प्रकारकी व्यूह-रचना मनमें करके मैंने उसे ट्रांसवालकी बहनोंको समझा दिया था।

इसके बाद मैं फिनिक्स गया। वहां सबके साथ बैठकर बातें की। पहले तो वहां रहनेवाली बहनोंके साथ मशविरा करना था। बहनोंको जेल भेजनेका कदम बड़ा भयानक है। यह मैं जानता था। फिनिक्समें रहनेवाली अधिकांश बहनें गुजराती थीं। अतः उन्हें उक्त ट्रांसवालकी बहनोंकी तरह

मुस्तैद या अनुभवी नहीं मान सकते थे। इसके सिवा यह बात भी थी कि उनमेंसे अधिकांश मेरी रिश्तेदार थीं। इसलिए हो सकता था कि मेरी लाज रखनेके लिए ही जेल जानेकी बात सोचें और पीछे कसौटीके समय डरकर या जेलमें जानेके बाद वहांके कष्टसे घबराकर माफी आदि मांग लें तो मेरे दिलको गहरा धक्का लगता और लड़ाई एकबारगी कमजोर हो जाती। अपनी पत्नीके बारेमें तो मैंने निश्चय कर लिया था कि उसको कभी नहीं ललचाऊंगा। उसके मुंहसे तो ना निकल ही नहीं सकता। और हां निकले तो उस हांकी भी कितनी कीमत समझूं, यह मैं जान न सकता था। मैं समझता था कि ऐसी जोखिमके काममें पत्नी अपनी मर्जीसे जो कुछ करे पतिको वही स्वीकार करना चाहिए और वह कुछ भी कहे तो उसका तनिक भी दुःख नहीं मानना चाहिए। इसलिए यह तै कर लिया था कि उसके साथ इस बारेमें बात ही नहीं करूंगा। दूसरी बहनोंके साथ मैंने बातें कीं। उन्होंने भी ट्रांसवालवाली बहनोंकी तरह तुरंत बीड़ा उठा लिया और जेल जानेको तैयार हो गईं। मुझे इस बातका इतमीनान दिलाया कि कैसे ही कष्ट क्यों न सहने पड़ें, वे अपनी सजाकी मुद्दत पूरी करेंगी। पर इस सारी बातचीतका सार मेरी पत्नीने भी जान लिया। उसने मुझसे कहा—"आप मुझे इस बातकी खबर नहीं देते, इसका मुझे दुःख होता है। मुझमें ऐसी क्या खामी है कि मैं जेल नहीं जा सकती? मुझे भी वही रास्ता लेना है जिसपर चलनेकी सलाह आप इन बहनोंको दे रहे हैं।" मैंनें जवाब दिया—"तुम्हारा दिल दुखानेकी बात मैं सोच ही नहीं सकता। इसमें अविश्वासकी बात नहीं है। मैं तो तुम्हारे जेल जानेसे प्रसन्न ही हूंगा। पर मुझे इसका आभासतक नहीं होना चाहिए कि तुम मेरे कहनेसे जेल गई हो। ऐसे काम हरएकको अपनी हिम्मतसे ही करना चाहिए। मैं कहूं

तो मेरी बात रखनेके लिए तुम सहज ही जेल चली जाओगी। पीछे अदालतमें खड़ी होते ही कांपने लगो या हिम्मत हार दो अथवा जेलके कष्टोंसे कातर हो जाओ तो इसमें तुम्हारा दोष तो मैं मानूंगा, पर मेरी दशा क्या होगी? मैं तुम्हें किस तरह ग्रहण कर सकूंगा? दुनियाके सामने कैसे मुंह दिखा सकूंगा? इसी डरसे मैंने तुम्हें जेल जानेको नहीं ललचाया।" मुझे जवाब मिला—"मैं हिम्मत हारकर चली आऊं तो आप मुझे न अपनायें। मेरे लड़के कष्ट सह सकते हैं। आप सब लोग सह सकते हैं और अकेली मैं ही नहीं सह सकती, यह आप कैसे सोच सकते हैं? मुझे तो इस लड़ाईमें शामिल करना ही होगा।" मैंने जवाब दिया—"तो तुम्हें शामिल करना ही होगा। मेरी शर्त तो तुम जानती ही हो। मेरा स्वभाव भी जानती हो। अब भी सोचना-विचारना हो तो सोच-विचार लो और भलीभांति विचार कर लेनेके बाद अगर तुम्हारा दिल कहे कि तुम्हें इसमें शामिल नहीं होना चाहिए तो तुम्हें इसकी आजादी है। और यह भी जान लो कि निश्चय बदलनेमें अभी कोई शर्म भी नहीं।" जवाब मिला—"मुझे कुछ सोच-विचार करना ही नहीं है। मेरा निश्चय ही है।"

फिनिक्समें रहनेवाले दूसरे लोगोंको भी मैंने स्वतंत्र रीतिसे निश्चय करनेकी सलाह दी थी। लड़ाई थोड़े दिन चले या बहुत दिन, फिनिक्स-आश्रम कायम रहे या जमींदोज हो जाय, जेल जानेवाले तंदुरुस्त रहें या बीमार हो जाएं, पर कोई पीछे नहीं हट सकेगा, यह शर्त मैंने बार-बार और तरह-तरहसे कहकर समझा दी। सब तैयार हो गये। फिनिक्स-से बाहरके अकेले रुस्तमजी जीवनजी घोरखोदू थे। उनसे यह सारा विचार-विमर्श छिपा रखा जाय, यह नहीं हो सकता था। वह पीछे रहनेवाले आदमी भी नहीं थे। वह जेल हो

भी आये थे, पर फिर जानेका आग्रह कर रहे थे। इस जत्थेमें शामिल होनेवालोंके नाम इस प्रकार हैं :

१. सौ० कस्तूर मोहनदास गांधी, २. सौ० जयाकुंवर मणिलाल डाक्टर, ३. सौ० काशी छगनलाल गांधी, ४. सौ० सन्तोक मगनलाल गांधी, ५. श्रीपारसी रुस्तमजी जीवन घोरखोदू, ६. श्रीछगनलाल खुशालचंद गांधी, ७. श्रीरावजी भाई मणिलाल पटेल, ८. श्री मगन भाई हरिभाई पटेल, ९. श्री-सालोमन रायपन, १०. भाई रामदास मोहनदास गांधी, ११. भाई राजगोविन्द, १२. भाई शिवपूजन बद्री, १३. गोविंद राजुलू, १४. श्रीकुप्पु स्वामी मुदालियार, १५. भाई गोकुलदास हंसराज, १६. रेवाशंकर रतनशी सोढा।

आगे क्या हुआ यह अगले प्रकरणमें पढ़ियेगा।

: १६ :

स्त्रियां जेलमें

इस जत्थेको सरहद पारकर बिना परवानेके ट्रांसवालमें दाखिल होनेके जुर्ममें गिरफ्तार होना था। नामोंसे पाठक देखेंगे कि उनमें कुछ ऐसे नाम हैं जो प्रकट हो जाते तो पुलिस शायद उन्हें गिरफ्तार नहीं करती। मेरे विषयमें यही बात हुई थी। एक-दो बार गिरफ्तार करनेके बाद सरहद पार करते वक्त पुलिसने मुझे पकड़ना छोड़ दिया था। इस जत्थेके कूचकी खबर किसीको नहीं दी गई थी। अखबारोंको तो दे ही कैसे सकते थे ? जत्थेके सदस्योंको समझा दिया गया था कि वे पुलिसको भी नाम-धाम न बताएं। पूछनेपर उससे कह दें कि हम अदालतमें नाम बतायेंगे।

पुलिसके सामने ऐसे मामले अकसर आते। अपने आपको

गिरफ्तार करानेके आदी हो जानेके बाद हिंदुस्तानी अकसर मजेके लिए पुलिसको तंग करनेकी नीयतसे भी उसको नाम नहीं बताते थे। अतः इस जत्थेके नाम न बतानेमें उसे कोई विचित्रता नहीं जान पड़ी। पुलिसने इस जत्थेको गिरफ्तार किया। मुकदमा चला। सबको तीन-तीन महीनेकी कड़ी कैदकी सजा मिली।

जो बहनें ट्रांसवालमें अपने आपको गिरफ्तार करानेके प्रयत्नमें निराश हुई थीं वे नेटालकी सरहदमें दाखिल हुईं। पुलिसने उन्हें बिना परवानेके प्रवेश करनेके जुर्ममें गिरफ्तार नहीं किया। यह तै हुआ था कि पुलिस उन्हें न पकड़े तो वे न्यूकैसेल जाकर पड़ाव करें और कोयलेकी खानोंके हिंदुस्तानी मजदूरोंसे अपना काम छोड़ देनेकी विनती करें। न्यूकैसेल नेटालमें कोयलेकी खानोंका केन्द्र है। इन खानोंमें मुख्यतः हिंदुस्तानी मजदूर ही काम करते थे। बहनोंने अपना काम शुरू किया। उसका असर बिजलीकी तरह फैल गया। तीन पौंडके करकी कहानी उन्होंने सुनी तो उनपर गहरा असर हुआ। उन्होंने अपना काम छोड़ दिया। मुझे तार मिला। मैं खुश हुआ, पर इतना ही घबराया भी। मुझे क्या करना है? इस अद्भुत जागरणके लिए मैं तैयार नहीं था। मेरे पास पैसा नहीं था; न इतने आदमी थे जो इस कामको संभाल लें। अपना फर्ज मैं समझता था। मुझे न्यूकैसेल जाना और जो कुछ हो सके वह करना था। मैं उठा और चल दिया।

सरकार अब इन बहादुर बहनोंको क्यों छोड़ने लगी? वे गिरफ्तार हुईं। उन्हें भी वही सजा मिली जो फिनिक्सवाले जत्थेको मिली थी—तीन-तीन महीनेकी कड़ी कैद और उसी जेलमें रखी गईं।

दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय अब जागे। उनकी नींद टूटी। उनमें नई चेतना आई जान पड़ी। पर बहनोंके

बलिदानने हिंदुस्तानको भी जगाया। सर फीरोजशाह मेहता अबतक तटस्थ थे। १९०१ में उन्होंने मुझे कड़े शब्दोंमें चेतावनी देकर दक्षिण अफ्रीका न जानेको समझाया था। उनका मत मैं पहले बता चुका हूं। सत्याग्रहकी लड़ाईका भी उनपर थोड़ा ही असर हुआ था। पर स्त्रियोंकी कैदने उनपर जादूका-सा असर डाला। बंबईके टाउनहालमें भाषण देते हुए उन्होंने खुद कहा कि स्त्रियोंकी जेल-यात्राने मेरी शांति भंग कर दी। हिंदुस्तानसे अब चुप बैठे नहीं रहा जा सकता।

बहनोंकी बहादुरीके क्या कहने! सभी नेटालकी राजधानी मारित्सबर्गमें रखी गईं। यहां उन्हें काफी कष्ट दिया गया। खूराकमें उनका जरा भी खयाल नहीं रखा गया। काम उन्हें कपड़े धोनेका दिया गया। बाहरसे खाना भेजनेकी सख्त मनाही लगभग आखिरतक रही। एक बहनने एक विशेष प्रकारके भोजनका ही व्रत ले रखा था। बड़ी कठिनाईसे उसे वह भोजन देनेका निश्चय हुआ। पर वह ऐसा होता था कि गलेसे उतारा न जा सके। उसे जैतूनके तेलकी खास जरूरत थी। पहले तो वह मिला ही नहीं। फिर मिला भी तो बरसोंका पुराना और बदबूदार। अपने खर्चसे मंगानेकी प्रार्थना की गई तो जवाब मिला—"यह कोई होटल नहीं है! जो मिले वह खाना होगा।" यह बहन जब जेलसे निकली तो देहमें ठठरी भर रह गई थी। महाप्रयाससे जान बची।

एक दूसरी बहन भयंकर ज्वर लेकर निकली। उस ज्वरने रिहाई (२२ फरवरी १९१४) के बाद कुछ ही दिनोंमें उसे प्रभुके पास पहुंचा दिया। उसको मैं कैसे भूल सकता हूं? वलिअम्मा सोलह सालकी लड़की थी। मैं जब उसको देखने गया तो वह खाटपर पड़ी थी। लंबे कदकी होनेसे उसकी लकड़ी-जैसी देह डरावनी लगती थी।

मैंने पूछा "वलिअम्मा, जेल जानेका पछतावा तो नहीं हो रहा है न ?"

"पछतावा क्यों होगा ? मुझे तो फिर गिरफ्तार करें तो इस वक्त भी जेल जानेको तैयार हूं।"'

"पर उसका फल मृत्यु हो तो ?"

"हुआ करे'। देशके लिए मरना किसे न भायेगा ?"

इस बातचीतके कुछ ही दिन बाद वलिअम्मा स्वर्ग सिधारीं। उसकी देह गई, पर यह बाला अपना नाम अमर कर गई है। वलिअम्माकी मृत्युके बाद जगह-जगह शोक प्रकाश करनेवाली सभाएं हुई और कौमने इस पवित्र बहनकी स्मृति-रक्षाके लिए 'वलिअम्मा हाल' के नामसे एक सभा-भवन बनानेका निश्चय किया। यह हाल बनानेके धर्मका कौमने अबतक पालन नहीं किया। उसमें अनेक विघ्न आये। कौममें फूट पड़ी। मुख्य कार्यकर्ता एकके पीछे एक छोड़कर चले गये। पर पत्थर-चूनेका हाल बने या न बने, वलिअम्माकी सेवाका नाश नहीं हो सकता। इस सेवाका हाल तो वह अपने हाथों ही निर्माण कर गई है। उसकी मूर्ति आज भी बहुतसे हृदय-मंदिरोंमें विराजती है और जबतक भारतवर्षका नाम है तबतक दक्षिण अफ्रीकाके इतिहासमें वलिअम्माका नाम भी अमर रहेगा।

इन बहनोंका बलिदान विशुद्ध था। ये बेचारी कानून-कायदेकी बारीकियोंको नहीं जानती थीं। उनमें बहुतोंको देशकी कल्पना नहीं थी, उनका देशप्रेम केवल श्रद्धापर अवलंबित था। उनमें अनेक निरक्षर थीं, इसलिए अखबार पढ़ना कहांसे जानतीं ? पर वे इतना जानती थीं कि कौमके मानरूपी वस्त्रका हरण हो रहा है। उनका जेल जाना उनका आर्त्त-नाद था। शुद्ध यज्ञ था। ऐसी हृदयकी प्रार्थनाको प्रभु सुनते हैं। यज्ञकी सफलता उसकी उसी शुद्धतापर आश्रित होती है। भगवान भावके भूखे हैं। भक्तिपूर्वक अर्थात् निस्स्वार्थ-

बुद्धिसे अर्पित पत्र, पुष्प या जलको वह सप्रेम स्वीकार करते हैं और उसका करोड़ गुना फल देते हैं। सुदामाके मुट्ठीभर चावलकी भेंटसे उसकी बरसोंकी भूख भाग गई। बहुतोंके जेल जानेका चाहे कोई फल न हो, पर एक ही शुद्ध आत्माका भक्तिपूर्वक किया हुआ आत्मार्पण कभी निष्फल नहीं होता। दक्षिण अफ्रीकामें किस-किसका यज्ञ फला इसे कौन जानता है ? पर इतना हम जानते हैं कि वलिअम्माका यज्ञ तो सफल हुआ ही। दूसरी बहनोंका यज्ञ भी जरूर सफल हुआ।

स्वदेश-यज्ञमें, जगत-यज्ञमें असंख्य आत्माओंका होम हो चुका है, हो रहा है और होगा। यही यथार्थ है; क्योंकि कोई नहीं जानता कि कौन शुद्ध है। पर सत्याग्रही इतना तो समझ ही रखे कि उनमें एक भी शुद्ध हो तो उनका यज्ञ फल उपजानेके लिए काफी है। पृथ्वी सत्यके बलपर टिकी हुई है। असत्--असत्य अर्थात् नहीं; सत्--सत्य अर्थात् है। जब असत्का अस्तित्व ही नहीं है तब उसकी सफलता क्या होगी ? और जो है, उसका नाश कौन कर सकनेवाला है ? इतनेहीमें सत्याग्रहका सम्पूर्ण शास्त्र समाया हुआ है।

: १७ :

मजदूरोंकी धारा

बहनोंके इस त्यागका असर मजदूरोंपर अद्भुत हुआ। न्यूकैसलके नजदीककी खानोंके मजदूरोंने अपने औजार फेंक दिये। उनकी धारा नगरकी ओर बह चली। खबर मिलते ही मैंने फिनिक्स छोड़ा और न्यूकैसलके लिए रवाना हो गया।

इन मजदूरोंका अपना घर नहीं होता। मालिक ही उनके लिए घर बनवाते हैं। उनकी सड़कों-गलियोंमें लैम्प

लगवाते हैं। मालिक ही उनको पानी भी देते हैं। अर्थात् मजदूर हर तरह पराधीन होते हैं और जैसा कि गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है :

"पराधीन सपनेहु सुख नाहीं"

ये हड़ताली मेरे पास अनेक प्रकारकी शिकायतें लाने लगे। कोई कहता—"मालिक रास्तेपरकी रोशनी बंद कर रहे हैं।" कोई कहता—"पानी बंद कर रहे हैं।" कोई कहता—"वे हड़तालियोंका सामान कोठरियोंसे बाहर निकालकर फेंके दे रहे हैं।" एक पठान सैयद इब्राहीमने अपनी पीठ दिखाकर कहा— "यह देखो, मुझे कैसा मारा है! मैंने आपके लिए बदमाशको छोड़ दिया है। आपका यही हुक्म है। मैं पठान हूं और पठान कभी मार खाता नहीं, मार मारता है।"

मैंने जवाब दिया—"भाई, तुमने बहुत ही अच्छा काम किया। इसीको मैं सच्ची बहादुरी कहता हूं। तुम जैसे लोगोंसे ही हम जीतेंगे।"

मैंने यों मुबारकबादी तो दी, पर दिलमें सोचा कि बहुतोंपर ऐसी बीती तो हड़ताल नहीं चलेगी। मारको छोड़ दें तो मालिकोंकी शिकायत किस बातकी करें? हड़ताल करनेवालोंकी रोशनी-पानी आदिकी सुविधाएँ मालिक बंद कर दें तो इसमें शिकायतके लिए अधिक स्थान नहीं। पर हो या न हो, लोग ऐसी स्थितिमें कैसे निभा सकते हैं? मुझे कोई उपाय सोच लेना ही होगा। अथवा लोग थककर कामपर वापस जायं इससे तो यही अच्छा है कि वे अपनी हार कबूल कर लें और कामपर लौट जाएं। पर लोग मेरे मुंहसे ऐसी सलाह हरगिज न सुनेंगे। तब एक ही रास्ता था : मजदूर मालिकोंकी कोठरियां ख़ाली कर दें, यानी 'हिजरत' करें।

मजदूर दस-बीस नहीं थे, सकड़ों थे। हजारों होते भी देर न लगती। उनके लिए मकान कहांसे पैदा करूं? खाना

कहांसे लाऊं ? हिंदुस्तानसे पैसा मंगाना नहीं था। वहांसे पैसेका जो मेंह बरसा वह अभी आरंभ नहीं हुआ था। भारतीय व्यापारी इतना डर गये थे कि वे मुझे खुले तौरपर कोई मदद देनेको तैयार नहीं थे। उनका व्यापार खान-मालिकों और दूसरे गोरोंके साथ था। इसलिए वे खुले तौरपर मेरा साथ कैसे देते ? जब कभी मैं न्यूकैसेल जाता, उन्हींके यहां उतरता था। इस बार मैंने खुद ही उनका रास्ता आसान कर दिया, दूसरी ही जगह उतरनेका निश्चय किया।

मैं बता चुका हूं कि जो बहनें ट्रांसवालसे आई थीं वे द्राविड़ प्रदेशकी थीं। वे एक द्राविड़ कुटुंबके यहां, जो ईसाई था, ठहरी थीं। यह कुटुंब मध्यम स्थितिका था। उसके पास जमीनका एक छोटा-सा टुकड़ा और दो-तीन कमरोंका मकान था। मैंने यहीं उतरनेका निश्चय किया। घरके मालिकका नाम लाजरस था। गरीबको किसका डर हो सकता है ? ये लोग मूलतः एक गिरमिटिया कुटुंबके थे। इसलिए उन्हें और उनके स्वजनोंको भी तीन पौंडका कर देना होता। गिरमिटियोंके कष्टोंकी पूरी जानकारी उन्हें होनी ही चाहिए थी और उनके साथ हमदर्दी भी पूरी होनी चाहिए थी। इस कुटुंबने मेरा सहर्ष स्वागत किया। मुझे मेहमान बनाना मित्रोंके लिए कभी आसान तो रहा ही नहीं; पर इस वक्त मेरा स्वागत करना आर्थिक नाशका स्वागत करना था और शायद जेलका स्वागत करना भी होता। ऐसे धनिक व्यापारी थोड़े ही हो सकते थे जो अपने आपको ऐसी स्थितिमें डालनेको तैयार हों। अतः मैंने अपनी और उनकी मर्यादा समझकर तै किया कि मुझे उनको कठिनाईमें नहीं डालना चाहिए। लाजरस बेचारेको थोड़ी-सी तनख्वाह खोनी पड़ती तो वह खो देता। उसे कोई जेल ले जाय तो वह चला जाता। पर अपनेसे भी ज्यादा गरीब गिरमिटियोंका कष्ट वह कैसे

अनुद्विग्न चित्तसे सहन करता ? इसने देखा कि ट्रांसवालकी बहनें जो उसीके यहां टिकी हुई थीं, गिरमिटियोंकी मदद करने जाकर जेलखाने पहुंच गईं। भाई लाजरसने सोचा कि उनके प्रति उसका भी कुछ फर्ज है और मुझे आश्रय दे दिया। उसने मुझे आश्रय तो दिया ही, साथ ही अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। मेरे उसके यहां जानेके बाद उसका घर धर्मशाला बन गया। सैकड़ों आदमी और हर तरहके आदमी चाहे जब आते और जाते। उसके घरके आसपासकी जमीन आदमियोंसे खचाखच भर गई। उसका चूल्हा चौबीसों घंटे जला करता। उसकी धर्मपत्नीको इसमें जी-तोड़ मेहनत करनी पड़ती। फिर भी पति-पत्नी दोनोंके चेहरे हर वक्त हँसते रहते। उनकी मुखाकृतिमें मैंने कभी अप्रसन्नता नहीं देखी।

पर गरीब लाजरस क्या सैकड़ों मजदूरोंको खिला सकता था ? मजदूरोंको मैंने सुना दिया कि उन्हें अपनी हड़तालको स्थायी चीज समझकर मालिकोंके दिये हुए झोंपड़े खाली कर देने चाहिए। जो चीजें बिक सकती हों बेंच डालो, बाकी सामानको कोठरीमें पड़ा रहने दो। मालिक उसको हाथ नहीं लगायंगे। पर और बदला चुकानेके लिए वे उसे उठाकर फेंक दें तो मजदूरोंको यह जोखिम भी उठानी होगी। मेरे पास वे पहननेके कपड़े और ओढ़नेके कंबलके सिवा और कोई भी चीज न लायें। जबतक हड़ताल चलती रहेगी और जबतक वे जेलके बाहर रहेंगे तबतक मैं उन्हींके साथ रहूंगा और खाऊंगा-पिऊंगा। इन शर्तोंके साथ वे खानोंसे बाहर निकल आयें तभी वे टिक सकते हैं और कौमकी जीत हो सकती है। जिसमें इसकी हिम्मत न हो वह अपने कामपर लौट जाय। जो कामपर वापस जाय, उसका कोई तिरस्कार न करे, उसको तंग न करे। इन शर्तोंको माननेसे किसीने इन्कार किया हो

इसकी याद मुझे नहीं है। जिस दिन मैंनें कहा उसी दिनसे हिजरत करनेवालों—गृहत्यागियोंका तांता लग गया। सब अपने बीबी-बच्चोंको साथ लिए सिरपर कपड़ोंकी गठरी रखे पहुंचने लगे। मेरे पास घरके नामपर तो सिर्फ खुली जमीन थी। सौभाग्यवश उस मौसममें न वर्षा हो रही थी और न ठंड ही पड़ रही थी।

मेरा विश्वास था कि भोजनका भार उठानेमें व्यापारी-वर्ग पीछे न रहेगा। न्यूकैसेलके व्यापारियोंने पकानेके लिए बरतन दिये और चावल-दालके बोरे भेजे। दूसरे स्थानोंसे भी दाल, चावल, सब्जी, मसाले आदिकी वर्षा होने लगी। जितनेकी आशा मैं रखता था उससे कहीं अधिक ये चीजें मेरे पास आने लगीं। सब जेल जानेको तैयार न हों; पर सबकी हमदर्दी तो थी ही। सब इस यज्ञमें यथाशक्ति सहायताके रूपमें अपना भाग अर्पण करनेको तैयार थे। जो कुछ देने लायक न थे उन्होंने अपनी सेवा देकर मदद की। इन अनजान अपढ़ आदमियोंको सम्हालनेके लिए जाने-पहचाने हुए और समझदार स्वयंसेवक तो दरकार थे ही। वे मिल गये और उन्होंने अमूल्य सहायता की। उनमेंसे बहुतेरे तो गिरफ्तार भी हुए। यों सबने यथाशक्ति सहायता की और हमारा रास्ता आसान हो गया।

आदमियोंकी भीड़ बढ़ने लगी। इतने बड़े और लगातार बढ़ते जानेवाले मजदूरोंके मजमेको एक ही स्थानमें बिना किसी काम-धंधेके समेट रखना नामुमकिन नहीं तो खतरनाक जरूर था। उनकी शौच आदिकी आदतें तो सुथरी होती ही नहीं थीं। इस समुदायमें कितने ही ऐसे थे जो अपराध करके जेल भी हो आये थे। कोई हत्याका अपराधी था, कोई चोरीके जुर्ममें कैदकी सजा भुगतकर छूटा था, कोई व्यभिचारके अपराधमें जेल काटकर आया था। हड़ताली मजदूरोंमें नीतिका भेद मेरे किये नहीं हो सकता था। भेद करूं भी

तो अपना भेद मुझे कौन बतलाता ? मैं काजी बन बैठूं तो विवेकहीन बनूं । मेरा काम केवल हड़ताल चलाना था । इसमें दूसरे सुधारोंको मिलाना मुमकिन नहीं था । छावनी-में नीतिका पालन करना मेरा काम था । आनेवाले पहले कैसे थे, इसकी जांच करना मेरा फर्ज नहीं था । यह शिवकी बरात एक जगह जमकर बैठ जाय तो अपराध होना निश्चित था । अचरजकी बात तो यह थी कि जितने दिन मैंने यहां बिताये वे शांतिसे बीते । सब लोग ऐसी शांतिसे रहे मानों उन्होंने अपना आपद्धर्म समझ लिया हो ।

मुझे उपाय सूझा : इस दस्तेको ट्रांसवाल ले जाऊं और जैसे पहलेके १६ आदमी गिरफ्तार हो गये वैसे इन्हें भी जेलमें बिठा दूं । इन लोगोंको छोटे-छोटे जत्थोंमें बांटकर उनसे सरहद पार कराऊं । यह विचार ज्योंही मनमें आया त्योंही उसे रद कर दिया । इसमें बहुत वक्त जाता और सामुदायिक कार्यका जो असर होता वह छोटे-छोटे जत्थोंके जेल जानेका न होता ।

मेरे पास कोई पांच हजार आदमी इकट्ठा हुए होंगे । इन सबको ट्रेनसे नहीं ले जा सकता था । इतना पैसा कहांसे लाऊं ? और इसमें लोगोंकी परीक्षा भी नहीं हो सकती थी । न्यूकैसेलसे ट्रांसवालकी सरहद ३६ मील थी । नेटालका सरहदी गांव चार्ल्सटाउन था; ट्रांसवालका वाक्सरस्ट । अंतमें मैंने पैदल यात्रा करनेका ही निश्चय किया । मजदूरोंके साथ मशविरा किया । उनके साथ स्त्रियां, बच्चे आदि थे । अतः कुछने आनाकानी की । मेरे पास दिल कड़ा करनेके सिवा दूसरा उपाय ही नहीं था । मैंने लोगोंसे कह दिया कि जिसे खान-पर वापस जाना हो वह जा सकता है । पर कोई वापस जाने-को तैयार न था । जो लोग अपंग थे उन्हें ट्रेनसे भेजनेका निश्चय किया । बाकीके सब लोगोंने कहा कि हम पैदल चलकर

चार्ल्सटाउन जानेको तैयार हैं। यह मंजिल दो दिनमें पूरी करनी थी। अंतमें सभी इस निश्चयसे प्रसन्न हुए। लोगोंने यह भी समझा कि इससे बेचारे लाजरस-परिवारको कुछ राहत मिलेगी। न्यूकैसेलके गोरोंको प्लेग फैलनेका डर लग रहा था और उसके प्रतीकारके लिए अनेक उपाय करनेकी बात सोच रहे थे। वे भयमुक्त हुए और उनकी कार्रवाइयोंके डरसे हम भी मुक्त हुए।

इस कूचकी तैयारी चल रही थी कि मुझे खानमालिकोंसे मिलनेका बुलावा आया। मैं डर्बन गया; पर इस कहानीका उल्लेख पृथक् प्रकरण में करूंगा।

: १८ :

खानमालिकोंके पास और उसके बाद

खानमालिकोंके बुलावेपर मैं उनसे मिलने डर्बन गया। मैंने समझा कि मालिकोंपर कुछ असर हुआ है। इस बातचीतसे कुछ मिलेगा यह आशा तो मैं नहीं रखता था। पर सत्याग्रहीकी नम्रताकी कोई हद नहीं होती। वह समझौतेके एक भी अवसरको जाने नहीं देता। इससे कोई उसको डरपोक माने तो वह अपने आपको डरपोक मानने देता है। जिसके हृदयमें विश्वास और विश्वाससे उपजनेवाला बल है वह दूसरोंकी अवगणनाकी परवा नहीं करता। वह अपने अन्तर्बलका भरोसा रखता है। इससे सबके सामने नम्र रहकर वह जगतके जनमतको जगाता और अपने कार्यकी ओर खींचता है।

इससे मुझे मालिकोंका निमंत्रण स्वागत करने योग्य जान पड़ा। मैं उनके पास पहुंचा। मैंने देखा कि हवामें गर्मी है। मुझसे स्थिति समझनेके बदले उनके प्रतिनिधिने मुझसे

जिरह शुरू कर दी। मैंने उसको मुनासिब जवाब दिये। मैंने कहा--"यह हड़ताल बंद कराना आपके हाथमें है।"

उनकी ओरसे जवाब मिला--"हम कोई अधिकारी नहीं हैं।"

मैंने कहा---"आप अधिकारी नहीं हैं, फिर भी बहुत कुछ कर सकते हैं। आप मजदूरोंका केस लड़ सकते हैं। आप सरकारसे तीन पौंडका कर उठा देनेकी मांग करें तो मैं यह नहीं मानता कि वह उसे नामंजूर करेगी। आप दूसरोंका मत अपने अनुकूल बना सकते हैं।"

"पर सरकारके लगाये हुए करके साथ हड़तालका क्या संबंध? मालिक मजदूरोंको कष्ट देते हों तो आप उनसे बाकायदा आवेदन करें।"

"मजदूरोंके पास हड़ताल करनेके सिवा इसका रास्ता मुझे नहीं दिखाई देता। तीन पौंडका कर भी मालिकोंकी खातिर ही लगाया गया है। मालिक मजदूरोंकी मेहनत चाहते हैं; पर उनकी आजादी नहीं चाहते। इससे इस करको दूर करानेके लिए मजदूरोंके हड़ताल करनेमें मैं कुछ भी अनीति या मालिकोंके प्रति अन्याय नहीं देखता?"

"तो आप मजदूरोंसे कामपर वापस जानेको नहीं कहेंगे?"

"मैं लाचार हूं।"

"आप इसका नतीजा जानते हैं?"

"मैं सावधान हूं। अपनी जिम्मेदारीका मुझे पूरा खयाल है।"

"बेशक, इसमें आपका जाता ही क्या है? पर इन बहकाये हुए मजदूरोंकी जो हानि होगी वह क्या आप भर देंगे?"

"मजदूरोंने सोच-समझकर और अपने नुकसानको जानते-समझते हुए यह हड़ताल की है। मनुष्यके लिए आत्म-सम्मानकी हानिसे बड़ी हानि मैं सोच ही नहीं सकता। मजदूरोंने इस बातको समझ लिया है, इसका मुझे संतोष है।"

इस तरहकी बातचीत हुई। पूरी बातचीत मुझे इस वक्त याद नहीं आ सकती। जो बातें याद रह गई हैं उन्हें थोड़ेमें दे दिया है। मैं इतना जान सका कि मालिकोंको अपना पक्ष पंगु जान पड़ा; क्योंकि सरकारके साथ उनकी बात-चीत पहलेसे चल रही थी।

डर्बन जाते और वहांसे लौटते हुए मैंने देखा कि रेलवेके गार्डों आदिपर इस हड़ताल और हड़तालियोंकी शांतिका बहुत अच्छा असर हुआ। मेरा सफर तो तीसरे ही दरजेमें चल रहा था। पर वहां भी गार्ड आदि रेलकर्मचारी मुझे घेर लेते, दिलचस्पीभरे आग्रहके साथ हमारी लड़ाईके समाचार पूछते और सब हमारी विजय मनाते। मुझे अनेक प्रकारके छोटे-मोटे सुभीते कर देते। उनके साथ अपना संबंध मैं निर्मल रखता। एक भी सुभीतेके लिए मैं उन्हें लालच न देता। अपनी इच्छासे वे भलमनसी बरतें तो मुझे उससे प्रसन्नता थी, पर भलमनसी खरीदनेकी कोशिश कभी नहीं की। गरीब, अपढ़, नासमझ इतनी दृढ़ता दिखायें यह उनके लिए अचंभेकी बात थी, और दृढ़ता तथा वीरता ऐसे गुण हैं जिनकी छाप विरोधीपर पड़े बिना नहीं रहती।

मैं न्यूकैसेल लौटा। मजदूरोंकी धारा तो चली ही आ रही थी। उनको सारी बातें बारीकीके साथ समझा दीं। यह भी कह दिया कि आप लोग कामपर वापस जाना चाहते हों तो जा सकते हैं। मालिकोंकी धमकीकी बात भी बताई और भविष्यमें जो जोखिमें उठानी थीं उनका वर्णन भी कर दिया। कह दिया कि लड़ाई कब खत्म होगी यह भी नहीं कहा जा सकता। जेलके कष्ट समझा दिया। फिर भी मजदूर अडिग रहे। "जबतक आप लड़नेको तैयार होंगे तबतक हम हिम्मत हारनेवाले नहीं। हमें कष्ट सहनेका अभ्यास है। आप हमारी चिंता न करें।" यह निर्भय जवाब मुझे उनसे मिला।

मेरे लिए तो अब कूच करना ही बाकी रह गया था। एक दिन शामको लोगोंसे कह दिया कि उन्हें अगले दिन भोरमें कूच शुरू करनी होगी (२८ अक्तूबर १९१३)। रास्तेमें जिन नियमोंका पालन करना था वे सुना दिये गये। ५-६ हजारके मजमेको सम्हालना ऐसी-वैसी बात नहीं थी। उनकी गिनती तो मेरे पास थी ही नहीं, न था नाम-धाम। जो रह गये सो रह गयें। उतनेहीको अपने लिए काफी मान लिया। रास्तेके लिए हरएकको तीन पाव रोटी (डेढ़ पौंड) और आधी छटांक शक्करके सिवा और कोई खूराक देनेकी गुजाइश नहीं थी। इसके अतिरिक्त यह कह दिया था कि हिंदुस्तानी व्यापारी अगर रास्तेमें कुछ देंगे तो वह ले लूंगा। पर लोगोंको रोटी और शक्करसे ही संतोष करना था। बोअर-युद्ध और जुलू-बगावतमें मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ था वह इस वक्त बहुत काम आया। जरूरतसे ज्यादा कपड़े साथ न रखनेकी शर्त तो थी ही। रास्तेमें कोई किसीका माल न ले, कोई सरकारी कर्मचारी या यूरोपियन मिले और गाली दें या मारे भी तो बर्दाश्त कर लें, पुलिस गिरफ्तार करें तो गिरफ्तार हो जाय। मैं गिरफ्तार कर लिया जाऊं तो भी कूच जारी रहे आदि बातें समझा दीं। मेरे स्थानपर एकके बाद दूसरे कौन लोग नियुक्त होंगे यह भी बता दिया।

लोगोंने सब बातें समझ लीं। काफला सहीसलामत चार्ल्सटाउन पहुंचा। वहांके व्यापारियोंनें हमारी खूब मदद की। अपने मकानोंको काममें लाने दिया। मस्जिदके सहनमें खाना पकानेकी इजाजत दे दी। कूचके वक्त जो खूराक दी जाती वह पड़ावपर पहुंचनेतक चुक जाती। इसलिए हमें खाना पकानेके बरतन भी चाहिए थे। व्यापारियोंने उन्हें भी खुशीसे हाजिर कर दिया। चावल आदि तो हमारे पास काफी हो गया था। व्यापारियोंने इसमें भी अपना हिस्सा दिया।

चार्ल्सटाउन छोटा-सा गांव कहा जा सकता है। इस वक्त उसमें मुश्किलसे एक हजारकी आबादी रही होगी। उसमें इतने आदमियोंका समावेश कर लेना कठिन था। स्त्रियों और बच्चोंको ही मकानोंमें रखा। बाकी सबको मैदानमें ही ठहराया।

यहांकी मधुर स्मृतियां कितनी ही हैं। कुछ कड़वी भी हैं। मधुर स्मरण मुख्यत: चार्ल्सटाउनके स्वास्थ्य-विभाग और उसके अधिकारी डाक्टर ब्रिस्कोके हैं। गांवकी आबादी इतनी बढ़ी हुई देखकर वह घबरा गये; पर कोई कड़ा उपाय करनेके बजाय मुझसे ही मिले। कुछ सुझाव पेश किये और मेरी मदद करनेकी भी बात कही। यूरोपके लोग तीन बातोंका खास तौरसे खयाल रखते हैं--हम नहीं रखते—पानीकी सफाई, रास्तेकी सफाई और पाखानेकी सफाई। मुझे यह करना था कि रास्तेपर पानी न गिराने दूं, जहां-तहां लोगोंको पेशाब न करने दूं और कहीं कूड़ा-करकट न फेंकने दूं। वह जहां बतायें वहीं लोगोंको टिकाऊं और उस स्थानकी सफाईके लिए अपने आपको जिम्मेदार समझूं। इन सारी सूचनाओंको मैंने धन्य-वाद-सहित स्वीकार किया। मुझे पूरी शांति हो गई।

अपने देशवासियोंसे इन नियमोंका पालन कराना बहुत ही कठिन काम है। पर मजदूर भाइयों और साथियोंने उसे आसान कर दिया। मेरा सदा यह अनुभव रहा है कि सेवक सेवा करे और हुक्म न चलाये तो बहुत काम हो सकता है। सेवक खुद अपनी देहको काममें लगाये तो दूसरे भी लगायेंगे। इसका पूरा अनुभव मुझे इस छावनीमें हुआ। मैं और मेरे साथी झाड़ू लगाना, मैला उठाना आदि काम करते तनिक भी नहीं हिचकते थे। इससे लोगोंने ये काम उत्साहसे उठा लिये। यदि हम ऐसा न करते तो हुक्म किस पर चलाते? सब सरदार बनकर दूसरोंपर हुक्म चलायें तो अंतमें काम पड़ा ही रह

जाता । पर जहां सरदार खुद ही सेवक बन जाय वहां दूसरे सरदारीका दावा कैसे कर सकते हैं ?

साथियोंमें केलनबेक पहुंच गये थे । मिस श्लेजिन भी उपस्थित हो गई थीं । इस बहनकी श्रमशीलता, सजग चिंता और सचाईकी जितनी भी सराहना करूं कम होगी । हिंदुस्तानियोंमें स्वर्गीय पी. के. नायडू और अलबर्ट क्रिस्टोफरके नाम तो मुझे इस वक्त याद आ रहे हैं। दूसरे भी थे जिन्होंने भरपूर मेहनत की और अच्छी सहायता की ।

भोजनमें चावल और दाल दी जाती। सब्जी हमारे पास काफी जमा हो गई थी, पर उसको अलग पकानेका सुभीता नहीं था। इसलिए दालमें ही डाल दी जाती । अलग पकानेको समय न मिलता, इतने बरतन भी नहीं थे । रसोईमें चौबीसो घंटे चूल्हा जला रहता; क्योंकि चाहे जिस वक्त भूखे-प्यासे लोग आ पहुंचते । न्यूकैसेलमें किसीको रहना नहीं था । सबको रास्तेकी खबर थी । इसलिए खानसे निकलकर वे सीधे चार्ल्सटाउन पहुंचते ।

मनुष्योंके धीरज और सहनशीलताका विचार करता हूं तो भावनाकी महिमा मेरे सामने मूर्तिमान् होकर खड़ी हो जाती है । भोजन पकानेवालोंमें मुखिया मैं था । कभी दालमें पानी ज्यादा हो जाता तो कभी वह कच्ची रहती । कभी तरकारी पकी न होती तो कभी भात ही कच्चा रह जाता । ऐसा भोजन प्रसन्न चित्तसे ग्रहण कर लेनेवाले मैंने दुनियामें अधिक नहीं देखे हैं । इसका उलटा दक्षिण अफ्रीकाकी जेलमें यह अनुभव भी हुआ कि खाना जरा कम, या कच्चा होने या जरा देरसे मिलनेपर सुशिक्षित माने जानेवालोंका भी पारा चढ़ जाता था ।

परसनेका काम पकानेसे भी अधिक कठिन था और वह मेरे ही जिम्मे था । कच्चे-पक्केका हिसाब तो मुझे देना ही

होता। भोजन कम हो और खानेवाले ज्यादा हो जायं तो थोड़ा देकर सबका संतोष कराना भी मेरा ही कर्तव्य होता। बहनोंके सामने मैं थोड़ा खाना रखता तो क्षणभर मेरी ओर डांटनेकी निगाहसे देखतीं और फिर मेरी स्थिति समझकर हँसते हुए चल देतीं। वह दृश्य मुझे जिंदगीभर भूलनेका नहीं। मैं कह देता कि मैं लाचार हूं। मेरे पास पका हुआ भोजन थोड़ा है और खानेवाले बहुत हैं। इसलिए मुझको उतना ही देना होगा कि सभी को थोड़ा-थोड़ा मिल जाय। इसपर वे स्थितिको समझ जातीं और 'सन्तोषम्' कहकर हँसते हुए चल देतीं।

ये सब तो मधुर स्मरण हुए। कड़वे स्मरण ये हैं कि लोगोंको थोड़ी फुरसत मिली तो उसका उपयोग आपसके झगड़े-टंटेमें होने लगा। इससे भी बुरी बात यह हुई कि व्यभिचारकी घटनाएं हुईं। स्त्री पुरुषोंको साथ तो रखना ही पड़ता। भीड़ भी वैसी ही थी, व्यभिचारीको शर्म क्यों आने लगी? ये घटनाएं ज्योंही घटित हुईं मैं मौकेपर जा पहुंचा। अपराधी शर्माये। उनको अलग रखा। पर जो मेरे कानतक नहीं पहुंचीं, ऐसी घटनाएं कितनी हुई होंगी, यह कौन कह सकता है? इस विषयका अधिक विस्तारसे वर्णन करना बेकार है। इतना यह जतानेके लिए लिख दिया कि सब कुछ आसान नहीं था और ऐसी घटनाएं घटित हुईं तब भी किसीने मेरे साथ उजडुपन-का बरताव नहीं किया। नीति-अनीतिका भेद अधिक न जानने-वाले जंगली जैसे लोग भी अच्छे वातावरणमें कैसे सीधे चलते हैं, इसे मैंने अनेक अवसरोंपर देख लिया है और इसे जान लेना अधिक आवश्यक और लाभदायक है।

: १६ :

ट्रांसवालमें प्रवेश—१

अब हम १९१३के नवंबर महीनेके आरंभमें हैं । कूच करनेके पहले दो घटनाओंका उल्लेख कर देना उचित होगा । न्यूकैसेलमें द्राविड़ बहनोंको जेलकी सजा मिली तो डर्बनकी बाई फातिमा महताबसे न रहा गया । इसलिए वह भी अपनी मां हनीफा बाई और ७बरसके लड़के के साथ जेल जानेको निकल पड़ी । मां-बेटी तो पकड़ ली गईं, पर बेटेको गिरफ्तार करनेसे सरकारने साफ इन्कार कर दिया । पुलिसने फातिमा बाईकी उंगलियोंकी निशानी लेनेकी कोशिश की, पर वह निडर रही और उंगलियोंकी निशानी नहीं दी ।

इस वक्त हड़ताल पूरे जोरमें चल रही थी । उसमें पुरुषोंकी तरह स्त्रियां भी आकर शामिल हो रही थीं । दो स्त्रियोंकी गोदमें बच्चे थे । एक बच्चेको कूचमें सर्दी लग गई और वह मौतकी गोदमें चला गया । दूसरा बच्चा एक नालेको लांघते हुए मांकी गोदसे गिर गया और प्रवाहमें बहकर डूब गया; पर वीर माताने दिल छोटा नहीं किया । दोनोंने कूच जारी रखी । एकने कहा–"हम मरे हुओंका शोक करके क्या करेंगी ? वे कहीं लौटकर आ सकते हैं ? जीवितोंकी सेवा करना हमारा धर्म है ।" ऐसी शांत वीरता, ईश्वरमें ऐसी दृढ़-आस्था, ऐसे ज्ञानकी मिसालें गरीबोंमें मुझे अकसर मिली हैं ।

ऐसी ही दृढ़तासे चार्ल्सटाउनमें स्त्री-पुरुष अपने कठिन धर्मका पालन कर रहे थे । पर हम यहां कुछ शांतिके लिए नहीं आये थे । शांति जिसे दरकार हो वह उसे अपने अंतरमें प्राप्त करे । बाहर तो जहां देखो और देखना आता हो तो "यहां शांति नहीं मिलती" की ही तख्तियां लगी दिखाई देंगी ।

पर इसी अशांतिके बीच मीराबाई-सरीखी भक्त हाथमें जहरका प्याला लेकर हँसते हुए मुंहको लगाती है। अपनी अंधेरी कोठरीमें बैठा हुआ सुकरात अपने हाथमें जहरका प्याला थामे अपने मित्रको गूढ़ज्ञानका उपदेश करता है और कहता है—जो शांति चाहता हो वह उसे अपने अंतरमें तलाश करे।

इसी शांतिके बीच सत्याग्रहियोंका दस्ता पड़ाव डालकर, सवेरे क्या होगा इसकी चिंता न करते हुए पड़ा था।

मैंने सरकारको चिट्ठी लिखी थी कि हम ट्रांसवालमें बसनेके इरादेसे प्रवेश करना नहीं चाहते। हमारा प्रवेश सरकारके वचनभंगके विरुद्ध अमली फरियाद है और हमारे आत्म-सम्मानके भंगसे होनेवाले दुःखका शुद्ध निदर्शन है। हमें तो सरकार यहीं चार्ल्सटाउनमें गिरफ्तार कर ले तो हम निश्चित हो जायं। वह ऐसा न करे और हममेंसे कोई छिपकर ट्रांसवाल-में दाखिल हो जाय तो हम उसके लिए जिम्मेदार नहीं होंगे। हमारी लड़ाईमें गुप्त कुछ है ही नहीं। व्यक्तिगत स्वार्थ किसीको साधना नहीं है। किसीका छिपकर प्रवेश करना हमें पसंद नहीं होगा, पर जहां हजारों अनजान आदमियोंसे काम लेना हो और जहां प्रेमके सिवा दूसरा कोई बंधन न हो वहां किसीके कामके लिए हम जिम्मेदार नहीं हो सकते। फिर सरकार यह भी जान ले कि अगर उसने तीन पौंडका कर उठा दिया तो गिरमिटिए कामपर लौट जायंगे और हड़ताल बंद हो जायगी। अपने दूसरे कष्ट दूर करनेके लिए हम उन्हें सत्याग्रहमें शामिल नहीं करेंगे।

अतः स्थिति ऐसी अनिश्चित थी कि सरकार कब गिर-फ़्तार करेगी यह कहा नहीं जा सकता था। पर ऐसी स्थितिमें सरकारके जवाबकी राह अधिक दिन नहीं देखी जा सकती थी। एक-दो डाककी ही राह देखी जा सकती थी। इसलिए हमने

निश्चय किया कि सरकार हमें गिरफ्तार न करे तो तुरंत चार्ल्स-टाउन छोड़ दें और ट्रांसवालमें दाखिल हो जायं। रास्तेमें पुलिस न पकड़े तो काफिला रोज आठ दिनतक २० से २४ मील-तक कूच करता जाय। हमारा इरादा आठ दिनमें टाल्स्टाय फार्म पहुंचनेका था। हमने सोचा था कि जबतक लड़ाई खतम नहीं होती तबतक सब वहीं रहें और फार्ममें काम करके आजीविका पदा करें। मि० केलनबेकने सारा प्रबंध कर रखा था। काफिले-के रहनेके लिए कच्चे घर बनवाने और यह काम उससे ही लेनेकी बात सोची गई थी। इस बीच छोटे-छोटे खेमे खड़े करके बूढ़े, कमजोर उनमें रखे जायं और सबल शरीरवाले खुले मैदानमें पड़े रहें। इसमें कठिनाई यही थी कि बरसातका मौसम आ रहा था और इस मौसममें सबल-निर्बल सबको कोई आश्रय चाहिए ही। पर मि० केलनबेक इस कठिनाईका उपाय कर लेनेकी हिम्मत रखते थे।

काफिलेने कूचकी दूसरी तैयारियां भी कर लीं। चार्ल्स-टाउनके भले अंग्रेज डाक्टर ब्रिस्को (जिलेके हेल्थ अफसर)ने हमारे लिए दवाइयोंका एक छोटा-सा बक्स तैयार कर दिया और अपने कुछ औजार भी दिये, जिन्हें मुझ-सा अनाड़ी आदमी भी इस्तेमाल कर सकता था। यह बक्स हमें खुद लादकर ले जाना था, क्योंकि काफिलेके साथ कोई भी सवारी नहीं रखनी थी। इससे पाठक समझ सकते हैं कि इस बक्समें कम-से-कम दवाएं रही होंगी। वे इतनी भी नहीं थीं कि एक वक्तमें सौ आदमियोंके लिए काफी हो सकें। इतनी कम दवाएं साथ रखनेका खास कारण तो यह था कि हमें रोज किसी-न-किसी गांवके पास पड़ाव करना था। इसलिए जो दवा चुकती, वह मिल सकती थी और हमें अपने साथ एक भी रोगी या अपंग आदमी को नहीं रखना था। उन्हें तो रास्तेमें ही छोड़ देनेका निश्चय किया गया था।

खानेके लिए रोटी और शाकके सिवा और कुछ तो था ही नहीं। पर रोटियां आठ दिन बराबर मिलती रहें, इसका क्या उपाय हो? रोज-की-रोज बांट देनी थीं। इसका उपाय तो एक ही था कि हर मंजिलपर हमारे लिए कोई उन्हें पहुंचा दिया करे। यह कौन करे? हिंदुस्तानी बावर्ची तो थे ही नहीं। फिर हर गांवमें डबल रोटी बनाने-बेचनेवाले नहीं थे। गांवोंमें रोटी शहरोंसे जाती। अतः कोई बावर्ची तैयार करके दे और रेलवे उन्हें पहुंचा दे तभी हमें रोटियां मिल सकती थीं। वोक्सरस्ट (ट्रांसवालके चार्ल्सटाउनके नजदीकका सरहदी स्टेशन) चार्ल्सटाउनसे बड़ा नगर था। वहां डबल रोटी बनाने वालेकी एक बड़ी (यूरोपियन) दूकान थी। उसने खुशीसे हर जगह रोटियां पहुंचा देनेका इकरार किया। हमारी मजबूरी जानकर उसने हमसे बाजार-भावसे अधिक लेनेकी भी कोशिश नहीं की। बढ़िया आटेकी बनी रोटियां दीं। उसने वक्तसे रोटियां रेलवेके पास पहुंचाईं और रेलवे कर्मचारियोंने—ये भी यूरोपियन ही थे—उन्हें ईमानदारीके साथ हमारे पास पहुंचा दिया। पहुंचानेमें पूरी सावधानी रखी और हमारे लिए कुछ सुभीते भी कर दिये। वे जानते थे कि हमारी किसीसे शत्रुता नहीं। हमें किसीको नुकसान नहीं पहुंचाना था। हमें तो कष्ट सहन कर न्याय प्राप्त करना था। इससे हमारे आसपासका वातावरण शुद्ध हो गया और बना रहा। मानव-जातिका प्रेमभाव प्रकट हुआ। सबने अनुभव किया कि हम ईसाई, यहूदी, हिंदू, मुसलमान कोई भी हों, सब भाई-भाई ही हैं।

यों कूचकी सारी तैयारी कर लेनेके बाद मैंने फिर समझौतेकी कोशिश की। चिट्ठियां, तार आदि तो भेज ही चुका था। मैंने तय किया कि मेरा अपमान तो होगा ही; पर उसका खतरा उठाकर भी मुझे टेलीफोन भी कर ही लेना

चाहिए । चार्ल्सटाउनसे प्रिटोरियाको टेलीफोन था। मैंने जनरल स्मट्सको टेलीफोन किया। उनके मंत्रीसे मैंने कहा—"जनरल स्मट्ससे कहिये कि मेरी कूचकी पूरी तैयारी हो चुकी है । वोक्सरस्टके लोग उत्तेजित हैं। वे शायद हमारी जानका भी नुकसान करें। ऐसी धमकी तो दे ही चुके हैं। यह परिणाम वह (जनरल स्मट्स) भी नहीं चाहेंगे। वह तीन पौंडका कर उठानेका वचन दे दें तो मुझे कूच नहीं करना है। मुझे कानून तोड़नेके लिए ही कानून नहीं तोड़ना है। मैं इसके लिए लाचार हो गया हूं। वह मेरी इतनी प्रार्थना न सुनेंगे ?" आधे मिनटमें जवाब मिला—"जनरल स्मट्स आपसे कभी कोई सरोकार नहीं रखना चाहते । आपकी मर्जीमें जो आये वह करें।" टेलीफोन बंद !

यह फल मैंने सोच ही रखा था। हां, ऐसी रुखाईकी आशा नहीं रखता था। जनरल स्मट्सके साथ सत्याग्रहके बादका मेरा राजनैतिक संबंध छः सालसे माना जा सकता था। अतः मैं उनसे शिष्ट, विनययुक्त उत्तरकी आशा रखता था; पर उनकी विनयसे मुझे फूल नहीं जाना था। वैसे ही इस अविनयसे ढीला भी नहीं पड़ा। अपने कर्तव्यकी सीधी रेखा मुझे साफ दिखाई दे रही थी। अगले दिन (६ नवंबर १९१३) नियतकालका (६॥ बजे सवेरे) घंटा बजनेपर हमने प्रार्थना की और ईश्वरका नाम लेकर कूच कर दिया। काफिलेमें २०३७ पुरुष, १२७ स्त्रियां और ५७ बच्चे थे।

: २० :

ट्रांसवालमें प्रवेश—२

इस प्रकार मजमा कहिये, कफिला कहिये, यात्रीसमुदाय

कहिये नियत समयपर रवाना हो गया। चार्ल्सटाउनसे एक मीलके फासलेपर वोक्सरस्टका नाला पड़ता है। उसको लांघा और वोक्सरस्ट या ट्रांसवालमें दाखिल हुए। इस नालेके सिरे-पर घुड़सवार पुलिस खड़ी थी। मैं पहले उसके पास गया और लोगोंसे कह दिया था कि जब मैं इशारा करूं तब वे प्रवेश करें। पर मैं पुलिससे बात कर ही रहा था कि शांति-सेनाने हमला बोल दिया और लोग नालेको लांघ आये। घुड़-सवारोंने उन्हें घेर लिया, पर यह काफिला ऐसा न था कि यों रोके रोका जा सके। पुलिसका इरादा हमें गिरफ़्तार करनेका तो था ही नहीं। मैंने लोगोंको शांत किया और पंक्तिबद्ध होकर चलनेको समझाया। पांच-सात मिनटमें सारी गड़बड़ दूर हो गई और ट्रांसवालमें हमारा दाखिल होना शुरू हो गया।

वोक्सरस्टके लोगोंने दो दिन पहले ही सभा की थी। उसमें हमें अनेक प्रकारकी धमकियां दी गईं थीं। कुछने कहा था कि हिंदुस्तानी ट्रांसवालमें दाखिल हुए तो हम गोलियोंसे उनका स्वागत करेंगे। मि० केलनबेक इस सभामें गोरोंको समझानेके लिए गये थे। कोई उनकी बात सुननेको तैयार नहीं था। कुछ लोग तो उन्हें मारनेके लिए खड़े हो गये। मि० केलनबेक पहलवान हैं। उन्होंने सैंडोसे कसरतकी तालीम ली है। उन्हें डराना कठिन था। एक गोरेने उन्हें द्वन्द्वयुद्ध-के लिए ललकारा। मि० केलनबेकने जवाब दिया—"मैंने शांति-धर्मको स्वीकार किया है, इसलिए यह (द्वन्द्वयुद्ध) तो मुझसे नहीं हो सकेगा। पर मुझपर जिसको प्रहार करना हो वह खुशीसे कर ले। मगर इस सभामें तो मैं बोलकर ही रहूंगा। आपने सभी यूरोपियनोंको इसमें आनेका सार्व-जनिक निमंत्रण दिया है। सभी यूरोपियन आपकी तरह निर्दोष मनुष्योंको मारनेको तैयार नहीं। यही सुनानेके लिए

में यहां आया हूं । एक यूरोपियन ऐसा भी है जो आपको बता देना चाहता है कि आपने हिंदुस्तानियोंपर जो इलजाम लगाये हैं वे गलत हैं । आप जो सोचते हैं वह हिंदुस्तानी नहीं चाहते । उन्हें न आपका राज्य चाहिए, न वे आपसे लड़ना चाहते हैं । उनकी मांग तो शुद्ध न्यायकी है । जो लोग ट्रांसवालमें दाखिल होना चाहते हैं वे वहां बसनेके लिए नहीं जाना चाहते । उनपर अन्यायकारी कर लगाया गया है । उसके खिलाफ अमली फरियाद करनेके लिए उन्हें दाखिल होना है । वे बहादुर हैं । वे लड़ाई-झगड़ा नहीं करेंगे । आपसे लड़ेंगे नहीं; पर आपकी गोलियां खाकर भी ट्रांसवालमें दाखिल तो होंगेही । वे आपकी गोलियों या भालोंसे डरकर पीछे कदम हटानेवाले नहीं । उन्हें स्वयं कष्ट सहनकर आपका दिल पिघलाना है । वह पिघलेगा ही । इतना ही कहनेके लिए में यहां आया हूं । यह कहकर मैंने तो आपकी सेवा ही की है । आप चेतें, अन्यायसे बचें ।" इतना कहकर मि० केलनबेक अपनी जगहपर बैठ गये । लोग कुछ लज्जित हुए । लड़नेको ललकारनेवाला पहलवान तो उनका दोस्त हो गया ।

पर इस सभाकी हमें खबर थी, इसलिए वोक्सरस्टके गोरोंकी ओरसे कोई उपद्रव हो तो हम उसके लिए तैयार थे । सरहदपर जो इतनी बड़ी पुलिस इकट्ठी कर रखी गई थी उसका अर्थ यह भी हो सकता है कि गोरोंको मर्यादाका उल्लंघन न करनेसे रोका जाय । जो हो, हमारा जलूस वहांसे शांति-पूर्वक गुजर गया । किसी गोरेके कोई शरारत करनेकी याद मुझे नहीं है । सब यह नया कौतुक देखनेको निकल पड़े । उनमेंसे कितनोंकी आंखोंमें मित्रताकी झलक भी थी ।

हमारा मुकाम पहले दिन वोक्सरस्टसे कोई आठ मीलपर पड़नेवाला पामफोर्ड नामका स्टेशन था और हम शामके ५-६ बजेतक वहां पहुंच गये । लोगोंने रोटी और शक्करका

आहार किया और मैदानमें लेट गये। कोई भजन गाता था, कोई बातें करता था। कुछ स्त्रियां रास्तेमें थक गईं। अपने बच्चोंको गोदमें लेकर चलनेकी हिम्मत तो उन्होंने की थी। पर और आगे जाना उनकी शक्तिके बाहर था। इसलिए अपनी चेतावनीके अनुसार मैंने उन्हें एक भले हिंदुस्तानीकी दुकानमें छोड़ दिया और कह दिया कि हम टाल्स्टाय फार्म पहुंच जाएं तो उनको वहां भेज दें। हम गिरफ्तार कर लिये जाएं तो उनको घर भेज दें। उस व्यापारी भाईने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली।

ज्यों-ज्यों अधिक रात होती गई त्यों-त्यों सब शोरगुल शांत होता गया। मैं भी सोनेकी तैयारीमें था। इतनेमें खड़-खड़ाहट सुनी। मैंने एक यूरोपियनको लालटेन लिए आते देखा। मैं समझ गया। मुझे कोई तैयारी तो करनी ही नहीं थी। पुलिस-अफसरने मुझसे कहा—"आपके लिए मेरे पास वारंट है। मुझे आपको गिरफ्तार करना है।"

मैंने पूछा—"कब ?"

जवाब मिला—"अभी।"

"मुझे कहां ले जाइयेगा ?"

"अभी तो पासके स्टेशन पर और जब ट्रेन आयेगी तब वोक्सरस्ट ले जाऊंगा।"

मैंने कहा—"तो मैं किसीको जगाये बिना तुम्हारे साथ चलता हूं, पर अपने साथीको कुछ हिदायतें दे दूं।"

"शौकसे दीजिए।"

मैंने बगलमें सोये हुए पी० के० नायडूको जगाया। उनसे अपनी गिरफ्तारीकी खबर देकर कहा कि काफिलेवालोंको सवेरा होनेके पहले न जाना और सवेरा होनेपर नियमानुसार कूच कर देना। कूच तो सूर्योदयसे पहले ही करनी थी। जहां विश्राम करने और रोटी बांटनेका समय आये वहां लोगोंको

मेरी गिरफ्तारीकी बात बता देना। इस बीच जो पूछे उसको बताते जाओ। काफिलेको पुलिस गिरफ्तार करे तो वह गिरफ्तार हो जायें। न गिरफ्तार करे तो निर्द्धारित रीतिसे कूच जारी रखे। नायडूको कोई डर तो था ही नहीं। उनको यह भी बता दिया कि वह पकड़ लिये जाएं तो क्या करना होगा।

वोक्सरस्ट में मि० केलनबेक तो मौजूद ही थे।

मैं उस पुलिस-अफसरके साथ गया। सवेरा हुआ। वोक्सरस्ट जानवाली ट्रेनमें बैठा। वोक्सरस्ट में मुझपर मुकदमा चलाया गया। सरकारी वकीलने खुद ही १४ तारीखतक मामला मुलतवी रखनेकी प्रार्थना की; क्योंकि उनके पास शहादत तैयार नहीं थी। मुकदमा मुलतवी हो गया। मैंने जमानतपर छोड़े जानेकी दरख्वास्त दी। कारण यह बताया कि मेरे साथ दो हजार मर्द, १२२ औरतें और ५० बच्चे हैं। मुकदमेकी तारीखतक मैं उनको ठिकाने पहुंचाकर लौट आ सकता हूं। सरकारी वकीलने जमानतकी दरख्वास्तका विरोध तो किया, पर मजिस्ट्रेट लाचार था। मुझपर जो आरोप था वह ऐसा नहीं था जिसमें अभियुक्तको जमानतपर छोड़ना भी मजिस्ट्रेटकी मर्जीकी बात हो। अतः उन्होंने मुझे ५० पौंडकी जमानतपर रिहा कर दिया। मेरे लिए मोटर तो मि० केलनबेकने तैयार ही रखी थी। उसमें बैठाकर तुरंत मुझको मेरे काफिलेके पास पहुंचा दिया। ट्रांसवालके अखबार 'दी ट्रांसवाल लीडर' का प्रतिनिधि हमारे साथ आना चाहता था। उसे अपनी मोटरमें बैठा लिया। उसने इस यात्रा, मुकदमे और यात्रीदलसे मिलनेका विशद वर्णन अपने पत्रमें प्रकाशित किया। लोगोंने हर्षपूर्वक मेरा स्वागत किया। उनके उत्साहकी सीमा नहीं रही। मि० केलनबेक तुरंत वोक्सरस्ट लौट गये। उन्हें चार्ल्सटाउनमें ठहरे हुए और नये आनेवाले भारतीयोंकी सम्हाल करनी थी।

हम आगे बढ़े, पर मुझे आजाद छोड़ना सरकारको अनुकूल नहीं पड़ सकता था। इसलिए अगले दिन मैं फिर स्टेंडरटनमें गिरफ्तार कर लिया गया। स्टेंडरटन औरोंकी तुलनामें कुछ बड़ा गांव है। यहां मैं विचित्र रीतिसे गिरफ्तार किया गया। मैं लोगोंको रोटी बांट रहा था। यहांके हिंदुस्तानी दुकानदारोंने मुरब्बेके कुछ डब्बे भेंट किये थे। इससे वितरणमें कुछ अधिक समय लग रहा था। इस बीच मजिस्ट्रेट मेरे पास आकर खड़े हो गये। उन्होंने वितरणका काम पूरा हो जाने दिया। इसके बाद मुझे एक किनारे बुलाया। उनको मैं पहचानता था। इसलिए मैंने सोचा कि वह मुझसे कुछ बातें करना चाहते होंगे। उन्होंने हँसकर मुझसे कहा--

"आप मेरे कैदी हैं।"

मैंने कहा--"तो मेरा दर्जा बढ़ा; क्योंकि पुलिसके बदले खुद मजिस्ट्रेट मुझे गिरफ्तार करने आये हैं। पर मुझपर अभी मुकदमा चलाइयेगा न?"

उन्होंने जवाब दिया--"मेरे साथ ही चलिए। अदालत तो बैठी ही है।"

लोगोंको कूच जारी रखनेकी सलाह देकर मैंने विदा ली। अदालतमें पहुंचते ही देखा कि मेरे कुछ साथी भी पकड़ लिए गये हैं। वे थे पी० के० नायडू, बिहारीलाल महाराज, रामनारायणसिंह, रघुनारसू और रहीम खां--ये पांच जने।

मैं तुरंत अदालतके सामने पेश किया गया। मैंने वही कारण देकर जो वोक्सरस्टमें दिये थे, मुहलत और जमानतकी दरख्वास्त दी। यहां भी सरकारी वकीलने विरोध किया। पर मजिस्ट्रेटने २१ नवंबरतक मुकदमा मुलतवी कर दिया और मुझे ५० पौंडके जाती मुचलकेपर रिहा कर दिया। भारतीय व्यापारियोंने मेरे लिए इक्का तैयार रखा ही था। काफिला अभी तीन मील भी आगे नहीं पहुंचा था कि मैं फिर

उससे जा मिला। अब तो लोगोंने और मैंने भी सोचा कि शायद हम टाल्स्टाय फार्म पहुंच जायंगे। पर यह खयाल सही नहीं था। लोग मेरी गिरफ्तारीके आदी हो गये, यह कोई छोटी-मोटी बात नहीं थी। मेरे पांचों साथी जेलमें ही रहे।

: २१ :

सभी कैद

अब हम जोहान्सबर्गके काफी नजदीक पहुंच गये थे। पाठक याद रखें कि सारा रास्ता हमने आठ दिनमें तै करनेका निश्चय किया था। अबतक हम योजित मंजिलें पूरी करते आये थे, इसलिए अब पूरी चार मंजिलें बाकी रह गईं थीं। पर जैसे-जैसे हमारा उत्साह बढ़ रहा था वैसे-वैसे सरकारकी जागृति भी बढ़नी ही चाहिए थी। हमें अपनी मंजिलपर पहुंच जाने दे और इसके बाद गिरफ्तार करे तो यह उसकी कमजोरी और अकुशलता समझी जाती। इसलिए अगर हमें गिरफ्तार करना हो तो मंजिल पूरी होनेके पहले ही गिरफ्तार करना चाहिए।

सरकारने देखा कि मुझको गिरफ्तार कर लेनेपर भी काफिला न निराश हुआ, न डरा, न उसने उपद्रव किया। उपद्रव करे तो सरकारको तोप-बंदूकसे काम लेनेको पूरा मौका मिल जाय। जनरल स्मट्सके लिए तो हमारी दृढ़ता और उसके साथ-साथ शांति, यही दुःखकी बात हो गई। उन्होंने तो यहां तक कह डाला--"शांत मनुष्यको कोई कबतक सताये?" मरे हुएको मारना कैसे हो? मरेको मारनेमें कोई मजा ही नहीं आता। इसीसे दुश्मनको जिंदा पकड़नेमें गौरव माना जाता है। चूहा बिल्लीको देखकर भागना छोड़ दे तो बिल्लीको दूसरा

शिकार ढूंढना ही होगा। सभी मेमने सिंहकी बगलमें जाकर बैठ जाएं तो सिंहको मेमनोंका आहार छोड़ ही देना पड़े। सिंह सामना न करता हो तो पुरुषसिंह क्या सिंहका शिकार करें?

हमारी शांति और हमारे निश्चयमें हमारी विजय छिपी हुई थी।

गोखलेकी इच्छा थी कि पोलक हिंदुस्तान जाकर भारत-सरकार और साम्राज्य-सरकारके सामने दक्षिण अफ्रीकाकी परिस्थिति रखनेमें उनकी सहायता करें। मि० पोलकका स्वभाव ऐसा था कि जहां हों वहीं उपयोगी हो जाएं। वह जो काम हाथमें लेते उसीमें तन्मय हो जाते। इससे उन्हें हिंदुस्तान भेजनेकी तैयारी चल रही थी। मैंने तो उन्हें लिख दिया था कि आप जा सकते हैं। पर मुझसे मिले और जबानी पूरी हिदायतें लिये बिना जाना वह पसंद नहीं करते थे। इसलिए उन्होंने कूचके ही दरमियान आकर मिल जानेकी इजाजत मांगी। मैंने तारसे जवाब दिया कि पकड़ लिये जानेकी जोखिम उठाकर आना चाहें तो आ सकते हैं। लड़नेवाले जरूरी खतरे सदा उठा ही लेते हैं। सरकार सबको गिरफ्तार कर ले तो गिरफ्तार हो जानेकी तो यह लड़ाई ही थी। जबतक न पकड़े तबतक पकड़े जानेके लिए सब सरल और नीतिमय यत्न करते जाना था। अतः मि० पोलकने पकड़े जानेकी जोखिम लेकर आना पसंद किया।

हम हेडलवर्गके पासतक पहुंचे थे। मि० पोलक पासके स्टेशनपर उतरकर और पैदल ही आकर हमसे मिले। हमारी बातें चल रही थीं। लगभग पूरी भी हो चली थीं। इस वक्त दिनके कोई तीन बजे होंगे। हम दोनों काफिलेके आगे-आगे चल रहे थे। दूसरे साथी भी हमारी बातें सुन रहे थे। मि० पोलकको शामको डर्बन जानेवाली ट्रेन पकड़नी थी। पर जब राम-



ट्रांसवालकी कूच

चंद्रजी-सरीखे पुरुषको राजतिलकके ही समय वनवास मिला तो पोलककी क्या हकीकत थी? हम बातें कर रहे थे कि एक घोड़ागाड़ी सामने आकर खड़ी हो गई। उसमें एशियाई महकमेके प्रधान (ट्रांसवालके प्रधान इमिग्रेशन आफिसर) मि० चमनी और एक पुलिस-अफसर थे। दोनों नीचे उतरे। मुझको थोड़ी दूर ले जाकर एकने कहा, "मैं आपको गिरफ्तार करता हूं।"

इस तरह चार दिनके अंदर मैं तीन बार गिरफ्तार किया गया। मैंने पूछा, "और काफिलेको?"

"वह होता रहेगा।"

मैं कुछ नहीं बोला। पोलकसे कहा कि आप काफिलेके साथ जायें। पुलिस-अफसरने मुझे सिर्फ अपनी गिरफ्तारीकी खबर लोगोंको दे देनेकी इजाजत दी। ज्योंही लोगोंसे शांति रखने आदिके लिए कहना आरंभ किया, उक्त अफसर साहब बोल उठे—"अब आप कैदी हैं, भाषण नहीं दे सकते।"

मैंने अपनी मर्यादा समझ ली। समझनेकी जरूरत तो नहीं थी; क्योंकि मुझसे बोलना बंद करनेके साथ ही उक्त अफसरने गाड़ीवानको जोरसे गाड़ी हांकनेका हुक्म दिया। क्षणभरमें काफिला अदृश्य हो गया।

उक्त अधिकारी जानता था कि घड़ीभर तो मेरा ही राज्य है; क्योंकि वह तो हमारे अहिंसा व्रतपर विश्वास रखकर ही इस वीरान मैदानमें दो हजारके मजमेके सामने अकेला आया हुआ था। वह यह भी जानता था कि उसने मुझे चिट्ठीसे कैद किया होता तो भी मैं अपने आपको उसके हवाले कर देता। ऐसी हालतमें मैं कैदी हूं, इसकी याद मुझे दिलाना अनावश्यक था। मैं लोगोंसे जो कहता वह अधिकारियोंके लिए भी उपयोगी ही होता। पर उन्हें तो अपना रूप दिखाना ही चाहिए। इसके साथ ही मुझे यह भी कह देना चाहिए कि

अनेक अधिकारी हमारी कैदको समझते थे। वे जानते थे कि कैद हमारे लिए अंकुश या दुःखरूप नहीं है, हमारे लिए तो वह मुक्तिका द्वार है। इससे हमें हर तरहकी जायज आजादी देते। इतना ही नहीं, गिरफ्तार करनेमें उनको आसानी हो और उनका वक्त बचे इससे हमारी मदद लेते और मिलनेसे उपकार मानते। दोनों तरहके नमूने इन प्रकरणोंमें पाठकोंको मिलेंगे।

मुझे एकसे दूसरी जगह घुमाते हुए अंतमें हेडलबर्गके थानेमें ले जाकर रखा। रात वहीं बिताई।

पोलक काफिलेको लेकर आगे बढ़े और ग्रेलिंग्स-टैड पहुंचे। वहां भारतीय व्यापारियोंका अच्छा जमाव था। रास्तेमें सेठ अहमद मुहम्मद काछलिया और सेठ आमद मुहम्मद भायात मिले। क्या होनेवाला है, इसकी खबर उन्हें मिल गई थी। मेरे ही साथ पूरे काफिलेको भी गिरफ्तार कर लेनेका प्रबंध कर लिया गया था। इसलिए मि० पोलकने सोचा कि काफिलेको ठिकाने पहुंचा दिया तो एक दिन देरसे भी डर्बन पहुंचकर हिंदुस्तान जानेवाले जहाजको पकड़ सकते हैं। पर ईश्वरने कुछ और ही सोच रखा था।

१० तारीखको लगभग ९ बजे सवेरे काफिला बालफोर पहुंचा जहां काफिलेको गिरफ्तार कर नेटाल पहुंचा देनेके लिए तीन स्पेशल ट्रेनें खड़ी थीं। यहां लोगोंने कुछ हठ पकड़ी। कहा—"गांधीको बुलाओ। वह कहें तो हम गिरफ्तार होंगे और ट्रेनमें सवार होंगे।" यह हठ अनुचित थी। उसको न छोड़नेसे हमारी बाजी बिगड़ती, सत्याग्रहीका तेज घटता। जेल जानेमें गांधीको क्या काम? सिपाही कहीं सेनानायकका चुनाव करता है या उनमेंसे किसी एकका ही हुक्म माननेका आग्रह कर सकता है? मि० चमनीने इन लोगोंको समझनेमें मि० पोलक और सेठ काछलियाकी मदद ली। वे कठि-

नाईसे उन्हें समझा सके कि उनकी तो मुराद ही जेल जाना है और जब सरकार गिरफ्तार करनेको तैयार है तो हमें उसके न्यौतेका स्वागत करना चाहिए। इसीमें हमारी सज्जनता और विजय है। उन्हें समझ लेना चाहिए कि मेरी इच्छा दूसरी हो ही नहीं सकती। लोग समझ गये और ट्रेनमें सवार हो गये।

इधर मैं फिर मजिस्ट्रेटके सामने पेश किया गया। उस वक्त ऊपरकी घटनाकी मुझे कुछ भी खबर नहीं थी। मैंने फिर अदालतसे मुहलतकी प्रार्थना की। बताया कि दो अदालतें मुहलत मंजूर कर चुकी हैं। यह भी कहा कि हमारी मंजिल अब थोड़ी ही बाकी है और प्रार्थना की कि सरकार या तो काफिलेको गिरफ्तार कर ले या मुझे उनको उनके स्थान टाल्स्टाय फार्ममें छोड़ आने दे। अदालतने मेरी प्रार्थना तो स्वीकार नहीं की; पर मेरी दरख्वास्त तुरंत सरकारके पास भेज देना मंजूर किया। इस वक्त मुझे डंडी ले जाना था। मुझपर असल मुकदमा गिरमिटिया मजदूरोंको नेटाल छोड़कर चले जानेका बहकानेका तो वहीं चलाया जानेवाला था। अतः मुझे उसी दिनकी ट्रेनसे डंडी ले गये।

उधर मि० पोलक बालफोरमें गिरफ्तार नहीं किये गये, बल्कि काफिलेकी गिरफ्तारीमें अधिकारियोंको उनसे जो मदद मिली उसके लिए उन्हें धन्यवाद भी दिया गया। मि० चमनीने तो यह भी कहा कि आपको गिरफ्तार करनेका सरकारका इरादा ही नहीं है। पर यह तो था मि० चमनीका, और जहांतक उन्हें मालूम था, सरकारका विचार था, किन्तु सरकारका विचार तो घड़ी-घड़ी बदला करता है। सरकारने अंतमें तै किया कि मि० पोलकको हिंदुस्तान नहीं जाने देना चाहिए और उनको तथा मि० केलनबेकको, जो खूब काम कर रहे थे, गिरफ्तार कर लेना चाहिए। फलतः

मि० पोलक चार्ल्सटाउनमें गिरफ्तार कर लिए गये । मि० केलनबेक भी पकड़ लिए गये । दोनों वोक्सरस्ट जेलमें बंद किए गये ।

मुझपर डंडीमें मुकदमा चलाया गया और नौ महीनेकी कड़ी कैदकी सजा मिली (११ नवंबर) । अभी वोक्सरस्टमें दूसरा मुकदमा वर्जित व्यक्तियोंको ट्रांसवालमें दाखिल होनेकी प्रेरणा और इसमें सहायता करनेका बाकी था । मुझे वोक्सरस्ट ले गये । वहां मैंने मि०केलनबेक और मि० पोलकको देखा । यों हम तीनों वोक्सरस्ट जेलमें मिले । इससे हमारे हर्षका पार न रहा ।

वोक्सरस्टमें मुझपर जो मुकदमा चलाया गया उसमें अपने खिलाफ मुझको ही शहादत देनी थी । पुलिसको मिल सकती थी; पर कठिनाईसे । इसलिए उसने मेरी मदद ली । यहांकी अदालतें केवल अभियुक्तके अपराधी होना स्वीकार कर लेनेपर सजा नहीं करती थीं ।

मेरा काम तो हुआ; पर मि० केलनबेक और मि० पोलकके खिलाफ कौन शहादत दे ? शहादत न मिले तो उनको सजा देना नामुमकिन था । उनके खिलाफ झट शहादत हासिल कर लेना भी कठिन था । मि० केलनबेकको तो अपना अपराध स्वीकार कर लेना था, क्योंकि उनका इरादा काफिलेके साथ रहनेका था । पर मि० पोलकका विचार तो हिंदुस्तान जानेका था । इससे हम तीनोंने मिलकर यह तै किया कि मि० पोलकने अपराध किया है या नहीं, इस सवालके जवाबमें हम 'हां' या 'ना' कुछ भी न कहें ।

इन दोनों साथियोंके विरुद्ध मैं गवाह बना । हम यह नहीं चाहते थे कि मुकदमे ज्यादा वक्त लें, इसलिए तीनों मुकदमे एक-एक दिनमें ही खतम हो जायं, इसमें अपनी ओरसे पूरी मदद दी । ऐसा हुआ भी । हम तीनोंको तीन-तीन महीनेकी

कैदकी सजा मिली। हमने सोचा कि ये तीन महीने तो हम साथ रह सकेंगे; पर सरकारका सुभीता इसकी इजाजत नहीं देता था।

इस बीच थोड़े दिन हम वोक्सरस्ट जेलमें सुखसे रहे। यहां रोज नये कैदी आते और बाहरकी खबर लाते। इन सत्याग्रही कैदियोंमें एक हरबतसिंह नामका बूढ़ा था। उसकी उम्र ७५ से ऊपर थी। वह किसी खानमें काम नहीं करता था। अपना गिरमिट तो वह बरसों पहले पूरा कर चुका था। इसलिए वह हड़तालमें शामिल नहीं था। मेरी गिरफ्तारीके बाद लोगोंमें उत्साह बहुत ही बढ़ गया था और बहुतेरे नेटालसे ट्रांसवालमें दाखिल होकर गिरफ्तार हो रहे थे। हरबतसिंह भी उन्हींमें था। मैंने उससे पूछा—"आप जेलमें क्यों आये? आप जैसे बूढ़ोंको मैंने जेलमें आनेका निमंत्रण नहीं दिया है?"

हरबतसिंहने जवाब दिया—"मैं कैसे रह सकता था, जब आप, आपकी धर्मपत्नी और आपके लड़के तक हम लोगोंके लिए जेल चले गये?"

"लेकिन आपसे जेलके दुःख बर्दाश्त नहीं हो सकेंगे। आपके छूटनेके लिए मैं कोशिश करूं?"

"मैं हरगिज जेल नहीं छोड़ूंगा। मुझे एक दिन तो मरना है ही। फिर ऐसा दिन कहां, जो मेरी मौत यहां हो जाय!"

इस दृढ़ताको मैं कैसे डिगाता? वह डिगाए डिगती भी नहीं। मेरा सिर इस निरक्षर ज्ञानीके सामने झुक गया। जैसी हरबतसिंहकी भावना थी वैसा ही हुआ। हरबतसिंहकी मृत्यु जेलमें हुई। उसका शव वोक्सरस्टसे डर्बन मंगाया गया और सैकड़ों भारतीयोंकी उपस्थितिमें उसका सम्मानपूर्वक अग्निसंस्कार किया गया। ऐसे हरबतसिंह इस लड़ाईमें एक ही नहीं, अनेक थे। पर जेलमें मरनेका सौभाग्य

केवल अकेले उसीको मिला। इससे दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमें वह उल्लेखका अधिकारी हो गया।

इस प्रकार लोग आकृष्ट होकर जेल आयें यह सरकारको पसंद नहीं हो सकता था। फिर जेलसे छूटनेवाले मेरा संदेसा ले जायं यह भी उसको गवारा नहीं हो सकता था। अतः हम तीनोंको अलग कर देने, एकको भी वोक्सरस्टमें न रहने देने और मुझे ऐसी जेलमें ले जानेका निश्चय किया गया जहां कोई हिंदुस्तानी जा ही न सके। फलतः मैं आरेंजियाकी राजधानी ब्लूम फोनटीनकी जेलमें भेजा गया। आरेंजियामें कुल मिलाकर ५० से अधिक हिंदुस्तानी नहीं थे। वे सभी होटलोंमें नौकरी करते थे। ऐसे प्रदेशकी जेलमें हिंदुस्तानी कैदी हो ही नहीं सकते थे। उस जेलमें मैं अकेला ही हिंदुस्तानी था। बाकीके सभी कैदी गोरे या हबशी थे। मुझे इसका दुःख नहीं था, बल्कि मैंने इसको सुख माना। मुझे न कुछ सुनना था, न देखना। नया अनुभव मिले यह मेरे मनको भानेवाली बात थी। फिर मुझे पढ़नेका समय तो बरसोंसे, कहिये १८९३ के बादसे, मिला ही नहीं था। अब एक बरस मिलेगा यह जानकर मुझे तो खुशी हुई।

मैं ब्लूम फोनटीन पहुंचाया गया। वहां एकांत तो यथेच्छ मिला। कठिनाइयां भी बहुत थीं, पर सभी सह्य थीं। उनका वर्णन करके पाठकोंका समय नहीं लूँगा। फिर भी इतना बता देना जरूरी है कि वहांका डाक्टर मेरा मित्र हो गया। जेलर तो केवल अपने अधिकारको ही समझता था, पर डाक्टर कैदियोंके हककी रक्षाका ध्यान रखता था। मेरा यह काल शुद्ध फलाहारका था। न दूध लेता, न घी। अन्न भी न खाता। केले, टमाटर, कच्ची मूंगफली, नीबू और जैतूनका तेल, बस यही मेरी खूराक थी। इनमें एक भी चीज सड़ी आये तो भूखों मरना पड़ता। इसलिए डाक्टर खास

तौरसे ध्यान रखते और उन्होंने मेरी खूराकमें बादाम, अखरोट और ब्रेजीलनट बढ़ा दिया। खुद सारे फलोंको देखते और उनके अच्छे होनेका इतमीनान करते । मुझे जो कोठरी दी गई थी उसमें हवा बहुत ही कम आती थी । उसका दरवाजा खुला रखवानेकी उन्होंने पूरी कोशिश की, पर उनकी चली नहीं । जेलरने धमकी दी कि दरवाजा खुला रखा गया तो मैं इस्तीफा दे दूंगा । जेलर बुरा आदमी नहीं था, पर उसका स्वभाव एक ही सांचेमें ढला हुआ था, वह कैसे बदला जाय ? उसे उपद्रवी कैदियोंसे काम पड़ता था । इसलिए मुझ जैसे भले कैदीके साथ भेदभाव करता तो दूसरे कैदियोंके उसपर हावी हो जानेका सच्चा डर था । मैं जेलरका दृष्टिबिंदु ठीक तौरसे समझ सकता था और इससे डाक्टर और जेलरके बीच मेरे बारेमें जो झगड़ा होता उसमें मेरी हमदर्दी जेलरकी ओर होती । जेलर अनुभवी और सीधे रास्तेपर जानेवाला था और अपने रास्तेको साफ देख सकता था ।

मि० केलनबेक प्रिटोरियाकी जेलमें भेजे गये और मि० पोलक जरमिस्टनकी जेलमें ।

पर सरकारकी सारी योजना बेकार थी । आसमान टूटे तो पैवंद क्या काम देगा ? नेटालके गिरमिटिए हिंदुस्तानी पूरे तौरसे जग गये थे । दुनियाकी कोई भी ताकत उनको रोक नहीं सकती थी ।

: २२ :

कसौटी

सोनेकी परख करनेवाला सदा उसको कसौटीपर घिसता है। फिर और परीक्षा करनी हो तो उसे भट्टीमें डालता है, उसे

पीटता है, मैल हो तो उसे निकाल डालता है और अंतमें उसका कुंदन बनाता है। ऐसी ही कसौटी हिंदुस्तानियोंकी हुई। वे हथौड़ेसे पीटे गये, भट्टीमें डाले गये, तपाये गये और जब वे परीक्षामें सच्चे उतरे तभी उनकी कीमत आंकी गई।

यात्रियोंको जो स्पेशल ट्रेनमें सवार कराके ले गये तो वन-भोजके लिए नहीं; बल्कि उनको लड़ाई पर चढ़ानेके लिए ले गये। रास्तेमें उनको खाना देनेका भी प्रबंध नहीं था। नेटाल पहुंचे कि तुरंत उनपर मुकदमा चलाया गया। उनको कैदकी सजा मिली। यह तो समझी हुई बात थी; पर हजारों आदमियोंको जेलमें रखना तो खर्च बढ़ाना और हिंदुस्तानियोंकी मनचाही करना होता। कोयलेकी खानें बंद रहतीं। ऐसी स्थिति अधिक दिन चले तो तीन पौंडका कर रद करना ही पड़ता। इसलिए यूनियन सरकारने एक नयी युक्ति सोची। गिरमिटिये जहां-जहांसे आये थे उन्हीं स्थानोंको, एक नया कानून बनाकर, उसने जेल बना दिया और इन जेलोंका दारोगा खानोंके गोरे कर्मचारियोंको बना दिया। इस प्रकार जो काम मजदूरोंने छोड़ दिया था वही सरकारने उनसे जबर्दस्ती कराया। गुलामी और नौकरीमें यह फर्क है कि नौकर काम छोड़ दे तो उसपर दीवानी अदालतमें नालिश ही की जा सकती है और गुलाम काम छोड़े तो जबर्दस्ती कामपर वापस लाया जा सकता है, यानी अब मजदूर पूरे तौरपर गुलाम हो गये।

पर इतनाही काफी नहीं था। मजदूर बहादुर थे। उन्होंने खानोंमें काम करनेसे साफ इन्कार कर दिया। इसके फल-स्वरूप उन्हें कोड़ोंकी मार सहनी पड़ी। अक्खड़ आदमियोंने जो क्षणभरमें अधिकारी बन बैठे थे उन्हें लातें मारीं, गालियां दीं और दूसरे अत्याचार किये। उसका तो कहीं उल्लेखतक नहीं हुआ है। गरीब मजदूरोंने इस सबको धीरजके साथ सह लिया। इन अत्याचारोंके तार हिंदुस्तान पहुंचे। सब तार गोखलेके

नाम भेजे जाते। उन्हें एक दिन भी ब्योरेवार तार न मिलता तो सीधे पूछते। इन तारोंका प्रचार वह अपनी रोगशय्यासे करते, क्योंकि इन दिनों वह सख्त बीमार थे। पर दक्षिण अफ्रीकाका काम इस दशामें भी खुद देखनेका आग्रह रखते थे और इस काममें न रात देखते, न दिन। फल यह हुआ कि सारा हिंदुस्तान भड़क उठा और दक्षिण अफ्रीकाका सवाल वहां प्रधान प्रश्न बन गया।

यही वक्त था जब लार्ड हार्डिंजने मद्रासमें (दिसंबर १९१३) वह प्रसिद्ध भाषण दिया जिसने दक्षिण अफ्रीका और विलायतमें खलबली मचा दी। वाइसराय दूसरे उपनिवेशों या साम्राज्यके अंगभूत देशोंकी आलोचना नहीं कर सकता। पर लार्ड हार्डिंजने यूनियन सरकारकी कड़ी टीका ही नहीं की, सत्याग्रहियोंके कामका पूरा बचाव भी किया, यहांतक कि सविनय कानून भंग-का भी समर्थन किया। विलायतमें उनके साहसकी कुछ कड़वी आलोचना अवश्य हुई, फिर भी उन्होंने अपने कार्यपर पश्चात्ताप न कर उसका औचित्य प्रकट किया। उनकी इस दृढ़ताका असर बहुत अच्छा हुआ।

इन अपनी खानोंमें कैद दुःखी और हिम्मतवाले मजदूरों-को छोड़कर हम क्षणभर खानोंके बाहरकी स्थितिपर निगाह डालें।

खानें नेटालके उत्तरी भागमें अवस्थित थीं, पर हिंदुस्तानी मजदूरोंकी बड़ी-से-बड़ी तादाद नेटालके नैऋत्य और वायव्य कोणोंमें थी। वायव्य कोणमें फिनिक्स, वेरू-लम, टोंगाट इत्यादि स्थान पड़ते हैं, नैऋत्यमें इसीपिंगो और अमजिन्टो इत्यादि। वायव्य कोणके मजदूरोंके साथ मेरा खास परिचय था। उनमेंसे बहुतेरे बोअर-युद्धमें भी मेरे साथ रह चुके थे। नैऋत्य दिशाके मजदूरोंके साथ मेरा इतना नजदीकका साबका नहीं पड़ा था। उस ओर

मेरे साथी भी बहुत थोड़े थे। फिर भी हड़ताल और जेलकी बात विद्युत् गतिसे फैल गई। दोनों कोणोंसे हजारों मजदूर यकायक निकल पड़े। कितनोंने यह सोचकर अपना सामान बेच डाला कि लड़ाई लंबी होगी और हमें खाना कोई देगा नहीं। मैंने तो जेल जाते समय साथियोंको चेता दिया था कि ज्यादा मजदूरोंको हड़ताल करनेसे रोकें। मुझे आशा थी कि खानोंके मजदूरोंकी मददसे ही लड़ाईकी सब मंजिल पार कर लूंगा। अगर सारे मजदूर यानी लगभग दस हजार लोग हड़ताल कर दें तो उनके भरण-पोषणका भार उठाना कठिन होगा। इतनी बड़ी सेनासे कूच कराने जितनी सामग्री भी अपने पास नहीं थी। न इतने मुखिया थे, न इतना पैसा। फिर इतने आदमियोंको इकट्ठा कर शांति-भंग बचाना भी नामुमकिन होता।

पर बाढ़ आये तो किसीके रोके रुक सकती है? मजदूर हर जगह अपने आप काम छोड़कर निकल पड़े। स्वयंसेवक भी उन स्थानोंमें स्वेच्छासे संघटित हो गये।

सरकारने अब बंदूकसे काम लेनेकी नीति अपनाई। लोगोंको हड़ताल करनेसे जबर्दस्ती रोका। उनके पीछे घुड़सवार दौड़ाये और वे अपने स्थानपर पहुंचा दिये गये। वे तनिक भी उपद्रव करें तो फैर कर देनेका हुक्म था। हड़तालियोंके एक समूहने उन्हें कामपर वापस ले जानेकी कोशिशका विरोध किया। किसी-किसीने पुलिसपर ईंट-पत्थर भी फेंके। उनपर गोलियोंकी बौछार कर दी गई। बहुतेरे घायल हुए, दो-चार मरे भी। पर मजदूरोंका जोश इससे ठंडा नहीं हुआ। स्वयंसेवकोंने बड़ी कठिनाईसे वेरूलमके पास हड़ताल करनेसे लोगोंको रोका। पर सब मजदूर कामपर वापस नहीं गये। कुछ तो डरसे छिप गये और फिर कामपर वापस नहीं गये।

एक घटना उल्लेखयोग्य है। वेरूलममें बहुतसे मज-

दूर काम छोड़कर निकल पड़े थे। वे किसी उपायसे कामपर वापस नहीं जाते थे। जनरल ल्यूकिन अपने सिपाहियोंके साथ वहां मौजूद थे और हड़तालियोंपर गोली चलानेका हुक्म देनेको तैयार थे। स्वर्गीय पारसी रुस्तमजीका छोटा लड़का बहादुर सोराबजी जो उस वक्त मुश्किलसे १८ बरसका रहा होगा, डर्बनसे यहां पहुंच गया था। जनरलके घोड़ेकी लगाम थामकर वह बोल उठा, "आप फैर करनेका हुक्म नहीं दे सकते। मैं अपने आदमियोंको शांतिसे कामपर लौटा देनेकी जिम्मेदारी लेता हूं।" जनरल ल्यूकिन इस नौजवानकी बहादुरीपर मुग्ध हो गये और उसे अपना प्रेम-बल आजमा लेनेकी मुहलत दे दी। सोराबजीने लोगोंको समझाया। वे समझ गये और अपने कामपर लौट गये! इसतरह एक नवयुवककी मौकेकी सूझ, निर्भयता और प्रेमसे खूनखराबी होते-होते बची।

पाठकोंको जान लेना चाहिए कि ये गोलियोंकी बौछार आदि काम गैरकानूनी ही माने जा सकते हैं। खानोंके मजदूरोंके साथ व्यवहार करनेमें सरकारकी कार्रवाईकी जाहिरा शक्ल बाकायदा थी। वे हड़ताल करनेके लिए नहीं, बल्कि ट्रांसवालकी सरहदमें बिना परवानोंके प्रवेश करनेके जुर्ममें गिरफ्तार किये गये थे। नैऋत्य और वायव्य कोणोंमें हड़ताल करना ही अगर अपराध मान लिया गया था तो वह किसी कानूनके रूसे नहीं; बल्कि अधिकारके बलसे। अंतमें तो शक्ति ही कानून बन जाती है। अंगरेजीमें एक कहावत है जिसके माने यह हैं कि बादशाह कभी कोई गलती करता ही नहीं।[1] हुकूमतका सुभीता ही आखिरी कानून है। यह दोष सार्वभौम है। सच पूछिये तो इस तरह कानूनको भूल जाना सदा दोष ही नहीं होता। कुछ

---

[1] दी किंग कैन डू नो रोंग।

मौकोंपर कानूनसे चिपके रहना ही दोष बन जाता है। जब राजशक्ति लोकसंग्रह करती हो और जब उसका नियंत्रित करनेवाला बंधन उस शक्तिका नाश करनेवाला बन रहा हो तब उस बंधनका अनादर धर्म-संगत और विवेकका अनुसरण है। ऐसे अवसर कभी-कभी ही उपस्थित होते हैं। जहां राज्य अकसर निरंकुश होकर व्यवहार करता है वहां वह लोकोपकारी नहीं हो सकता। यहां राज्यके निरंकुश होनेका कोई कारण नहीं था, हड़ताल करनेका हक अनादि है। यह जान लेनेके लिए सरकारके पास काफी मसाला था कि हड़ताल करनेवालोंको उपद्रव कदापि नहीं करना था। हड़तालका बड़े-से-बड़ा परिणाम इतना ही हो सकता था कि तीन पौंडका कर रद हो जाता। शांतिप्रिय लोगोंके विरुद्ध शांतिमय उपाय ही उचित माने जा सकते हैं। फिर यहां राजशक्ति लोकोपकारी नहीं थी। उसका अस्तित्व केवल गोरोंके भलेके लिए था। आमतौरसे वह हिंदुस्तानियोंकी विरोधिनी थी। इसलिए ऐसी एक-पक्षीय राजशक्तिकी निरंकुशता किसी तरह उचित और क्षन्तव्य नहीं मानी जा सकती।

अतः मेरी समझसे यहां शक्तिका शुद्ध दुरुपयोग हुआ। जिस कार्यकी सिद्धिके लिए शक्ति या अधिकारका यों दुरुपयोग किया जाता है वह कभी सिद्ध नहीं होता। कभी-कभी क्षणिक सिद्धि मिलती दिखाई देती है, पर स्थायी सफलता कभी नहीं मिलती। दक्षिण अफ्रीकामें गोलियां बरसानेके ६ महीनेके अंदर ही जिस तीन पौंडके करको कायम रखनेके लिए यह अत्याचार किया गया वही रद हो गया। यों अकसर दुःख सुखके लिए होता है। इन क्लेशोंकी पुकार हर जगह सुनी गई। मैं तो यह मानता हूं कि जैसे एक रेलमें उसके हर पुरजे-का अपना स्थान होता है वैसे ही हर-एक संघर्ष-संग्राममें हर चीजकी अपनी जगह होती है और जैसे कीट, मैल आदि

कलकी गति रोक देते हैं वैसे ही कितनी चीजें युद्धकी गति भी रुद्ध कर देती हैं। हम तो निमित्तमात्र होते हैं, इसलिए हम सदा यह नहीं जानते कि क्या हमारे प्रतिकूल है और क्या अनुकूल। अतः हमें केवल साधनको जाननेका अधिकार है और साधन पवित्र हो तो फलके विषयमें हम निर्भय और निश्चिंत रह सकते हैं।

इस लड़ाईमें मैंने यह देखा कि ज्यों-ज्यों लड़नेवालोंका कष्ट बढ़ा त्यों-त्यों उसका अंत निकट आता गया। कष्ट उठानेवालोंकी निर्दोषिता ज्यों-ज्यों अधिक स्पष्ट होती गई त्यों-त्यों भी युद्धका अंत निकट आता गया। फिर इस युद्धमें मैंने यह भी देखा कि ऐसे निर्दोष, निःशस्त्र और अहिंसक युद्धमें आड़े वक्तपर आवश्यक साधन अनायास जुट जाते हैं। बहुतसे स्वयंसेवकोंने, जिन्हें मैं आजतक नहीं जानता, अपने आप आकर हमारी मदद की। ऐसे सेवक बहुत करके निस्स्वार्थ होते हैं। इच्छा न होते हुए भी अदृश्य रीतिसे सेवा कर देते हैं। न कोई उनकी सेवा कहीं लिखता है और न कोई उन्हें प्रमाणपत्र देता है। कितने ही तो इतना भी नहीं जानते कि उनके ये अमूल्य कार्य भगवानकी बहीमें दर्ज किये जाते हैं।

दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय परीक्षामें पास हुए। उन्होंने अग्निमें प्रवेश किया और उससे बिना बाल बांका हुए बाहर निकले। युद्धका अंत किस तरह आरंभ हुआ यह अलग प्रकरणमें देखेंगे।

: २३ :

अंतका आरंभ

पाठकोंने देखा होगा कि जितना बल लगाया जा सकता था उतना और जितनेकी उससे आशा रखी जा सकती थी उससे अधिक शांत बल कौमने लगा दिया। उन्होंने यह भी देखा होगा कि बल लगानेवालोंका बहुत बड़ा भाग ऐसे गरीब और दलित जनोंका था जिससे कुछ भी आशा नहीं रखी जा सकती थी। उन्हें यह भी याद होगा कि दो या तीनको छोड़कर फिनिक्स-आश्रमके सभी जिम्मेदार कार्यकर्ता इस वक्त जेलमें थे। फिनिक्ससे बाहर रहनेवालोंमें स्वर्गीय सेठ अहमद मुहमद काछलिया बचे थे। फिनिक्समें मि० वेस्ट, मिस वेस्ट और मगनलाल गांधी थे। सेठ काछलिया साधारण देखभाल करते थे। मिस श्लेजिन ट्रांसवालका सारा हिसाब-किताब और सरहद लांघनेवालोंकी देख-रेख रखती थीं। मि० वेस्टपर 'इंडियन ओपीनियन' के अंग्रेजी भागका काम सम्हालने और गोखलेके साथ तारद्वारा पत्रव्यवहार रखनेकी जिम्मेदारी थी। जब परिस्थिति क्षण-क्षणमें नया रंग बदला करती हो उस वक्त डाकसे होनेवाले पत्रव्यवहारकी जरूरत ही क्यों होती ? तार पत्रके जैसे लंबे भेजने पड़ते थे।

अब फिनिक्स न्यूकैसेलकी तरह वायव्यकोणके हड़तालियोंका केन्द्र हो गया। सैकड़ों वहां आकर सलाह और आश्रय लेने लगे। इस दशामें सरकारकी निगाह फिनिक्सकी ओर गये बिना कैसे रहती ? आसपास रहनेवाले गोरोंकी त्यौरी भी चढ़ने लगी। फिनिक्समें रहना कुछ अंशोंमें खतरनाक हो गया। फिर भी छोटे-छोटे लड़के-लड़कियां भी जोखिमभरे काम कर रहे थे। इतनेमें वेस्ट पकड़े गये। सच

पूछिये तो वेस्टको गिरफ्तार करनेका कोई कारण नहीं था। हमने यह तै कर रखा था कि वेस्ट और मगनलाल गांधी अपने आपको गिरफ्तार करानेका एक भी प्रयत्न न करें। इतना ही नहीं, जहांतक हो सके गिरफ़्तारीके मौकोंसे दूर भी रहें। इसलिए वेस्टने गिरफ्तार करनेके लिए सरकारको कोई कारण दिया ही नहीं था, पर सरकार कुछ सत्याग्रहियोंका सुभीता थोड़े ही देखनेवाली थी या उसे गिरफ्तार करनेका मौका थोड़े ही ढूंढना था। अधिकारवालेको कोई काम करनेकी इच्छा होना ही उसका अवसर है। अतः वेस्टकी गिरफ्तारीका तार ज्योंही गोखलेके पास पहुंचा, उन्होंने हिंदुस्तानके कुछ योग्य आदमियोंको दक्षिण अफ्रीका भेजनेका यत्न आरंभ कर दिया। लाहौरमें जब दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहियोंकी सहायताके लिए सभा हुई थी तो सी० एफ० एंड्रूजने, जितना पैसा उनके पास था, सब दे दिया था। तभीसे गोखलेकी नजर उनपर पड़ रही थी। अतः वेस्टकीगिरफ़्तारीकी खबर मिलते ही उन्होंने एंड्रूजसे तारसे पूछा कि आप तुरंत दक्षिण अफ्रीका जानेको तैयार हैं? एंड्रूजने जवाबमें तुरंत 'हां' कह दिया। इसी क्षण उनके परम प्रिय मित्र पियर्सन भी तैयार हो गये और वे दोनों पहले स्टीमरसे दक्षिण अफ्रीका जानेको रवाना हो गये।

पर अब तो युद्ध समाप्तिके पास पहुंच गया था। हजारों निरपराध लोगोंको जेलमें बंद रखनेकी शक्ति दक्षिण अफ्रीकाके सरकारके पास नहीं थी। वाइसराय भी इसे सहन नहीं कर सकते थे। सारी दुनिया यह देख रही थी कि जनरल स्मट्स क्या करते हैं। ऐसे मौकेपर राज्य आमतौरसे जो किया करते हैं, दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारने भी वही किया। जांच-पड़ताल तो कुछ करनी नहीं थी। जो अन्याय हुआ था वह जाहिर था। उसे दूर करनेकी आवश्यकता हर आदमी देख रहा था। जनरल

स्मट्स भी देख सकते थे कि अन्याय हुआ है और वह दूर होना चाहिए; पर उनकी दशा सांप-छछूंदरकी-सी हो रही थी। उन्हें न्याय करना था, पर न्याय करनेकी शक्ति वह खो बैठे थे; क्योंकि दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंको उन्होंने यह इतमीनान दिला दिया था कि वह खुद तीन पौंडका कर रद नहीं करेंगे और न दूसरे सुधार ही। पर अबतो उक्त करको उठाकर और दूसरे सुधार करके ही छुटकारा था। ऐसी विकट स्थितिसे निकलनेके लिए लोकमतसे डरकर चलनेवाले राज्य सदा कमीशन नियुक्त किया करते हैं। उसके जरिये महज नामकी जांच कराई जाती है, क्योंकि वह क्या सलाह देगा यह पहलेसे जाना-समझा हुआ होता है। यह आम रवाज है कि कमीशन जो सिफारिश करे उसपर अमल होना ही चाहिए। इसलिए कमीशनकी सिफारिशकी आड़ लेकर राज्य पीछे वही न्याय किया करते हैं जिसे करनेसे पहले इन्कार कर चुके होते हैं। जनरल स्मट्सने कमीशनमें तीन सदस्य नियुक्त किये। भारतीय जनताने कमीशनके बारेमें कुछ शर्तें पेश कीं और जबतक वे पूरी न कर दी जाएं तबतक कमीशनका बहिष्कार करनेकी प्रतिज्ञा की। इन शर्तोंमेंसे एक यह थी कि सब सत्याग्रही कैदी छोड़ दिये जाएं और दूसरी यह कि कमीशनमें कम-से-कम एक सदस्य तो हिंदुस्तानी कौमकी ओरसे होना ही चाहिए। पहली शर्त तो अंशतः कमीशनने ही मंजूर कर ली थी। उसने सरकारसे सिफारिश की थी कि कमीशनके कामको आसान बनानेके लिए मि० केलनबेक, मि० पोलक और गांधी बिना किसी शर्तके छोड़ दिये जायं। सरकारने इस सिफारिशको मंजूर किया और हम तीनोंको एक साथ (१८ दिसंबर १९१३) छोड़ दिया। हम मुश्किलसे दो महीने जेलमें रहे होंगे। दूसरी ओर मि० वेस्टको सरकारने गिरफ्तार तो कर लिया, पर उनपर मुकदमा



गांधीजी और कस्तूरबा
(द० अफ्रीकासे विलायत जाते समय १४-७-१४)

चलानेके लिए कोई मसाला नहीं था। इसलिए उन्हें भी छोड़ना पड़ा।

ये घटनाएं एंड्रूज और पियर्सनके पहुंचनेके पहले ही हो चुकी थीं। इसलिए इन दोनों मित्रोंको मैंने ही डर्बन जाकर जहाजसे उतारा। उन दोनोंको इन घटनाओंकी कुछ भी खबर नहीं थी। इसलिए सुनकर उन्हें सुखद आश्चर्य हुआ। इन दोनों मित्रोंके साथ मेरी यह पहली ही मुलाकात थी।

छोड़े जानेसे हम तीनोंको मायूसी ही हुई। बाहरकी हमें कुछ भी खबर नहीं थी। कमीशनकी खबरसे हमें अचरज हुआ। पर हमने देखा कि हम कमीशनकी कोई सहायता करनेमें असमर्थ हैं। इतना जरूर समझा कि उसमें हिंदुस्तानियोंकी ओरसे कोई एक आदमी तो होना ही चाहिए। इसपर हम तीनों डर्बन पहुंचे और वहांसे जनरल स्मट्सको इस आशयका पत्र लिखा :

"हम कमीशनका स्वागत करते हैं। पर उसके दो सदस्यों—मि० एसेलेन और मि० वाइलीकी नियुक्ति जिस रीतिसे हुई है उसपर हमें सख्त एतराज है। उनके व्यक्तित्वसे हमारा कुछ भी विरोध नहीं। वे प्रसिद्ध और सुयोग्य नागरिक हैं। पर दोनों अनेक बार भारतीयोंको नापसंद करनेका भाव प्रकट कर चुके हैं। इसलिए उनसे बिना जाने अन्याय हो जाना संभव है। मनुष्य अपना स्वभाव यकायक बदल नहीं सकता। ये दोनों सज्जन अपना स्वभाव बदल लेंगे यह मानना प्रकृतिके नियमके विरुद्ध है। फिर भी हमारी मांग यह नहीं है कि वे कमीशनसे अलग कर दिये जाएं। हमारा सुझाव इतना ही है कि एक-दो तटस्थ पुरुष उसमें बढ़ा दिये जाएं और इसके लिए हम सर जेम्स रोज़ इनिस और ऑनरेबल डब्ल्यू०पी० श्राइनरके नाम पेश करते हैं। दोनों नामी व्यक्ति अपनी न्यायवृत्तिके लिए सुविख्यात हैं। हमारी

दूसरी प्रार्थना यह है कि सभी सत्याग्रही कैदी छोड़ दिये जाएं। यह न होनेसे हमारा अपना जेलके बाहर रहना कठिन हो जायगा। अब उन्हें जेलमें बंद रखनेका कोई कारण नहीं है। तीसरे अगर हमें कमीशनके सामने गवाही देनी है तो हमें खानोंमें और जहां-जहां गिरमिटिए काम करते हैं वहां-वहां जानेकी आजादी होनी चाहिए। हमारी ये प्रार्थनाएं स्वीकार न की गईं तो हमें खेदके साथ फिर जेल जानेके उपाय ढूंढने होंगे।"

जनरल महोदयने कमीशनमें और किसीको लेनेसे इन्कार किया और कहा कि कमीशन किसी पक्षके लिए नहीं नियुक्त हुआ है। वह केवल सरकारके संतोषके लिए बनाया गया है। यह जवाब मिलनेपर हमारे पास एक ही इलाज रह गया और हमने जेलकी तैयारी करके यह विज्ञप्ति निकाली कि १९१४ की पहली जनवरीको जेल जानेवालोंकी डर्बनसे कूच शुरू होगी। १८ दिसंबर (१९१३)को हम छोड़े गये थे, २१ को हमने उपर्युक्त पत्र लिखा और २४ को जनरल स्मट्सका जवाब मिला।

पर इस उत्तरमें एक बात ऐसी थी जिससे मैंने जनरल स्मट्सको फिर पत्र लिखा। उनके जवाबमें इस आशयका वाक्य था—"कमीशन निष्पक्ष और अदालती बनाया गया है, और उसकी नियुक्ति करते समय अगर भारतीयोंसे मशविरा नहीं किया गया तो खानवालों और शक्करवालोंसे भी नहीं किया गया।" इस वाक्यको देखकर मैंने जनरल महोदयको निजी पत्रमें लिखा कि अगर सरकार न्याय ही करना चाहती हो तो मुझे आपसे मिलना है और कुछ तथ्य आपके सामने रखने हैं।" इसके जवाबमें जनरल स्मट्सने मुलाकातका अनुरोध स्वीकार किया। इससे कूच कुछ दिनके लिए तो मुलतवी हो ही गई।

उधर गोखलेने जब सुना कि हम नई कूच करनेवाले हैं तब उन्होंने लंबा तार भेजा। उसमें लिखा कि ऐसा करनेसे लार्ड हार्डिंजकी और मेरी स्थिति भी कठिन हो जायगी और दूसरी कूच मुलतवी रखने और कमीशनके सामने इजहार देनेकी जोरदार सलाह दी।

हमारे ऊपर धर्मसंकट आ पड़ा। कमीशनके सदस्योंमें और आदमी नहीं लिए गये तो भारतीय जनता उसका बहिष्कार करनेकी प्रतिज्ञा कर चुकी थी। लार्ड हार्डिंज नाराज हों, गोखले दुःखी हों तो भी प्रतिज्ञा कैसे तोड़ी जाय? मि० एंड्रूजने गोखलेकी भावना, उनके नाजुक स्वास्थ्य और हमारे निश्चयसे उनके दिलको लगनेवाले धक्केपर विचार करनेकी सलाह दी। मैं तो जानता ही था। नेताओंने इक्टठे होकर स्थितिपर विचार किया और अंतमें निश्चय किया कि चाहे जो जोखिम उठानी पड़े; पर बहिष्कार तो कायम रहना ही चाहिए। इसलिए हमने गोखलेको लगभग सौ पौंड खर्च करके लंबा तार भेजा। उससे श्रीएंड्रूज भी सहमत हुए। उसका आशय यह था:

"आपका दुःख समझता हूं। मैं सदा ही चाहूंगा कि बड़ी-से-बड़ी वस्तुका त्याग करके भी आपकी सलाहका अनुसरण करूं। लार्ड हार्डिंजने हमारी जो सहायता की है वह अमूल्य है। मैं यह भी चाहता हूं कि यह मदद हमें अंततक मिलती रहे। पर मैं चाहता हूं कि आप हमारी स्थितिको समझें। इसमें हजारों आदमियोंकी प्रतिज्ञाका प्रश्न आता है। प्रतिज्ञा शुद्ध है। हमारी सारी लड़ाईकी इमारत प्रतिज्ञाओंकी नींवपर खड़ी की गई है। प्रतिज्ञाओंका बंधन नहीं होता तो हममेंसे बहुतेरे आज गिर गये होते। हजारोंकी प्रतिज्ञापर एक बार पानी फिर जाय तो नैतिकबंधन-जैसी कोई चीज रहेगी ही नहीं। प्रतिज्ञा करते समय लोगोंने पूरी तरह

विचार कर लिया था। उसमें कोई अनीति तो है ही नहीं। बहिष्कारकी प्रतिज्ञा करनेका कौमको अधिकार है। मैं चाहता हूं कि आप भी हमें यह सलाह दें कि ऐसी प्रतिज्ञा किसीकी खातिर भी नहीं तोड़ी जानी चाहिए और हर हानि-जोखिम उठाकर भी उसका पालन होना चाहिए। यह तार आप लार्ड हार्डिंजको दिखाइयेगा। मैं चाहता हूं कि आपकी स्थिति कठिन न हो जाय। हमने अपनी लड़ाई ईश्वरको साक्षी और उसकी सहायताका भरोसा रखकर शुरू की। बड़ोंकी और बड़े आदमियोंकी सहायता हम चाहते और मांगते हैं। वह मिल जाय तो प्रसन्न होते हैं। पर मेरी नम्र राय है कि वह मिले या न मिले, प्रतिज्ञाका बंधन कदापि न टूटना चाहिए। उसके पालनमें आपका समर्थन और आशीर्वाद चाहता हूं।"

यह तार गोखलेको मिला। इसका असर उनके स्वास्थ्य-पर तो हुआ; पर उनकी सहायतापर नहीं हुआ या हुआ तो यही कि उसका जोर और बढ़ गया। लार्ड हार्डिंजको उन्होंने तार भेजा; पर हमारा त्याग नहीं किया। उलटे हमारी दृष्टिका बचाव किया। लार्ड हार्डिंज भी दृढ़ रहे।

मैं एंड्रूजको साथ लेकर प्रिटोरिया गया। इसी वक्त यूनियन रेलवेमें गोरे कर्मचारियोंकी जबर्दस्त हड़ताल हुई। इस हड़तालसे सरकारकी स्थिति नाजुक हो गई। मुझसे कहलाया गया कि हिंदुस्तानियोंकी कूच बोल दो। मैंने जाहिर किया कि मुझसे हड़तालियोंकी इस रीतिसे मदद नहीं होने की। हमारा उद्देश्य सरकारको हैरान करना नहीं है। हमारी लड़ाई जुदी और दूसरे तरीकेकी है। हमें कूच करना ही होगा तो भी हम जब रेलवेकी गड़बड़ शांत हो जायगी तब करेंगे। इस निश्चयका गहरा असर हुआ। रायटरने उसका तार विलायत भेजा। लार्ड अम्पटहिलने वहांसे

धन्यवादका तार भेजा। दक्षिण अफ्रीकाके अंग्रेज मित्रोंने भी धन्यवाद दिया। जनरल स्मट्सके एक मंत्रीने मजाकमें कहा—"मुझे तो आपके लोग तनिक भी नहीं भाते। मैं उनकी जरा भी मदद करना नहीं चाहता। पर उनका हम करें क्या? आप लोग हमारे संकटकालमें हमारी सहायता करते हैं। हम आपको कैसे मारें? मैं तो बहुत बार चाहता हूं कि आप लोग भी अंग्रेज हड़तालियोंकी तरह दंगा-फसाद करें। तब हम तुरंत सीधा कर दें। आप तो दुश्मनको भी दुःख देना नहीं चाहते। आप तो स्वयं दुःख सहकर विजय प्राप्त करना चाहते हैं। भलमनसी और शिष्टताकी मर्यादाका कभी उल्लंघन नहीं करते। यहां हम लाचार हो जाते हैं।"

इसी तरहके भाव जनरल स्मट्सने भी प्रकट किये।

पाठकोंको मालूम होना चाहिए कि सत्याग्रहीके सौजन्य और विनयका यह पहला उदाहरण नहीं था। जब वायव्य कोणके हिंदुस्तानी मजदूरोंने हड़ताल की तो बहुत-सी ईख जो काटी जा चुकी थी, ठिकाने—कारखानेमें—नहीं पहुंच जाती तो मालिकोंको भारी नुकसान उठाना पड़ता। इसलिए १२०० भारतीय मजदूर उस कामको पूरा करनेके लिए कामपर वापस गये और उसके पूरा हो जानेपर ही अपने साथियोंके साथ शामिल हुए। फिर जब डर्बन म्युनिसिपैलिटीके गिरमिटियोंने हड़ताल की तो उसमें भी जो लोग भंगीका और अस्पतालका काम करते थे वे वापस भेजे गये और वे खुशीसे अपने कामोंपर लौट गये। भंगी और अस्पतालके काम करनेवाले अपना काम छोड़ दें तो शहरमें बीमारी फैलती और रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा न हो पाती। सत्याग्रही ऐसे परिणामकी इच्छा नहीं कर सकता। इसलिए ऐसे कर्मचारी हड़तालसे अलग रखे गये। सत्याग्रही जो भी कदम उठाये उसमें उसे विरोधीकी हिम्मतका विचार कर ही लेना चाहिए।

ऐसी भलमनसीके अनेक दृष्टांतोंका अदृश्य प्रभाव चारों ओर पड़ता हुआ मैं देख सकता था और उससे भारतीयोंकी प्रतिष्ठा बढ़ती और समझौतेके लिए हवा अनुकूल होती जा रही थी।

: २४ :

प्राथमिक समझौता

इस प्रकार समझौतेके लिए वातावरण अनुकूल होता जा रहा था। मैं और मि० एंड्रूज जब प्रिटोरिया पहुंचे उसी वक्त सर बेंजामिन राबर्टसन, जिन्हें लार्ड हार्डिंजने स्पेशल स्टीमरमें भेजा था, पहुंचनेवाले थे। पर हमें तो जनरल स्मट्सने जो दिन नियत किया था उसी दिन पहुंचना था। इससे सर बेंजामिनकी राह देखे बिना ही हम रवाना हो गये थे। राह देखनेका कारण भी नहीं था। लड़ाईका अंतिम परिणाम तो हमारी शक्तिके अनुसार ही होनेवाला था।

हम दोनों प्रिटोरिया पहुंचे; पर जनरल स्मट्ससे मुझे अकेले ही मिलना था। वह रेलवेके गोरे कर्मचारियोंकी हड़तालमें उलझ रहे थे। यह हड़ताल ऐसी भयानक थी कि यूनियन सरकारने फौजी कानून जारी किया था। इन कर्मचारियोंका उद्देश्य मजदूरी बढ़वाना मात्र नहीं था; बल्कि राज्यकी लगाम अपने हाथमें कर लेना था। मेरी पहली मुलाकात बहुत ही छोटी हुई। पर मैंने देखा कि जनरल स्मट्सकी जो स्थिति पहले यानी कूच शुरू कर देनेके समय थी वह आज नहीं थी। पाठकोंको याद होगा कि उस वक्त उन्होंने मुझसे बात करनेसे भी इन्कार कर दिया था। सत्याग्रहकी धमकी तो जैसे उस वक्त थी वैसे ही आज थी। फिर

भी उस वक्त उन्होंने समझौतेकी बातचीत करनेसे इन्कार कर दिया था। इस वक्त वह मुझसे मशविरा करनेको तैयार थे।

भारतीय जनताकी मांग तो यह थी कि कमीशनमें हिंदुस्तानियोंका कोई प्रतिनिधि होना चाहिए। पर इस बातपर जनरल स्मट्स अटल थे। उन्होंने कहा—"यह वृद्धि किसी तरह नहीं हो सकती। उसमें सरकारकी प्रतिष्ठा घटेगी और मैं जो सुधार करना चाहता हूं उन्हें नहीं कर सकूंगा। आपको मालूम होना चाहिए कि मि० एसेलेन हमारे आदमी हैं। सुधार करनेके बारेमें वह सरकारके खिलाफ नहीं जायेंगे; बल्कि उसके अनुकूल ही रहेंगे। कर्नल वाइली नेटालके प्रतिष्ठित पुरुष हैं और आप लोगोंके विरोधी भी माने जा सकते हैं। अतः वह भी तीन पौंडका कर उठा देनेमें सहमत हो जायं तो हमारा काम आसान हो जायगा। हमारे अपने झगड़े-झंझट इतने हैं कि हमें क्षणभरकी फुरसत नहीं है। अतः हम चाहते हैं कि आपका सवाल ठिकाने लग जाय। आप जो मांगते हैं उसे देनेका हमने निश्चय कर लिया है; पर कमीशनकी सम्मतिके बिना वह दिया नहीं जा सकता। आपकी स्थिति भी मैं समझ सकता हूं। आपने कसम खा ली है कि जबतक हम आपकी ओरसे किसीको कमीशनमें नहीं ले लें तबतक आप उसके सामने शहादत न देंगे। आप शहादत भले ही पेश न करें; पर जो लोग देने आयें उन्हें रोकनेका आंदोलन न करें और सत्याग्रहको मुलतवी रखें। मैं मानता हूं कि इससे आपका लाभ ही होगा और मुझे शांति मिलेगी। आप लोग हड़तालियोंपर जुल्म होनेकी बात कहते हैं। इस बातको आप साबित नहीं कर सकेंगे; क्योंकि आप शहादत नहीं दे रहे हैं। इस बारेमें आपको खुद सोच-विचार लेना है।"

इस प्रकारके भाव जनरल स्मट्सने प्रकट किये। मुझे तो ये सारे भाव कुल मिलाकर अनुकूल मालूम हुए। सिपाहियों

और जेलके दारोगाओंके दुर्व्यवहारके बारेमें हमने बहुत शिकायतें की थीं; पर कमीशनका बहिष्कार करनेके कारण उन्हें साबित करनेका सुयोग हमारे पास नहीं था। यह धर्मसंकट था। हममें इस विषयमें मतभेद था। एक पक्षका विचार था कि भारतीयोंने सिपाहियोंपर जो इलजाम लगाया है वे साबित किये ही जाने चाहिए। इसलिए उसकी सलाह थी कि अगर हम कमीशनके सामने शहादत न दे सकें तो कौम जिन्हें अपराधी मानती है उनके खिलाफ अपनी शिकायतें इस रूपमें प्रकाशित कर दें कि अभियुक्तकी मरजी हो तो मानहानिकी नालिश दायर कर सकें। मैं इस पक्षका विरोधी था। कमीशनके सरकारके विरुद्ध निर्णय करनेकी संभावना बहुत कम थी। मानहानिका दावा दायर करने लायक तथ्य प्रकाशित करनेमें कौमको भारी झमेलेमें पड़ना पड़ता और इसका नतीजा इतना ही होता कि हमें अपनी शिकायतें साबित कर देनेका संतोष मिल जाता। वकीलकी हैसियतसे मैं जानता था कि मानहानिवाली बातोंको साबित करनेमें कैसी कठिनाइयां होती हैं; पर मेरी सबसे वजनदार दलील तो यह थी कि सत्याग्रहीको कष्ट सहन करना था। सत्याग्रह आरंभ करनेके पहले सत्याग्रही जानते थे कि हमें मरणान्त कष्ट सहना होगा और उसे सहनेको वे तैयार भी थे। ऐसी दशामें यह साबित करनेमें कोई विशेषता नहीं थी कि हमें कष्ट सहने पड़े। बदला लेनेकी वृत्ति तो सत्याग्रहीमें होनी ही नहीं चाहिए। इसलिए जहां अपने कष्ट साबित करनेमें असाधारण कठिनाइयां सामने आ जायें वहां शांत रहे, यही सही रास्ता माना जायगा। सत्याग्रहीको तो मूलवस्तुके लिए ही लड़ना होता है। मूलवस्तु तो थी उक्त कानून। जब उनके रद कर दिए जाने या उनमें यथोचित सुधार हो जानेकी पूरी संभवना हो तो वह दूसरे झंझटोंमें क्यों पड़ेगा? दूसरे सत्याग्रहीका मौन

अन्यायकारी कानूनोंके विरुद्ध उसकी लड़ाईमें समझौता होते समय तो सहायक ही होगा। इस तरहकी दलीलोंसे विरोधी पक्षके बड़े भागको मैं समझा सका और अंतमें हमने कष्टोंकी शिकायतें बाकायदा साबित करनेका विचार त्याग दिया।

: २५ :

पत्र-व्यवहार

प्राथमिक समझौतेके लिए जनरल स्मट्सके और मेरे बीच पत्रव्यवहार हुआ। मेरे पत्रका आशय यह था :

"अपनी प्रतिज्ञाके कारण हम आपके सूचनानुसार कमीशनके काममें मदद नहीं कर सकते। इस प्रतिज्ञाको आप समझ सकते हैं और उसकी कद्र भी करते हैं; पर आपने हिंदुस्तानी कौमके साथ मशविरा करनेका सिद्धांत स्वीकार कर लिया है। इसलिए मैं अपने देशवासियोंको यह सलाह दे सकता हूं कि कमीशनके सामने शहादतें पेश करना छोड़कर दूसरी तरहसे उसकी सहायता करें और कम-से-कम उसके काममें रुकावट तो नहीं ही डालें। इसके सिवा जबतक कमीशनका काम चलता रहे और नया कानून नहीं बने तबतक सरकारकी स्थिति कठिन न हो जाय इस खयालसे सत्याग्रह मुलतवी रखनेकी सलाह भी मैं उन्हें दे सकता हूं। सर बेंजामिन राबर्टसनकी, जिन्हें वाइसरायने यहां भेजा है, सहायता करनेकी सलाह भी मैं अपने देशवासियोंको दूंगा। जेलमें और हड़तालके दौरानमें हमारे ऊपर जो जुल्म-ज्यादतियां हुईं उनके बारेमें मुझे कहना होगा कि अपनी प्रतिज्ञाके कारण हम इन शिकायतोंको साबित भी नहीं कर सकते। सत्याग्रहीकी हैसियतसे हमसे जहांतक हो सकता है, अपने

कष्टोंकी शिकायत नहीं करते और न उनका मुआवजा मांगते हैं। पर इस समयके हमारे मौनका अर्थ यह न किया जाय कि हमारे पास साबित करनेका कोई मसाला तो है ही नहीं। मैं चाहता हूं कि आप मेरी स्थिति समझ सकें। इसके अतिरिक्त चूंकि हम सत्याग्रह मुलतवी रख रहे हैं इसलिए लड़ाईके सिलसिलेमें जो लोग इस वक्त जेलमें हैं उन्हें रिहाई मिलनी ही चाहिए।

हमारी मांग क्या है, यह भी यहां जता देना आवश्यक जान पड़ता है :

१. तीन पौंडका कर उठा दिया जाय।

२. विवाह हिंदू-धर्म, इस्लाम इत्यादिकी रीतिसे हुआ हो तो जायज माना जाय।

३. पढ़े-लिखे भारतीय इस देशमें दाखिल हो सकें।

४. ऑरेंजिया (आरेंज फ्री स्टेट)के बारेमें जो कौल-करार हुआ है उसमें सुधार किया जाय।

५. यह आश्वासन दिया जाय कि मौजूदा कानूनोंका व्यवहार इस तरह किया जायगा कि जो हक आज भोगे जा रहे हैं उनको नुकसान न पहुंचे।

इन बातोंके विषयमें आपसे संतोषजनक उत्तर मिले तो मैं कौमको सत्याग्रह मुलतवी रखनेकी सलाह दूं।"

यह पत्र मैंने १९१४की २१वीं जनवरीको लिखा। उसी दिन उसका जो जवाब मिला उसका आशय यह था :

"आप कमीशनके सामने इजहार नहीं दे सकते इसका सरकारको खेद है, पर वह आपकी स्थिति समझ सकती है। आप जो कष्टोंकी बात न उठानेका विचार प्रकट कर रहे हैं उसको भी सरकार समझती है। इन कष्टोंसे सरकार तो इन्कार ही करती है; पर जब आप उसका सबूत नहीं पेश कर रहे हैं तो सरकारको इस विषयमें कुछ करना नहीं रह जाता। सत्याग्रही कैदियोंकी रिहाईके बारेमें तो सरकार आपका पत्र मिलनेसे

पहले ही हुक्म दे चुकी है । हिंदुस्तानी कौमके कष्ट जो आपने गिनाये हैं उनके बारेमें सरकार कमीशनकी रिपोर्ट मिलनेतक कोई कदम नहीं उठायेगी ।"

यह पत्रव्यवहार होनेसे पहले हम दोनों—मैं और मि० एंड्रूज—अनेक बार जनरल स्मट्ससे मिल चुके थे; पर इस बीच सर बेंजामिन राबर्टसन भी प्रिटोरिया पहुंच गये थे । सर बेंजामिन यद्यपि लोकप्रिय अधिकारी माने जाते थे, गोखलेकी सिफारिशी चिट्ठी भी अपने साथ लाये थे, फिर भी मैंने देखा कि आम अंग्रेज अफसरोंकी कमजोरियोंसे वह सर्वथा मुक्त नहीं थे । पहुंचनेके साथ ही उन्होंने कौममें फूट डालना और सत्याग्रहियों-को डरवाना शुरू कर दिया । प्रिटोरियामें हुई मेरी पहली मुलाकातमें उनकी अच्छी छाप नहीं पड़ी । डरानेके बारेमें मुझे जो तार मिले थे उनका जिक्र भी मैंने उनसे कर दिया । मुझे तो सबके साथ एक ही रीतिसे यानी सफाई और सचाईका व्यवहार करना था । अतः हम मित्र हो गये; पर मैंने अनेक बार देखा है कि डरनेवालेको तो अधिकारी डराते हैं और सीधे तथा न डरनेवालेके साथ वह सीधे रहते हैं ।

इस प्रकार प्राथमिक-अस्थायी समझौता हुआ और सत्या-ग्रह आखिरी बार सदाके लिए मुलतवी किया गया । बहुतेरे अंग्रेज मित्रोंको प्रसन्नता हुई और उन्होंने अंतिम समझौतेमें मदद करनेका मुझे भरोसा भी दिलाया । कौमसे इस समझौते-को मंजूर करा लेना जरा टेढ़ी खीर थी । जगा हुआ जोश ठंडा पड़ जाय, यह किसीको भी रुचनेवाली बात नहीं थी । फिर जन-रल स्मट्सका विश्वास कोई क्यों करने लगा ? कुछ भाइयोंने १९०८के समझौतेकी याद दिलाई और कहा—"एक बार जनरल स्मट्सने कौमको धोखा दिया, अनेक बार आपपर अपनी मांगोंमें नई बातें शामिल कर लेनेका दोष लगाया, कौमपर भारी मुसीबतें गुजारीं, फिर भी आपने नहीं समझा,

यह कैसे दुःखकी बात है ? यह आदमी फिर धोखा देगा और आप फिर सत्याग्रह करनेकी बात कहेंगे । उस वक्त कौन आपका विश्वास करेगा ? लोग बार-बार जेल जायें और बार-बार धोखा खायें, यह कैसे हो सकता है ? जनरल स्मट्स-जैसे आदमी-के साथ तो एक ही समझौता हो सकता है: जो मांगना वह ले लेना । उनसे वचन नहीं लेने चाहिए । जो वादा करके मुकर जाय उसे उधार कोई कैसे दे सकता है ?"

मैं जानता ही था कि इस तरहकी दलीलें कितनी ही जगह पेश की जायेंगी. इससे मुझे अचरज नहीं हुआ । सत्याग्रही कितनी ही बार धोखा क्यों न खाये ज़बतक वचनपर विश्वास न करनेका स्पष्ट कारण नहीं हो तबतक विपक्षीके वचनका विश्वास करेगा ही । जिसने दुःखको सुख मान लिया हो वह जहां अविश्वास करनेका कारण न हो वहां केवल दुःखके नामसे डरकर अविश्वास नहीं करेगा, बल्कि अपनी शक्तिपर भरोसा रखकर विपक्षके विश्वासघातकी ओरसे निश्चित रहकर कितनी ही बार विश्वासघात क्यों न किया जाय फिर भी विश्वास करता ही जायगा और यह मानेगा कि ऐसा करनेसे सत्यका बल बढ़ेगा और विजय निकट आयेगी । अतः जगह-जगह सभाएं करके मैं अंतमें लोगोंको समझौता स्वीकार करानेके लिए समझा सका और वे भी सत्याग्रहका रहस्य अब अधिक समझने लगे । इस वक्तके समझौतेमें मि० ऐंड्रूज मध्यस्थ और साक्षी थे । वैसे ही वाइसरायके राजदूतके रूपमें सर बेंजामिन राबर्टसन भी थे । इसलिए इस समझौतेके मिथ्या होनेका डर कम-से-कम था । मैंने हठकरके समझौता करनेसे इन्कार कर दिया होता तो यह उलटा कौमका दोष समझा जाता और जो विजय छः महीने बाद हमें मिली उसकी प्राप्तिमें अनेक प्रकारके विघ्न आते । सत्याग्रही किसी भी कालमें इसका कारण नहीं प्रस्तुत करता कि कोई उसकी ओर उंगलीतक

उठा सके । 'क्षमा वीरस्य भूषणम्'वाक्य ऐसे ही अनुभवके आधारपर लिखा गया है। सत्याग्रहमें निर्भयता रहनी ही चाहिए। फिर निर्भयको भय क्या ? और जहां विरोधीका विरोध जीतना है, उसका नाश नहीं करना है, वहां अविश्वास कैसा ?

इस तरह कौमके समझौता स्वीकार कर लेनेके बाद हमें महज यूनियन पार्लमेंटके बैठनेकी राहभर देखनी बाक़ी रही । इस बीच पूर्वोक्त कमीशनका काम जारी था। हिंदुस्तानियोंकी ओरसे बहुत ही कम गवाह उसके सामने गये । उस वक्त कौमपर सत्याग्रहियोंका कितना ज्यादा असर था इसका अकाट्य प्रमाण इससे मिल गया । सर बेंजामिन राबर्टसनने भी हिंदुस्तानियोंको गवाही देनेके लिए समझाया; पर लड़ाईके कट्टर विरोधी थोड़ेसे भारतीयोंके सिवा और सब लोग अविचल रहे । इस बहिष्कारका असर तनिक भी बुरा नहीं हुआ । कमीशनका काम मुख्तसर हो गया और रिपोर्ट झटपट प्रकाशित हो गई । रिपोर्टमें कमीशनके सदस्योंने भारतीय जनताके कमीशनके काममें सहायता न करनेकी अवश्य कड़ी आलोचना की थी । सैनिकोंके दुर्व्यवहारके आरोपको उड़ा दिया; पर कौमको जो-जो चीज चाहिए थी उस सबको देनेकी सिफारिश कमीशनने की । यानी उसने तीन पौंडका कर उठा देने, ब्याहके विषयमें हिंदुस्तानियोंकी मांग मंजूर करने और दूसरी अनेक छोटी-मोटी रियायतें देनें और सारा काम बिना ढिलाई किये करनेकी सिफारिश की । इस तरह कमीशनकी रिपोर्ट जैसा कि जनरल स्मट्सने कहा भारतीयोंके अनुकूल निकली । मि० एंड्रूजने विलायत जानेके लिए बिदा ली । सर बेंजामिन राबर्टसन भी रवाना हो गये । हमें यह आश्वासन दिया गया था कि कमीशनकी रिपोर्टके अनुसार कानून बनाया जायगा । यह कानून क्या था, इसपर अगले प्रकरणमें विचार करूंगा ।

: २६ :

युद्धका अंत

कमीशनकी रिपोर्ट निकलनेके थोड़े ही दिन बाद जिस कानूनके जरिये समझौता होनेवाला था उसका मसविदा यूनियन गजटमें प्रकाशित हुआ। इस मसविदेके प्रकाशित होते ही मुझे केप टाउन जाना पड़ा। यूनियनकी विधान-सभा (यूनियन पार्लमेंट) की बैठकें वहीं हो रही थीं, अब भी वहीं होती हैं। इस बिलमें ९ धाराएं हैं और पूरा बिल 'नवजीवन'के दो कालमोंमें आजायगा। उसका एक भाग भारतीयोंके बीच हुए ब्याहके विषयमें है, जिसका आशय यह है कि जो ब्याह हिंदुस्तानमें वैध माना जाता है वह दक्षिण अफ्रीकामें भी जायज समझा जायगा; पर एक ही वक्तमें किसीके एकसे अधिक पत्नियां हों तो उनमेंसे एक ही दक्षिण अफ्रीकामें कानूनन जायज पत्नी मानी जायगी। दूसरे भागके द्वारा उस तीन पौंडके करको रद करना है जो हरएक गिरमिटिएको, अगर वह स्वतंत्र भारतीयके रूपमें दक्षिण अफ्रीकामें रहना चाहता हो तो हर साल देना पड़ता था। तीसरे भागमें जिन लोगोंको दक्षिण अफ्रीकामें रहनेके प्रमाणपत्र मिले हुए थे उन प्रमाण-पत्रोंका महत्व बताया गया है। यानी यह बताया गया है कि जिसके पास यह प्रमाणपत्र हो उसका दक्षिण अफ्रीकामें रहनेका हक किस दरजेतक साबित होता है। इस बिलपर यूनियन पार्लमेंटमें खासी और मीठी बहस हुई।

दूसरी बातोंका, जिनके लिए कानूनकी जरूरत नहीं थी, स्पष्टीकरण जनरल स्मट्सके और मेरे बीच हुए पत्रव्यवहारमें किया गया। उसमें इन विषयोंका खुलासा किया गया था। पढ़े-लिखे भारतीयोंके केप कालोनीमें प्रवेशके अधिकारकी रक्षा,

जिन्हें दक्षिण अफ्रीकामें दाखिल होनेकी खास परवानगी प्राप्त थी उनका अधिकार, जो हिंदुस्तानी १९१४के पहले दक्षिण अफ्रीकामें दाखिल हो चुके हों उनकी हैसियतें और जिन्होंने एकाधिक स्त्रियोंसे ब्याह कर लिया हो उन्हें कृपारूपमें अपनी दूसरी पत्नीको भी लाने देना। जनरल स्मट्सके पत्रमें इस आशयका वाक्य भी है :

"प्रचलित कानूनोंके बारेमें यूनियन सरकारकी सदा यह इच्छा रही है और आज भी है कि उनपर न्यायपूर्वक और जो अधिकार आज भोगे जा रहे हैं उनकी रक्षा करते हुए ही अमल किया जाय।" यह पत्र ३० जून १९१४ को लिखा गया था। उसके जवाबमें उसी दिन मैंने जनरल स्मट्सको जो पत्र लिखा उसका आशय यह है :

"आपका आजकी तारीखका पत्र मुझे मिला। आपने धीरज और सौजन्यके साथ मेरी बातें सुन लीं इसके लिए अहसानमंद हूं।

"हिंदुस्तानियोंको राहत देनेवाले कानून (इंडियन रिलीफ बिल्स) के पास हो जाने और हमारे बीच हुए पत्रव्यवहारसे सत्याग्रह-संग्रामकी समाप्ति हो रही है। यह लड़ाई १९०९ ई० के सितंबर महीनेमें शुरू हुई। हिंदुस्तानी कौमको इसमें बहुत कष्ट और पैसेका नुकसान उठाना पड़ा। सरकारको भी चिंताग्रस्त रहना पड़ा।

"आप जानते हैं कि मेरे कुछ भाइयोंकी मांग बहुत ज्यादा थी। अलग-अलग प्रांतोंमें व्यापारके परवानेके कानूनोंमें जैसे ट्रांसवालका 'गोल्ड लॉ', ट्रांसवाल टाउन शिक्षा ऐक्ट और १८८५का ट्रांसवालका नं० ३ कानून, इनमें कुछ भी अदल-बदल नहीं हुआ, जिससे भारतीयोंको निवास, व्यापार और जमीनकी मालिकीका पूरा-पूरा हक मिले। इससे उनको असंतोष हुआ है। कुछ लोगोंको तो इस कारण असंतोष है कि एकसे

दूसरे सूबेमें जानेकी पूरी आजादी नहीं दी गई। कुछ लोगोंको इस बातसे असंतोष है कि हिंदुस्तानियोंको राहत देनेवाले कानून-में विवाहके प्रश्नके विषयमें जितना किया गया है उससे अधिक होना चाहिए था। उनकी मुझसे यह मांग है कि ये सभी बातें सत्याग्रहकी लड़ाईमें शामिल कर ली जायं। पर मैंने उनकी मांग मंजूर नहीं की। अतः यद्यपि ये बातें सत्याग्रहके विषयके रूपमें शामिल नहीं की गईं तो भी इस बातसे तो हर्गिज इन्कार नहीं किया जा सकता कि किसी दिन सरकारको इन प्रश्नोंपर और विचार करके राहत देना मुनासिब होगा। जबतक यहां बसनेवाली हिंदुस्तानी कौमको नागरिकके पूरे-पूरे हक नहीं दे दिये जायं तबतक पूरे संतोषकी आशा नहीं रखी जा सकती।

"अपने भाइयोंसे मैंने कहा है कि आप लोगोंको धीरज रखना है और हरएक योग्य साधनके द्वारा लोकमतको ऐसा बनाना है जिससे इस पत्रव्यवहारमें दरसायी हुई शर्तोंसे भी भविष्यकी सरकार आगे जा सके। मैं आशा रखता हूं कि दक्षिण अफ्रीकाके गोरे जब यह समझेंगे कि हिंदुस्तानसे गिरमिटिए मजदूरोंका आना अब बंद हो चुका है और दक्षिण अफ्रीकामें नये आनेवालोंसे संबंध रखनेवाले कानून (इमिग्रेशन रेगुलेशन ऐक्ट) से स्वतंत्र भारतीयोंका इस देशमें आना भी लगभग बंद हो गया है और यह भी समझेंगे कि भारतीयोंकी महत्वाकांक्षा यहांके राजकाजमें कोई अधिकार स्थापित करनेकी नहीं है तब वे देखेंगे कि मैंने जो बताये हैं वे हक हिंदुस्तानियोंको मिलने ही चाहिए और उसीमें न्याय भी है। इस बीच इस मसलेको हल करनेमें पिछले कुछ महीनोंसे सरकारने जो उदार नीति ग्रहण कर रखी है वही उदार नीति, जैसा कि आपके पत्रमें बताया गया है, वर्तमान कानूनोंपर अमल करनेमें बरती गई तो मेरा विश्वास है कि संपूर्ण यूनियनमें



दक्षिण अफ्रीकासे बिदाई

हिंदुस्तानी कौम कुछ शांति भोगते हुए रह सकेगी और सरकारके लिए हैरानीका कारण नहीं होगा ।

उपसंहार

इस प्रकार आठ बरसके बाद सत्याग्रहका यह महान संग्राम समाप्त हुआ और ऐसा जान पड़ा कि सारे दक्षिण अफ्रीकामें बसनेवाले भारतीयोंको शांति मिली। मैं खेद और हर्ष दोनोंके साथ इंगलैण्डमें गोखलेसे मिलकर हिंदुस्तान जानेके लिए दक्षिण अफ्रीकासे रवाना हुआ । जिस देशमें मैं पूरे २१ बरस रहा, अगणित कड़वे-मीठे अनुभव प्राप्त किये, जिस देशमें मैं अपने जीवनके कार्य, उद्देश्यके दर्शन कर सका उस देशको छोड़नेमें मुझे बहुत दुःख हुआ और मैं खिन्न हुआ। हर्ष यह सोचकर हुआ कि इतने बरसोंके बाद हिंदुस्तान वापस जाकर मुझे गोखलेकी मातहती और रहनुमाईमें सेवा करनेका सौभाग्य प्राप्त होगा ।

इस युद्धका जो ऐसा सुंदर अंत हुआ उसके साथ दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी आजकी स्थितिकी तुलना करते हुए क्षणभरके लिए दिलमें यह सवाल उठता है कि भारतीयोंने इतने सारे दुःख किस लिए उठाये ? अथवा सत्याग्रहके शस्त्रकी श्रेष्ठता ही कहां सिद्ध हुई ? इसके उत्तरपर यहां विचार कर लेना चाहिए। सृष्टिका एक नियम है कि जो वस्तु जिस साधनसे मिलती है उसकी रक्षा उस साधनसे ही होती है । अर्थात् दंडसे मिली हुई वस्तुकी रक्षा दंड ही कर सकता है, सत्यसे प्राप्त वस्तुका संग्रह सत्यके द्वारा ही हो सकता है । इसलिए दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय आज भी सत्याग्रहके हथियारसे काम ले सकें तो अपने आपको सुरक्षित बना सकते हैं। सत्या-

ग्रहमें ऐसी विशेषता तो है ही नहीं कि सत्यसे मिली हुई वस्तु सत्यका त्याग कर देनेपर भी बनाये रखी जा सके। ऐसा परिणाम हो सकता हो तो वह इष्ट भी नहीं समझा जायगा। अतः अगर दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी स्थिति आज दुर्बल है तो हमें समझ लेना चाहिए कि इसका कारण सत्याग्रहियोंका अभाव है। यह कथन दक्षिण अफ्रीकाके आजके भारतीयोंके दोषका सूचक नहीं है, बल्कि वहांकी वस्तुस्थिति बताता है। व्यक्ति या समुदाय, जो चीज अपने आपमें नहीं है, वह कहांसे लायेगा ? सत्याग्रही सेवक एकके बाद एक इस दुनियासे कूच कर गये। सोराबजी काछलिया, नायडू, पारसी रुस्तमजी, इत्यादिके स्वर्गवाससे सत्याग्रहके अनुभवियोंमेंसे थोड़े ही बच रहे हैं। जो रह गये हैं वे आज भी जूझ रहे हैं।

अंतमें इन प्रकरणोंको पढ़ जानेवाले इतना तो समझ ही गये होंगे कि अगर यह संग्राम नहीं किया होता और बहुतेरे भारतीयोंने जो कष्ट सहे वे न सहे गये होते तो आज दक्षिण अफ्रीकामें हिंदुस्तानियोंके कदम ही न रह गये होते। इतना ही नहीं, दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंकी विजयसे दूसरे ब्रिटिश उपनिवेशोंके हिंदुस्तानी भी कमोबेश बच गये। कुछ न बच सके तो यह दोष सत्याग्रहका नहीं है, बल्कि इससे साबित हो गया कि उन उपनिवेशोंमें सत्याग्रहका अभाव है और हिंदुस्तानमें उनकी रक्षा करनेकी शक्ति ही नहीं है। सत्याग्रह अमूल्य शस्त्र है, उसमें नैराश्य या हारके लिए अवकाश नहीं, यह बात अगर इस इतिहासमें थोड़े-बहुत अंशमें भी सिद्ध हो सकी हो तो मैं अपने आपको कृतार्थ समझूंगा।

समाप्त

परिशिष्ट

सत्याग्रह-संग्रामका तारीखवार इतिहास

गांधीजी १८९३के अप्रेल महीनेमें हिंदुस्तानसे रवाना होकर मई मासमें डर्बन पहुँचे थे।

१९०६

४ अगस्त—मि० डन्कनने ट्रांसवाल लेजिस्लेटिव कौंसिलमें एशियाटिक एमेंडमेंट ऐक्ट पेश करनेकी दरख्वास्त दी।

११ सितंबर—जोहान्सबर्गके एंपायर थियेटरमें भारतीयोंकी आम सभा हुई। सभामें उपस्थित लोगोंने इस बातकी शपथ ली कि अगर कानून पास हो तो उसे न मानकर जेल जायंगे।

१२ सितंबर—ट्रांसवालकी धारासभामें खूनी कानून पास हुआ।

१ अक्तूबर—जोहान्सबर्गसे भारतीय शिष्ट-मंडल इंग्लैण्ड गया।

८ नवंबर—उपनिवेश मंत्री लार्ड एलिगनसे शिष्ट-मंडलकी भेंट।

२९ नवंबर—दक्षिण अफ्रीका ब्रिटिश इंडियन कमेटीकी लंदनमें स्थापना। सर लेपल ग्रिफिन उसके पहले अध्यक्ष और मि० रीच मंत्री नियुक्त हुए।

१ दिसंबर—विलायतसे भारतीय शिष्ट-मंडल लौटा।

३ दिसंबर—खूनी कानूनको बादशाहने नामंजूर कर दिया।

१९०७

२२ मार्च—ट्रांसवालकी नई पार्लमेंटने सम्राट् सरकार द्वारा नामंजूर खूनी कानून २४ घंटेमें पास कर दिया।

२ मई—बादशाहने इस कानूनको स्वीकृति दी।

१ जुलाई—खूनी कानूनका अमल शुरू; उसके अनुसार पहले-पहल प्रिटो-

रियामें रजिस्ट्री करनेके लिए रजिस्ट्रेशन आफिस खुला। वह आफिस चार महीनेतक ट्रांसवालके गांवोंमें घूमा; पर लगभग सभी जगह उसका बहिष्कार किया गया। आठ हजारकी आबादीमेंसे कोई चार सौसे भी कम लोगोंने रजिस्ट्री कराई। इस मियादके बाद पकड़-धकड़ शुरू हुई।

१८ सितंबर——माननीय गोखलेकी ओरसे असोसियेशनको नीचे लिखे अनुसार तार मिला——

"आपकी लड़ाई मैं बराबर देखता रहता हूं। चिंतातुर होकर मन उसीमें लगा रहता है। मेरी पूरी सहानुभूति है। लड़ाईकी तारीफ करता हूँ। ईश्वरेच्छापर दृढ़तासे आधार रखियेगा।"

२५ अक्तूबर——असोसियेशनकी ओरसे खूनी कानूनके विरुद्ध ट्रांसवालके ७-८ हजार भारतीयोंमेंसे ४,५२२ लोगोंकी सहीसे एक बड़ी अर्जी सरकारको भेजी गई।

३ नवंबर——रजिस्ट्रेशनके लिए दरख्वास्तें लेना बंद हुआ।

११ नवंबर——सत्याग्रहियोंकी पहली बार पकड़-धकड़ शुरू हुई।

२७ दिसंबर——गांधीजीको कोर्टमें हाजिर होनेकी चेतावनी दी गई।

२८ दिसंबर——जोहान्सबर्गमें मि० जोर्डनने गांधीजीको ४८ घंटेके अंदर ट्रांसवाल छोड़नेका हुक्म दिया।

१९०८

१० जनवरी——जोहान्सबर्गमें मि० जोर्डनने गांधीजीको दो मास की सादी कैद की सजा दी।

३० जनवरी——सत्याग्रही कैदी छोड़े गये। ट्रांसवाल सरकारने भारतीयोंकी अपने आप रजिस्ट्री करा लेनेकी मांग स्वीकार की और खूनी कानून रद करनेका वचन दिया।

१० फरवरी—श्री थंबी नायडू और दूसरे कुछ लोगोंके साथ गांधीजीके रजिस्ट्री करानेके लिए रजिस्ट्री दफ्तर जाते हुए रास्तेमें गांधीजी पर हमला।

२४ जून—सरकारने खूनी कानून रद करनेसे इन्कार कर दिया। इस कारण सत्याग्रहकी लड़ाई फिर शुरू हुई। श्री सोराबजी नेटालमेंसे ट्रांसवालमें दाखिल हुए और २० जुलाईको वोकरेस्टके मजिस्ट्रेटने उन्हें एक मासकी सजा दी।

१२ जुलाई—जोहान्सबर्गकी आमसभामें कोई २ हजार परवानोंकी होली की गई।

२२ जुलाई—सम्राट् सरकारका लार्ड सेलबर्नको तार मिला कि रोडेशियामें जो कड़ा एशियाटिक कानून बना है उसे बादशाहकी मंजूरी नहीं दी जा सकती।

२२ अगस्त—अपने आप रजिस्ट्री करा लेनेवालोंको नियमित करार देने तथा दूसरे भारतीयोंकी रजिस्ट्री करनेके संबंधमें ट्रांसवालकी दोनों धारासभाओंमें कानून पास हुआ।

३० अगस्त—प्रिटोरियाकी आमसभामें अपने आप लिये गये २०० के करीब दूसरे परवानोंकी होली की गई।

७ सितंबर—गांधीजी वोकरस्टमें पकड़े गये और एक हफ्ते बाद उनका मुकदमा शुरू हुआ। उसमें उन्हें दो मासकी कड़ी कैदकी सजा दी गई।

९ से १४ नवंबर—इस बीच २२७ भारतीय जेल गये। इनमें कई प्रमुख हिंदू और मुसलमान व्यापारी थे। इनमें ६४ जोहान्सबर्गके, ९७ जर्मिस्टनके, और ६० प्रिटोरियाके ६ दूसरी जगहके थे।

१७ नवंबर—५३ तामिल फेरी करते हुए पकड़े गये। उनको ७ दिनकी सजा मिली।

२२ नवंबर——कलकत्तामें मि० अब्दुल जबरके सभापतित्वमें सत्याग्रहियोंके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करनेके लिए सभा हुई।

१३ दिसंबर——गांधीजी अपनी दो मासकी दूसरी क़ैदकी सजा पूरी करके छूटे।

१९०९

९ जनवरी——डर्बनमें मर्क्युरी-पत्रके प्रतिनिधिने गांधीजीसे भेंट की उसमें उन्होंने बताया कि ट्रांसवालमें लगभग २ हजार भारतीय जेल गये।

१५ जनवरी——गांधीजी नेटालसे वोकरस्ट जाते हुए तीसरी बार पकड़े गये। कुछ हफ्ते बाद मुकदमा चला। उसमें तीन मासकी सजा मिली। उसी दिन हमीदिया सोसाइटीके उप-प्रधान मि० उमरजी साले, जिनकी उम्र ६५ वर्षकी थी तथा मि० डेविड अर्नेस्ट वगैरह प्रसिद्ध भारतीयोंको ३-३ मासकी सजा हुई।

२९ जनवरी——क्रूगर्सडोरपमें कान्फरेंस हुई। उसमें किसी भी प्रकारके परवाने न लेकर और दुकानें समेटकर फिरसे जेल जानेका प्रस्ताव पास किया।

६ फरवरी——ट्रांसवालके मि० हास्केनकी कमिटीने भारतीयोंको राहत देनेके बारेमें 'लंदन टाइम्स'को पत्र लिखा।

१० फरवरी——रोडेशियाका एशियाटिक कानून सम्राट सरकारने नामंजूर किया।

१२ फरवरी——पारसी रुस्तमजी और दूसरे कई लोगोंको ६ मासकी सजा मिली।

६ मार्च——बॉक्सबर्ग, नौरवुड, बराम फोंटीन, बार्बरटन, क्रूगर्सडोरपमें बस्ती बनानेका गोरोंने आंदोलन शुरू किया।

१० मार्च——डेलागोआ बेके रास्ते सत्याग्रहियोंको देशनिकाला देकर हिंदुस्तान भेज देना शुरू हुआ।

१२ मार्च—प्रिटोरियामें श्रीमती पिल्लेके केसमें गांधीजीको हाथमें हथकड़ी डालकर कोर्टमें ले जाया गया।

* ५ अप्रैल—ता० १४ सितंबरसे १७ मार्चतकके लेख-वक्तव्य आदि सम्राट सरकारने 'ब्ल्यू बुक'के नामसे प्रकाशित किये।

३० अप्रैल—श्री० काछलिया और दूसरे अठारह सत्याग्रही सजा पूरी करके छूटे।

४ मई—भारतीय सत्याग्रही कैदियोंको जेलमें घी दिया जाने लगा।

२४ मई—गांधीजीको चौथी बार तीन मासकी सजा हुई।

७ जून—जर्मिस्टनमें गोरोंकी 'लिटरेरी और डिबेटिंग सोसाइटी'में गांधीजीने 'सत्याग्रहकी नीति' विषयपर भाषण दिया।

१६ जून—जोहान्सबर्गकी आमसभामें श्री० ए० एम० काछलिया, श्री० हाजी हबीब, श्री० बी० ए० चेट्टियार और गांधीजीको विलायत तथा श्री० एम० ए० कामा, श्री० एन० जी० नायडू, श्री० ई० ए० कुवाड़िया और एच० एस० पोलकको हिंदुस्तान भेजनेका प्रस्ताव हुआ। इस शिष्ट-मण्डल के रवाना होनेसे पहले ही श्री० काछलिया, श्री० कुवाड़िया, श्री० कामा तथा श्री चेट्टियारको गिरफ्तार कर लिया गया।

४ जुलाई—जोहान्सबर्ग-जेलसे छूटनेके बाद, जेलमें पाये कष्टोंसे, नागप्पनकी मृत्यु।

१६ जुलाई—मुजफरी स्टीमरसे १४ भारतीयोंको देशनिकाला देकर बाहर भेजा गया।

१ सितंबर—बंबईके शेरिफने दक्षिण अफ्रिकाके युद्धके बारेमें चर्चा करनेको सभा बुलाई। उसे बंबई-सरकारने रोक दिया। फिर यह सभा तेरह दिन बाद हुई।

१६ सितंबर—विलायतमें शिष्ट-मंडलने लार्ड क्रूसे भेंट की।

१३ नवंबर––विलायत गया हुआ शिष्ट-मंडल किलडोजन कैसल जहाजसे वापस रवाना हुआ।

१ दिसंबर––हिंदुस्तानमें श्री० रतन ताताने २५ हजार रुपया दिया, इसकी घोषणा हुई।

१९१०

२५ फरवरी––भारतकी लेजिस्लेटिव असेंबलीमें गोखलेका गिरमिट बंद करनेका प्रस्ताव पास हुआ।

१ जून–––दक्षिण अफ्रीकाका यूनियन बना। उसी दिन सोराबजी शापुरजी अडाजनिया सातवीं बार पकड़े गये।

४ जून––मि० केलनबेकने सत्याग्रहियोंको रहनेके लिए लोलीका अपना फार्म दे दिया।

१३ जून––२६ सत्याग्रही प्रेसिडेंट नामक स्टीमरसे हिंदुस्तानसे वापस आये।

२६ जुलाई––पोर्चुगीज सरकारकी मददसे भारतीयोंको देश-बाहर किये जानेकी लार्ड एम्पृहिलने लार्डसभामें विशद चर्चा की।

३० जुलाई––भारतीय बालक जो आजतक वयस्क होनेपर रजिस्टर हो सकते थे, उनको १९०८के कानून पास हो जानेके बाद वयस्क होनेपर, रजिस्टर करनेसे इन्कार किया गया।

२२ अगस्त––छोटाभाईके लड़केका मुकदमा जोहान्सबर्गकी कोर्टमें शुरू हुआ। अंतमें छोटाभाई जीते।

२८ सितंबर––पोर्चुगीज सरकारकी सहायतासे देशनिकाला पाये हुए ८५ सत्याग्रहियोंके साथ पोलक डर्बन पहुंचे।

१६ अक्तूबर––श्री० नारायणस्वामीका गर्टरुडवूर्मन स्टीमरमें देशसे वापस आते हुए डेलागोआ बेमें देहावसान हो गया।

२५ फरवरी—इमिग्रेशन रिस्ट्रिक्शन बिल यूनियन गज़टमें प्रकाशित हुआ।

२५ अप्रैल––वह बिल चालू पार्लमेंटमें स्थगित होगया।

२० मई——कुछ शर्तोंपर समझौता हुआ और सत्याग्रहकी लड़ाई स्थगित हुई।

(इसके बाद लगभग दो वर्षतक कुछ शांति रही और फिर १९१३में चौंका देनेवाली घटनायें हुईं।)

१९१३

२२ मार्च——भारतीय धर्मपर हमला। जस्टिस सर्लने फैसला दिया जिसके मुताबिक इस्लामकी शरहसे मरियमबाईका उनके पतिके साथ हुआ विवाह गैरकानूनी करार दिया गया।

३ अप्रैल——यूनियन गजटमें नया इमिग्रेशन बिल प्रकाशित हुआ।

३ मई——जोहान्सबर्गकी आमसभामें सत्याग्रह शुरू करनेका प्रस्ताव पास हुआ। इसी हफ्ते स्त्रियोंकी तरफसे भी ऐसा ही प्रस्ताव डोमीनियन सेक्रेटरीको भेजा गया।

२४ मई——गांधीजी और मि० फिशर (डोमीनियन सेक्रेटरी)के बीचका पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ।

७ जून——उपरोक्त पत्र-व्यवहारका आगेका भाग प्रकाशित हुआ।

२१ जून——इमीग्रेशन कानूनको बादशाहकी स्वीकृति मिली।

१५ जुलाई——नये कानूनकी धारायें यूनियन गजटमें प्रकाशित हुईं।

१ अगस्त——नये कानूनकी रूसे तीनों कालोनीमें अपील बोर्ड नियुक्त हुए। इस बोर्डके इमिग्रेशन अधिकारी भी एक-एक सदस्य थे।

१३ सितंबर——सत्याग्रहका प्रारंभ। सरकार और गांधीजीके बीचका महत्त्वपूर्ण पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ।

२२सितंबरसे १५ अक्तूबर——नेटाल और ट्रांसवालमेंसे सैकड़ों सत्याग्रही स्त्री-पुरुष फेरी करके या सरहद पार करके पकड़े गये और जेल गये।

१६ अक्तूबर——न्यू कैसलमें तीन पौंडके करके विरुद्ध हड़ताल शुरू हुई और वह चारों ओर फैल गई।

६ नवंबर---गांधीजी हड़तालियोंके साथ ट्रांसवालमें दाखिल हुए।

११ नवंबर---गांधीजीको डंडीमें नौ मासकी सजा हुई।

२८ नवंबर---भारतके वाइसराय लार्ड हार्डिंजका भाषण।

११ दिसंबर---कमीशनकी नियुक्ति।

१६ दिसंबर---गांधीजी, मि० केलनबेक तथा मि० पोलककी रिहाई।

१९१४

१६ फरवरी---समझौतेके अनुसार यूनियनकी जेलोंमेंसे सारे सत्याग्रही कैदी छोड़े गये।

१८ मार्च---कमीशनकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई।

३ जून---रिलीफ बिल प्रकाशित हुआ।

३० जून---अंतिम समझौता।

२० जुलाई---गांधीजीकी कस्तूरबा और मि० केलनबैकके साथ विलायत जानेके लिए दक्षिण अफ्रीकासे विदाई।

Due Date	Ticket No.	Inls.	Due Date	Ticket No.	Inls.

गांधी-साहित्य

गांधीजीके पूरे साहित्यको हिंदीमें प्रामाणिक व सुंदर ढंगसे और सस्ते मूल्यमें 'मंडल' प्रकाशित कर रहा है। अबतक ये पुस्तकें निकल चुकी हैं :

१. प्रार्थना-प्रवचन : खण्ड १
२. प्रार्थना-प्रवचन : खण्ड २
३. गीता-माता
४. पंद्रह अगस्तके बाद
५. धर्म-नीति
६. दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह

आगामी प्रकाशन :

नीचे लिखी पुस्तकें शीघ्र ही प्रकाशित हो रही हैं :

७. आत्म-कथा
८. मेरे समकालीन
९. प्रार्थना-प्रवचन : खण्ड ३
१०. अमर वाणी

•

प्रत्येक पुस्तकमें जीवनको सुसंस्कृत बनाने और बिना भेदभावके मानव-जातिके प्रति प्रेम-भावना रखनेकी प्रेरणा है। जितनी भी बार इन पुस्तकोंका स्वाध्याय किया जायगा, लाभ ही होगा। इतना सुंदर छपा-बंधा और इतना सस्ता साहित्य हिंदीमें और कहीं आपको नहीं मिलेगा।

•

सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली